लव्-लेटर्स

(खत का मज़मून भाँप लेते हैं लिफाफा देखकर)

हिन्दी साहित्यके धुरन्धर लेखकोंके लिखे, लव-लेटर्स

अर्थात् मनोहर (प्रेम-पत्र)

(संशोधित और परिवर्धित संस्करण)

भूमिका लेखक

स्वर्गीय पं० कृष्णकान्त मालवीय,

एम० एल० ए० (सेन्ट्रल)

संकलन कर्ता—सूर्य्यबली सिह

प्रकाशक—काशी-पुस्तक-भण्डार, चौक, बनारस ।

द्वितीय बार] सम्वत् २००२ वि० [मूल्य सजिल्द ६)

प्रकाशक

काशी-पुस्तक-भण्डार,

चौक, बनारस

कुत्सित जीवन

लेखक—महात्मा गाँधी

यह पुस्तक अपने विषयमे अद्वितीय है। इसका प्रमाण यही है कि यह संसारके सर्वश्रेष्ठ पुरुष महात्मा गान्धीद्वारा लिखी गई है। मानव-जातिको नैतिक जीवन देनेवाली यह पुस्तक बड़ी ही सुन्दर है। इसमें महात्माजीने यह भलीभाँति अंकित किया है कि आत्मसंयम ही जीवनका धर्म है। नर और नारीके बीचका स्वाभाविक सम्बन्ध वह है जो भाई-बहन, माँ और बेटे तथा बाप एवं बेटीमें होता है। पति और पत्निमें भी कामका आकर्षण स्वाभाविक और अप्राकृतिक है। विवाहका उद्देश्य दम्पतिके हृदयोंके विकारोंको दूर कर उन्हे ईश्वरके निकट ले जाना है। मू० १)

मुद्रक

शंकर प्रसाद,

खगेस प्रेस, ढुंढराज, बनारस।

समर्पण

भारत के
प्रेमी-प्रेमिकाओं के
विशुद्ध दाम्पत्य प्रेम को
प्रेम-पत्रों का यह हार
सादर समर्पित है।

विनीत
सूर्यबली सिंह

सम्मतियाँ

हिन्दी-साहित्यमें नई क्रान्ति पैदा करने वाली पुस्तक ख्यातनामा विद्वान लेखकोंके कलमकी करामात देखिये !

लव लेटर्स

में

भूमिका लेखक श्री पं० कृष्णकान्त मालवीय एम.एल.ए.केन्द्रीय

संग्रहकर्त्ता--ठा० सूर्य्यबली सिंह

किसी पाठकको "लव-लेटर्स" नामसे ही भड़क न उठना चाहिये ! क्योंकि इसमें आदर्श उपस्थित करने वाले इधर-उधरके प्रेमके पत्र संग्रह किये गये हैं। प्रत्येक पत्रमें प्रेमकी पवित्र पराकाष्ठाके दर्शन होते हैं तथा पत्र लेखन कला की शैली तर्ज तरीका भी दिया गया है, जिससे प्रत्येक स्त्री पुरुष काफी लाभ उठा सकते हैं। यह पुस्तक विवाहितोंके लिये बहुत सुन्दर दहेज है। तीन सौ काले कोससे एक व्यक्ति पत्रोंमें

हृदयका भाव किस प्रकार आप तक प्रकट कर सकता है, वह इस पुस्तकमें भलीभांति दिखाया गया है। कहां तक इसकी प्रशंसा करें, यह सब बेकार है—हम तो सिर्फ यही कहेंगे कि लेखकोंने अपना हृदय निकाल कर रख दिया है। इसपर भारतीय पत्र-पत्रिकाओंकी कुछ सम्मतियां इस प्रकार हैं:—

श्रीयुत सी० वाई० चिन्तामणिका सुप्रसिद्ध 'लीडर' पत्र क्या कहता है:—

OPENION FOR LEADER

लीडर—LOVE LETTERS (Hindi) collected by Sri Suryabali Singh, published by Kashi-Pustak-Bhandar, Chowk, Benares. Rs 6/-

Though bearing an English title this volume is a collection of love letters in Hindi written by wellknown writers and others not so wellknown but able to put down their thoughts in language which reflects their feelings very well The editor has tried to put together a comprehensive assortment so that we have letters written in prose, in verse, in jest, in earnest, in the manner of our new poets attempting prose poetry and in the vein of the bore anxious to give you adviee which you do not seek. The best letters are those written in an intimate style laying bare genuine feelings and longings and reflecting those deep-seated sentiments of love which have moved human hearts through the ages. Of ch letters there is quite a number here, and specially

भारत, इलाहाबाद—हिन्दी साहित्यके अनेक लब्ध प्रतिष्ठित विद्वान लेखकों और कवियोंके लव-लेटर्स अर्थात् प्रेम-पत्र इस पुस्तकमें दिये गए हैं, जो गद्य और पद्य दोनों हीमें हैं। पुस्तककी भूमिका पं० कृष्णकान्त मालवीय एम० एल० ए० ने लिखी है। आपने यद्यपि अपने बुढ़ापेकी दुहायी दी है, पर तो भी इसमें कहीं बुढ़ापेकी गंध नहीं है। बल्कि आपकी कुशल लेखनी के प्रभावसे वह विशेष रोचक और सरल होगयी है।

पुस्तकमें अनेक प्रेम-पत्र गद्य और पद्य दोनों ही में हैं, जो प्रेम, करुणा, हास्य, व्यङ्ग आदि भावोंसे ओतप्रोत हैं।

अन्तमें लव-लेटर्सके सम्बन्में 'चेतावनी' और 'उपसंहार' सुरुचिके साथ लिखे गये हैं। उनके पढ़नेसे मालूम होता है कि जो लोग बिना समझे बूझे उच्छृङ्खल हृदयसे प्रेम करते हैं, वे प्रेम तत्वको न समझकर केवल वासनाके वशीभूत रहते हैं। इन लेखोंकी अनेक उपयोगी बातोंका पाठकोंपर अच्छा असर पड़ेगा। पुस्तकमें अनेक सुन्दर चित्र दिये गये हैं। कवरका रंगीन चित्र विशेष चित्ताकर्षक है।

—विश्वम्भरनाथ जिज्जा, भारत ८ अगस्त १९३९

कमला, काशी—संकलनकर्त्ताके शब्दोंमें—"भारतके प्रेमी-प्रेमिकाओंके विशुद्ध दाम्पत्य प्रेमको यह हार सादर समर्पित है।" इस दृष्टिसे यह पुस्तक विवाहितोंके लिये एक साहित्यिक दहेज है। पुस्तकमें प्रायः ७० पत्रोंका संग्रह है, पुस्तक सभी रुचियोंके पाठकोंके अनुकूल है। जहाँ इससे प्रेमके सम्बन्धमें एकही जगह

पुञ्जीभूत साहित्य प्राप्त होता है वहाँ विविध लेखकोंकी शैलियोंका भी परिचय मिलता है।

—शान्तिप्रिय द्विवेदी—कमला।

सुधा, लखनऊ—प्रस्तुत पुस्तक पति-पत्नीके प्रेम-पत्रसे सराबोर पत्रोंका अपूर्व संग्रह है। हिन्दीके अनेक योग्य विद्वानोंकी कृतियोंका इसमें समावेश हुआ है, जिनमें भिन्न-भिन्न दृष्टिकोणोंसे प्रेम पर प्रकाश डाला गया है। इन भावपूर्ण पत्रोंको पढ़कर उनकी सराहना किए बिना नहीं रहा जा सकता।

—सुधा १९३९

'आज'—काशी—संकलनकर्ता श्री सूर्यबली सिंह। भूमिका-लेखक (स्वर्गीय) पण्डित कृष्णकान्त मालवीय, एम० एल० ए०; प्रकाशक—काशी-पुस्तक-भण्डार, चौक, बनारस। मूल्य सजिल्द ६) रुपया हमें खेद है कि इस सुन्दर पुस्तकपर हम पहले ही अपनी सम्मति न दे सके इस लिए श्री सूर्यबली सिंहसे क्षमा मांगते हैं।

अंग्रेजी नामकी यह पुस्तक वस्तुतः हिन्दी है। इसका उल्था प्रेम-पत्र हो सकता है; पर सम्भवतः आधुनिक 'लव' से जो सब भाव प्रगट होते हैं वे हमारे परम्परागत 'प्रेम' में नहीं हैं। इसीसे संकलनकर्ताने अंग्रेजी पेटिकामें हिन्दी मेवे पाठकोंकी भेंट किये हैं। उपहार बहुत ही अच्छा—मनोरंजक और ज्ञानवर्धक—है। विशेषकर इसकी भूमिकामें स्वर्गीय पण्डित कृष्णकांत मालवीयने नर-नारी विषयक अपने अनुभवकी बहुमूल्य बातें कही हैं जिनका प्रत्येक युवकको मनन

करना चाहिये। 'लेटर्स', नये भी और पुराने भी, युवकोंके भावपूर्ण, प्रौढ़ोंके विचारपूर्ण और वृद्धोंके उपेक्षापूर्ण भी हैं। आकर्षण विकर्षणके साथ हास्य भी है। 'बीबी और शौहरके खत' पढ़ते पढ़ते पाठक लोटपोट हो जायँगे, इसमें सन्देह नहीं। पण्डित वेंकटेशनारायण तिवारीका 'कृष्णके पत्र राधाके नाम' एक नवीन समस्या उपस्थित करता है—विचारको उत्तेजन देता है। पण्डित कृष्णकान्त मालवीयका 'राधाका एक पत्र' इसपर अच्छा भाष्य भी है और टीका भी। विचारशील पाठकोंको इन पत्रोंमें विचारके लिए काफी मसाला मिलेगा। मनोविज्ञानके विद्यार्थी भी इससे लाभ उठा सकते हैं। सारांश, पुस्तक संग्रहणीय और मननीय है।

पं० बाबूराव विष्णु पराड़कर

सभापति हिन्दी साहित्य सम्मेलन

प्रधान सम्पादक 'आज' काशी,

२०-९-४१

उपहार
लव-लेटर्स
श्री
भवदीय

संख्या पृष्ठ शीर्षक लेखक

———

भूमिका-लेखक

स्वर्गीय पं० कृष्णकान्त जी मालवीय, आप अनेक हिन्दी की पुस्तकों के रचयिता, प्रसिद्ध अभ्युदय पत्र के यशस्वी सम्पादक और केन्द्रीय लेजिस्लेटिव एसेम्बली के सदस्य थे। जन्म सं० १९४०, ज्येष्ठ सुदी ११। स्वर्गवास १९४१ ई०

दोस्त !
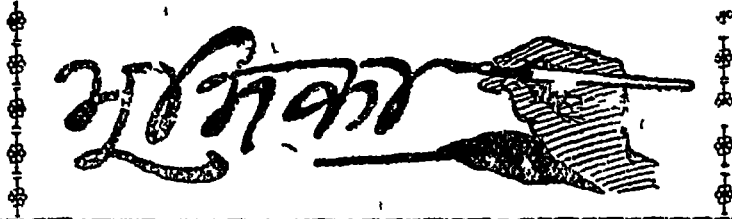
जिस समय श्रीसूर्य्यबलीसिंहजीने भूमिका लिखनेके लिए पत्र लिखा, बुढापेकी दुहाई देकर मैंने उत्तर भेजा कि अब इस योग्य नही कि 'लव-लेटर्स' की भूमिका लिख सकूं।

'हाली' के शब्दोमें मैंने लिखा :—

"हुई अरमाने जवानीकी बहार आखिर हैफ,
तबए रंगी थी मयए इश्ककी जब मतवाली।
अपनी रूदाद थी जो इश्कका करते थे बयाँ,
जो ग़ज़ल लिखते थे होती थी सरासर हाली।
आप बीती न हो जो है वो कहानी बेलुत्फ,
गरचे हों लफ्ज़ फसीह और ज़बाँ टकसाली।
गर ग़ज़ल लिखिए तो क्या लिखिए ग़ज़ल में आखिर,
न रही चीज़ वह मज़मून लिखानेवाली।

हाँ अगर इश्कके कुछ कीजिए औरोंके बयाँ,
 लाइए बाग़से औरोंके लगाकर डाली ।
ताकि भड़काए जवानोंके दिल आतशकी तरह,
 वह हवा जिससे दिमाग़ अपना हुआ है खाली ।
पर यह डर है कि कहीं अपना वही हो न मसल,
 कहवह चूँ पीर शवद पेशा कुनद्दल्लाली ।

किन्तु श्री सूर्य्यबलीसिंहजी न माने उन्होंने अन्य मित्रोंसे जोर डलवाना शुरू किया । कवि 'हाली' स्वर्गसे मना कर रहे थे, 'ग़ालिब' की रूह सामने खड़ी कहती थी —

"थी एक बुतके तसौव्वुरसे
 अब वोह रानाइये ख़याल कहाँ ?"

दिल कहता था जब 'खुशीकी काबलीयत ही नहीं बाकी रही दिल"में तो मज़मून क्या लिखोगे, जो लिख चुके हो, उसे मिटानेपर मत आमादा हो। लिख भेजो, लाचारी है नहीं लिख सकता, एकसे एक अच्छे लिखनेवाले युवक लेखक हैं. किसीसे लिखवा लीजिये । इस तरह भी कोशिश की; किन्तु सफलता न मिली क्योंकि मित्रगण आग्रह नहो हठसे काम ले रहे थे ।

सर्वथा विवश हो, मस्तिष्कने कहा, "हाली और ग़ालिब स्वर्गमें हैं, तुमको स्वर्गमें पहुँचना नहीं, उनसे चश्मपोशी करो, आँखें चुरा लो, उनकी सुनी अनसुनी कर दो । दुनियाँके रहनेवालोंसे रोज़का वास्ता है, उनसे आँखें चुराई नही जा सकती. उनको तो खुश रखना ही होगा, चाहे इसके लिए अपनेको मिटाना ही क्यों न पड़े । बूढ़े दिलने कहा, यही सही, प्रेमी हृदयको तो कुछ अपनेको मिटानेमें ही सुख मिलता है । लाचार, कलम चलाना ही निश्चय किया और फल आपके सामने है ।

लव-लेटर्सकी भूमिका क्या हो सकती है ? 'लव' या प्रेमकी भूमिका तो कभी न ,सुना न जाना। शायद भूमिका इसकी कोई होती भी नहीं। प्रेमका तो जहाँतक मैं जानता हूँ आदि और अन्त होता ही नहीं, और अगर होता भी है तो कुछ अज्ञात-सा। इसका कोई कारण भी नही होता। यह तो एक प्रकारसे स्वयंभू ही होता है। प्रेमका पात्र जरूर होता है किन्तु पात्र, वास्तवमे कारण भी होता है यह सदा, सर्वदा सब दशामें ठीक ही नहीं। प्रेम वर्तमानसे ही जुडा होता है, इसका न कोई भूत है न भविष्य। इस बातको अगर इस तरहसे कहा जाय कि, यदि सृष्टि-का आरम्भ है तो प्रेमका भी आरम्भ हो सकता है, तो अधिक गलत न होगा। लोग 'प्रेम' को आकाशकी तरह अनन्त भी कहते हैं। लोगोंकी रायमें होगा किन्तु मैं उसे अनन्त न मानकर आकाशकी तरह उस समय के लिए सर्व-व्यापक All-pervading और उस समयके जीवनके प्रत्येक अग और कार्यपर हावी जरूर मानता हूँ।

अगर यह सब सच या ठीक हो सकता है तो आप ही कहिये 'लव-लेटर्स'की भूमिकामें क्या लिखूँ ?

मेरी कठिनाई यह भी है कि 'प्रेम' के सम्बन्धमें आजतक जो लिखा गया है उसमेंसे ६५ फी सदीको मैं गलत समझता हूँ या यह समझता हूँ कि एक नितान्त इन्द्रियगत किन्तु सर्वप्रेरक और सबसे प्रबल वासनाको अधिकसे अधिक पवित्र और सुन्दर रूप देनेके लिए ही 'प्रेम'की दुनिया भरकी व्याख्या लेखकों और कवियोंने कर डाला है। वास्तवमें 'लव' इन्द्रियगत, कामसे प्रेरित वासना या आकर्षणके सिवा कुछ है नहीं। हाँ दुनियावालोंने जरूर समाजमें बैठकर इन्द्रियगत वासना और प्रजननकी संकोचविहीन चर्चा करनेके लिए उसे पवित्रतर 'लव' या प्रेमके नामसे विभूषित कर दिया है।

प्रेम शक्तिशाली और प्रबल है। इसमें तूफानकी शक्ति और सागरकी गहराई, स्थिरता और गम्भीरता है। हिमालय-सा उत्तरदायित्व और गौ तथा

माताका-सा त्याग इसके माथे पड़ा है। 'लव' के जबान होती और वह बोल सकता तो कविके शब्दोंमें कहता —

"बनू बगूला वोह खाक हूँ मैं
बहूँ लहू बनके हूँ वोह पानी।
जलाऊँ किस्मत वोह आग हूँ मैं
उड़ाऊँ खाक अपनी वोह हवा हूँ।"

मेरा ख्याल है कि दुनियामे आजतकमें जो भी बड़ासे बड़ा, भलासे भला और बुरासे बुरा काम हुआ है और संसारमें जो कुछ भी भलाई या अच्छाई है, उसकी तहमें अगर देखा जाय तो 'प्रेम' या 'लव' ही प्रेरक शक्तिके रूपमें दिखाई देगा। प्रेममें मत्त होकर किसीने वह काम कर दिया होगा जिसे आज हम आश्चर्य, सुख या सन्तोषकी दृष्टिसे देखते है और जो आज संसारके लिए कल्याण तथा आह्लादकारी सिद्ध हो रहा है।

एक यूरोपीय लेखकका कहना है कि दुनियाके प्रत्येक भले तथा बुरे कामकी जड़में कामकी वासना, किसी-न-किसी अंशमे, कहीं-न-कही प्रेरक-शक्तिके रूपमे छिपी होती है। यह कहाँ तक ठीक है यह कौन जाने किन्तु यह तो निर्विवाद बात है कि कामके वशीभूत हो या प्रेममे पागल हो, दुनियाके कठिन से कठिन, बड़ेसे बड़े और छोटेसे छोटे काम प्रसन्नतासे मनुष्य कर देता है। उसकी कठिनाइयोंका उसे ज्ञानया बोध नहीं होता, साथ ही उस कामको करनेमें ही वह अपनेको सुखी समझता है।

माता की स्नेहमयी भक्ति में स्नान कर, उसके आशिर्वादसे अमर होनेके लिए, एक बहनकी बातको रखनेके लिए, एक प्रेमिकाकी चितवनमें जगह पानेके लिए, उसके मुखसे एकबार अपनी वाहवा सुननेके लिए, उसके अधरोंकी अर्चनामात्र कर पानेके लिए, अपनी और अपने प्रेमिकाकी आत्माके स्वरूपकी संसार-यात्राको अधिकसे अधिक सुखमय बना देनेके लिए, पुरुष संसारके बड़ेसे बड़े और छोटेसे छोटे काम बिना संकोचके, बिना कुछ

विचारे, विना उसकी कठिनाइयोंपर तनिक भी ध्यान दिये कर बैठता है। यह है स्नेह और प्रेमकी प्रबलता, यह है उसकी शक्ति और यही है उसकी महत्ता और व्यापकताका रहस्य।

आप पूछेंगे कि आखिर प्रेममें इतना अन्धापन, पागलपन, इतनी शक्ति, इतनी प्रबलता क्यों और कैसे है ? और यह है क्या ? क्या इसके जोड़की कोई दूसरी वस्तु भी संसारमें है ? अगर नहीं तो क्यों ?

जवाब इन बातोंका 'लव' शब्दमें ही छिपा हुआ है। कुछ अंग्रेज लेखकोंका कहना है कि 'लव' शब्द संस्कृत धातु 'लुभ' से बना है, कुछका ख्याल है कि एङ्गलो सेक्सन शब्द लुफू (Lufu) से इसका सम्बन्ध है। लुभ और लुफू दोनोंहीका कामना वासना या इच्छासे घना सम्बन्ध है। दोनोहीमें प्राप्त करने, और कब्जा पानेकी लालसा है।

Platonic love वासनाविहीन प्रेम कोरी कल्पना है। 'लव' चाहता है दर्शन, स्पर्शन, संवेदन तथा घनिष्ठतम सम्बन्ध-स्थापनमें आनन्द प्राप्त करना१ अगर 'लव' यह सब नही चाहता, अगर वह यह नही चाहता कि दूसरा सदा सामने रहे, हँसता बोलता रहे, उसे हम छूते रहें, उससे हम चिमटते रहें, हम उसमें और वह हममें भीन जाय, वह हमारा ही हो और किसीका नहीं, हम उसीको देखें और वह हमको ही, हम उसके चरण-कमलोंमें अपनेको, दुनियाको, न्यौछावर कर दें हम उसे सर्वस्व दे दें और वह भी अपना सर्वस्व दे दे, तो वह 'लव' नहीं है और जो भी कुछ हो।

'लव' में इतनी प्रबलता या प्रखरता क्यों है ? उसमें हाथीसे भी अधिक बल कहाँ से आता है इसका सूक्ष्ममें जवाब यह है कि 'लव' कोरी कामकी वासना है। कामकी वासना, प्रजननकी लालसाकी जननी है, 'लव' इस तरहसे

---

१ Love means taking pleasure in seeing, touching perceiving with every sense and in the closest possible contact.

Life force या जीवन-शक्ति या सृष्टि करनेकी शक्तिसे सम्बन्धित है और इसी कारणसे Life force या जीवन-शक्तिकी सारी विशेषताएँ 'लव' में मौजूद होती है और Life force की ही तरह वह काम करता है।

लोग कहते है 'God is love and love is God' ईश्वर प्रेम है और प्रेम ही ईश्वर है' किन्तु इस वाक्यको अनन्त सत्य समझनेवालो-के ध्यानमें शायद ही कभी यह आया हो कि ईश्वर सृष्टिकर्ता है और Sex या प्रेम भी सृष्टिकर्ता है और इसीलिए ईश्वर और प्रेम एक ही समान सृष्टि-कर्ता होनेके कारण एक दूसरेसे परिवर्तित और परिवर्धित हो सकते है। 'लव' सृष्टिकर्ता होनेके कारण सृष्टिकर्ता या सृष्टिकर्ताको प्रधान अङ्ग होता है और सृष्टिकर्ताकी सारी विभूतियोंसे विभूषित होता है।

दुनियाके विशेषज्ञ मेरी इस बातको ठीक मानेंगे या नही यह मैं नही जानता। किसी लेखकने पहले कभी ऐसा लिखा है यह भी मैं नही जानता किन्तु मेरी कल्पना मुझसे कहती है कि यही ठीक है।

सृष्टिके आदिकालसे कल्पना कर देखिए, Sex प्रजनन किन किन घाटि-योंमें होकर गुजरा है और किन-किन रूपोंको उसने धारण किया है। छोटी-सी भूमिकामें Love 'लव' के रूपान्तरोंका विस्तृत वर्णन सम्भव नहीं किन्तु सूक्ष्ममे यह तो कहा ही जा सकता है कि आदि कालसे प्रजनन (Sex) की प्रधानता और महत्ता ही Love (प्रेम), तथा Religion (धर्म) आदिका रूप धारण करती रही है। मेरा ख्याल है कि जिस तरहसे Love 'लव' का 'लुभ' धातुसे संबंध है उसी तरहसे Sex का शक्तिसे है।

विकासका काम, एक महत्वपूर्ण प्रेरक शक्तिको, जिसे अज्ञान या लज्जासे हम घृण्य समझने लगे थे, अच्छासे अच्छा, पवित्रसे पवित्र और सुन्दरसे सुन्दर आच्छादन ही देना रहा है। प्रजननसे जीवन था, प्रजननसे समाजकी वृद्धि थी। प्रजननके द्वारा ही अपना और दूसरोंका अस्तित्व था। स्वभावतः 'प्रजनन शक्ति' Sex सबसे प्रधान और महत्वपूर्ण विषय था।

मानव मजहब या धर्म भी पहले Sex worship प्रजनन शक्तिकी पूजा या किसी-न-किसी रूपमे लिगपूजासे ही आरंभ होता है। सच तो यह है कि सृष्टिकर्ताको पिताके नाममे जिस घड़ीमे हमने पुकारा उसी घड़ीसे प्रजनन-शक्तिने धर्म और मज़हबका बाना पहनना शुरु किया।

भारतमे ही नहीं, रोम, यूनान, मिश्र, बेबिलन और सारी दुनियामे जहाँ भी मनुष्यका निवास था Sex worship शक्ति पूजा और Phallic Religions लिङ्ग पूजाकी प्रधानता थी किन्तु जैसा कि हम ऊपर कह चुके है विकासकी कोशिस यही रही है कि Sex प्रजनन या काम अच्छेसे अच्छे, सुन्दरसे सुन्दर शब्दोके आच्छादनसे ढका रहे।

Love 'प्रेम'के Physical aspect इन्द्रियगत या पार्थिव पहलू या शारीर-अंशकी महत्ताको छिपानेके लिए उसके अध्यात्मिक Spiritual अङ्ग और उसकी पवित्रताके गीत गाये जाने लगे Platonic love या वासना-विहीन प्रेमकी सृष्टि की गई, ठीक वैसे ही जैसे Sex worship शक्तिपूजा और Phallic religions लिङ्गपूजाको छिपाने, मिटाने या दबानेके लिए, प्रकृति, पुरुष और माया तथा अध्यात्म और वेदान्तकी सीढियोंपर मजहब चढाया गया। संसारके किसी भी देशकी Mythelogy गाथाओंको पढिये, 'काम' तथा Sex की ही विजय आपको अधिकतर पढनेको मिलेगी।

आदि कालमें स्त्री-पुरुष नग्न रहते थे। अधूरे ज्ञान या अज्ञानने बतलाया यह जेहालत या जंगलीपन हैं। दूसरोंको आकृष्ट करनेके लिए शरीर ढके जाने लगे। पेड़ोंको छालों, पत्तियों, फूलो घोंघों और मूँगांसे। मनुष्य अपनी समझमें विकासकी सीढियोपर और आगे बढा। छालों और पत्तियोकी जगह सुन्दर रंगीले चमकदार कपड़ो ने ली, घोंघों और मूँगों के स्थान पर हीरा मोती, जवाहरात, सोने और चाँदी ने कब्जा किया, ठीक उसी तरहसे जैसे Sex worship शक्तिपूजा और Phallic religions लिङ्ग पूजाका स्थान आज हिन्दू-धर्म, ईसाई धर्म तथा इस्लाम लिए बैठे है।

Sex काम या प्रजनन ने भी इसी तरह से उपर्युक्त विकास की सीढ़ियों पर चढ़ते हुए कवियो और लेखकों की कृपा से Love या प्रेम का नाम प्राप्त कर लिया है और Love में भी Spiritual side पवित्रता पैदा कर दी गई है। वास्तव में यह सब कुछ है नही, और Love या प्रेम शुद्ध प्रजनन या काम की वासना मात्र है।

मुसीबत यह हुई है कि कवियो और लेखको ने जो नही भी किया उसको दुनियाके लोगोने कर डाला। Love, Affection प्रेम तथा स्नेह दो प्रकार की भावनाएँ हैं किन्तु दुनियावाले बिना समझे बूझे शब्दोंका अनुचित प्रयोग करने लगे। पति-पत्नी में प्रेम Love हो सकता है। माता पुत्र या बहन भाई में स्नेह होगा। किन्तु कहे कौन, दुनियावालो ने सब धान बाइस पसेरी कर दिया और 'स्नेह' Affection की जगह पर भी Love प्रेम शब्द का व्यवहार होने लगा। नतीजा यह हुआ कि मित्रों में स्नेह नहीं प्रेम होने लगा। इस गड़बड़ के कारण बहुत-सी स्नेह की विशेषताएँ नोचकर 'लव' में जड़ दी गई और नतीजा वही हुआ जो आज दिन सर्वत्र दिखाई देता है। Love अपनी विशेषताओं को रखता हुआ स्नेहके सानिध्यसे परिष्कृत और परिमार्जित रूप धारण कर गया। इसलिये नही कि उसमें कोई गन्दगी पहले थी वरन् इसलिये कि दुनिया वाले उसकी चर्चा करते समय सभ्यता के नाम पर नजर नीची न करें।

'लव' की अगर ऊपर की सब व्याख्या ठीक है तो 'लव-लेटर्स' में क्या होना चाहिये यह कहने की जरूरत नहीं। बेटीका माँको, सखाका सखो-को, भावजका देवरको तथा एक मित्रका दूसरे मित्रको पत्र लव लेटर नहीं हो सकता। 'लव लेटर्स' तो प्रेमियों और प्रेमिकाओंके ही पत्र हो सकते हैं।

इस सम्बन्धमें हमको यह भी ध्यानमें रखना चाहिये कि प्रेमीने अपनी प्रेमिकाको या प्रेमिकाने अपने प्रेमीको पत्र लिखा है केवल इसीलिए पत्र प्रेम-पत्र या Love letter नहीं हो जायगा। प्रेम-पत्र वही होगा जो

प्रेमपत्र है, दुनियाभर के पत्र प्रेम-पत्र नहीं हो सकते, न प्रेमका जिक्र या नाम आ जानेसे ही कोई पत्र प्रेम-पत्र हो सकता है।

पत्र-लेखन भी एक सुन्दर कला है। हम सब ही बोलते हैं, ज़बान सब के पास है, शब्दोंका भंडार भी सबके पास थोड़ा बहुत होता ही है किन्तु सब वाक्-पटु नहीं होते। विद्वान और पंडित होनेसे ही कोई अच्छी बातें करनेवाला Conversationalist नहीं हो जाता। ठीक इसी तरहसे कवि होने, लेखक होने या भाषापर अधिकार रखनेसे ही कोई सुन्दर पत्रोंका लिखनेवाला नहीं हो सकता। पत्र-लेखन एक कला है, और जिस तरहसे अन्य कलाओं-पर संसारमें अधिकार प्राप्त किया जाता है उसी तरहसे इस कलापर भी अधि-कार प्राप्त किया जा सकता है।

पत्र-लेखन-कला क्या है, कैसी है, उसका रूप या गुण क्या है, इसकी चर्चा छोटी-सी भूमिकामें सम्भव नहीं। यह भी सम्भव है कि जिसे मैं ठीक समझता हूँ उसे दूसरे ठीक न मानें। 'भिन्न रुचिर्हि लोकः' और 'मुंडे मुंडे मतिर्भिन्न' की बात है। किन्तु पत्र लेखनकलाके सम्बन्धमें मेरे कुछ विचार हैं। विशेषकर प्रेम-पत्रोंके सम्बन्धमें मेरी रायमें पहली बात पत्रके सम्बन्धमें यह होनी चाहिए कि वह स्वाभाविक तथा सरल हो, हृदयकी भाषामें लिखा हो, पुस्तको और कापोंकी नहीं, साथ ही इस तरहसे लिखा गया हो मानो जिसको पत्र लिखा गया है वह सामने बैठा है और लिखनेवाला सामने बैठा बातें कर रहा है। एक अच्छा क्रम यह भी है कि पत्र इस तरह से लिखा गया हो मानो लेखक खुद ही अपनेसे बैठा बातें करता हो। हृदयके 'रेसकोर्स' में विचारोंकी घुड़दौड़ होती रहती है, कभी कभी आदमी अपनेसे ही बातें भी करने लगता है। प्रेम-पत्र लिखनेका यह क्रम अत्यन्त सुन्दर है। मिलाप और वियोग, दुख, सुख प्रेमकी उत्ताल तरंगों, उसकी आशा और निराशा उसकी टीस और पीड़ाको प्रकट करने और प्रेमके उलाहनोंको, बिना फरियादी बने हुए—देनेका यह अच्छा क्रम है।

प्रेमकी अनन्त दशाके अनन्त भावोंको अपने संसार और जीवनके उलट-पलट, बनाव और बिगाड़को, अगर हम पत्रमें उसी तरह व्यक्त न कर सकें जिस तरह हम खुद उसको अनुभव करते है तो कागजको काला करना बेकार है। पत्र ऐसा तो होना ही चाहिए कि पढ़नेवाला लिखनेवालेके हृदयसागरकी तरंगोमे उसी तरह तैरता और डूबता रहे जिस तरहसे लिखनेवाला खुद उतराता और डूबता रहता है। पत्रकी विशेषता यह भी है कि लेखकके हृदयके बसन्त और पतझड़के जीवनमय और कभी कभी झुलसा देनेवाले वायुके झोकोंसे पढ़नेवाले या वालीका हृदय अपनी रक्षा न कर सके।

गहरा और प्रगाढ़ प्रेम, शोक, विस्मय और आनन्दकी अंतिम सीमा कभी-कभी प्रेमीकी आत्मामें नही मालूम कैसी क्रान्ति, कैसी घबराहट और कहाँकी बेचैनी पैदा कर देता है। ये मूक भावनाएँ कभी-कभी आप ही सस्वर हो उठती हैं। अगर प्रेमी इनके स्वर, इनकी आवाज़को अपने प्रेमपात्रके हृदयतक न पहुँचा सके, तो दोनो हृदय एक ही तरगसे कैसे तरंगित हो सकते है, दोनो हृदयोंके तार भिन्न होते हुए भी, मिलकर जीवनका संगीत कैसे पैदा कर सकते हैं ?

'शब्द' ही ब्रह्म है ऐसा लोग कहते है। यह कहाँतक ठीक है यह तो ब्रह्मके जाननेवाले ही जानें। मैं इतना जानता हूँ कि शब्दोंके द्वारा नित्य अनित्यमेसे भासता हुआ नज़र आ सकता है, साथ ही शब्दोके ही सहारे वाणीमें मौनकी गहराई और स्थिरता और मौनमे वाणीकी चपलता और लालित्य उछलते कूदते और रंगरलियाँ करते नजर आ सकते हैं।

शर्त यही है कि शब्द आत्माके चीत्कार हो, हृदयके सच्चे उद्गार हों, अपने सच्चे और असली रूपमें हों और कृत्रिमतासे लाखो कोस दूर हों। कृत्रिमताके दोषसे परे होनेकी कसौटी यह है कि अर्थ और भावको प्रकट करनेके लिए शब्द न ढूंढे जायँ, न गढे जायँ, शब्द अनायास, आपसे आप आते रहें और अर्थ उनके आगे-आगे आप ही भागता दिखाई दे।

'कृत्रिमता' की बातके साथ मैं यह कह भी देना चाहता हूँ कि प्रेमी

और प्रेमिका आपसमें नमस्कार, या सप्रेम वन्दे नहीं किया करते। उनके अभिवादन मूक-भावनासे ही होते रहते है। प्रेमके पत्रोंमें इनको स्थान देनेकी आवश्यकता नहीं। पत्र तो वैसा ही होना चाहिए जैसा एक दूसरेके साथ नित्यके जीवनमें वे आचरण करते हो।

मेरी रानी, प्राणेश्वरी, स्नेहमयी, श्रीमतीजी, प्यारे, प्राणेश्वर, देवता "मेरे हृदयकी रानी, मेरे जीवनकी सहचरी" आदि संबोधनोंके मैं पक्षमे नही। लोग इस तरह लिखते होंगे और शायद लिखते रहेंगे भी किन्तु मेरा भी प्रेमसे कुछ-कुछ परिचय है।

"निगाहे नाज़ मुझ पर भी पड़ी थी
इसीसे एक जमाना बदगुमाँ है।"

पत्र भी सहस्रो मैने लिखे है किन्तु मुझे इस प्रकारके सम्बोधनोंकी आवश्यकता या उपयोगिता कभी प्रतीत नही हुई।

सबसे अच्छा सम्बोधन वह है, जिससे हम उसे रोज पुकारते हों, जिसकी सहायतासे दुनियाके सामने हम उससे बातें करते हों, जो हर समय जबानपर रहता हो और जो हमारी जबानपर और उसके कानोंमें रमा हुआ हो। हर वक्त कुछ और पत्रोंके लिए और कुछ यह मेरी समझमे ठीक नही।

ऊपर और नीचे दोनोंके लिए उपर्युक्त क्रम ही मेरी समझमे ठीक है। "तुम्हारा कातर प्रेमी," 'तुम्हारा अभागा कृष्ण,' 'तुम्हारा दीवाना कृष्ण', 'तुम्हारा ही कृष्ण', 'तुम्हारा पति' ... तुम्हारी दासी, सन्तप्त-हृदया—मृणाल, सौभाग्यवती मृणाल, 'सर्वस्व तुम्हारा, बन्दी एक, चरणस्नेही चुन्नी, 'वही खादिमा—सुलोचना' आदि क्या है? सब ही जगहोंमें तुम्हारा या तुम्हारी और नाम काफी है। नामके साथ किसी भी विशेषणकी आवश्यकता नहीं, अगर पत्रकी पंक्तियोंके बाद भी अपनी स्थितिको प्रकट करनेके लिए नामके साथ किसी विशेषणकी आवश्यकता प्रतीत होती है तो यह पत्रकी कमी है और वह कमी नामके साथ पुछल्ला लगानेसे पूरी नहीं की जा सकती।

अगर विशेषण ही देना मंजूर हो तो केवल विशेषण ही काफी है। अभागा, अधम पागल, दासी तथा इन शब्दोंके साथे साथ 'तुम्हारा तुम्हारी और नामकी कोई जरूरत नहीं।

तुम्हारा ही. ., तुम्हारी ही...की बात तो मेरी समझमें कुछ थोड़ी-सी भी है। 'तुम्हारा ही'? क्या इस बातके आश्वासनके लिए कि यह न समझो कि मैं औरोंका भी हूँ, मै कसम खाता हूँ, मैं तुम्हारा ही हूं और किसीका नहीं। 'तुम्हारी ही' का भी इसी तरहसे व्याख्याकर देखिये, व्याख्यामें क्या कोई रस पैदा होता है?' 'तुम्हारा पति' सोचिये तो कि 'पति' न लिखा जाय तो क्या लेखक 'पति' नहीं रहेगा। गरीबिनीको सोते जागते इसकी याद दिलाते रहना कि तुम्हारा पति हूँ, क्या अर्थ रखता है?

सचाई तथा प्रेम दिखावे, आश्वासन या शपथ खानेका विरोधी है। मैं तो तुम्हारा, तुम्हारी या इस तरहके किन्हीं भी शब्दो या विशेषणोका विरोधी हूॅ। मैं तो केवल हस्ताक्षरके ही पक्षमें हूँ। जो एक दूसरेके निकट है, एक दूसरेके लिए हैं, एक दूसरेसे प्रेम करते हैं उनके लिए न सम्बोधनके लिए और न अन्तके लिए ही किसीभी प्रकारके विशेषणकी ज़रूरत है और अगर है तो मैंने इस जरूरतको कभी अनुभव नहीं किया।

जहॉ स्नेह हो वहाँ भी इनकी जरूरत नहीं। पूज्य, आदरणीय या इस तरहके विशेषणोंमें बनावट, दिखावे और कृत्रिमताकी बू आती है मैंने तो पूज्य मालवीयजीको सदा।

बाबू, आपका

कृष्ण

ही लिखा। बाबूजी या पूज्य बाबूजी भी कभी नही लिखा। आजकल पूज्य पिताजी, पूज्य माताजी, पूज्य गुरुजी लिखनेकी प्रथा चल पडी है। यह कृत्रिमता है और रसहीन हे। कृत्रिमता और दिखावेकी बातोंके लिए दुनिया पड़ी हुई है, गेज दूसरोंके पत्रोंमे जो चाहे लिखा करिए किन्तु अपनोंके लिए तो अपनापन ही काफी है।

मेरा पुत्र यदि मुझे 'पूज्य या श्रद्धेय बाबूजी', 'आपका आज्ञाकारी आदि लिखे' तो मेरे मनमें बात आयेगी कि यह मेरा मखौल कर रहा है, या इसके हृदयमें मेरे लिए स्नेहके, आदरके या श्रद्धाके भाव है ही नहीं और इसीलिए कमीकी पूर्ति वह शब्दों-द्वारा करना ज़रूरी समझता है।

प्रेमियोंके बीच तो नाम ही चलना चाहिए, जो जिसे जिस नामसे पुकारता हो। अक्सर प्रेमियोमें दो नाम भी चला करते हैं, एक जो दुनियावालोंके लिए होता है, वह नाम जिससे समाजमें बैठकर, दुनियाकी निगाहोमें एक दूसरेको सम्बोधित करते है, एक उनका नाम होता है, जिसे वे आपस या अकेलेमें व्यवहार करते है। पत्रमें नाम वह होना चाहिए जो दुनिया के लिऐ नही, आपसमें चलता हो। समाजमें सम्भव है सरलाजी, शान्ति देवी जी, या सुलोचना देवीजी कहना जरूरी हो, किन्तु अकेलेमें अगर 'सरले' 'शान्ति' या 'सुलोचना' का मैं व्यवहार करता हूँ तो मैं पत्रमे यही लिखूँगा और नीचे लिखूँगा केवल कृ०, न आपका, न तुम्हारा और न अधम, अभागा या दीवाना। अगर, समझता है कि दीवाना है तो वह दीवाना नहीं और स्त्री इस तर्कको खूब समझती है। स्त्रियाँ, प्रेम तथा स्नेह सब ही प्रकृतिके अत्यन्त निकट है, ये 'स्वाभाविकता' को पसन्द करते हैं, और बनावट और दिखावेसे दूर भागते है।

प्रेमियोके पत्रमें सदा प्रेमकी ही बातें नहीं होती, सदा वे भावुकतापूर्ण ही नहीं होते। प्रेममें Misunderst nding होती है, प्रेममें झगड़ा होता है, प्रेममें रूठना होता है। प्रेममें लड़ाई और कभी कभी भीषण लड़ाई भी होती है। प्रेम माँगता है पूर्णरूपसे आत्म-समर्पण और प्रेमिका चाहती है कि आत्म-समर्पण सर्वदा, सर्वथा दृष्टिगोचर हो। कभी कभी व्यर्थ ही सन्देह, अविश्वास या गलत भावनासे वह प्रेरित होती है।

कभी अभियोगका जवाब देना होता है, कभी सफाई देनी पड़ती है, कभी Misunderstanding को दूर करनेका प्रयत्न करना पड़ता है। ऐसे पत्रोंमे तथ्य तथा वास्तविकता ही काम देती है, भावुकताकी बातोका असर

ऐसी स्थितियोंमें कम होता है क्योंकि प्रेमिका इनके प्रयोगोंसे बचनेके लिए सचेत रहती है मगर तथ्य बातों और कोरी दलीलोंमे भी सर्वाङ्गपूर्ण प्रेम, शब्दोंमें साकार नही निराकार रूपमें, छिपा होना चाहिए। इस प्रकारके पत्रोंका जिनमें भावुकताकी झलक भी न हो साथ ही जो प्रेमपूर्ण हो लिखना जरा कठिन है किन्तु इस प्रकारकी सारी कठिनाई अगर लेखक सच्चा प्रेमी है और उसका प्रेम सच्चा है तो आपसे आप दूर हो जाती है, प्रेमी हृदय अपनी भाषा आप ही लिखा देता है।

ऐसी भी स्थिति हो सकती है कि पत्रका पहुँचना ही मुश्किल हो या प्रियतमा या प्रियतमा इतनी नाराज हो गई हो कि पत्र को पढ़े नही, बिना पढ़े लौटा दे, फाड़कर फेंक दे, साथ ही भेंट होनेपर, कभी बातें करनेका मौका ही न दे।

स्त्रियाँ प्रेम के मामले में-जहाँ देती सर्वस्व है,-वहीं सर्वस्व बदले में भी चाहती है। वे अविवेकी Unreasonable भी इन मामलोंमें बहुत होती हैं। बिना किसी भी कारण के या अकारण, जबर्दस्ती व्यर्थ के सन्देह पर या अपनी नासमझी से कभी-कभी वे मुँह फुला लेती है और उस समय में तो कुछ भी समझाओ उनकी समझ में नहीं आता क्योंकि स्त्रियों में हठ तथा डाह Jealousy आदि का माद्दा कम नहीं होता। लड़ाई इस बातपर भी हो जाती है कि तुम फलाँ से बोले क्यों? बोले ही थे तो हँसे क्यों?

पुरुष सामाजिक जीव है, समाज मे रहता है, लोगों से मिलेगा जुलेगा ही। कहीं किसी की पार्टी मे आप किसी से हँसते बोलते देख लिए गये, बस जवाब ही नही तलब है, बल्कि यह भी कसम खा ली गई है, कि मर जाऊँगी मगर इससे अब नहीं बोलूँगी।

कहिये, क्या करियेगा इस दशा मे, विशेष कर जब आप सर्वथा निर्दोष हैं और वास्तव में आप अपनी प्रेमिका से प्रेम करते है और आप को सफाई देनेका मौका भी नहीं दिया जाता। जोरों की कहा-सुनी हो चुकी है और पत्र भी लिखिए तो वापस आ जानेका डर या विश्वास है।

आप क्या करेंगे यह आप जानें, मगर मैंने ऐसी स्थितियों में पत्र न लिखकर, क्योंकि उसके पढ़े जाने की सम्भावना ही नहीं हो सकती थी "अभ्युदय" के अग्रलेखो में वही सारी बातें, उसी तरह से लिख दी जिस तरह से पत्र में लिखता। सिवा एक मित्र के जिनको बाते मालूम है या जिनसे मैंने ही कह दिया है आज तक 'अभ्युदय' का एक भी पाठक यह न कह सका कि जो मैंने लिखा था वह किसी के लिए पत्र था और उसी सप्ताह को महत्वपूर्ण राजनीतिक समस्या पर लेख नही। अभ्युदय की पुरानी फाइलों में कमसे कम चार अग्रलेख इसी तरह के हैं।

यह प्रशसा कमाने के लिये मैंने नही लिखा है। लिखा यह इसलिए है कि पत्र इस प्रकार भी लिखे जा सकते हैं जिनमें अपना ही सब कुछ होने पर भी अपनापन न हो दुनिया उनको पढ ले तब भी सन्देह न हो। वह यही न समझ पाये कि किसी के प्रेम से इसका सम्बन्ध है या यह किसी के लिये विशेष रूपसे प्रेम-पत्र भी है। इस प्रकार के पत्रों के लिए जरूरी यह है कि अपने ऊपर लगाये गये अभियोगों का इनमे पूरा जवाब हो, अपनी सफाई पूरी हो, साथ ही दूसरे के अभियोगो का तर्क पूर्ण खण्डन हो और किसी विषय पर वादविवाद की तरह पर लिखा गया हो या एक विषय का खण्डन-मण्डन हो। इस तरह के पत्र यूँ भी अच्छे होते है क्योंकि अगर असावधानी से किसी के हाथ पड़ भी जायँ तो किसी तरह की हानि नहीं हो सकती।

यहाँ पर यह भी कह देना चाहता हूं कि प्रेम पत्रोको जुगहकर जमा रखना या करना अच्छा नही होता। कुछ लोग बार बार पत्रोंको पढ़कर पुरानी घड़ियोंकी याद कर उनके सुख अनुभव करना चाहते हैं, कुछ लोग पुराने पत्रोंको पढकर उसी रसका रसास्वादन बार-बार करना चाहते हैं और कुछ मिन्टोंके लिए पुरानी जिन्दगी बसर कर लेना चाहते हैं। मेरी रायमें यह अच्छा नहीं है, साथ ही यह खतरेसे भी खाली नहीं। इसके कारण व्यर्थमें ही "चवाईनोंको चर्चा" का अवसर मिलता है, किसी गरीबनीकेबद -

नाम होनेकी सम्भावना होती है और अन्य भी कितनी खराबियोंके पैदा हो जानेका डर रहता है।

'लव-लेटर्स'के सम्बन्धमे जो कुछ मुझे कहना था कह चुका, हाँ इस पुस्तकके पत्रोंकी चर्चा मैंने नहीं की। इसकी ज़रूरत भी नहीं, और समालोचना करनेके लिये मैंने कलम भी नहीं उठाई है। साथ ही सबही पत्र एकसे एक बढ़कर विद्वानों और लेखकों के हैं। सब ही एक दूसरे से बड़े हुए हैं। इन बातों के साथ ही साथ यह भी सत्य है कि अपने मुँह मियाँ मिट्ठू बनने के लिए अपने मनमें मैं अपने को कुछ भी समझता रहूँ किन्तु दुनिया के लिए मेरा शुरू से क्रम यही रहा है कि हिन्दी के सब ही लेखक मुझसे अधिक विद्वान् और मुझसे अच्छे लेखक हैं। ऐसी दशा में पत्रों के सम्बन्ध में मैं टीका-टिप्पणी कर ही क्या सकता हूँ।

श्री सूर्यबलीसिंह जी, मित्र गर्देजी तथा श्री अन्नपूर्णानन्दजी से अन्त में यह निवेदन है कि लिखाने और खिलाने के मामलों में हठसे काम लेना अच्छा नहीं। भूख हो, भीतर से कुछ हो तब ही भोजन अच्छा लगता है, ठीक इसी तरह से लिखने के लिए रुचि और तबीयत होनी चाहिये। अगर रुचि नहीं है तो लिखना सुहाता नहीं और लेख भी आत्माविहीन और फीका होता है।

जैसे ज़बर्दस्ती कोई प्रेम करनेके लिए विवश नहीं किया जा सकता और प्रेमकी भीख शीलके नामपर नहीं दी जा सकती उसी तरहसे लेख जो वास्तवमें लेखकके नामसे पुकारे जानेके योग्य हो जबर्दस्ती न लिखा और न लिखाया जा सकता है।

दिल्ली
६-११-३८

कृष्णकान्त मालवीय

संकलन-कर्त्ता
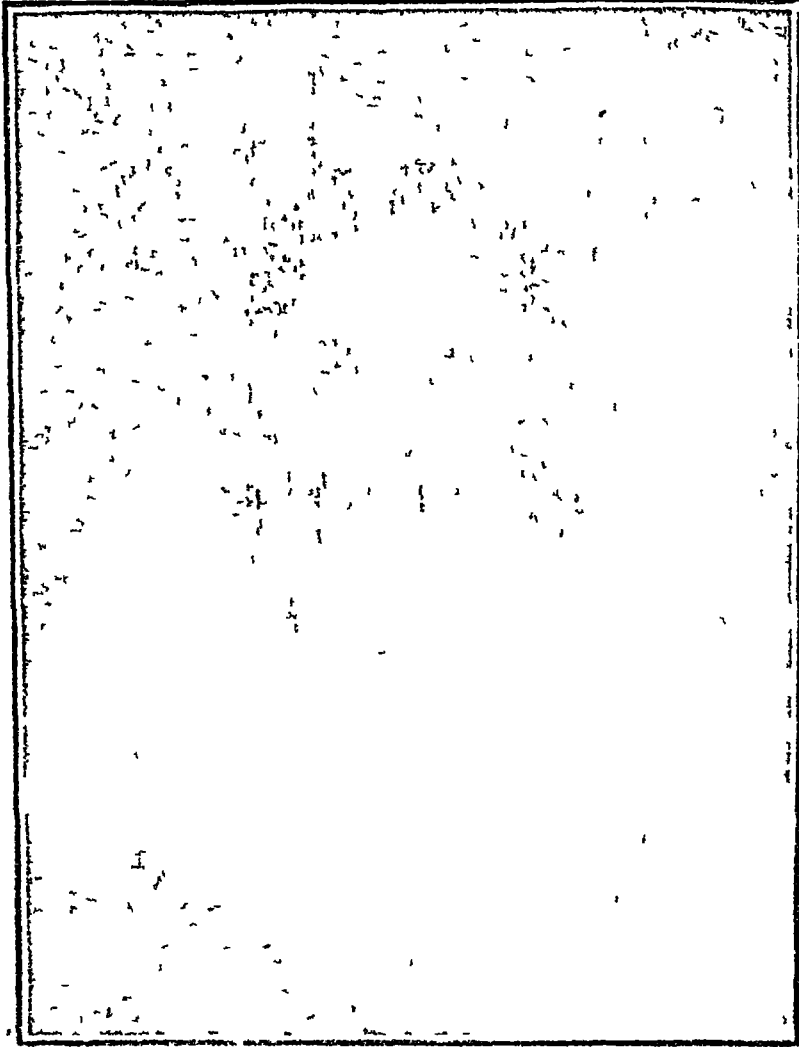
श्री सूर्यबलीसिंह । जन्म सम्वत् १०,६३

सामाजिक तथा राजनीतिक पुस्तकों के प्रकाशक ।

पाठक वृन्द,

'लव लेटर्स' नामकी पुस्तक निकालनेका विचार मेरा बहुत दिनोंसे था। ईश्वरकी दयासे इतने दिनोंके बाद मेरी वह अभिलाषा पूरी हुई है। इसका प्रधान श्रेय हिन्दी जगत्‌के परिचित प० नन्दकिशोरजी तिवारी द्वारा सम्पादित 'चाँद' नामकी मासिक पत्रिकाके पत्रांकको है। चाँदका पत्रांक देखनेके बाद ही मेरा उत्साह बढ़ा और मैं 'लव-लेटर्स' की सामग्री जुटानेमें लग गया। उक्त विशेषांकसे मुझे पर्याप्त सामग्री मिली है। अतः मैं उसके लेखक, सम्पादक और प्रकाशकका परम कृतज्ञ हूँ।

इसके लिए मुझे बहुतसे लेखकोंके पास सैकड़ों बार जाना पड़ा और अनुनय विनय करके पत्र लेने पड़े हैं। इस प्रकार कई वर्षके परिश्रमके बाद हिन्दी संसारके सम्मानित वृद्ध एवं युवक लेखकोंके भिन्न-भिन्न शैलीके ऐसे सुन्दर-सुन्दर पत्र प्राप्त हो सके हैं, जिनसे प्रेमी-प्रेमिकाओं एवं पति-पत्नीको अपूर्व आनन्द मिल सकेगा।

पुस्तकमें लिखे हुए अधिकांश पत्र तो असली हैं, किन्तु कुछ पत्र काल्पनिक हैं। इस पुस्तकके प्रकाशित करनेमे पूज्य गुरुदेव पं० लक्ष्मणनारायणजी गर्दे, बाबू अन्नपूर्णानन्दजी, पं० देव-

नारायणजी द्विवेदी, पं० बिहारीलालजी गुजराती तथा पं० घन-पतरामजी नागरने जो कुछ सहायता करनेकी कृपा की है, इसके लिए मैं आपलोगोंके प्रति किन शब्दोंमें अपने हृदयका भाव व्यक्त करूँ, समझमें नहीं आता। क्योंकि केवल कृतज्ञता प्रकाश करनेसे हृदयको सन्तोष नहीं हो सकता। मेरा यही भाव उन समस्त आदरणीय लेखकोंके प्रति है, जिनके पत्र इसे पुस्तकका रूप दे सके हैं।

अन्तमें मैं अत्यन्त संकोच भाव से पं० कृष्णकान्त मालवीय महाराजसे क्षमा माँगता हूँ। मैंने आपके बुढ़ापे और कार्यका खयाल न करके इस पुस्तककी भूमिका लिखनेके लिए पंडितजीसे अत्यधिक हठ किया, किन्तु कोमल प्रकृति पंडितजीने उस हठपर मुझे दंड न देकर भूमिकाद्वारा पुरस्कृत किया। इस उदारताके लिए मैं तो श्रीमान् पंडितजीका चिरऋणी हूँ ही—आपलोगोंको भी उपकृत होना चाहिए।

मुझे विश्वास है कि पाठकगण इस पुस्तकको अपनाकर मेरा परिश्रम सफल करेंगे। बहुतसे विद्वानोंका प्रेमपत्र स्थानाभावके कारण नहीं दिया जा सका है; इसके लिए मुझे विशेष दुःख है। एक बात और। इस पुस्तकमें पत्रोंको क्रमसे रखनेका खयाल नहीं किया गया है। जैसे जैसे पत्र मिलते गये, छपते गये। विद्वज्जनों-को इस बातका खयाल नहीं करना चाहिये कि कौनसा पत्र पहले दिया गया है और कौनसा बादमें।

शिवरात्रि
सं० १९९५

सूर्य्यबली सिंह

प्रेमकी महिमा

प्रेम हियका भाव परम पुनीत है ;
प्रेमका माधुर्य्य वचनातीत है ।
प्रेम ही तो स्वर्ग है, सत्कर्म है ;
प्रेम ही तो आत्माका धर्म है ॥

प्रेम ही सब सद्गुणोंका सार है ;
प्रेम ही सुख शान्तिका आधार है ।
प्रेम-सागरका न मिलता पार है ;
प्रेमके हाथों बिका संसार है ॥

मानवोंमें पक्षियोंमे फूलमें ;
जलचरोंमे तारकोंमें धूलमें ।
प्रेमकी ध्वनि गूँजती है सब कहीं ;
प्रेम-बन्धन है कहाँ मिलता नही ?

मोर हैं जब घन छटाको देखते ;
मुग्ध होकर प्रेमसे हैं नाचते ।
देख करके पंकजोंको फूलते ;
प्रेमके वश हो भ्रमर हैं गूँजते ॥

चन्द्रको जब है चकोर निहारता ,
बाँधकर धुन है उसीको देखता ।
वेणुका सुनता हिरण जब नाद है ;
प्रेमके वश भूलता सब याद है ॥

मंदाकिनी है प्रेमकी बहती जहाँ ;
जानिये है स्वर्ग भी निश्चय वहाँ ।
प्रेम शासन मोदकारी है महा ;
चुटकियोंमें दुःख हरता है अहा; !!

स्वार्थको प्रेमी नही पहचानते ;
दुःखको भी सौख्य हैं वे मानते ।
दीपकी लौ है शलभको सर्वदा ;
प्राण देना सुख समझता है सदा ॥

भेदको प्रेमी नहीं हैं जानते ;
जाति अथवा पाँति वे कब मानते ।
उच्चता वा नीचता कब है वहाँ ?
कृष्ण मिलते हैं सुदामासे जहाँ ॥

रत्न है यह जीव निश्चय मानिये ;
प्रेमको बश दीप्ति उसकी जानिये ।
प्रेमका जो मर्म है पहचानता ;
भेद जीवनका वही है जानता ॥

मोतीलाल जैन, एम० ए० ।

प्रसन्नता

ईश्वर की कृपा से आज पुस्तक का दूसरा संस्करण सामने है ऐसी आशा मुझे नही थी, इस का श्रेय हिन्दी प्रेमी पाठकों को है, पहले संस्करण की अपेक्षा इसमे कुछ विशेपता है, अवलोकन करने से ही पता चलेगा ।

—प्रकाशक

लव-लेटर्स
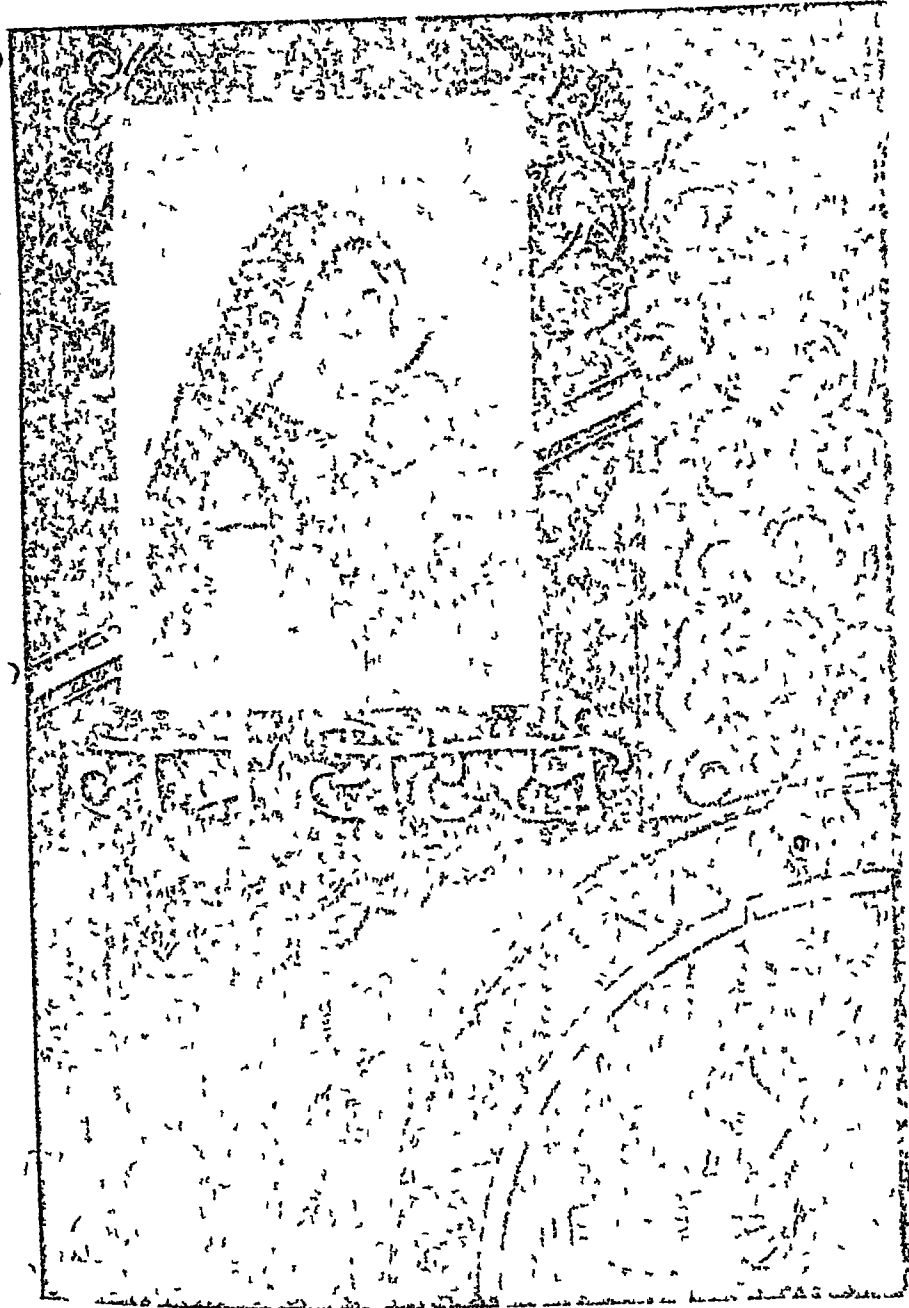
कर कंपै, लेखनि डिगै, अंग-अंग अकुलाइ ।
सुधि आए छाती जरै, पाती लिखी न जाइ ॥

× × ×

कागद पर लिखत न बनत, कहत सँदेसु लजात ।
कहिहैं सबु तेरौ हियौ, मेरे हिय की बात ॥

× × ×

कर लै, चूमि, चढ़ाइ सिर, उर लगाइ, भुज भेटि ।
लहि पाती पियकी लखति, बाँचति, धरति समेटि ॥

—बिहारी ।

पत्र-कला

—○·○—
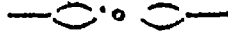
[ले० पण्डित देवनारायण द्विवेदी]

काशी

कृष्णाष्टमी, १६६४ वि०

'समय ७ बजे शाम

प्राणाधिके,

तुम्हारा पत्र मिला। तुमने जितने प्रश्न किये है, सबका उत्तर मैं स्पष्ट और थोड़ेमें देनेका प्रयत्न करूँगा। आशा है कि तुम उससे उचित लाभ उठाओगी।

१—पत्र हमेशा साफ अक्षरोंमे लिखना चाहिये, जिसमें वह ठीक-ठीक पढा जा सके। मुंडे अक्षरोमें लिखे जानेवाले पत्रोंमे तो 'चूना' लिखा रहनेपर 'चीनी', 'चना' तथा 'साहुजी अजमेर गये' को 'साहुजी आज मर गये' पढ़ा जाना सम्भव ही रहता है—देवनागरीके पत्रोंमें भी सुपाठ्य अक्षर न लिखा रहनेपर ऐसी भ्रमात्मक बात पढ ली जाती है, जो पत्र भेजनेवालेको अभीष्ट नहीं रहती। घसीट पत्रोंमे 'स' का 'र', 'द' का 'ह' या 'ह' का 'द', 'क' का 'फ' या 'फ' का 'क' पढ लिया जाता है, जिसका परिणाम यह होता है कि शब्द ही औरका और बन जाता है। इसमें सन्देह नहीं कि पढे-लिखे लोग अटकलसे घसीट अक्षरोंको भी ठीक पढते हैं: किन्तु सोचनेकी बात तो यह है कि जिस लिपिमें भ्रमको जरा भी गुंजायश नहीं है, उसे ऐसा क्यों लिखा जाय कि पढनेमें अटकल लगानेकी जरूरत पड़े? कहनेका आशय

यह नहीं कि पत्र लिखनेमें शीघ्रतासे कलम चलायी ही न जाय; आदमी जितनी ही अधिक तेजीसे लिख सके, उतना ही अच्छा: किन्तु तेज लिखनेमें किसी अक्षरकी सान इतनी अधिक न बिगाड़ देनी चाहिये कि यह औरका और ही पढा जाय।

२—जहाँतक सम्भव हो, अपने भावोंको थोड़े शब्दोंमे समाप्त करना चाहिये। व्यर्थकी बातें लिखकर या थोड़ी-सी बातको विस्तारमें लिखकर पत्रको लम्बा करना ठीक नही। इससे एक तो पढनेवालेका जी ऊब जाता है, दूसरे पत्र लिखनेवालेकी अयोग्यता जाहिर होती है।

३—पत्रमें ऐसी अश्लील बात कभी न लिखनी चाहिए जिसे दूसरोंके जाननेपर किसी प्रकारकी हानि हो अथवा लज्जा मालूम हो। बहुतसे लोग भेदभरी बातोंको अपनी नासमझीके कारण पत्रमें लिख देते हैं: किन्तु कभी-कभी यदि वह पत्र किसी दूसरेके हाथमें पड जाता है तो उसका भयंकर परिणाम उन्हे भोगना पड़ता है, और उस दशामें वे अपनी करनीपर पश्चात्ताप करते हैं। इसलिए बुद्धिमानका काम यह है कि वह भूलकर भी ऐसे खतरेका काम करके अपने लिए संकटका बीज न बोये।

४—पत्र मुहावरेदार भाषामे लिखना चाहिए। जो लोग लच्छेदार और सामासिक कठिन भाषामें पत्र लिखते हैं, वे भूल करते हैं। क्योंकि सभ्य समाजमे ऐसे पत्र बहुधा उच्च दृष्टिसे नही देखे जाते। पंडित वे है जो अपने गहन भावोंको सरल भाषामें व्यक्त करें।

५—समूचे जगत्में लिखे गये या लिखे जानेवाले पत्र दो श्रेणीमे रखे जा सकते है। एक श्रेणी तो उन पत्रोंकी है, जो केवल व्यक्ति-विशेषके कामका होता है और जिसका स्थायित्व अल्पकालतक रहता है। ऐसे पत्र अन्य लोगोंके किसी कामके नही होते। उदाहरणके लिए एक पत्र उद्धृत किये देता हूँ:—

"प्यारी सरला,

पत्र पाकर प्रसन्नता हुई। बड़े भैया अभीतक स्वस्थ होकर घर नहीं आये, लखनऊमे ही इलाज चल रहा है। इस गाँवमे प्लेगकी कुछ शिकायत है। इससे सबलोग घबडा गये हैं। भैयाका बडा लड़का तुझे बहुत याद करता है। शाम होते ही 'बुआ-बुआ' कहकर रोने लगता है और जबतक सो नहीं जाता, तबतक चुप नही होता। तू जल्द पत्र भेजेगी तो मुझे मिल जायगा, नही तो शायद मैं आठ दिनमें चली जाऊँगी।

१३ जनवरी १९३७ — तेरी बडी बहन—
रामपुर — मालती।"

इस पत्रमें तुम देखोगी कि जिसके लिए यह पत्र लिखा गया है, उसके सिवा दूसरे किसी भी आदमीके कामकी एक भी बात नहीं है। किन्तु दूसरी श्रेणीका पत्र हर परिचित और अपरिचितके लिए एक-सा लाभदायक होता है और वह चिरकालतक अपना महत्त्व कायम रखता है। जो पत्र आज मैं तुम्हे लिख रहा हूँ, उसी श्रेणीका है।

९—पत्र लिखनेकी दो रीतियाँ है; एक प्राचीन और दूसरी नवीन। यद्यपि अब तो पुरानी प्रणालीका लोप-सा हो चला है, तथापि उसका ज्ञान रखना आवश्यक है। इसमें बड़ोको 'सिद्धि श्री' और छोटोको 'स्वस्ति श्री' लिखा जाता है। पुरुषको 'सर्वोत्तमोपमार्ह' और स्त्रीको 'सर्वोत्तमोपमार्हा' लिखनेकी रीति है। जैसे,—

पुत्रकी ओरसे माताको

सिद्धि श्री सर्वोत्तमोपमार्हा पूजनीया माताजीको श्यामलालका साष्टांग प्रणाम। अत्र कुशलं तत्रास्तु। कई दिनोंसे आपका पत्र न मिलनेके कारण मेरा जी बेतरह उचटा हुआ है। आपके वात्सल्य प्रेमकी याद आते ही

हृदय व्याकुल हो जाता है। आपसे प्रार्थना है कि शीघ्र पत्र भेजकर मेरे उद्विग्न हृदयको शान्त करें। किमधिकम् । आश्विन शुक्ल ४ सं० १९९३ विक्रमाब्द।

किन्तु नयी शैलीमें सिद्धिश्री या स्वस्तिश्री कुछ भी नहीं लिखा जाता। जो पत्र तुम्हें लिख रहा हूं, यह नयी शैलीका ही पत्र है। पुत्र अपनी मॉको नयी प्रणालीसे इस प्रकार लिखेगा—

ज्ञानपुर

ता० १९—७—३७

"मॉं,

मैं जानता हूं कि आजकल तुम घोर कष्टमें हो। मेरी समझमें नहीं आता कि क्या करूं। एक ओर तुम्हारे लिए चिन्तित रहता हूं और दूसरी ओर दीन देशकी आर्त्त पुकार सुनकर व्यथित होता रहता हूं। प्रतिदिन सोचता हूं कि अब देशके कामोंमें कुछ भी भाग न लेकर कालेजसे छुट्टी मिलते ही ट्यूशनपर जाया करूंगा और उससे जो आय होगी, अपना खर्च वाद देकर पहलेकी भॉंति तुम्हारे पास भेज दिया करूंगा, किन्तु कालेजसे निकलकर घर पहुचते-न-पहुँचते ही साथियोंका दल आ धमकता है और जबर्दस्ती मुझे घसीट ले जाता है। मैं कहता हूं कि 'भाई, पहले अपने घर दिया जलाकर पीछे मसजिदमें जलाया जाता है। मेरी स्नेहमयी मॉं घरमें भूखी बैठी होगी, मुझे छोड़ दो, मैं देशके काममें भाग नहीं ले सकता।' मेरी यह बात सुनकर सब साथी कहने लगते हैं कि एक मॉंकी चिन्ता छोड़कर देशकी लाखों माताओं और बहनों की दयनीय दशापर ध्यान देना जरूरी है।

इस प्रकार इच्छा न रहनेपर भी मुझे देहातोंमें जाकर सहपाठियोंके साथ ग्राम्य-संगठनका काम करना पड़ता है। यदि यही दशा रही तो पन्द्रह

दिन के बाद मुझे अपने ही खर्चके लाले पड जायँगे। मित्रोंकी यह उद्धतता मुझे बेतरह खल रही है, किन्तु समझमें नहीं आता कि इनसे किस प्रकार पिंड छुड़ाऊँ। रात-दिन इसी चिन्तामें घुला जा रहा हूँ। यदि मैं कुछ भी रुपये इकट्ठा कर सका तो सबसे पहले तुम्हे भेजूँगा। जानता हूँ कि तुम उत्तर देनेके लिए लिफाफा न खरीद सकोगी, इसीसे इस पत्रके साथ ही लिफाफा भी भेज रहा हूँ। आशा है कि तुम मुझे क्षमा प्रदान करोगी।

तुम्हारा पुत्र—
दिवाकर।"

अस्तु। आशा है कि तुम मेरे इस पत्रसे उचित लाभ उठाओगी। भविष्यमें यदि कोई बात पूछनी हो तो इसी प्रकार निःसंकोच होकर पूछ लिया करना। आदर्श पत्र वे ही कहे जाते है, जो सबके लिए लाभप्रद हो।

तुम्हारा—
वही

"प्रियतम,

कृपापत्र पढकर चित्तको शान्ति मिली। मै आपका अमूल्य समय लेना नही चाहती· किन्तु मनमें शंकाएँ उत्पन्न होनेपर मुझे तो सिर्फ आपहीकी शरण दिखायी पड़ती है। कुछ कार्यवश मुझे डिस्ट्रिक बोर्डके चेयरमैनके पास पत्र लिखना था, मेरी समझमें नही आया कि मैं उन्हें किस शब्दसे सम्बोधित करके पत्र लिखना शुरू करूँ। देशवासियोंपर अंग्रेजी भाषाकी ऐसी गहरी छाप लग गयी है कि मेरे घरमें एक भी आदमी मुझे उक्त बात न बता सका। इसीसे आपको कष्ट दे रही हूँ। कृपाकर एक ऐसी सूची लिख भेजें, जिससे मुझे किसीको भी पत्र लिखते समय ऐसी कठिनाईका सामना न करना पडे। साथ ही यह भी जानना चाहती हूँ कि पत्रके अन्तमे

'भवदीय' के स्थानपर किसे क्या लिखना चाहिये । किन्तु यह सब तो आप लिखेंगे ही, क्या यह लिखने की कृपा न करेंगे कि अभी आप कब तक दर्शन देनेकी कृपा करेंगे ? हर बार पत्र आनेपर सोचती हूँ कि इसमें आनेका समय लिखा होगा ; किन्तु पत्र पढनेपर निराश हो जाती हूँ । यदि मुझे रुलानेमें ही आपको आनन्द आता हो तो कोई हर्ज नही, न लिखें, किन्तु क्या ऐसा करना उचित है ? सोचती हूँ कि इस सम्बन्धमें अब कुछ न लिखूँगी ? किन्तु कैसे सब्र करूँ ? आपको गये पूरे दो साल हो गये ।

भाद्रपद शुक्ल प्रतिप्रदा
सं० १९९४
९१ मालरोड, लाहौर । } चरण-सेविका—
रेखा ।

मेरी रानी,

तुम्हारे पत्रका उत्तर बहुत जल्दीमे लिख रहा हूँ, क्योंकि मै दो हफ्तेके लिए बाहर जा रहा हूँ । किसको क्या सम्बोधन करना चाहिये, इसे मैं नीचे लिख देता हूँ । इतना ध्यान रखना कि अपनेसे बडे और अपरिचितको 'माननीय महानुभाव', 'आदरणीय महोदय', 'महानुभाव', 'महोदय', 'श्रीमान्', आदि सम्बोधन लिखनेमे कोई हर्ज नही है । कोई अपरिचित अपनेसे बडा हो या छोटा, हमेशा उसे बड़ा समझकर आदरणीय श्रेष्ठ शब्दो द्वारा सम्बोधन करना चाहिये । क्योंकि जो आदमी परिचित नही है, उसे कोई कैसे जान सकता है कि वह अपनेसे बड़ा है या छोटा ? इसलिए ऐसे लोगोंको हमेशा बडा समझकर ही पत्र लिखना उचित है । अपनेको सबसे छोटा समझना बडोका काम है । इस बातका हमेशा ध्यान रहे कि पत्रमे सम्बोधन शब्दके आगे कामा (,) लगाना चाहिए न कि सम्बोधन चिन्ह (!) ।

किसकी ओरसे किसको	क्या सम्बोधन लिखना चाहिए
पुत्र अथवा कन्याकी ओरसे पिताको	पूज्य पिताजी, बाबूजी, श्रद्धेय बाबूजी, आदरणीय पिताजी अथवा अपने पुकारनेका नाम।
शिष्य अथवा शिष्याकी ओरसे गुरुको	स्नेहास्पद गुरुदेव, गुरुजी पूज्यवर, श्रद्धेय गुरुजी, पूज्य गुरुदेव, माननीय गुरुजी, आदि।
दामाद या बहूकी ओरसे सास. ससुरको	पुकारनेके नामके साथ 'श्रद्धेय' विशेषण जोड़कर लिखे। जिस नामसे पति अपने माँ-बापको पुकारता हो, उसी नामसे पत्नीको भी उन्हें पुकारना चाहिए। इसी प्रकार पत्नी अपने माँ-बापको जो कहकर पुकारती हो, वही कहकर पतिके लिए भी अपने सास-ससुरको पुकारना उत्तम है।
पिता, गुरु. सास. ससुर अथवा माताकी ओरसे पुत्र, शिष्य अथवा दामादको	प्रियवर, प्रिय वत्स, अथवा चिरंजीव, बेटा, प्रिय, आदि शब्दोंके आगे पुत्र, शिष्य अथवा दामाद जिसे पत्र लिखना हो उसका नाम लिख दे।

गुरुजनोंकी ओरसे जैसे—माता, पिता, गुरुकी ओरसे कन्याको	बेटी, प्यारी बेटी, सौभाग्यवती बेटी या बेटीके आगे जिसे पत्र लिखा जा रहा हो, उसका नाम।
पतिकी ओरसे पत्नीको	प्रिये, प्राणाधिके, प्राणेश्वरी, हृदयेश्वरी, प्राणप्यारी, प्यारी, प्राण-बल्लभे, प्रियतमे, इत्यादि।
पत्नीकी ओरसे पतिको	प्राणनाथ, प्राणप्यारे, जीवनधन, प्राणेश, प्राणेश्वर, हृदयेश्वर, प्यारे, प्राणबल्लभ, प्रियतम, नाथ, स्वामिन्, प्रभो, जीवन-सर्वस्व, मेरे नाथ, इत्यादि।
भाभीकी ओरसे बड़ी ननँदको	पूज्या जीजी, सौभाग्यवती जीजी, इत्यादि—
भाभीकी ओरसे छोटी ननँदको	बीबीजी, प्यारी बीबीजी, बीबी, इत्यादि।
ननँदकी ओरसे भाभीको	प्यारी भाभी, सौभाग्यवती भाभी श्रीमती भाभी, भाभी, इत्यादि।
मित्रकी ओरसे मित्रको	प्रिय मित्र, मित्रवर, सुहृद्वर, इत्यादि।
सखीकी ओरसे सखीको	प्यारी सखी, मेरी सहेली, इत्यादि।

किसी पुरुष या स्त्रीकी ओरसे किसी पत्र-सम्पादकको	ऊपर इस तरह लिखना चाहिए :— सेवामें— श्रीमान् सम्पादक "सरस्वती" इसके बाद इन शब्दोंसे सम्बोधन करना उचित है :— महोदय, महानुभाव, महाशय, इत्यादि ।
किसी पुरुष या स्त्रीकी ओरसे किसी पत्र-सम्पादिकाको	सेवामें— श्रीमती सम्पादिका "चाँद" इसके बाद निम्नलिखित शब्दोंसे सम्बोधन करना चाहिये :— महाशया, महोदया, इत्यादि ।
किसी पुरुष या स्त्रीकी ओरसे किसी अपरिचित अथवा अल्प परिचित पुरुषको	महाशय, महोदय, प्रिय महाशय या महोदय, महानुभाव, प्रिय महानुभाव, श्रीमन् , प्रिय बन्धु, इत्यादि ।
किसी पुरुष या स्त्रीकी ओरसे किसी अपरिचिता अथवा अल्प परिचिता स्त्रीको	श्रीमतीजी, देवि, महोदया, देवीजी इत्यादि ।

बड़ी बहन या बड़े भाईकी ओरसे छोटे भाई मोहनको	प्यारे मोहन, भाई मोहन, प्रियवर, इत्यादि।
भाई या बहनकी ओरसे बड़े भाईको	भैया, श्रद्धेय भैया, इत्यादि।
भाई या बहनकी ओरसे बहनको	बहन, प्यारी बहन, प्रिय बहन, या केवल बहनका नाम।
भाभीकी ओरसे देवरको	बबुआजी, चिरंजीवी बबुआजी, प्रियवर, इत्यादि।
देवरकी ओरसे भाभीको	भाभी, श्रीमती भाभीजी, प्रिय भाभी, सौभाग्यवती भाभी, इत्यादि।
सार्वजनिक संस्थाओंके सभापति, मंत्री, लोकल बोर्डके चेयरमैन; सेक्रेटरी, सरकारी ओहदेदार अथवा इस प्रकारके अन्य किसी सज्जनको	महानुभाव, महोदय, महाशय, श्रीमन, इत्यादि लिखना चाहिये। किन्तु उसके ऊपर नाम लिख देना उचित है। जैसे बनारस डिस्ट्रिक्ट बोर्डके सेक्रेटरीको ऊपर इस प्रकार लिख देना चाहिये :—

सेवामें—

सेक्रेटरी, डिस्ट्रिक्टबोर्ड, बनारस।

अंग्रेजीमें इन लोगोंके लिए केवल Sir (सर) लिखा जाता है।

यह तो हुआ संक्षेपमें सम्बोधन। अब यह बतलाता हूँ कि पत्र समाप्त होनेपर अन्तमें किसको क्या लिखा जाता है। जैसे मोहन अपने पिताको पत्रके अन्तमे लिखता है —

"आज्ञाकारी—

मोहन।"

इस प्रकार 'आज्ञाकारी' के स्थानपर किसको कौन-सा शब्द लिखना चाहिए, यही मेरे लिखनेका मतलब है। यों तो इसके लिये बहुत-से शब्द है; किन्तु संक्षेपमे इसे इस प्रकार समझो कि बडे को पत्र लिखनेमें 'आज्ञाकारी, चरण-सेवक, दर्शनाभिलाषी, आपका, दास, सेवक', इत्यादि लिखा जाता है, बराबरवालेको या मित्रको 'तुम्हारा', 'अभिन्न', 'स्नेही', 'अभिन्न हृदयी' 'भवदीय', इत्यादि लिखा जाता है, तथा छोटेको 'शुभचिन्तक', 'शुभाकांक्षी', इत्यादि लिखना चाहिए।

ऊपर लिखे हुए शब्दोंके नीचे अपना नाम लिखना उचित है, किन्तु बडोंके तथा मित्रोंके पत्रमें अपना पूरा नाम न लिखकर वही नाम लिखना चाहिए जिस नामसे गुरुजन पुकारते हो। जैसे किसीका श्याम सुन्दर नाम है, किन्तु बडे लोग उसे 'श्यामा' 'श्यामा' या श्यामो' कहकर पुकारते है; ऐसी दशामें श्यामसुन्दरको चाहिए कि वह बडोंके या मित्रके पत्रमें अपना 'श्याम-सुन्दर' नाम न लिखकर पुकारा जानेवाला ही नाम लिखे। हॉ, छोटोंके लिए लिखे जानेवाले पत्रमें पूरा नाम लिखना उचित है।

ऊपर जिन शब्दोंका उल्लेख किया गया है, जैसे 'आज्ञाकारी' 'भवदीय', आदि—उनके अतिरिक्त समयानुसार और भी बहुतसे शब्दोंका प्रयोग किया जाता है या किया जा सकता है। जैसे जगदीश किसीको शोकपूर्ण पत्र लिख रहा है। उसमे वह नीचे इस प्रकार लिखेगा —

व्यथित हृदयी—

जगदीश।"

'व्यथित हृदयी'के स्थानपर 'सन्तप्त हृदयी', 'शोकाकुल', 'मर्माहत', आदि शब्द भी लिखे जा सकते है। शब्द-ज्ञान अच्छा रहनेपर परिस्थितिके अनुसार भिन्न-भिन्न नये और सुन्दर शब्दोंका प्रयोग किया जा सकता है। इसीसे कहता हूँ कि यदि तुम अच्छा पत्र लिखना चाहो तो अपनी योग्यता बढानेमे हमेशा लगी रहो। पूर्ण योग्यता हो जानेपर शब्दोका ठीक-ठीक वजन मालूम हो जाता है और इस बातका पुष्ट ज्ञान हो जाता है कि कहाँ कौन-सा शब्द लिखना संगत है और कहाँ असंगत।

बस आज यहाँतक। आनेके सम्बन्धमें फिर कभी लिखूँगा। सन्तोषके लिए इतना लिख देता हूँ कि अब मै शीघ्र तुम्हारे पास पहुँचनेकी चेष्टा करूँगा। सचमुच ही आये बहुत दिन हो गये।

ता० १३—६—३७
विश्रामपुर

तुम्हारा वही—
अभिन्न"

पत्र-व्यवहार

रचयिता—श्री बालकृष्णजी शर्मा 'नवीन'

(सम्पादक 'प्रताप')

[इधर से]

[१]

यही नहीं कि हाथ काँपता, हिय भी कँपता आज,
पूरन कैसे होगा पतिया-लेखन का यह काज !
बड़े जतन से, हिम्मत करके, लिखने बैठा पत्र,
पर ना जानूँ कैसे यह हो गया आर्द्र सर्वत्र !
हिय धड़के, युग हस्त कँपे चिट्ठी का ओर न छोर,
थोड़े में समझना बहुत तुम, हे प्राणों की डोर !

[२]

मेरे हिय की मञ्जूषा मे नहीं रतन अनमोल,
और नहीं है वहाँ तरलता की कोई कल्लोल !
फिर भी हूँ कर रहा समर्पित श्री चरणों में आज,
इसमें क्या है ? तुम मत पूछो, तुम्हें लगेगी लाज !
टूटी सन्दूकची बनी यह—इसमें वंशी एक,
कभी-कभी वह रो उठती है करुण-राग की रेख !

[३]

तुम हो कौन ? ज़रा बतला दो, हे मेरी समभ्रान्ति !
शान्ति-सरणिकी धवल रेणु हो, याकि विरहकी क्रान्ति !
इस चितवन ने छलनी कर डाला हिय-भाजन दीन ,
बूँद-बूँद कर टपक गई वह सुरस-राशि तल्लीन !
बिना नीर के तड़पा करता है अब यह मन-मीन ,
अरे जरा तो इसे उबारो आकर, हे हिय-हीन !

[४]

लज्जा है कि उपेक्षा ? तुझको ज़रा बता दो, प्राण !
चरणों के नख से भी लिख दो कुछ धीरे से आन !
मेरी भग्न-कुटी, आँगन मे, चरण-चिह्न को देख ,
सच कहता हूँ, पुलक उठेगी, त्यागे ज्ञान-विवेक !
पर मेरे सँकरे अँगना क्यो आने लगे हुजूर ?
फिर पद-नख से लिखने की तो बात बहुत है दूर !

[५]

पर इतनी यह मूक भावना क्यो उमडी इस बार ,
कहाँ गया वह सजल सलोनी बातों का विस्तार !
सब जग से बोलो हो, हमसे इतनी खफ़गी ? हाय !
अजी, कभी तो कुछ कह दिया करो हमसे मुसकाय !
इधर-उधर आते-जाते पलकों का ढँकना खोल ,
हमको तुम क्यो ना दिखलाते अपनी निधि अनमोल !

[६]

क्या जानूँ किस घड़ी निगोड़ी आँखें अटकी आय,
उसी पाशमें बँधी फिरें है, जरा न ये शरमायँ।
तुमको क्या? तुम तो इस गतिको समझे हो खिलवाड़।
बड़ी लाज की मूरत बन, करते हो बन्द किवाड़।
झाँकी कर लेने दो, वरना ये लोचन बेचैन,
तड़प - तड़पकर बन जाएँगे सूरदास के नैन।

[उधर से]

[१]

क्या कह तुम्हे करूँ सम्बोधित? लिखते लगती लाज,
'प्या ' लिखते ही कलम निगोड़ी कँप जाती है आज।
एक यही अच्छर लिख - लिखकर कागद करे खराब,
यह लेखनी ढीठ है नेक न सहती मेरी दाब।
यह तो मचल-मचल पड़ती है, कैसे समझे? हाय।
पत्र पड़ा लिखने को, मैं तो आज हुई निरुपाय।

[२]

सब जग मुझे दोष देता है, मैं हूँ बड़ी कठोर,
साथिन कहती कि मैं रुलाती हूँ अपना चित-चोर।
'ऐसा भी क्या मूक प्यार जो कभी न ले सुध, आह!'
यों चुटकी लेती है सखियाँ मुझको चलते राह।
मैं क्या करूँ लाज डाइन यह मुझको खाए जाय,
इधर तुम्हारा ध्यान कोंचता मुझे रुलाय-रुलाय।

[३]

भर आँखों मे नीर, हिये मे पीर, भिगोए चीर,
कैसे लिखूँ नेह - पाती, तुमही बोलो मति - धीर !
बार-बार कागद पसीज उठता—मेरा क्या दोष ?
यह कुण्ठिता लेखनी निष्क्रियता मे पाती तोष !
स्याही ? स्याही—वह तो सूख चुकी कब की विरहेश,
जब से तपिश हुई तब से स्याही का रहा न लेश !

[४]

आओ, आज बलैयाँ ले लूँ इस भादो के बीच,
रिम-झिम बरसो, अहो मचा दो मेरे अँगना कीच !
मै दौड़ी आऊँ स्वागत को, फिसल पड़ूँ हरषाय,
तुम घबराए - मुसकाए - से बाँह पकड़ लो आय !
उस क्षण मेरी लोक - लाज का गढ हो जाए चूर्ण,
योही पत्र अधूरा मेरा होता जाए पूर्ण !

[५]

निस्साधना तुम्हारी दासी, बाधाएँ भरपूर,
इसपर यह न पता कि कहाँ हो तुम, हो कितनी दूर ?
नाम - गाँव सब भूल गई हूँ मै बौरानी नार,
केवल रूप - छटा है आँखो मे, हिय मे, इस बार !
सिरनामा लिखवा दो आके, जरा हाथ लो थाम,
जरा बता दो, ओ परदेशी, अपना मृदु उपनाम !

बीबी और शौहर के ख़त

[लेखक—पं० रत्ननाथ दर 'सरशार' लखनवी]

अनु०—स्वर्गीय श्रीयुत प्रेमचन्दजी

एक दिन मियाँ आज़ाद सरायमें बैठे सोच रहे थे, किधर जाऊँ कि एक बूढ़े मियाँ लठिया टेकते आ खडे हुए और बोले,—मियाँ ज़रा यह ख़त तो पढ दीजिए और इसका जवाब भी लिख दीजिए। आज़ादने ख़त लिया और पढकर सुनाने लगे—

मेरे खूसट शौहर, ख़ुदा तुमसे समझे।

आजाद—वाह। यह तो निराला ख़त है। न सलाम, न बंदगी। शुरू-हीसे कोसना शुरू किया।

बूढे जनाब—आप ख़त पढते है कि मेरे घरका कजिया चुकाते है? पराए झगड़ेसे आपका वास्ता? जब मियाँ-बीवी राज़ी हैं, तब आप कोई काज़ी है।

आजाद—अच्छा, तो यह कहिए कि आपकी बीवीजानका खत है। लीजिए, सुनाए देता हूँ—

"मेरे खूसट शौहर खुदा तुमसे समझे। सिकन्दर पातालसे प्यासा आया, मगर तुमने अमृतकी दो-चार बूँदें जरूर पी ली हैं, जभी मरनेका नाम नहीं लेते। कुछ ऊपर सौ बरसके तो हुए, अब आख़िर क्या आकबतके बोरिए बटोरोगे? ज़रा दिलमें शरमाओ, हजारों नव-जवान उठते जाते हैं, और तुम टैयाँ-से मौजूद हो। डंकू-फीवर भी आया, मगर तुम मूछोंपर ताव ही देते रहे। हैजेने लाखों आदमी चट किए, मगर आप तो हैजेको भी चटकर जायें, और डकारतक न लें। बुख़ारमें हज़ारों हयादार चल बसे, मगर तुम और भी मोटे हो गए। तुम्हें लकवा भी नहीं मारता, लूके झोंके भी तुम्हें

नहीं झुलसाते दरिया में भी तुम नहीं फिसल जाते, और सौ बातकी एक बात यह है कि अगर हयादार होते, तो एक चिल्लू काफ़ी था, मगर तुम वह चिकने घडे हो कि तुमपर चाहे हजारों ही घडे पडें ; लेकिन एक बूँद न थम सके। वाह पट्ठे क्यों न हो। किस बुरी साइतमें तुम्हारे पाले पडी। किस बुरी घडी में तुम्हारे साथ ब्याह हुआ। माँ-बापको क्या कहूँ, मगर मेरी गरदन तो कुंद छुरीसे रेत डाली। इससे तो किसी कुएँहीमें ढकेल देते, कसाईहीके हवाले कर देते तो यह राज-रोजका कुढ़ना तो न होता। तुम खुद ही इन्साफ करो। तुम्हारे बुढभससे मुझपर क्या गाज पडी। हाथ तो आपके काँपते हैं पाँवमें सकत नहीं, मुँहमें दाँत न पेटमें आँत। कमर कमानकी तरह झुकी हुई, आँखोंकी यह कैफियत कि दिनको ऊँट नहीं सूझता। लाठी टेककर दस क़दम चले भी, तो साँस फूल गई दम टूट गया। सुस्ताने बैठे तो उठनेका नाम नहीं लेते। सुबहको नन्ही-नन्ही दो चपातियाँ खा लीं तो शामतक खट्टी डकारें आ रही हैं, तोला-भर सिकंजबीनका सत्यानाश किया, मगर हाजमा ठीक न हुआ। हाफ़िजेका यह हाल कि अपने बापका भी नाम याद नहीं। फिर सोचो तो कि ब्याह करनेका शौक क्यों चर्राया। एक पाँव तो कब्रमें लटकाया है और ख़याल यह गुद-गुदाया है कि दूल्हा बनें दुलहिन लाए। खुदा-कसम, जिस वक्त तुम्हारा पोपला मुह, सफेद भौंह, गालोंकी झुर्रियाँ-दोहरी कमर, गंजी चाँद और मनहूस सूरत याद आती है, तो खाना हराम हो जाता है। वाह बड़े मियाँ, वाह! खुदा झूठ न बोलावे, तो हमारे अब्बाजानसे पचास-साठ बरस बडे होंगे, और अम्माजानको तुमने गोदमें खिलाया हो, तो ताज्जुब नहीं। खुदा गवाह है, तुम मेरे दादाके बापसे भी बडे हो, मगर बाहरी किस्मत कि आज मेरे शौहर हुए! जमीन फट जाय, तो मैं धस जाऊँ।

तुम्हारी जवान बीबी।'

आज़ाद—जनाव, इसका जवाव किसी वड़े मुन्शीसे लिखवाइए।

बूढ़ा—बुढापेमें अव कभी शादी न करेंगे।

आज़ाद—वाह, क्या अभी शादी करनेकी हवश वाकी है? अभी पेट नहीं भरा?

बूढा—अव इसका ऐसा जवाब लिखिए कि दाँत खट्टे हो जायँ।

आज़ाद—आप औरतके मुँह नाहक लगते है।

बूढा—जनाव, उसने तो मेरी नाकमें दम कर दिया और सच पूछो, तो जिस दिन उसको व्याह लाए, नाक ही कट गई। ऐसी चंचल औरत देखी, न सुनी। मजाल क्या कि नाकपर मक्खी वैठ जाय।

आखिर आज़ादने पत्रका जवाव लिखा—

"मेरी अलवेली, छैल-छवीली, नादान वीवीको उसके बूढ़े शौहरकी उठती जवानी देखनी नसीब हो। वह जुग-जुग जिए और तुम पूतो फलो दूधों नहाओ, अठारह लड़के हों और अठारह दूनी छत्तीस छोकरियाँ। जब मै दालानमें कदम रक्खूँ, तो सब बच्चे 'अब्बा आए, खिलौने लाए, पटाखा लाए' कहकर दौड़ें, मगर डर यह है कि तुम भी अभी कमसिन हो, उनकी देखा-देखी कहीं मुझे अब्बा न कह उठना कि पास-पड़ोसकी औरतें मुझे उँगलियोंपर नचावें। मुझे तुमसे इतनी ही मुहब्बत है, जितनी किसीको अपनी वेटीसे होती है, अपनी नानीको मैं ऐसा प्यारा न था, जितनी तुम मुझे प्यारी हो। और क्यों न हो, तुम्हारी परदादीको मैंने गोदियोंमें खिलाया है और मेरी वहनने उसे दूध पिलाया है। मुझे तुम्हारी दादीका गुड़िया खेलना इस तरह याद है, जैसे किसीको सुवहका खाना याद हो। तुम्हारे खतने मेरे दिलके साथ वह किया, जो विजली खलियानके साथ करती है, लेकिन मुझमें एक वड़ी सिफत यह है कि परले सिरेका वेहया हूँ। और क्यों न हो, शर्म औरतोंको चाहिए, मै तो चिकना घड़ा हूँ। माना कि आँखों में नूर नहीं, मगर निगाह वड़ी वारीक रखता हूँ, वहरा सही लेकिन मतलवको

बात खूब सूनता हूँ, बुड्ढा हूँ, कमज़ोर हूँ, मगर तुम्हारी मुहब्बतका दम भरता हूँ। तुम्हारा प्यारा-प्यारा मुखडा, रसीली अँखियाँ, गोरी-गोरी बहियाँ जिस वक्त याद आती है, कलेजेपर साँप लोटने लगता है। तुम्हारा चाँदनी रातमें निखरकर निकलना, कभी मुसकिराना, कभी खिलखिलाना–किसका शरमाना? कैसा लजाना? और-तो-और, तुम्हारी फुर्तीसे दिल लोट-पोट है, कलेजेपर चोट है। फिरकीकी तरह चारो ओर घूमना, मोरोकी तरह भूमना, कभी खेलते-खेलते मेरी चपतगाहपर टीप जमाई, कभी शोखीसे वह डाँट बताई कि कलेजा काँप उठा, कभी आप-ही-आप रोना, कभी दिन-दिन भर सोना, अल्हडपनके दिन बारह बरसका सिन, बीबीजान, तुमपर कुरबान, ले अब कहा मानो, हमे ग़नीमत जानो। मैं सुबहका चिराग़ हूँ, हवा चले या न चले, गुल हुआ, अब गुल हुआ। डूबता हुआ आफ़ताव हूँ, अब डूबा, अब डूबा। मुझे सताना, मुएपर सौ दुर्रे! तुम खूब जानती हो कि मेरी बातें कितनी मीठी होती हैं। सत्तर बरस हो गए कि दाँत चूहे ले गए, तबसे हलुएपर बसर है, फिर जो रोज हलुवा खायगा, उसकी बातें मीठी क्यों न होगी। तुम लाख रूठो, फिर भी हमारी हो, वह शुभ घडी याद करो, जब हम दूल्हा बने, पुराने सिरपर नई पगडी जमाए, मुर्गीके बराबर घोड़ियापर सवार, 'मीठी पोई जाते थे, और तुम दुलहिन बनी, सोलह सिंगार किए पालकीमेंसे झाँक रही थीं। हमारे गालोकी झुर्रियाँ, हमारा पोपला मुँह, हमारी टेढी कमर देखकर खुश तो न हुई होगी! और क्या लिखूँ, एक नसीहत याद रक्खो, एक तो मेले-ठेले न जाना, दूसरे आस-पासकी छोकरियोंको गुइयाँ न बनाना। खुदा करे, जबतक जमीन और आसमान कायम है, तुम जवान रहो, और नादान रहो, हमारे सफेद बाल तुम्हे भाएँ हासिद खार खाएँ।

तुम्हारा बूढ़ा शौहर।

बूढ़ा—माशा-अल्लाह! आपने खूब लिखा, मगर इस खतको ले कौन जाय? अगर डाकसे भेजता हूँ तो गुम होनेका डर, उसपर तीन दनकी

देर। अगर आप इतना एहसान करें कि इसे वहाँ पहुँचा भी दें, तो क्या पूछना।

आजाद सैलानी तो थे ही, समझे, क्या हर्ज है, साँड़नी मौजूद है, चलूँ इसी बहाने जरा दिल्लगी देख आऊँ। कुछ बहुत दूर भी नहीं, साँड़नी पर मुश्किलसे दो घंटेकी राह है। बोले,—आप बुजुर्ग आदमी हैं, आपका हुक्म बजा लाना मेरा फर्ज है, लीजिए जाता हूँ।

वे दिन

[ले०—श्रीसीताराम गुप्त 'विनोद' डी० काम, ए० एम० आई० एस० ई०]

"प्राणनाथ,

प्राणनाथ! यह क्या लिख दिया? प्राणनाथ, प्राणवल्लभ, प्रणेश्वर, आदि यह सब तो गंवारू भाषा हैं। 'डियर', 'डार्लिंग', 'माई लव' आदिमें जितनी मधुरता है उनके आगे ये शब्द शुष्क प्रतीत होते है, तथापि मातृ-भाषा होनेसे बोलनेमें तो नहीं; परन्तु लिखनेमे अवश्य ही लेखनीसे निकल ही पड़ते हैं। हमलोग विश्वविद्यालयमें प्रेम-परिणयके समय सदा अंग्रेजीहीके 'डियर' आदि प्रयोग करते थे। इन शब्दोंसे हमारी पुरानी स्मृति हरी हो जाती है। मैंने प्रथम बार आपको विश्व-विश्वालयके रंग-मंचपर विदूषकका अभिनय करते देखा था। दूसरे दिवस आप कालेज चले जा रहे थे। रात्रिका आपके चेहरेका पाउडर और काला रंग भलीभाँति छूटा नहीं था, इससे आपकी शक्ल

अजीव दिखाई पडती थी। उसको देखकर मैं हँसी नही रोक सकी। मेरी मुस्कुराहटको आपने देख लिया और उसका कुछ और ही अर्थ लगा लिया। बस यहीसे नवीन नाटकका प्रथम दृश्य आरम्भ हुआ। आप मेरे पीछे हाथ धोकर पड़ गये। कौन जानता था कि एक दिन मेरी शादी उसी भोंडसे (क्षमा करना मिस्टर विदूषकसे) होगी। आप जहाँ मिलते, नेत्रोंसे संकेत करते, हृदयपर हाथ रखते, ठंडी साँस लेते। मै नीची निगाह करके कभी-कभी मुस्कुराकर चल देती। मुझे आप निष्ठुर समझते। कभी-कभी आपको जवानसे 'आह ज़ालिम, मार डाला' के शब्द निकल जाते। उन शब्दोको सुनकर मुझे बडी प्रसन्नता होती, अभिमान होता, गर्व होता। दिलमें ख़याल होता, मैं बड़ी सुन्दरी हूँ। लोग मुझको चाहते है। आइनेके सामने खडी होकर अपना रूप अपने-आप निहारती और खुश होती थी। परन्तु मेरा हृदय भी पाषाण न था। मैं भी आपको चाहती थी. परन्तु कुछ कह नहीं सकती थी। दोनों ओरसे 'वायरलेस' चलती रही। अन्तमे 'कन्वोकेशन' (उपाधि वितरण) के दिन आपने समय निकाल ही लिया और अपना प्रथम पत्र मुझको दिया। बस, यहीसे बॉध टूट गया। हमारा पत्र-व्यवहार चला, छिप-छिपकर भेंट चली। आह, वह भी कितना सुन्दर समय था! हम चोरीसे मिलते, हृदय सशंक रहता, सदा भय रहता कि कोई देख न लें, वायुसे पत्तोंकी खडखडाहटके कारण हमलोग पीपलके पत्तोकी तरह कॉपने लगते, परन्तु तथापि वही चन्द मिनट भी हमारे लिये स्वर्गसे बढ़कर होते। हमलोग पुन मिलनेका निश्चय कर पृथक होते और पुनर्मिलनतकको घडियॉ किस प्रकार काटते, लिखना कठिन है।

मैने बी० ए० पास किया, आपने एम० ए०। हमारी पढाई समाप्त हुई। हमलोग बिछुड गये। आह उस रात्रिका वर्णन जबकि मै आपसे पृथक हुई थी किस प्रकार करूँ। रातभर रोती रही। हृदयमे होता था उडकर आपके पास पहुँचूँ। जब आपका पत्र मिला, कुछ तसल्ली हुई। आपके पिता तथा

मेरे पितामें हमारे सम्बन्धके लिए पत्र-व्यवहार आरम्भ हुआ। यह सब आपकी कार्रवाई थी। आपके मित्रोंद्वारा मेरे पिताको प्रेरित किया गया। सब कुछ तय हो गया। हमारी भी आशायें फलीभूत होती हुई दिखाई पड़ने लगी। परन्तु जब मैंने सुना कि आपके पिताने तिलकका धन कम समझकर शादी करनेसे नाहीं कर दी, तब तो मै मरणासन्न हो गई। हमारी दशा उन्ही प्रेमियोंकी हुई जो प्रयागमें एक गंगामें और एक यमुनामें नौकापर सवार होकर संगमपर मिलनेकी आशासे आवे, परन्तु संगमपर इन दोनों नदियोंकी धाराओंके वेगसे दोनो नावे टकराकर अलग हो जावें। संयोग होते-होते रहा। आपके पिता इतने शिक्षित, समाजमे इतना बड़ा पद रखते हुए भी 'तिलक' के पक्षपाती थे। हा! इस तिलककी प्रथाने पता नहीं कितनी युवतियोंका सत्यानाश किया, कितने ही माता-पिताओंका संहार किया। अब यह हमारे जीवनको नष्ट करनेवाला था। परन्तु ईश्वरकी कृपा हुई। समझौता हो गया।

अन्तमें शादी हो गई। हमलोग एक सूत्रमें बँध गये। विचारा था, अब सब आपदायें दूर हो गईं। अब हमारे हृदयोंकी ज्वालायें शान्त होगी। परन्तु विधिनाकी विधि कौन बतावे। कहाँ तो हमारे 'हनीमून' का समय आया, कहाँ आपको राजा साहिबके यहाँका तार मिला कि आप प्राइवेट सेक्रेट्रीके पदपर नियुक्त हो गये, तुरन्त चले आइये। घरभरने इस समाचारसे प्रसन्नता मनाई, इधर अँधेरा हो गया। आप चले गये, मेरे हृदयकी ज्वाला अधिक बढ़ गई। मैं आपके वियोगमे तड़पने लगी। संसार सूना दिखने लगा।

आह, देखिये कोयल बोल रही है। इसका यह अर्थ है कि मैंने इतनी रात आपकी यादमे और इस पत्रमे बिता दी। पत्र लिखकर मै अपने हृदयका उद्गार प्रकट कर रही थी। इससे मुझको कुछ सान्त्वना मिल रही थी। घाव भर रहा था; परन्तु इस पापिन कोयलने अपनी कूकसे उस भरते हुए घावको नोच डाला। उससे पुन: रक्तकी धारा प्रवाहित हुई। मेरी दशा तो

इस समय उस पुरुषकी तरह है जो कि अपने सुन्दर उद्यानमे, जिसमे भॉति-भॉति के सुन्दर सुगन्धित पुष्प लगे हुए है—टहल रहा हो, वाटिकाकी सुन्दरता देखकर मुग्ध हो रहा हो। एक सुन्दर गुलाबके पुष्पको तोडकर सूँघना चाहता हो परन्तु उसपर बैठी हुई शहदकी मक्खी उसको काट ले। हाय! हमारे पास सबकुछ है, परन्तु किस कामका ? मुझसे तो वह भला है जिसके पास कुछ भी नही।

प्राणेश्वर, मुझसे तो कहकर गये थे कि अधिक-से-अधिक एक मासमे अवश्य बुला लूँगा, परन्तु अब तो तीन मास व्यतीत हो गये। आपने सुध भी न ली। सुध कैसे लें? सुध लेनेकी सुध हो तो सुध लें। वहॉपर तो राजासाहबके साथ नई-नई 'मिसों' से भेंट करनेसे ही फुर्सत नहीं मिलती होगी। मुझको कौन पूछे। क्यो, कैसी पते की कही ? खैर, आप भ्रमर बनकर भिन्न-भिन्न फूलों के रस लें, परन्तु इस पुष्पके लिये तो केवल एक ही भ्रमर है। यह पुष्प वनमे अकेला खिला रहकर मुर्झा जावेगा।

उफ्! मैंने बहुत लिख डाला, परन्तु हृदयका बोझ अभी हल्का नहीं हुआ। कहॉ हमने विचारा था कि किसी बडे शहरमें रहकर दोनों शिक्षा-विभागमें कार्य करेंगे और कहॉ मुझे चुल्हेचक्कीसे काम पडा! जिन वस्तुओंके सम्बन्धमें मैंने केवल पुस्तकोंमे पढा भर था, आज वही हमारे सरपर पड़ी। मै शिक्षिता हूं, परन्तु मुझे रसोई बनानी पडती है। माताजी (सासजी) सदा बिगडा करती है कि मेरे घरमे मेम लाकर डाल दिया। एक दिवस सब कोई मुझसे नाराज थे, मैंने बडे परिश्रमसे भोजन तैयार किया। दो-तीन सब्जियॉ और खीर बनाई थी, परन्तु किसीने उसकी सराहना न की। मैंने तो खाना छुआ ही नहीं। नौकर भी खाकर हॅसने लगा। कहने लगा कि, बहूजी, दाल और साग सब मीठे है और खीर नमकीन है। आपको नमक और चीनीकी पहचान नहीं। इसमे मेरा क्या कसूर था ? डिब्बोपर 'नमक' और 'चीनी' लिख देना चाहिये था। अस्तु, अब माताजी

रसोईके समय सदा सरपर सवार रहती है। दिनभर तो काम करती हूँ और रातभर याद करती हूँ। हृदय मेरा भरा हुआ है, यदि लिखती जाऊँ तो अन्त न होगा। प्राणनाथ, क्षमा करो, शीघ्र दर्शन दो।

आपकी दर्शनाभिलाषिनी

कुसुम।"

डार्लिंग,

पत्र तुम्हारा मिला। इसने बेकली पैदा कर दी। पुराना दृश्य, पुराना जीवन, सब आँखोंके सामने नाचने लगा। कालेजकी पढाई, तुम्हारी याद, तुम्हारी निष्ठुरता, तुम्हारा वियोग, तुम्हारा मिलन पुन वियोग सिनेमाके चित्रपटकी तरह दिखाई पड रहा है। क्या करूँ, विवश हूँ। तुलसीदासका वचन "पराधीन सपनेहु सुख नाहीं" सत्य ही है। लोग मेरे पदको ईर्षाकी दृष्टिसे देखते हैं, परन्तु मै जानता हूँ कि यह पद कैसा है। एक मिनटका भी समय अपना नही है। बोलो तो राजासाहिबके लिये, लिखो तो राजासाहिबके लिये सोचो तो राजासाहिबके लिये, चलो तो राजासाहिबके लिये, अर्थात् मै राजासाहिबका एक अंग हूँ। मै उनका मुँह हूँ, हाथ हूँ, जिह्वा हूँ। करना तो सब कुछ मुझको ही पडता है। मुझे नीद आ रही हो, परन्तु राजासाहिबको जबतक नीद न आवे मैं कह नही सकता कि मुझको नीद आ रही है। इस नौकरीमे केवल शरीरहीको नही परन्तु अपनी आत्माको भी बेचना पडता है। सेक्रेटरी देखता है कि राजासाहिब अनुचित कार्य कर रहे है, परन्तु वह बोल नही सकता। उसको भी हाँ-में-हाँ मिलानी पडती है। यद्यपि मैंने केवल तीन मास ही यह नौकरी की है; परन्तु मुझको इससे घृणा हो गई है। मै स्वतंत्रता चाहता हूँ, परन्तु मैं परतंत्र हूँ। मेरी दशा पिजडेमें बन्द नाना भाँतिके बहुमूल्य भोजन पानेवाले पक्षीकी तरह है; परन्तु

वह भी मुझसे एक बातमें उत्तम है। उसको तो बोलनेकी स्वतन्त्रता है, परन्तु मुझको वह भी नही। मैं शीघ्र ही इस नौकरीको छोड़नेवाला हूँ।

'प्रिये, तुमने विलायती' 'मिसों' के सम्बन्धमे लिखा है। वह तो तुम्हारे चरणोंकी धूलकी भी बराबरी नही कर सकती। उनमे केवल चमक दमक है, हृदय नही। वह तो तितलीके समान है। पंखके साथ तितली बडी सुन्दर दिखलाई पड़ती है। बच्चे पीछा करते है। बड़ी कठिनता व परिश्रमसे पकड पाते है। पकडते ही, पखोपर हाथ लगते ही, पंख टूट जाते है और केवल कीडा रह जाता है। बच्चे उस भयानक कीडेको देखकर ठुकराए देते हैं। समझदार मनुष्य तितलीको उडते हुए केवल देखकर ही प्रसन्न होता है, उसके पीछे दौडता नही; क्योंकि वह उसकी वास्तविकताको भली भाँति जानती है। विलायती मिसो और हिन्दू रमणियोंमे विलायती तथा हिन्दुस्तानी पुष्पोका-सा भेद है। विलायती पुष्प देखनेमे सुन्दर परन्तु गन्ध-रहित होते है। इनमे अनेक रंग होते हैं, तडक-भडक होती है, जिससे यह साहबोंके बॅगलोंकी शोभा बढाते है। बहुत हुआ माली उनको तोडकर गुलदस्ता बनाकर भोजनके कमरेमें अथवा बैठकमे सजा देता है। हिन्दुस्तानी पुष्प बेला, जूही, चमेली, मोतिया आदिका सादा रंग होता है। इनमे विलायती पुष्पोकी-सी चमक नही, रंग नही, परन्तु इनमे वह वस्तु है जो उनमें नही। इनमे सुगध है। इनको तोड़कर रूमालमे बॉध लीजिये, यह मुरझा जायँगे, नष्ट हो जायँगे परन्तु अपनेको नष्ट करके भी आपको अपना हृदय, अपना सार दे जायँगे। आपके रूमालमे हफ्तो उनकी खुशबू रहेगी। उनकी स्मृति बनी रहेगी। इनकी स्मृतिको सदाके लिये बनाये रखनेके लिये इनका अर्क (एसेंस) निकाला जाता है। परन्तु विलायतीका नही। विलायती पुष्प साहब लोगोके कोटके 'बटन होल' की शोभा बेशक बढा लें, परन्तु हिन्दुस्तानी पुष्प अपने हृदयको छिदाकर मालाके रूपमे हिन्दुस्तानियोके कठसे ही लगते है और उनके हृदयपर झूलते हैं तथा अपनी सुगन्धिको मस्तिष्कमे पहुँचाते अर्थात

उसके अन्दर और बाहर दोनो स्थानोंको सुख पहुँचाते है, उनके शरीर और आत्मा दोनोंको प्रसन्न करते हैं।

प्राणेश्वरी, घबराओ नहीं। मै शीघ्र ही मिलनेवाला हूँ। तुम्हारा वियोग अब सहा नहीं जाता। यह कष्ट जो हमको प्रतीत होता है, केवल हमारी ही भूलसे। हम पूर्वीय होकर पश्चिमी शिक्षा और सभ्यताके फेरमें पडे हैं। तुमने शिक्षा प्राप्तकी मेमोंकी स्वच्छंदता प्राप्त करनेके लिये, और मैने शिक्षा प्राप्त की दासताकी वेडीमे जकड़े जानेके लिये। दोनोकी भूल थी। यह शिक्षा केवल मेमोके लिये ही उपयुक्त है। उनके पति नौकरी करते है और मेम साहव लोग शिमला, मंसूरी आदि स्थानोमे गुलछर्रे उडाती फिरती है। बच्चे होनेपर धायको सुपुर्द कर दिये जाते है। वह अपनी माताके प्रेमको जानते तक नहीं। परन्तु हिन्दुस्तानी स्त्रियोंका स्थान है, अपने पतिके साथ। तुम्हारी भी शिक्षा यदि हिन्दुस्तानी घरके लिये हुई होती तो नमक और चीनीमें फर्क वतलानेके लिये उनको भिन्न-भिन्न डिब्बोमे नाम लिखकर रखनेकी आवश्यकता नही होती। यदि मेरी भी शिक्षा ठीक रूपसे हुई होती तो मै भी देशकी शिल्पकलाके लिये प्रयत्न करता फिरता न कि अपनी आत्मा वेचकर चार पैसे कमानेके लिये। मुझे खेद है कि हमारे देशवाले इस दशाको नित्य देखते हुए भी हाथ-पर-हाथ रखे वैठे हुए है और कुछ करते नहीं।

हृदयेश्वरी! कालेजका प्रेम पश्चिमी प्रेम था। वह 'कोर्टशिप' था। पश्चिमी प्रेमका अन्त 'डाइवोर्स' (विच्छेद) मे होता है। मेरी आँखें खुल गई हैं। मैं अपने आपको समझ चुका हूँ। मैं इस प्रेमको पश्चिमी प्रेम नही वनाना चाहता, जो कि क्षण-भंगुर हो; वल्कि अमर प्रेम वनाना चाहता हूँ। मुझे आशा है कि तुम भी इसी अमर प्रेमका स्वप्न देखती हो। हमारा पूर्वी प्रेम सदा एक समान रहता है। चाहे दोनो शरीर एक स्थानपर हों अथवा सहस्रों कोसकी दूरीपर हों पर हृदय एक रहता है। देखनेमे, स्पर्श करनेसे, आलिंगनसे प्रेम वाँसों ऊपर नहीं उछलता और नही वियोगके समय समुद्रकी

पेंदीमें चला जाता है। यह तो भावनावो और उमंगोकी दशा होती है। हमारेमे अमर प्रेम है, अविचल प्रेम है, स्थाई प्रेम है और देशीय प्रेम है।

मैं आशा करता हूं कि तुम मेरे भावोंको भलीभाँति समझ गई होगी। माताजीकी देख-रेखमें शीघ्र ही आदर्श गृहिणी बन जाओगी। मैं अभी कुछ और लिखता। कितने दिनोंके पश्चात् यह लिखनेके लिये थोड़ा-सा अवकाश मिला है, लेकिन टेलीफोनकी घंटी बज रही है; राजासाहिबको इस एक बजे रातको भी मेरी आवश्यकता पड ही गई। हा, ईश्वर!

राजासाहिबके यहाँ तुरन्त आनेकी बुलाहट है। मोटर बाहर खडी है। मै देर नहीं कर सकता। अच्छा प्रिये, तुमको मेरा प्यार, आलिंगन और सबकुछ।

तुम्हारा—

हृदयेश

———

प्राणेश्वर,

आपके प्रेम-पत्रने मेरी आँखे खोल दीं। प्रेम क्या है; संसार नहीं जानता। वह स्त्रियोंके रंग, रूप, मुस्कान, कटाक्ष, हाव-भावपर ही मुग्ध हो जाता और उनके पीछे दौड़ने लगता है। इसे ही वह प्रेम कहता है। इस नश्वर शरीरके बाहरी ठाट-बाटपर मरनेवाले भला क्या जानें, प्रेम क्या है? अपनी इन्द्रिय-लोलुपताको ही आजकलके नवयुवक प्रेम कहते है। कालेजोंमें, विश्वविद्यालयोंमें हमारे युवक प्रेमका अभिनय करते है और पवित्र प्रेमको बदनाम करते है। आपके पत्रने मेरे दिलमें नवीन शक्ति उत्पन्न कर दी, नवीन भाव पैदा हो गये और अब मैं नया संसार देख रही हूं। सारा संसार प्रेम-मय दिखाई पड़ रहा है।

आज एक माताजीका बिगड़ना, बकना-झकना मुझको बहुत बुरा मालूम होता था, परन्तु मैं समझ गई। यह उनके केवल प्रेमके कारण था। वह मुझको

आदर्श वधू देखना चाहती है। उनका प्रेम इस विगड़नेसे ही झलकता है। मैंने गृहस्थीका बहुत-सा कार्य सीख लिया है। माताजी भी प्रसन्न रहती हैं।

मेरे देवता ! आप दर्शन अवश्य देवें, परन्तु नौकरी छोड़कर नही। इससे पिताजीको दुःख होगा। मै बड़ी स्वार्थिनी हूँ कि आपको आनेके लिये लिखती हूँ, किन्तु क्या करूँ, हृदय नही मानता। आपके दर्शनके लिये हृदय अकुला रहा है। पत्नीका स्थान पतिके चरणोंमें है। मैं आपकी सेवा करके अपना तुच्छ जीवन सार्थक करना चाहती हूँ। आशा है आप इस दासीपर शीघ्र कृपा करेंगे।

चरण-सेविका—
कुसुम

डियर पुष्पा,

तुम्हारे पिताकी तबदीलीने मेरे संसारको अन्धेरा कर दिया। भला इन हाकिमोंको एक स्थानसे दूसरे स्थानपर भेजकर उनको सदा 'खानाबदोश' बनाकर सरकारको क्या मजा आता है। जहाँ इन गरीबोंकी जरासी गृहस्थी जमी, कुछ मित्र बने कि सरकारका परवाना आया—तुम तबदील कर दिये गये। बस बाँधो बोरिया-बिस्तर, रवाने हो जाओ। सहस्रों रुपये व्यर्थके टी० ए० (राह खर्च) में इसी प्रकार व्यय होते है, परन्तु बेकारी दूर करनेके लिये सरकारके पास पैसे नही। पैसेका सवाल करो तो तुम्हारे ऊपर टैक्सका बोझ लाद दिया जावेगा।

डार्लिंग, मै तो अपने सूने संसारका जिक्र कर रहा था, परन्तु इस सरकारने बीचमे कहाँसे टाग अड़ा दी ? तुम भी कहोगी कि कैसा पागल है। प्रेमकी बातें करता करता राष्ट्रीयता दिखलाने लगता है। परन्तु पुष्पे, जो हृदयमें रहता है निकल ही पड़ता है। हमारा तुम्हारा परिचय जब इसी राष्ट्रीय कार्यके सिलसिलेमे हुआ तो यह कीड़ा मेरे मस्तिष्कसे किस प्रकार

निकल जाय ? जब मैं बाँधकर कैदीकी भाँति तुम्हारे पिताके सामने उपस्थित किया गया तो तुमने दया की। मुझ प्याससे तड़पतेको जल पिलाया। उस जलने जलकी तृष्णाको शान्त करके दूसरी तृष्णा आरम्भ कर दी। तुमने मुझको जल देकर मेरे हृदयको कदाचित् बाहरी रूपसे शान्त किया हो, परन्तु उसमें उसी समय दूसरी ज्वाला उत्पन्न हो गई। वह ज्वाला जलसे शान्त होनेवाली न थी, न है। तुम्हारे उस जलने मेरे सूखते हुए हृदयके पौढेको हरा कर दिया। पुष्प तो तुम्हारा नाम व्यर्थ रखा गया है। तुम वास्तवमें माली हो।

जबतक तुम यहाँपर थीं, दिनमे एक बार तो दर्शन अवश्य ही हो जाते थे। इसीके लिये मै सदा अपनी कोठरीमें जँगले के सामने बैठकर बाहरी रूपसे पुस्तकोंका ध्यान करता, परन्तु अन्दर तो तुम्हारा ध्यान रहता। पुष्प, जिस समय स्कूलके लिये तुम निकलती तो एक बार मेरी खिड़कीकी ओर देखकर मुस्करा देती। उस समय मेरी हृदय-वाटिकाके सब पुष्प खिल उठते। परन्तु अब तो तुम्हारे चली जानेसे यह वाटिका सूख चली है। जिस बागका माली न होगा वह बाग भला कबतक हरा-भरा रहेगा ? हाय! जिस दिलमे पुष्प ही पुष्प था वहाँपर अब सिर्फ काँटे ही रह गये।

पढाई समाप्त हो चुकी है। कालेज बन्द है, परन्तु तथापि मेरा स्थान अपनी खिडकीपर ही है। मै जानता हूँ कि तुम अब उस बँगलेमे नहीं हो और न ही इस खिड़कीसे तुम्हारे दर्शन हो सकते है। परन्तु हृदय नहीं मानता। खैंचकर उसी स्थानपर ले जाता है। दिलमें आया था कि किसी बहानेसे तुम्हारे यहाँ आऊँ, पर कोई बहाना ही नहीं मिलता। मैं जानता हूँ कि हमारा तुम्हारा संबंध असम्भव है; परन्तु क्या करूँ, हृदय नहीं मानता। देखो कोई बहाना ढूँढता हूँ। न होगा तो कालेजके लिये चन्दाके ही बहाने वहाँ पहुँचूँगा, परन्तु एक बार तुम्हारे दर्शन अवश्य करूँगा।

तुम्हारा—
प्रकाश

डियर प्रकाश,

पत्र तुम्हारा मिला। तुम बड़ी धृष्टता करोगे, यदि यहाँपर किसी बहाने आओगे। तुम मेरा ध्यान छोड़ दो। मेरी शादी अब तय हो-चुकी है और कुछ दिनोमें शादी हो जावेगी। मै किसी दूसरेके घर चली जाऊँगी। वही मेरा पति होगा। धर्मके अनुसार हमको उनके सिवा और किसीका चिन्तन न करना चाहिये। यह मैं जानती हूँ कि तुम मुझसे प्रेम करते हो और मै भी इस पथपर कुछ अग्रसर हुई थी, परन्तु वह सब बचपनका खेल था।

प्रकाशका कार्य है तिमिरको दूर करना। प्रकाश, तुम मेरे पथ-प्रदर्शक बनो। मुझे अपने सच्चे मार्गपर जाने दो। मैं जानती हूँ कि मैंने बड़ी भारी भूल की कि तुम्हारे प्रेमको बढनेका समय दिया, आशा दी पर मैं परतन्त्र हूँ। भारतकी लड़कियाँ सदा परतन्त्र है। उनका भविष्य उनके माता-पिताके हाथमें है। चाहे वह डुबा दें अथवा उबार लें। बस, मै तुम्हे भाई प्रकाशके सिवा और कुछ नहीं कह सकती। क्षमा करना, इस समाचारसे तुम्हारे हृदयको कष्ट पहुँचेगा, परन्तु मैं क्या करूँ, परवश हूँ। आशा है तुम मुझे धर्म-पथपर चलनेके लिये दृढ़ करोगे और इस कार्यमे सहायता ही दोगे।

अनुगृहीता—

पुष्पा

पुष्पे,

पत्र तुम्हारा मिला। हृदयको पत्थर बनाकर पढा। मुझको जो आघात पहुँचा है, तुम स्वयं ही समझ सकती हो। मै तुमको पथ-भ्रष्ट करना नहीं चाहता। ईश्वर तुमको सदा सुखी रखे। तुम्हारे सुखमे मेरा सुख है! मैं तुम्हारे रास्तेमें कभी न आऊँगा। मै अब देशभ्रमणको निकलता हूँ। देशसेवा मे प्राण-अर्पण कर दूँगा। ईश्वर जो करता है भला ही करता है। मेरी देश-

सेवामें एक यही काँटा था, वह भी निकल गया। मैंने जो कुछ धृष्टता की थी, उसके लिये क्षमा चाहता हूँ।

तुम्हारा—

प्रकाश

पत्र-पुष्पांजलि

[रचयिता—श्री रामचन्द्रजी शुक्ल 'सरस']

सिद्धि श्रीयुत! जोग लिखी गोकुल ते प्यारे!
राम राम बंचने श्याम! गोपाल! मुरारे!!
कृपा रावरी सों इतै, सब विधि सब आनन्द!
रहौ द्वारिका में सदा, सकुशल हे ब्रज-चन्द—
—सनाथ राधिका ॥ १ ॥

अहो भाग्य हैं आज, रावरी पाती पाई;
कैसे हू तो भला सुरति, हमरी हू आई!!
लिख्यौ कि ना अवकाश कछु, मिलन न पायौ तोहि
[illegible] जानौ घटौ हमरे हिय में तेहि—
—सन्त यदुराज सों ॥ २ ॥

[illegible] हमरे [illegible]!
[illegible]
[illegible]!
[illegible]—
—[illegible] ॥ ३ ॥

रहौ जौन विधि सुखी, श्यामजू सोई कीजै !
सुनि-सुनि तुमको सुखी, दुखी हम तौ हू जी जै !!
विरह-व्यथा वैसेहि दहै, सुनि पुनि तुम्है बिहाल !
होत हाल जो, का कहैं, जानत तुम गोपाल—
—व्यवस्था प्रेम की ॥ ४ ॥

लखि निज हिय मे तुम्है विलोचन को सुख लेती !
तव सुगना सौ बोलि, खोय रसना दुख देती !!
रहो सहो सब दुरत दुख, लहि रावरो सँदेश !
जानि परै नहिं नेक हू, हौ तुम बसे विदेश—
—मुदित यातें हियो ॥ ५ ॥

हम सपनेमें नित्त श्याम तुम सौ मिलि लेती !
तबहि मनोरथ-लता, लगी कलियाँ खिलि लेती !!
तरनि-तनूजा-तीर पै, जहँ कदम्ब कल कुञ्ज !
नित सुनि लेती बैठि कै, वह मुरली की गुञ्ज—
—मधुर 'कानन' बसी ॥ ६ ॥

इतनी चिन्ता तजौ, मोह है तुम्हें हमारी !
मुदित रहौ तुम नित्त, चित्त मे विपिन-विहारी !!
हैं तुममें, तुम बसत हौ, हमरे हिये हमेस !
और अधिक अब का लिखें दरस आस प्रानेस—
—शान्ति अब इति शुभम् ॥ ७ ॥

❀ ❀ ❀

कृष्ण पक्ष शुभ दुइज दिन, मङ्गल है मधु मास !
दिव्य द्वारिका-नगर में, पहुँचै श्रीहरि पास—
—पत्रिका प्रेम की ॥ ८ ॥

—○:○—
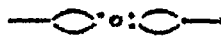
देवदासी

[ले० स्वर्गीय श्री जयशंकर 'प्रसाद']

' .... '

१-३-२५

प्रिय रमेश !

परदेशमें किसी अपनेसे घर लौट आनेका अनुरोध बडी सान्त्वना देता है, परन्तु अब तुम्हारा मुझे बुलाना एक अभिनय-सा है। हॉ, मैं कटूक्ति करता हूँ, जानते हो क्यों ? मैं झगडना चाहता हूँ : क्योंकि संसारमें अब मेरा कोई नहीं है। मैं उपेक्षित हूँ। सहसा अपनेकासा स्वर सुनकर मनमें क्षोभ होता है। अब मेरा घर लौटकर आना अनिश्चित है। मैंने '' ' के हिन्दी-प्रचार-कार्यालयमें नौकरी कर ली है। तुम तो जानते ही हो कि मेरे लिए प्रयाग और '' ' बराबर है। अब अशोक विदेशमें भूखा न रहेगा ! मैं पुस्तक बेचता हूँ।

यह तुम्हारा लिखना ठीक है कि एक आनेका टिकट लगाकर पत्र भेजना मुझे अखरता है, पर तुम्हारे गाल यदि मेरे समीप होते तो उनपर पाँचों नहीं तो मेरी तीन उँगलियाँ अपना चिह्न अवश्य बना ही देतीं। तुम्हारा इतना साहस ! मुझे लिखते हो कि बेयरिंग पत्र भेज दिया करो ! ये सब गुण मुझमें होते तो मैं भी तुम्हारी तरह'' ''प्रेमके प्रूफ-रीडरका काम करता होता। सावधान ! अब कभी ऐसा लिखोगे तो मैं उत्तर भी न दूंगा।

लल्लूको मेरी ओरसे प्यार कर लेना, उससे कह देना कि पेटसे बचा सकूँगा, तो एक रेलगाड़ी भेजूँगा।

यद्यपि अपनी यात्राका समाचार बराबर लिखकर मै तुम्हारा मनोरञ्जन न कर सकूँगा, तो भी सुन लो '.... . .....' में एक बड़ा पर्व है, वहाँ '. ....' का देव-मन्दिर बड़ा प्रसिद्ध है। तुम तो जानते होगे कि दक्षिण में कैसे-कैसे दर्शनीय देवालय हैं, उनमें भी यह प्रधान है। मै वहाँ कार्यालय की पुस्तकें बेचनेके लिए जा रहा हूँ।

तुम्हारा—

अशोक।

पुनश्च.—

मुझे विश्वास है कि मेरा पता जाननेके लिए कोई उत्सुक न होगा। फिर भी सावधान ! किसीपर प्रकट न करना।

---

[२]

'...... .'

१०-२-२५

प्रिय रमेश !

रहा नहीं गया, लो सुनो ! मन्दिर देखकर हृदय प्रसन्न हो गया। ऊँचा गोपुरम्, सुदृढ़ प्राचीर, चौड़ी परिक्रमाएँ और विशाल सभा-मण्डप भारतीय स्थापत्यकला के चूडान्त निदर्शन है। यह देव-मन्दिर हृदयपर गम्भीर प्रभाव डालता है। हम जानते है कि तुम्हारे मनमें यहाँके पण्डोके लिए प्रश्न होगा। फिर भी उत्तरीय भारतसे वे बुरे नही हैं। पूजा और आरती के समय एक प्रभावशाली वातावरण हृदयको भारावनत कर देता है।

मैं कभी-कभी एकटक देखता हूँ। उन मन्दिरोंको ही नहीं किन्तु उस प्राचीन भारतीय संस्कृतिको, जो सर्वोच्च शक्तिको अपनी महत्ता, सौन्दर्य और ऐश्वर्यके द्वारा व्यक्त करना जानती थी। तुमसे कहूँगा कि कभी रुपए जुटा सको तो एक बार दक्षिणके मन्दिरोंको अवश्य देखना। देव-दर्शनकी कला यहाँ देखनेमे आती है। एक बात और है, मैं अभी बहुत दिनोंतक यहाँ रहूँगा। मैं यहाँकी भाषा भलीभाँति बोल लेता हूँ। मुझे परिक्रमाके भीतर ही एक कोठरी संयोगसे मिल गई है। पासमें ही एक कुआँ भी है। मुझे प्रसाद भी मन्दिरसे ही मिलता है। मै बड़े चैनसे हूँ। यहाँ पुस्तकें बेच भी लेता हूँ। सुन्दर चित्रोंके लिए पुस्तकोंकी अच्छी बिक्री हो जाती है। गोपुरम्के पासहीमें दूकान फैला देता हूँ और महिलाएँ मुझसे पुस्तकोंका विवरण पूछती है। मुझे समझानेमे बड़ा आनन्द आता है। पास ही बड़े सुन्दर-सुन्दर दृश्य है। नदी, पहाड़ और जंगल—सभी तो हैं। मै कभी-कभी घूमने भी चला जाता हूँ। परन्तु उत्तरीय भारतके समान यहाँके देव-विग्रहोंके समीप हमलोग नहीं जा सकते। दूरसे ही दीपालोकमें उस अचल मूर्त्तिकी झाँकी हो जाती है। यहाँ मन्दिरोंमें संगीत और नृत्यका भी आनन्द रहता है। बड़ी चहल-पहल है। आजकल तो यात्रियोंके कारण और भी सुंदर-सुंदर प्रदर्शन होते हैं।

तुम जानते हो कि मै अपना पत्र इतना सविस्तार क्यों लिख रहा हूँ? तुम्हारे कृपण और संकुचित हृदयमें उत्कण्ठा बढानेके लिए। मुझे इतना ही सुख सही।

तुम्हारा—
अशोक।

[३]

१८-३-२५

प्रिय रमेश !

समयको उलाहना देनेकी प्राचीन प्रथाको मै अच्छी नहीं समझता। इसलिए जब यह शुष्क मांसपेशी अलग दिखलानेवाला, चौडी हड्डियोका अपना शरीर लठियाके बलपर टेकता हुआ, चिदम्बरम् नामका पण्डा मेरे समीप बैठकर, अपनी भाषामे उपदेश देने लगता है, तो मै घबरा जाता हूँ। वह समयका एक दुर्दश्य चित्र खींचकर, अभाव और आपदाओका उल्लेख करके विभीपिका उत्पन्न करता है। मैं उनसे मुक्त हूँ! भोजनमात्रके लिए अर्जन करके सन्तुष्ट घूमता हूँ—सोता हूँ! मुझे समयकी क्या चिन्ता? पर मै यह जानता हूँ कि वही मेरा सहायक है—मित्र है। इतनी आत्मीयता दिखलाता है कि मै उसकी उपेक्षा नही कर सकता। अहा! एक बात तो लिखना मै भूल ही गया था। उसे अवश्य लिखूँगा, क्योंकि तुम्हारे सुने बिना मेरा सुख अधूरा रहेगा। मेरे सुखको मै ही जानूँ। तब उसमे धरा ही क्या है, जब तुम्हे उसकी डाह न हो! तो सुनोः—

सभा-मण्डपके शिल्प-रचनापूर्ण स्तम्भसे टिकी हुई एक उज्ज्वल श्याम वर्णकी बालिकाको अपनी पतली बाहु-लतासे एक घुटनेको छातीसे लगाए प्रायः बैठी हुई देखता हूँ। स्वर्ण-मल्लिकाकी माला उसके जूडेसे लगी रहती है। प्राय वह कुसुमाभरण-भूषिता रहती है। उसे देखनेका मुझे चस्का लग गया है। वह मुझसे हिन्दी सीखना चाहती है। मैं तुमसे पूछता हूं कि उसे पढाना आरम्भ कर दूँ? उसका नाम है पद्मा, चिदम्बरम् और पद्मासे खूब पटती है। वह हिरनीकी तरह झिझकती भी है। पर न-जानें क्यों मेरे पास आ बैठती है, मेरी पुस्तके उलट-पलट देती है। मेरी बातें सुनते-सुनते वह ऐसी हो जाती है, जैसे कोई आलाप ले रही हो, और मै

प्राय आधी बात कहते-कहते रुक जाता हूँ, जैसे कोई संगीत सुन रहा हूँ। इसका अनुभव मुझे तब होता है, जब मेरे दृष्टि-पथसे वह हट जाती है। उसे देखकर मेरे हृदयमे कविता करनेकी इच्छा होती है, यह क्यो ? मेरे हृदयका सोता हुआ सौन्दर्य जाग उठता है। तुम मुझे नीच समझोगे और कहोगे कि अभागे अशोकके दरिद्र-हृदयको स्पर्द्धा तो देखो! पर मै सच कहता हूँ, उसे देखनेपर मै अनन्त ऐश्वर्यशाली हो जाता हूँ।

हाँ, वह मन्दिरमें नाचती और गाती है। और भी बहुत-सी हैं, पर मैं कहूँगा वैसी एक भी नही। जो लोग उसे देवदासी पद्मा कहते है, वे अधम हैं। वह देवबाला पद्मा है।

वही—
अशोक

---

[४]

२८-३-२५

प्रिय रमेश !

तुम्हारा उलहना निस्सार है। मै इस समय केवल पद्माको समझ सकता हूँ। फिर अपने या तुम्हारे कुशल-मङ्गलकी चर्चा क्यो करूँ? तुम उसका रूपसौन्दर्य पूछते हो। मै उसका विवरण देनेमे असमर्थ हूँ। हृदय मे उपमाएँ नाचकर चली जाती है,ठहरने नहीं पाती किमै उन्हे लिपिबद्ध करूँ। वह एक ज्योति है, जो अपनी महत्ता और आलोकमेअपना अवयव छिपाए रखती है, केवल तरल, नील, शुभ्र और करुण आँखे मेरी आँखोसे मिल जाती हैं। मेरी आँखोंमे श्यामा कादम्बिनीकी शीतलता छा जाती है, और ससारके अत्याचारोसे निराश इस झँझरीदार कलेजेके वातायनसे वह स्निग्ध मलयानिलके झोकेकी तरह घुस आती है। एक दिनकी घटना लिखे विना नही रहा जाता।

मै अपनी पुस्तकोंकी दूकान फैलाए बैठा था । गोपुरम्के समीप ही वह कहींसे झपटी हुई चली आती थी। दूसरी ओरसे एक युवक उसके सामने आ खड़ा हुआ । वह युवक मन्दिरका कृपा-भाजन एक धनी दर्शनार्थी था । यह बात उसके कानोंके चमकते हुए हीरेके टैपसे प्रकट थी। वह बेरोक-टोक मन्दिरमें चाहे जहॉ आता-ज ता है । मन्दिरमें उससे लोगोको प्राय. कुछ मिलता है। सब उसका सम्मान करते है। उसे सामने देखकर पद्माको खड़ी होना पडा । उसने बडी नीच मुखाकृतिसे कुछ बातें कही, पद्मा कुछ न बोली । फिर उसने स्पष्ट शब्दोमें रात्रिको अपने मिलनेका स्थान निर्देश किया । पद्माने कहा—'मै नही आ सकूँगी ।' वह लाल-पीला होकर बकने लगा । मेरे मनमें क्रोधका धक्का लगा । मैं उठकर उसके पास चला आया । वह मुझे देखकर हटा तो, पर कहता गया कि 'अच्छा देख लूँगा ।'

उस नील-कमलसे मकरन्द-विन्दु टपक रहे थे । मेरी इच्छा हुई कि वे मोती बटोर लूँ। पहली बार मैंने उन कपोलोपर हाथ लगाकर उन्हे लेना चाहा । आह ! उन्होने वर्षा कर दी । मैने पूछा—उससे तुम इतना भयभीत क्यो हो ?

"मन्दिरमें दर्शन करनेवालोका मनोरञ्जन करना मेरा कर्त्तव्य है । मै देवदासी हूँ ।"—उसने कहा ।

"यह तो बड़ा अत्याचार है । तुम क्यों यहॉ रहकर अपनेको अपमानित करती हो ।"—मैने कहा ।

"कहॉ जाऊँ, मैं देवताके लिए उत्सर्ग कर दी गई हूँ ।" —उसने कहा ।

"नहीं-नहीं, देवता तो क्या, राक्षस भी मानव-स्वभावकी बलि नही लेता, वह तो रक्त-माससे ही सन्तुष्ट हो जाता है । तुम अपनी आत्मा और अन्त'करणकी बलि क्यों करती हो ?"—मैने कहा ।

"ऐसा न कहो, पाप होगा ; देवता रुष्ट होंगे"—उसने कहा ।

"पापोंको देवता खोजें, मनुष्यके पास कुछ पुण्य भी है पद्मा ! तुम उसे क्यों नहीं खोजती हो? पापोंका न करना ही पुण्य नहीं। तुम अपनी आत्माकी अधिकारिणी हो , अपने हृदयकी तथा शरीरकी सम्पूर्ण स्वामिनी हो, मत डरो। मै कहता हूं कि इससे देवता प्रसन्न होगे। आशीर्वादोंकी वर्षा होगी।" मैंने एक सॉसमें कहकर देखा कि उसके मस्तकमें उज्ज्वलता आ गई है। वह एक स्फूर्तिका अनुभव करने लगी है। उसने कहा—अच्छा, तो फिर मिलूँगी।

वह चली गई। मैंने देखा कि वूढा चिदम्बरम् मेरे पीछे खड़ा मुस्करा रहा है। मुझे क्रोध भी आया, पर कुछ न बोलकर मैंने पुस्तक बटोरना आरम्भ किया।

तुम कुछ अपनी सम्मति दोगे?

अशोक

---

[५]

'........'

१-४-२५

रमेश !

कल संगीत हो रहा था। मन्दिर आलोक-मालासे सुसज्जित था ! नृत्य करती हुई पद्मा गा रही थी—

"नाम समेतं कृत सकेतं वादयते मृदु वेणुं" ओह ! वे संकेत मदिरा की लहरें थीं। मै उसमें उभचुभ होने लगा। उसकी कुसुम-आभरणसे भूषित अंग-लताके सञ्चालनसे वायुमण्डल सौरभसे भर जाता था। वह विवश थी, जैसे कुसुमिता लता तीव्र पवनके झोंकेसे। रागोंके स्वरका स्पन्दन उसके अभिनयमें था। लोग उसे विस्मय-विमुग्ध देखते थे। पर न-जानें क्यों

मेरे मनमें उद्वेग हुआ, मैं जाकर अपनी कोठरीमें पड रहा। आज कार्यालयसे लौट आनेके लिए पत्र आया था। उसीको विचारता हुआ कबतक आँखें बन्द किए पड़ा रहा, मुझे विदित नहीं। सहसा सार्य-सार्य, फस-फसका शब्द सुनाई पडा, मैं ध्यान लगाकर सुनने लगा।

ध्यान देनेपर मै जान गया कि दो व्यक्ति बातें कर रहे थे—चिदम्बरम् और रामस्वामी नामका वही धनी युवक। मै मनोयोगसे सुनने लगा।

चिदम्बरम् — तुमने आजतक उसकी इच्छाके विरुद्ध बड़े अत्याचार किए है अब जब वह नहीं चाहती तो तुम उसे क्यो सताते हो ?

रामस्वामी — सुनो चिदम्बरम्, सुन्दरियोकी कमी नहीं, पर न-जानें क्यो मेरा हृदय उसे छोडकर दूसरी ओर नही जाता। वह इतनी निरीह है कि उसे मसलनेमें आनन्द आता है। एक बार उससे कह दो कि मेरी बातें सुन ले, फिर जो चाहे, करे।

चिदम्बरम् चला गया और बातें बन्द हुई। और सच कहता हूँ, मन्दिरसे मेरा मन प्रतिकूल होने लगा। पैरोके शब्द हुए, वही जैसे रोती हुई बोली—'रामस्वामी, मुझपर दया न करोगे ?' ओह! कितनी वेदना थी उसके शब्दोंमें। परन्तु रामस्वामीके हृदयमे तीव्र ज्वाला जल रही थी। उसके वाक्योमे लू जैसी झुलस थी। उसने कहा—पद्मा! यदि तुम मेरे हृदयकी ज्वाला समझ सकती तो तुम ऐसा न कहती। मेरे हृदयकी तुम अधिष्ठात्री हो, तुम्हारे विना मै जी नहीं सकता। चलो, मै देवताका कोप सहनेके लिए प्रस्तुत हूँ, मै तुम्हे लेकर कहीं चल चलूँगा।

'देवताका निर्माल्य तुमने दूषित कर दिया है, पहले इसका तो प्रायश्चित करो। मुझे केवल देवताके चरणोंमे मुरझाए हुए फूलके समान गिर जाने दो! रामस्वामी, ऐसा स्मरण होता है कि मैं भी तुम्हें चाहने लगी थी। उस समय मेरे मनमें यह विश्वास था कि देवता यदि पत्थर के न होगे तो समझेंगे कि यह मेरे मांसल यौवन और रक्तपूर्ण हृदयकी साधारण आवश्यकता है।

मुझे क्षमा कर देंगे, परन्तु मै यदि वैसा पुण्य परिणय कर सकती ! आह ! तुम इस तपस्वीकी कुटी समान हृदयमें इतना सौन्दर्य लेकर क्यो अतिथि हुए ? रामस्वामी, तुम मेरे दुखोंके मेघमें वज्रपात थे !'

पद्मा रो रही थी ! सन्नाटा हो गया। सहसा जाते-जाते रामस्वामीने कहा—'मै तुम्हारे बिना नही रह सकता !' रमेश ! मै भी पद्माके बिना नही रह सकता। मैंने भी कार्यालयमें त्यागपत्र भेज दिया है। भूखो मरूँगा, पर उपाय क्या है ?

—अभागा अशोक

---

[६]

२-४-२५

रमेश !

मै बड़ा विचलित हो रहा हूँ। एक कराल छाया मेरे जीवनपर पड रही है ! अदृष्ट मुझे अज्ञात पथपर खींच रहा है, परन्तु तुमको लिखे बिना रह नहीं सकता।

मधुमास, जंगली फूलोंकी भीनी-भीनी 'महक सरिताके कूलकी शैल-मालाको आलिङ्गन दे रही थी। मक्खियोंकी भन्नाहटका कलनाद गुञ्जरित हो रहा था। नवीन पल्लवोंके कोमल स्पर्शसे वनस्थली पुलकित थी। मै जंगली जर्द चमेलीके अकृत्रिम कुञ्जके अन्तरालमें बैठा नीचे वहती हुई नदीके जलके साथ वसन्तकी धूपका खेल देख रहा था। हृदयमे आशा थी। अहा ! वह अपने तुहिन-जालसे रत्नाकरके सब रत्नोंको, आकाशके सब मुक्ताओंको निकाल, खींचकर मेरे चरणोमे उभल देती थी। प्रभातकी पीली किरणोसे हेम-गिरिको घसीट ले आती थी, और ले आती थी—पद्माकी मौन-प्रणय-स्वीकृति। मै भी आज वन-यात्राके उत्सवमें देवताके भोग-विग्रहके साथ इस वनस्थलीमें आया

था। बहुतसे नागरिक भी आए थे। देव-विग्रह विशाल वट-वृक्षके नीचे स्थित हुआ और यात्री-दल इधर-उधर नदी-तटकी नीची शैल-माला, कुन्जो, गह्वरो और घाटियोकी हरियालीमें छिप गया। लोग आमोद-प्रमोद पान-भोजनमें लग गए। हरियालीके भीतरसे कही पिकलू, कही क्लॉरेनेट और देवदासियोके कोकिल-कण्ठका सुन्दर स्वर निकलने लगा। वह कानन नन्दन हो रहा था और मैं उसमें विचरनेवाला एक देवता। क्यो? मेरा विश्वास था कि देव-बाला पद्मा यहाँ है। वह भी देव-विग्रहके आगे-आगे नृत्य-गान करती हुई आई थी।

मै सोचने लगा—'अहा! वह समय भी आएगा, जब मै पद्माके साथ एकान्तमें इस काननमें विचरूँगा। वह पवित्र, वह मेरे जीवनका महत्तम योग कब आएगा?' आशाने कहा—'उसे आया ही समझो।' मैं मस्त होकर बंसी बजाने लगा। आज मेरी बाँसकी बाँसुरीमें बड़ा उन्माद था। बंसी नही, मेरा हृदय बज रहा था। चिदम्बरम् आकर मेरे सामने खड़ा हो गया। वह भी मुग्ध था। उसने कभी मेरी बाँसुरी नही सुनी थी। जब मैंने अपनी आसावरी बन्द की, वह बोल उठा—'अशोक तुम एक कुशल कलावन्त हो।' कहना न होगा कि वह देवदासियोका सङ्गीत-शिक्षक भी था। वह चला गया और थोडी ही देरमें पद्माको साथ लिए आया। उसके हाथोंमें भोजनका सामान भी था। पद्माको उसने उत्तेजित कर दिया था। वह आते ही बोली—'मुझे भी सुनाओ।' जैसे मै स्वप्न देखने लगा। पद्मा और मुझसे अनुनय करे! मैंने कहा—'बैठ जाओ।' और जब वह कुसुम-कङ्कण-मण्डित करोंपर कपोल धरकर मल्लिकाकी छायामें आ बैठी तो मैं बजाने लगा। रमेश, मैंने बंसी नहीं बजाई। सच कहता हूँ, मैं अपनी वेदना श्वासोंसे निकाल रहा था। इतनी करुण, इतनी स्निग्ध, मैं ताने ले-लेकर उसमें स्वयं पागल हो जाता था। मेरी आँखोंमें मद-विकार था, मुझे उस समय अपनी पलकें बोझ मालूम होती थीं!

बॉसुरी रखनेपर भी उसकी प्रतिध्वनिका सोहाग वन-लक्ष्मीके चारो ओर घूम रहा था। पद्माने कहा—सुन्दर! तुम सचमुच अशोक हो।' वन-लक्ष्मी पद्मा अचल थी। मुझे एक कविता सूझी। मैने कहा—पद्मा! मै कठोर पृथ्वीका अशोक, तुम तरल जलकी पद्मा! भला अशोकके राग-रक्तके नव-पल्लवोंमें पद्माका विकास कैसे होगा?

बहुत दिनोंपर पद्मा हॅस पड़ी। उसने कहा—'अशोक! तुमलोगोंकी वचन-चातुरी सीखूॅगी। कुछ खा लो।' वह देती गई, मैं खाता गया। जब हम स्वस्थ होकर बैठे तो देखा, चिदम्बरम् चला गया है। पद्मा नीचे सिर किए अपने नखोंको खुरच रही है। हमलोग सबसे ऊॅचे कगारेपर थे। नदीकी ओर ढालुवॉ पहाड़ी करारा था। मेरे सामने संसार एक हरियाली था। सहसा रामस्वामीने आकर कहा—'पद्मा! आज मुझे मालूम हुआ कि तुम इस उत्तरी दरिद्रपर मरती हो।' पद्माने छलछलाई ऑखोंसे उसकी ओर देखकर कहा—रामस्वामी! तुम्हारे अत्याचारोका कही अन्त है?

"सो नही हो सकता। उठो, अभी मेरे साथ चलो।"

"ओह! नही, तुम क्या मेरी हत्या करोगे? मुझे भय लगता है।"

"मे कुछ नहीं करूॅगा। चलो, मैं इसके साथ तुम्हे नही देख सकता।" कहकर उसने पद्माका हाथ पकड़कर घसीटा। वह कातर-दृष्टिसे मुझे देखने लगी। उस दृष्टिमें जीवरभरके किए गए अत्याचारोंका विवरण था। उन्मत्त पिशाच-सदृश बलसे मैने रामस्वामीको धक्का दिया। और मैने हतबुद्धि होकर देखा, वह तीन सौ फीट नीचे चूर होता हुआ नदीके खर श्रोतमे जा गिरा, यद्यपि मेरी वैसी इच्छा न थी। पद्माने मेरी ओर भयपूर्ण नेत्रोंसे देखा और मै अवाक्! उसी समय चिदम्बरम्ने जाकर मेरा हाथ पकड़ लिया। पद्मासे कहा—तुम शीघ्र देवदासियोंमे जाकर मिलो। सावधान! एक शब्द भी मुॅहसे न निकले। मै अशोकको लेकर नगरकी ओर जाता हूॅ।' वह बिना उत्तरकी-प्रतीक्षा किए मुझे घसीटता ले चला। मैं नही जानता कि मै कैसे

घर पहुँचा। मैं कोठरीमें अचेत पड़ रहा। रातभर वैसे ही रहा। प्रभात होते ही तुम्हे पत्र लिख रहा हूँ। मैने क्या किया ? रमेश ! तुम कुछ लिखो, मैं क्या करूँ ?

—अधम अशोक

---

[७]

८-४-२५

प्रिय रमेश !

तुम्हारा यह लिखना कि 'सावधान बनो ! पत्रमे ऐसी बातें अब न लिखना !' व्यर्थ है। मुझे भय नहीं, प्राणकी चिन्ता नही।

नगरभरमें केवल यही जनश्रुति फैली है कि 'रामस्वामी उस दिनसे कहीं चला गया है और वह पद्माके प्रेमसे हताश हो गया था।' मै किंकर्त्तव्यविमूढ हूँ। चिदम्बरम् मुझे दो मूठी भात खिलाता है। मैं मन्दिरके विशाल प्राङ्गणमें कहीं-न-कही बैठा रहता हूँ। चिदम्बरम् जैसे मेरा उस जन्मका पिता है। परन्तु पद्मा। अहा ! उसी दिनसे मैने उसको गाते और नाचते नही देखा। वह प्राय सभा-मण्डपके स्तम्भसे टिकी हुई, दोनों हाथोंमे अपने एक घुटनेको छातीसे लगाए अर्द्ध-स्वप्नावस्थामे बैठी रहती है। उसका मुख विवर्ण, शरीर शीर्ण, पलक अपाङ्ग और उसके श्वासमें यान्त्रिक स्पन्दन है। नए यात्री कभी-कभी उसे देखकर भ्रम करते होंगे कि वह भी कोई प्रतिमा है। और मै सोचता हूँ कि मैं हत्यारा हूँ। स्वेदसे स्नान कर लेता हूँ, घृणासे मुँह ढँक लेता हूँ। उस घटनाके बादसे हम तीनोंमें कभी इसकी चर्चा न हुई। क्या सचमुच पद्मा रामस्वामीको चाहती थी ? मेरे प्यारने भी उसका अपकार ही किया, और मैं ? ओह वह स्वप्न कैसा सुन्दर था !

रमेश! मैं देवताकी ओर देख भी नही सकता। सोचता हूं कि मै पागल हो जाऊँगा। फिर मनमें आता है कि पद्मा भी बावली हो जायगी। यदि कहीं ऐसा हो जाता—हम दोनों पागल हो जाते। परन्तु मै पागल न हो सकूँगा; क्योंकि मै पद्मासे कभी अपना प्रणय प्रकट नहीं कर सका। उसके एक बार अपनेमे आनेकी प्रतीक्षा है, और स्पष्ट शब्दोंमे उससे एक बार कह देनेकी कामना है—पद्मा, मैं तुम्हारा प्रेमी हूँ। तुम मेरे लिए सोहागिनोके कुमकुम-बिन्दुके समान पवित्र, इस मन्दिरके देवताकी तरह भक्तिकी प्रतिमा और मेरे दोनो लोककी निगूढ़तम अकांक्षा हो।

पर वैसा होनेका नहीं। मैं पूछता हूं कि पद्मा और चिदम्बरम्‌ने मुझे फाँसी क्यों नहीं दिलाई?

रमेश! अशोक बिदा लेता है। वह पत्थर के मन्दिरका एक भिखारी है। अब पैसा नहीं कि तुम्हे पत्र लिखूँ और किसीसे माँगूँगा भी नहीं। अधम, नीच अशोक लल्लूको किस मुँहसे आशीर्वाद दे?

—हतभाग्य अशोक

कृष्णके पत्र राधाके नाम

[प्रेषक—श्री० वेङ्कटेशनारायण तिवारी]

(उन पत्रोंके प्रेषक श्री वेंकटेशनारायण तिवारीजीका कहना है कि, 'ये पत्र काल्पनिक नहीं है, किन्तु इनका लिखनेवाला और उसकी 'राधा' दोनों ही इस समय भी दुनियामें जीते-जागते हैं। इनमें यदि कोई चीज काल्पनिक है, तो कृष्ण और राधाके नाम। मैंने जान-बूझकर असली नामोंके स्थानमें मनगढ़न्त नाम रख दिये हैं। मैं आशा करता हूं कि पाठकोंको यह भ्रान्ति

न होगी, कि राधा या कृष्ण नामधारी किसी भी व्यक्तिका इन पत्रोंसे कुछ भी सम्बन्ध है।

एक बात और कह दूँ। ऊपर मै कह चुका हूँ कि पत्र फर्जी नहीं है। मैने इन पत्रोंको कई बार पढ़ा और भारतीय साहित्यके अनेक पत्रोंसे इनकी तुलना भी की है। मैं तो इस नतीजेपर पहुँचा हूँ कि ये पत्र अपने ढँगके निराले हैं। पत्रोंकी सजीव भाषा ही भावोंकी सचाईका अन्यतम प्रमाण है। हिन्दीमें मैंने ऐसे पत्र अभीतक नही देखे।)

[१]

श्रीनगर
४-७-१९२३

देवि,

कई दिन हुए, तुमने मुझे लिखा था कि रहो या चले जाओ, मुझे इसकी परवाह नहीं। लो, यदि यही बात है तो जाता हूँ। मै तो बहुत पहले ही चला गया होता, पर तुम्हीने तो रोका था ! मै रुक गया। जब जान लिया कि कुछ दिनोतक मै यदि जाना भी चाहूँ तो नही जा सकता, तब इस तरहसे बार-बार दुतकारकर मुझे ढकेल रही हो। क्या यह उचित है? क्या इसीको प्रेम कहते है? बार-बार कहती हो कि तुम मुझे प्यार करती हो। कबसे मुझे प्यार करने लगी, यह तुम्हारे ही शब्दोंमें तुम्हें ज्ञात नही। फिर, इस तरहका निष्ठुर व्यवहार क्यों करती हो? क्या इसका यह कारण है कि तुम्हें अब अपने ऊपर विश्वास नहीं रहा? अभीतक तुम पत्थरकी मूर्तिकी तरह मेरी बातें सुनती रहती थी। ऊपरसे तो यही मालूम होता था कि मानों मेरी बातोंका तुम्हारे ऊपर कुछ भी असर नही होता। लेकिन इधर कुछ दिनोंसे जब तुम मेरे पास आती थीं या दूसरोंके सामने भी जब तुम और मैं मिलते और पास बैठते थे, तब तुम्हारी अजीब दशा हो जाती

थी। कहाँ तो दूसरोंके सामने, कोयलकी तरह तुम्हारी मीठी-मीठी बातोंका संगीत घरभरमें गूँजा करता है और कहाँ मेरे सामने तुम्हें बोलना भारू हो जाता थी, आवाज एकदमसे बन्द हो जाती थी। अनमनी-सी, ठगी-सी, चुपचाप खड़ी या बैठी रहती थी। मेरी तरफ आँखें भी नही करतीं—मुँह भी चुराये रहती हो। मानों, दिल ही दिल डरती थी कि कही चोरी खुल न जाय, आँखें कहीं हृदयके भेदको खोल न दें! मैं जब तुमसे बातें करने लगता तब मोतीके हारसे तुम्हारी अँगुलियाँ उछलने लगती। कभी-कभी हलकी-सी कँपकँपी तुम्हारे बदनपर दौड़ जाती थी—इतनी हलकी कि कोई दूसरा उसे भाँप भी न सके, यद्यपि अभ्याससे मै तो उसे ताड़ ही जाता था। इस सकबकीका क्या कारण है? अपेक्षा, उदासीनता या हृदयमें लबालब भरे हुए प्यारको छलकनेसे बचानेकी चेष्टा मात्र?

मै पहले समझता था कि तुम प्रेम कर रही हो, पर जानती नही कि प्रेम है क्या? लेकिन दो दिन जब मैंने तुम्हे अङ्कमे भरा और श्रद्धा और भक्तिसे तुम्हारे अधरोंकी अर्चना की, तब मुझे मालूम हुआ कि तुम्हारा रोम-रोम प्रेमकी झङ्कारसे पीड़ित और विह्वल हो उठा है। तुमने कई बार भागनेकी कोशिश की, लेकिन तुम्हारे हृदय और तुम्हारे पैरोंने तुम्हारी एक न सुनी और बरबस तुम मेरे भुजपाशमें बँधी हुई पड़ी रही। याद है कि हम दोनों किस तरहसे काँप रहे थे, वैसे ही जैसे आँधीमें दो नवजात तरु काँपते-काँपते झुकते; उछलते और फिर-फिर झुक पड़ते है। तब मैंने जाना कि तुम्हारे हृदयमें उसी तरह, जैसे मेरे हृदयमे, प्रेमका सागर उमड़ पड़ा है। हम दोनो इस समुद्री तूफानमे दो असहाय नौकाओंकी तरह लहरोंके झकोरोंसे थपियाए हुए इधर-उधर बहते फिरते है। युगोंसे हमदोनोंकी आत्माएँ एक दूसरेसे बिछुड़ी हुई, न जानें कितने जन्म-जन्मान्तरोंतक खोये हुएकी खोजमे लगी रही है। तुम और मै भाग्यकी भूल-भुलैयाँमें भटकते-भटकते अब कहीं, कल्पान्तरके बाद, मिल पाये हैं। फिर क्यों न

हमदोनों एक दूसरेको देखकर प्रेम और आनन्दके उल्लास और उच्छ्वासमें मतवाले हो उठें और क्यों न हमारे दुर्बल शरीर और छोटे-छोटे हृदय उसके आघातसे थर-थर काँपने लगें ?

हाँ, तुम मेरी हो। तुम कहती हो कि मै तुम्हारा हूँ। कुछ क्षणोंके लिए हमदोनोंने हृदयपर-हृदय रखकर जिस अनन्त स्वर्गकी एक झलक देखी है, उसको न तुम भूल सकती हो और न मैं ही लाख कोशिश करनेपर भूल सकता हूँ। वह अनुभव जीवनको रस-रञ्जित और कान्तिमय बना गया। सुख और दुखमें, हार-जीतमें, संकट-विकटमे, चाहे सूखा पड़े या हरियाली रहे, जीवनके शिखरपर रहना पड़े या उसके धरातलपर धूलसे रँगे हुए हाँफते-हाँफते घसीटना पड़े—अब कुछ भी चिन्ता नही है। क्योंकि मैंने तुम्हे पाकर जग जीत लिया और स्वर्गको तुम्हारे चरणोंके नीचे देखा। इस जीतने और देखनेके बाद, मैं वह न रहा जो पहले था। तब मैं मुर्दा—मिट्टीका ढेला था। तुमने छूकर उसे सोना बना दिया। नही-नही, सोना नही, सजीव रक्त-मासका टुकड़ा बनाया, जो सुख दुखको समझता है, प्रेमको पहचाननेकी जिसमें शक्ति है, जिसमें तुम्हारे रूपकी छटा समाई है और जो तुम्हारी कृपाओंसे हँसता और तुम्हारी त्यौरीके बदलते ही रोने लगता है। और अब आगे कुछ भी हो, वह फिर कभी मुर्दा न होगा। वह सजीव रहेगा, क्योंकि तुम्हारे हृदयकी धड़कनसे उसके हृदयमें धड़कन आई है। तुम भी चाहो तो अब उसे नहीं मार सकती। क्या सचमुच तुम उसे मार डालना चाहती हो ? सोचो तो कि तुमने मेरे मानस-मन्दिरमें प्रेमको जन्म दिया। कैसे सम्भव है कि उसे तुम, जननी होते हुए, मारो। उस प्रेमको तुम्हें पालना है, पोसना है। उसे छोड़कर भाग नहीं सकती। किसी दूसरेका कहकर, ठुकरा नही सकती। छोड़ भी दो या ठुकरा ही दो तो बलासे। दुनिया तो उसे तुम्हारा ही कहेगी। उसकी दुर्गतिपर तुम्हारी ही जगमें हँसी होगी। उसकी दुर्दशाको देख, लोग तुम्हींको भला-बुरा कहेगे। लेकिन ऐसा

सोचना तुम्हारे साथ अन्याय करना है। अपनेसे किसको ममता नहीं होती ? तुम तो ममताकी साक्षात् मूर्ति ही ठहरी। कह चुकी हो कि हृदय मुझे देकर तुम वापस नहीं ले सकती—क्योंकि, ऐसा करना तुम्हारे लिए असम्भव है। फिर, भागती क्यों हो ? अनिवार्यसे छुटकारा, कैसा ? तुम्हारे लिए यदि संसारमें अब कोई स्थान है, तो मेरे वक्ष-स्थलपर। कोई बैठनेकी जगह है तो मेरे हृदयमे बिछे हुए आसनपर। क्या फूलसे सुगन्धि अलग हो सकती है ? किरणसे ज्योति क्या भाग सकती है ? कोकिलके कण्ठसे क्या संगीत विलग हो सकता है ? जैसे इन सब बातोंका होना असम्भव है, उसी तरह, देवि, तुम्हारा मुझसे दूर भागना असम्भव है।

इतनेपर भी तुमने मुझे दुतकारा है, ठुकराया है, चले जानेके लिए निष्ठुर-से-निष्ठुर बातें सुनाई है, झूठे-सच्चे दोष मढ़े है, भला-बुरा कहा है। हटाकर ही कल ली। लो, चला। एक अवधितक एकान्तवास करूँगा। हृदयको काबूमे लानेकी कोशिश करूँगा। तुम्हारे व्यवहारपर सोचूँगा और प्रेमकी अखण्ड माया और महिमाका मनन करूँगा!

सप्रेम वन्दे! यही वन्दना तुमने मुझे सिखाई है। कल फिर लिखूँगा।

तुम्हारा ही,

कृष्ण

२

बरकल

५-७-१९२२

देवि,

सप्रेम वन्दे! चलते समय तुमसे अच्छी तरहसे विदा भी न हो सका। लोग थे। मैं बदहवास, झल्लाया हुआ, क्षोभ, संताप तथा वेदनासे खिन्न और व्यथित, ऊपरसे इस बातकी कोशिश कि मेरे कलेजेमे उथल-पुथल

मंचानेवाले ववण्डरको कोई भॉप न ले। इन सबके कारण मेरी जो दशा थी, उसमें चलते-चलाते मै जी भरकर अन्तिम बार तुम्हे निहार भी न सका। सिर घुमाये, ऑंखें नीचे गड़ाये, भर्राई हुई आवाजमें मैंने तुमसे नमस्कार किया, और जल्दीसे भाग गया। न भागता तो रो पड़ता। सवारीपर बैठते ही ऑसू वह पड़े। कबतक रोया किया, मुझे याद नही।

रोता था और उन बातोंको बिसूरता जाता था, जो पिछले दिनोंमे बीती थीं। प्रेम-दान देकर पहले तो स्वर्ग दिखाया, लेकिन बादमें ऐसी बातें सुनाईं कि उनकी चोट मेरे कलेजेको रह-रहकर तेज छुरीकी तरह करोती है। तुमने अपने साथ पाप किया और मुझे अविश्वासी कहकर सदाके लिए कलंकित। इसीलिए मै अपनेको दण्ड देने जा रहा हूँ। अकेला, निर्जनमें बैठकर, अपने प्रेम और अपने हृदयको टटोलूँगा कि देखूँ, उसमें कहॉ और कितना मैल है, जिसके कारण ऐसी घटना हुई। बताओ, क्यों तुमने इतना घोर अनर्थ किया? क्यो अपने मुँह अपनी सफाई देकर अपनेको जलील बनाया और मुझे कॉटोंमें घसीटा? मेरे लि जो भी अपशब्द तुमने कहे थे उनका मुझे क्षणिक मलाल जरूर हुआ था, लेकिन मुझे गालियॉ देने और मुझपर अपलोक लगानेसे यदि तुमको मजा मिलता है तो, जैसा मैंने तुमसे कहा था, मुझे कोई एतराज नहीं है। मै तुम्हारा हूँ। अपनी वस्तुको जिस तरह चाहो बरतो—किसी दूसरेको बीचमे बोलनेकी क्या जरूरत? कोई बोले तो उसे हजार सुनाओ, मैं भी तुम्हारा साथ दूँगा, पर तुम्हे वह अधिकार कहॉ कि तुम अब अपनी बदनामी करती फिरो। तुम तो मेरी हो। मेरे लिए यह असह्य है कि मेरी देवीको कोई भी कुछ कहे-सुने। तुम्हे भी अब यह अधिकार नहीं रहा। तुम्हारी इसी बेजा हरकतसे मुझे अपार दु:ख हुआ है। मैं घण्टो रोता रहा हूँ। इस समय भी उसकी यादसे कॉप उठता हूँ।

कल रातको सोनेके लिए लेटा तो, पर रात जैसे कटी, मै ही जानता हूँ। एक बार तुमने कहा था कि सपनेमें तुमने मुझे कई दिन देखा। तुम्हारे लिए

यह नई बात होगी। मेरे सामने तो बरसोंसे सोते-जागते तुम्हारी मूर्ति विद्यमान रहती है। मैंने यह बात तुमसे नहीं कही। कहनेकी जरूरत भी न थी। मैंने कब तुमसे अपने प्रेमका बखान किया है? कहना भी अगर चाहा तो कह न पाया। दिलकी बात न-जानें क्यों, दिलहीमें रह जाती है। गलेसे तो बहुत-सी बातें निकलती हैं, पर हृदय मूक ही रहना पसन्द करता है।

कल रातको कई बार सोनेकी चेष्टा की, पर नींद न आई। रह-रहकर पिछली बातोंका ताँता स्मृतिके चौगानमें बँधता, विलीन होता और फिर बँधने लगता। इसी उधेड़-बुनमें सारी रात गुजरी। बहुत रात गये, जब झपकी लगी तब तुम, आँखोंके सामने हँसती हुई, व्यंग-भरी निगाहोंसे मुझे उद्विग्न करने लगीं। उठा, जल्दीसे उठा कि दौड़कर तुम्हारे चरण चाप लूँ, चूम लूँ, पर उठते ही आँख खुली और सपना सपनेमें विलीन हो गया। हाय! जागरण भी तुम्हारा साथी बनकर तुम्हारा बदला मुझ गरीबसे चुकाता है। × × ×

आज दिनभर तुम्हारे और अपने बीचकी बातोंपर विचार करता रहा। यदि यही हाल बना रहा तो पागल हो जाऊँगा। इसलिए सोचता हूँ कि स्वस्थ-स्वस्थको एक ही रही!—चित्तसे बैठकर इस विषयपर अपने विचारोंको स्थिर करूँ। आगे भी तो साथ रहना ही है! मुझे अपना कर्त्तव्य निश्चित कर लेना चाहिए। इस विषयपर अपने विचारोंको स्थिर करूँ। आगे भी तो साथ रहना ही है! मुझे अपना कर्त्तव्य निश्चित कर लेना चाहिए। इसके लिए यह जरूरी है कि पुरानी बातोंको एक बार दोहरा जाऊँ।

कबसे हम दोनोंकी प्रेम-कहानीका आरम्भ होता है? इसका जवाब न तुम दे सकती हो और न मैं। तुमने खुद अपने पत्रमें यह लिखा था, 'मैं तुम्हें प्यार करती हूँ। कबसे, कुछ ज्ञात नहीं।' और मैं तो कम-से-कम नौ सालसे तुम्हारा पुजारी रहा ही हूँ। तुम्हें याद होगा कि एक बार तुम्हारी दाहनी कलाईमें चोट लगी थी और खून बह निकला था। मैं पास ही बैठा

था। खून देखकर चौंका और दौड़कर पट्टी बाँधी। इतना व्यथित और व्याकुल हो गया था कि पागल-सा हो उठा। उसी पगलाहटमें मैं नतमस्तक होकर तुम्हारी कलाईको एकाएक चूमने लगा। इस चुम्बनमें कितनी भक्ति थी, कितना सम्मान उससे टपकता था! वह तो एक वशंवद भक्तकी, अटल भक्तिकी प्रतिज्ञा थी—प्रेमकी शपथ और आमरण आत्म-समर्पणका प्रण था। यूरोपमें पुराने जमानेसे लेकर आजतक यही प्रथा चली आई है कि रानियों-महारानियोंके कर-कमलोंको भक्त चूमकर अपनी अनन्य भक्तिका प्रदर्शन करता है। याद है, हमदोनों उस समय थर-थर काँपने लगे थे। इसके बाद मैंने फिर तुमसे कर-चुम्बनकी प्रार्थना की। उदारतासे तुमने मुझे बायाँ हाथ दिया, जिसे मैंने सत्कारके साथ, विनम्रताके साथ चूमा था। लेकिन उसके बाद, तुम खिच गईं। क्यों, मुझे नहीं मालूम। चोट तो लगी, पर मैंने उस घड़ीसे फिर कभी सालोंतक न वचनसे, न निगाहसे और न किसी चेष्टासे तुम्हे छेड़ा। क्योंकि मै ऐसे प्रेमका लोभी नहीं, जो बरबस बलसे छीना जाय। प्रेमका सौदा खुले बाजार होता है, परवशताका वहाँ सवाल नहीं। जिसको जी चाहे दे, न जी चाहे न दे। रोक-थाम, छीना-झपटीका वहाँ काम नहीं। मैंने देखा कि तुम्हारी कृपा क्षणिक थी—भादोंकी अँधियारी घटामें बिजुली चमकी और चमककर एक पलके लिए उजियाला कर गई और फिर वही घटाटोप, हाथटटोल अँधियारा छा गया। अपने करमको ठोंका, पर घायल होते हुए तुम्हे अपने दुःख, अपनी पीडाका हाल सुनाकर मैंने फिर कभी न सताया। है यह सच या नहीं? बताओ! चुप क्यों हो? चुप्पीसे काम न चलेगा। न बोलोगी तो गवाही पेश करूँगा। याद है, पत्र लिखनेके दूसरे दिन जब तुमसे मेरी बातें हुई थीं तब तुम ऊपरकी सब बातोंको सही मान चुकी हो।

हमदोनोंके प्रेमका बीज उसी दिन बोया गया था। चुम्बन, कम्पन, भक्तिका दान और उसकी स्वीकृति—सब उस उद्देश्य-सिद्धिकी सहायक क्रियाएँ थीं—मन्त्रको जगानेके विधान थे।

बीजको हृदयके भीतर गाड़कर तुम और मैं, एकदमसे या थोड़े समयके बाद, उसे भूल-से गये। पर वह न मरा और न सड़ा। किसने उसे सींचा और प्रतिकूल परिस्थितियोंमें उसकी रक्षा की, न तुम्हे मालूम और न मुझे ही ज्ञात है। पृथ्वीके गर्भमें या माताके उदरमें, बीजकी रक्षाका प्रबन्ध जैसे प्रकृति करती है, वैसे ही हृदयके गर्भमें प्रेमके बीजकी देख-रेख भी कोई-न-कोई शक्ति अवश्य करती होगी। उसीकी संरक्षतामे वह ससारसे अदृष्ट और लोगोके अनजानमें पनपा—उसमे अङ्कुर निकला। इसीलिए तुम कहती हो कि यह तुम्हें ज्ञात नहीं कि कब, कहाँ, कैसे प्रेम—मेरे लिए प्रेम—तुम्हारे हृदयमें अङ्कुरित हुआ। प्रकृति अपने सारे काम लुक-छिपकर परदेके अन्दर अन्धकारमें करती है। उसके अङ्कुर ही हमें दिखाई देते है। हमारे जीवनके संस्कारोकी यही जन्म-कथा है। इसीको लोग भाग्य, प्रारब्ध या पिछले जन्मके सञ्चित कर्मोंका फल कहते है। कौन जाने कि यदि तुम्हे उस समय इस बीजके बोनेका पता चल जाता तो तुम उसे निकालकर फेंक न देती और फिर बादकी सारी घटनाओंका क्रम ही एकदमसे बदल जाता; लेकिन विधनाके मनमे तो कुछ और ही था। मुझे तुम्हारा प्रेमी बनाना उसने ठान लिया था। देवि, भाग्यकी रेखाको आजतक मिटानेमें कौन समर्थ हुआ है? हम दोनो संसारके अदृष्ट, अव्यक्त, बहुत ही पहले, परन्तु अत्यन्त मजबूत डोरोसे एक दूसरेके साथ कसकर बाँध दिये गये है। उन्हे तोड़कर आजाद होनेकी सारी चेष्टा वैसे ही विफल होगी, जैसे चुम्बकके आकर्षणसे लोहेका भागना या दीप शिखासे पतङ्गको बचानेका प्रयत्न। हम एक दूसरेके लिए जहाँ चुम्बक और दीप-शिखा है, लोहा और पतङ्ग भी हैं। 'करमगति टारे नाहिं टरै।' दीनतासे, श्रद्धाके साथ मै तो उस आदि-शक्तिको नमस्कार करता हूँ, जिसने मुझे तुम्हे दिया, और तुम्हे पाकर मै तो सन्तुष्ट हूँ। क्यो दिया, इसकी उधेड़-बुनमें पड़कर व्यर्थकी माथापच्ची करनेकी हमें क्या जरूरत? दर्दे-दिल ही क्या कम है, जो ऊपरसे सिर-दर्द भी बैठे-बैठाये मोल लूँ?

एक और भी पहलू है, जिससे इस बाजके अज्ञात रूपमें परिस्फुटनका महत्व हमारी आँखोके सामने स्पष्ट हो जाता है। यदि बीज जमीनके ऊपर पड़ा रहे तो उसे चारो तरफसे खतरा ही खतरा रहेगा। चिड़ियाँ उसे चुन लें, गर्मीकी कड़ाकेकी धूप उसे सुखा डाले, बरसातकी झड़ी उसे वहा ले जाय और सड़ा डाले, जाड़ेकी ठण्ढक और पाला-ओस उसे ठिठुरा सकती है। इसी तरहसे हम दोनोके प्रेमको—यदि दुनिया उसे उगते देखती—तो पड़ोसियोंकी हँसी, घरवालोकी नाराजी, स्वजनोके आँसू, लोक-लाजकी झिड़की और सौतोकी डाह उसे भला कहाँ पनपने देतीं? पलमे उसे रौंद-राँदकर खत्म कर डालतीं। सच कहना, अमानुषिक माताकी तरह तुम्ही क्या उसका गला न घोट देती? लेकिन अब जब उसने काफी जड़ें छोड़ दी है और वे खूब मजबूत भी हो गई हैं, तब न तो तुम इस पौधेको समूल उखाड़कर फेंक ही सकती हो और न कुल्हाडीसे उसे काट डालनेहीको तुम्हारा जी चाहता है। हृदयके रक्तसे पाला-पोसा, हृदयके जीते तन्तुओंमें वह इतना लिपट गया है कि जैसे जीता नाखून कोई नहीं कटवाता, वैसे ही तुम अब उसे काटकर फेंक नहीं सकतीं। ठीक ही हुआ, जो तुम्हे यह नही मालूम कि कबसे तुम मुझे प्यार करने लगी। नही तो मुझे भय है कि तुम उसे बढ़ने न देतीं और तब मैं फिर तुम्हारी खोजमें जन्म-जन्मान्तरोतक इधर-उधर भटकता, खाक छानता फिरता। अब मिल गई हो, देखूँ तो सही कि तीन लोकमें वह कौन शक्ति है, जो तुमसे मुझे जुदा कर सकती है या मेरे जीते-जी कैसे कोई दूसरा तुम पर अधिकार जमा सकता है?

तुम बदल जाओगी? असंभव! तुम्हे मैं पहचानता हूँ। तुम्हारी प्रकृति पक्के पत्थरसे अधिक दृढ है। कोई हँसी-खेल नही कि उसपर अङ्कित चित्रको कोई मिटा सके। तुम न नदीकी धार हो और न पुलिनकी रेणुका, जिसपर चित्र खिंचा नहीं कि बिगड़ गया। तुम सच्ची हो, बातकी धनी हो, जल्दी भूलती नहीं। जिसे पकड़ा उसे सदाके लिए पकड़ लिया। यह न समझना

कि मैं तुम्हारी तारीफ चापलूसीसे कर रहा हूँ। नहीं देवि, मैं यदि तुमसे झूठ बोलना भी चाहूँ तो नहीं बोल सकता। प्रेम और सत्यमें अन्यतम संबंध है। दोनो एक ही वस्तुके दो पहलू है। जो मैं कहता हूँ वह सत्य है। मैं तुम्हारा पुजारी हूँ, इसलिए कि तुममें अद्भुत नैतिक गुण हैं। रूप भी है, जिसमे अजीब तरहकी मादकता भरी है। परन्तु मैं वह भौंरा नहीं, जो ऊपरी रूपका उपासक हो। भौंरा भी चंपासे दूर ही भागता है। क्या मैं भौंरेसे भी गया-गुजरा हूँ कि चञ्चल सौंदर्यकी तलाशमें गुणोंके अचल (स्थायी) लावण्यको तुच्छ समझूँ? मुझे तुम्हारा शरीर प्यारा है, बहुत प्यारा है; परन्तु प्यारा है इसीलिए कि मैं तुम्हारी अन्तरात्माका प्रेमी, पुजारी, उपासक—जो कहो सो—हूँ। सच मानो, तुम्हारी नैतिक विशिष्टता इतनी अधिक मुझे प्यारी है कि केवल रूपकी अप्सराको मैं तुम्हारे पद-रजके मोलमे हेय समझता हूँ। आगे चलकर दिखा दूँगा कि जो मै कहता हूँ वह ठीक है या नहीं। इसीलिए मैं तुम्हारे रूपको कम प्यार नहीं करता, परन्तु तुम्हारी आत्माका अधिक प्यार करता हूँ, जिसकी महज छाया बाहरी कान्ति है।

बहक गया। माफ करना। चित्त चञ्चल हो रहा है। उसपर मेरा कोई वश नहीं। अङ्कुश तो तुमने मेरे हाथसे छीन लिया, उसे सँभालूँ तो कैसे?

हाय! क्या करूँ? बीच-बीचमें क्षीण लपट-सी मेरे सारे शरीरसे निकलने लगती है। तुम्हारे भयको इस कागजपर देखकर वह कटु-मधुर वेदना टीसने लगती है कि न मरते बनता है और न जीते। हे देवि, तुम कहाँ हो? क्यों मुझे तुमने अपने चरणोंसे हटा दिया? मुझमे कोई अपराध जान या अनजानमे तो हुआ नहीं। यदि हुआ भी, तो फिर क्यो इतनी रूठ गईं? जब अपनाया था तभी तुम्हे मालूम था कि मै कितना दुर्बल हूँ और कितनी बार ठोकर खाकर गिर चुका हूँ। सब कुछ जानकर, तुमने मुझे हाथ बढाकर अपनी ओर खींचा। तब क्यों रूठती हो, खफा होती हो। भयने आज भी कलेजा काँप रहा है। देवि, देवि,

दया करो ! बहुत रुलाया । कब तक रुलाओगी ? प्रेम तो क्षमाका नाम है । अनन्त प्रेममें अनन्त क्षमा है । तुम्हीने तो यह पाठ मुझे पढाया और अब तुम्ही उसे भुला रही हो । मैंने तो तुमसे एक बार नही, अनेक बार कहा है कि मुझ निर्बलताका तुम्हीं बल हो, मुझ अनाथको तुम्हीं सनाथ बना सकती हो । मुझमें जो दोष हैं, उन्हे अपने प्रेम और सहनशीलतासे तुम्ही दूर कर सकती हो । छोड़ दोगी तो मै और भी नीचे गिर जाऊँगा । मेरी मुक्तिकी आस तुम हो । तुम्ही मेरी जीवन-नौकाकी कर्णधार बन सकती हो । न छोड़ो, न त्यागो । अपना लो , प्यारी, प्रिये, अपना लो । तुम मुझे सुधारो ! जो कहो करूँगा , जैसे कहो रहूँगा । लेकिन अपने पास तो रहने दो । पापीको भगवान् भी उठाता, उबारता है । फिर, तुम क्यों मेरे उद्धारकी चेष्टासे हाथ खींच रही हो ? प्रभो, स्वामिनि, दयानिधे, कुछ तो दया करो । अधिक नही, चरण ही छू लेने दो । मेरे लिए तुम्हीं धर्म हो, कर्म हो । तुम्हीं स्वर्ग हो और स्वर्गकी सच्ची साक्षी हो । मैं ईश्वरमे विश्वास करता हूँ, क्योंकि मेरा तुममे विश्वास है । जिस दिन तुमसे विश्वास हट जायगा या तुम मेरे साथ दगा करोगी, उसी दिनसे मैं समझूँगा कि विश्वमें धर्म नहीं स्थिरता नही, सत्य नही और प्रेम नही–सब ढोंग है, ढकोसला है, कल्पनाका प्रपञ्च है, स्वार्थियोंकी दूसरोंको ठगनेकी चाल है । तुम्हीं मेरे भविष्यकी आशा हो और उसी भविष्यकी तुम्हें शपथ है कि तुम मेरे साथ छल न करो, कपट न करो । यदि करोगी—? नही, नहीं, दुनिया उठ जाय, सूरज सदाके लिए अस्त हो जाय, आग जलाना बन्द कर दे और वायुमे गति न रहे, परन्तु तुम छल न करोगी, न करोगी । तुम्हारा सत्य अटल है— उतना ही अटल—अचल है, जितना मेरुदण्ड । तुम बातको निबाहना जानती हो । नेहकी मर्यादाका अगर तुम न समादर करोगी, तो दुनियामे और कौन करेगा ? सप्रेम वन्दे ।

तुम्हारा दीवाना,

कृष्ण

---

[२]

८-७-१९२३

मेरी राधे,

सप्रेम वन्दे ! कितना रूखा-सूखा यह अभिवादन है। मन तो चाहता है कि ध्यानसे तुम्हे अपने अङ्कमे भरकर सिरसे पैरतक तुम्हारे ऊपर चुम्बनोकी वर्षा करूँ, लेकिन तुमने मना किया है कि ऐसा मैं न करूँ। मन पापी है, माफ करो। पढाये हुए सुएकी तरह मैं भी वही कहूँगा जो तुमने मुझे सिखाया है—सप्रेम वन्दे ! अब तो सन्तुष्ट हुईं ? देखो तो मैं कितना पटु शिष्य हूँ ! इसपर भी तुम प्रसन्न नहीं होतीं। अब तो खुश हो जाओ। कहती हो कि खुश हो। तो, आओ, हियेसे मुझे एक बार—बस, एक बार—लगा लो। फिर, वही भूल ? खता हुई, क्षमा करो। न्यायशीले, दोष तुम्हारा है कि मैं रह-रहकर बहकने लगता हूँ, तुममें अजीब जादू है। इस समय मेरे सामने खडी, तुम अपनी आँखोंको ऐसे अद्भुत ढङ्गसे नचा रही हो कि उन्हें देखकर मै उन्मत्त हो जाता हूँ। आँखोमे अप्रसन्नता तो प्रत्यक्ष है, परन्तु उसके पीछे गुप्त मुस्कान और निमन्त्रण भी तो साफ-साफ झलक रहे है। निर्दयी कहींको ! पहले फुसलाना, इशारेसे बुलाना और फिर मुकर जाना—यह तुम्हीको छभता होगा। इसीको प्रेम यदि कहती हो तो कहो; दुनिया इसे किसी दूसरे नामसे पुकारती है। बिल्ला भी, कहते हैं, चूहेके साथ कभी-कभी इसी तरहका निष्ठुर खेल खेला करती है। दिन है, खेल लो। मुझे शिकायत करनेका अधिकार ही क्या ? जब प्रेमका सौदा किया तब हृदय तुम्हारे हाथ सौंपा और जबान काटकर पासंगेमे डाल दी थी। बे-जबान हूँ, फरियाद करूँ तो कैसे ? और यदि इशारोंसे फरियाद करूँ भी तो उसे सुनने कौन लगा ? ऐसी दशामे चुप रहना ही उचित है।

तीन दिन पत्र नहीं लिख सका। क्षमा चाहता हूँ। इसके दो कारण हैं। एक तो सफरमे दो दिन निकल गये, तब कहीं वहाँ पहुँचा, जहाँपर

ठहरनेका निश्चय मैने किया था। तुम्हे भी न बताऊँगा कि इस स्थानका नाम क्या है! दुनियाके लिए तो मै लोप हो ही गया हूँ। दूसरे, ये पत्र तुम्हे भेजे भी नही जाते। ये तो २४ घण्टेमेंसे एक घण्टे तुम्हारे साथ बैठकर बात कर लेनेकी हविशको मिटानेके साधन-मात्र है। दिन-रात अकेले बैठे रहनेसे जी घबराने लगता। दिलकी तपन, मनकी चञ्चलता, प्रेमकी आतुरताको कम करनेकी यह एक औषधि है। कुछ शांति मिल जाती। थोडी देर यही समझने लगता हूँ कि यदि तुम्हारे पास नही हूँ, तो इन पत्रोद्वारा मै तुमसे रोज एक बार मिल तो लेता हूँ। यही क्या थोडा है? यदि सचमुच मै रोज तुम्हे पत्र भेज सकता तो तूफान या भूकम्पमे भी मै तुम्हें खत लिखता! लेकिन दुर्भाग्यसे मेरे करममे इतना बड़ा सुख नही लिखा है। इसलिए न लिखनेसे किसीका कुछ बना बिगड़ा नही। रेलके भम्भेडमें लिखना असंभव था। और जहाँ से रेलको छोड़ा, वहाँ से काफी पैदल चलना था। आज वहाँ पहुँच गया, जहाँ अब चिमटा गाड़, कुछ दिनोंके लिए मै धूनी रमाने जा रहा हूँ। कोई पास-पड़ोसमें नही है। एकदम निर्जन स्थान है। तुम्हारी स्मृति मेरे साथ है। किसी दूसरे साथीकी मुझे जरूरत नही। तुम्हीं तो मेरे लिए सम्पूर्ण विश्व हो। तुम्हारे बिना सारा जगत् मेरी आँखोंमें भायँ-भायँ करते हुए मरघटसे भी अधिक निर्जन है। अब नियमपूर्वक शामको चार बजे प्रतिदिन तुम्हे पत्र लिखा करूँगा। ठीक एक घण्टे लिखूँगा। क्या कभी वह दिन भी आयेगा, जब ये पत्र तुम्हारे पास पहुँचेंगे और तुम इन्हे पढोगी। आशा कम है, लेकिन यदि कभी इनके पहुँचनेकी नौबत आ जाय, तो इन्हे करुणाकी दृष्टिसे देखना और दयाके दो बूँद आँसू इनके लिखनेवालेके नामपर बहाना, जो आज दिन तुम्हारे प्रेमके कारण बियावान जंगलमें बैठा-बैठा तुम्हारे नामका अलख जगा रहा है। याद करना कि जितना वह तुम्हारा प्यार करता है, उतना कभी किसी दूसरेने किसी रमणीका प्यार न किया और न आगे कभी कोई करेगा।

पिछले पत्रमें मैने तुम्हे अपने स बन्धकी कहानी कहनी शुरू की थी। लेकिन बीजके बोनेके आगेकी कथा वहाँ मै न कह पाया था। जहाँ से बातोंका तार टूटा था, वहींसे, अब मै कथाको फिर छेड़ता हूँ।

जिस घटनाका उल्लेख मै कर चुका हूँ, उसे हुए आजसे कमसेकम छ. साल बीत गये। इस अरसेमें हम दोनोका एक दूसरेके साथ बहुत ही साधारण व्यवहार रहा। परस्पर सौजन्य था, सन्मान था—स्नेह भी था। इससे अधिक तो कभी प्रकट नहीं होने पाया। दो घटनाओका जिक्र यहाँपर कर देना अनुचित न होगा, क्योकि उनसे अब पता चलता है कि हम दोनों किस ओर बह रहे थे। तीन सालकी बात है, तुम मुझसे अकेलेमें मिलते झिझकती थीं। यदि कोई चीज भी देनी होती थी तो हाथको जल्दीसे खींच लिया करती थीं। मानौ यह डर लगा रहता था कि कहीं मै उसे पकड़ न लूँ। लेकिन धीरे-धीरे तुम्हारी यह शङ्का दूर हो गई। तुम्हे विश्वास होने लगा कि मैं इतना नीच नहीं हूँ कि छीना-झपटी करूँ।

इसके सालभर बाद मै एक भारी विपत्तिमे पड गया था! मेरे प्राणोकी बाजी उसमे लग चुकी थी। तब तुमने उदारतासे, मेरी प्रार्थनापर, मेरी सहायता की और मेरे प्राण तथा मेरी इज्जत दोनोको बचाया। तुम्हारे इस उपकारका मेरे ऊपर जो असर हुआ, उसको लक्ष्य कर मैंने कई बार कहा था कि इस एहसानके बदले मै सारी जिन्दगी तुम्हारी सेवा करूँगा। तुमने तो तभी मुझे सब दिनके लिए खरीद लिया था। कौन जानता था कि सौदा करनेमें भी तुम अपूर्व उदारता दिखाकर मुझ कंगालको सदाके लिए शर्मा दोगी। मुझे खरीदा तो था अपने उपकारके बदलेमें; लेकिन इतना देकर भी तुम्हे सन्तोष न हुआ। फैयाजी की हद कर दी, जब तुमने बदलेमे अपने आपको भी मुझे दे डाला। धन्य हो देवि! धन्य! परोपकार, उदारता, दानशीलता—सबको तुमने लज्जित कर दिया। ऐसी अनुपम राधापर मैं यदि सर्वस्वको भी निछावर कर दूँ—अपनी आत्माको, अपने धर्मको, अपने

भविष्यको, अपने अनन्त जन्मोंको—तो भी पासंगके बराबर भी वह न उतरेगा। इसीलिए लज्जा और शोकसे मेरा सिर तुम्हारे सामने उठ नही पाता। क्या करूँ, जिससे तुम्हारे इस ऋणसे उऋण हो सकूँ? मेरे पास जो कुछ था, उसे तो विन-विनकर तुमने लूट लिया, और उसके बाद, ऊपरसे इतने भारी-भारी उपकारोके बोझको मेरे सिरपर लाद दिया। जलेपर नमक छिड़कना इसीका नाम है।

मै तुच्छ हूँ, अपनी तुच्छता जानता हूँ। लेकिन अपनी निगाहोमें, सच मानना, मै इतना तुच्छ कभी न जँचा था, जितना तुम्हारी इस अपूर्व करुणा-पूर्ण उदारताके बाद। लेकिन इस नीचा देखनेमे भी आनन्द है, गौरवको अनुभूति है। दुनिया मुझे निर्धन, निकम्मा और नगण्य समझे तो समझे। तुम्हारे प्रेम-प्रसादको पानेके बाद तो मै अपनेको संसारमे सबसे अधिक भाग्यवान समझने लगा हूँ। जी चाहता है कि तुम्हारे चरणोपर नत-मस्तक होकर तुम्हारी वन्दना करूँ। है मंजूर?

इस घटनाके एक साल बाद, दूसरी घटना हुई। तुम्हें याद होगा कि सन् १६२१ में खिलाफत और सत्याग्रहकी आँधी सारे देशमें आई थी। मैं नौकर था। तुम स्कूलमे थीं। सब छोड़-छाडकर मै जेल चला गया। वहाँ से जब लौटा तब तुम्हारा इम्तिहान करीब था। तुमने किसीसे कहलाया कि महीने दो महीने मै तुम्हे पढ़ा दूँ। पहले यह बात हँसी-सी मालूम हुई! लेकिन तुमने कई बार दूसरोंकी जबानी इसी बातको दोहराया। तब मैंने हँमकर कहा कि 'खुद क्यों नहीं कहती हो देवि! कहकर आजमा लो कि तुम्हारा मेरे ऊपर कितना अधिकार है और कहाँ तक मैं तुम्हारी सेवा करनेको तैयार हूँ।' जवाबमें तुरन्त तुमने कहा—'कहती तो हूँ, पढा दीजिए।' मैंने कहा—'पढा दूँगा, पर एक बात सुन लो।' 'सुनती हूँ—कहिए न।' बात काटकर मैं बोल उठा—'जल्दी क्या है? कह दूँगा।' वहींपर यह बातचीत समाप्त हो गई।

एक-दो दिनके बाद तुमने फिर वही बात छेड़ी। मैंने कहा—'मुझे एक

बार जेल फिर जाना है। साथियोसे कह चुका हूँ। यदि कहो तो जेल न जाऊँ।' तुमने कहा—'यदि ऐसी बात है तो अवश्य जाओ। मै खुद जाती, यदि घरवालोकी रुकावट न होती, पर मजबूर हूँ। तुम जरूर जाओ।' मैने हृदयसे तुम्हे प्रणाम किया और तुम्हारी वीरताको मन-ही-मन सराहा। तुम्हारी आत्माकी एक खूबीका और पता उस दिन लगा। मेरी श्रद्धा और भक्ति तुम्हारे चरणोंमे अत्यधिक बढ गई।

मै सालभरके लिए जेल गया। सजा तो काफी लंबी-चौडी हुई थी। परन्तु १९२३ के मईमे एक सालके ऊपर सजा भुगतनेके बाद बीमारीके कारण मैं मुक्त कर दिया गया। यह दूसरी जेल-यात्रा थी।

जेलका हाल मैं लिखने नही बैठा हूँ। इसलिए जेल-जीवनकी कोई बात न लिखूँगा। पर एक बात तो कहनी पडेगी, क्योंकि उसका तुमसे घना संबंध है। जेल जानेके पहलेहीसे मेरे दिलमे तुम्हारे प्रति श्रद्धा तो थी, लेकिन वह पुराने प्रेमका महज रूपान्तर थी। प्रेम धीरे-धीरे बढता और गढियाता गया। ज्यो-ज्यो तुम्हारी आन्तरिक भलाइयोका मुझे बोध होने लगा, त्यो-त्यो वह प्रेम भक्तिमे बदलने लगा। तुम्हारे अद्भुत गुणोंके खिचावमे इतना बल था कि यदि इच्छा न भी होती तो मै लाख चेष्टा करनेपर भी तुम्हारे चरणोंतक नत-मस्तक पहुँच जाता। लेकिन उसे कैदी बनानेमें किसीको क्या कठिनाई हो सकती है, जो खुद ही कैदी बननेको कमर कसे तैयार बैठा हो। लेकिन इसमें सन्देह नहीं कि तुम्हारे गुण-लावण्यने मेरे ऊपर अकथ जादू किया। इसीके प्रभावने मुझे, तुम्हें बता चुका हूँ, किसीसे विमुख कर दिया था। X X X जाने भी दो, इन गडे मुर्दोंको उखाड़नेसे लाभ ही क्या? खैर, इसका जिक्र मैंने किसीकी बुराई करनेकी नीयतसे नहीं किया। मै तुम्हे बता रहा हूँ कि वे कौनसे कारण हैं, कौन-सी वे घटनाएँ है, जिनके प्रभावसे मेरे हृदयमे तुम्हारा स्थान दिन पर दिन बढता गया। जब मैं जेल पहली बार गया था, तबसे या उससे बहुत पहलेसे मैं तुम्हारा गुलाम बन चुका था।

जेलमें प्राणायाम शुरू किया। सुबह-शाम, दिनमें दो-दो बार। ध्यानमें तुम्हारी मूर्त्ति आँखोके सामने आने लगी। धीरे-धीरे प्राणायामके आगे-पीछे भी वही प्यारी, मनोहर मूर्त्ति मेरे सामने आँख बन्द करते ही आ खड़ी होने लगी। बात प्रिय थी, आनन्द आता था, इसलिए अभ्यास बढ़ाया। कुछ दिनोंमें यह दशा हो गई कि सोते-जागते, चलते-फिरते, पढ़ते-लिखते तुम्हारा ही ध्यान और तुम्हारी ही याद। किसी काममें मन न लगने लगा। मजा सिर्फ इसीमें मिलता था कि लेटकर आँखें बन्द कर लूँ और तुम्हे देखूँ। दूसरोसे बोलना भी भारू हो गया। लोग इस अनमनेपनकी शिकायत करने लगे। समझते थे कि मै उनकी बातें इसलिए ध्यानसे नही सुनता कि मैं अभिमानी हूँ, या उनका तिरस्कार करना चाहता हूँ। उन्हे क्या मालूम कि मेरे हृदयमें कितनी वेदना भरी थी और मेरे ऊपर क्या बीत रही थी? इसे तुम सुनकर हँसोगी। समझोगी कि ये सब बनावटी बातें हैं, पर है ऐसा नही। मैं तुम्हारी शपथ खाकर कहता हूँ कि तुमसे मै स्वप्नमें भी झूठ न बोलूँगा।

महीनोतक यही हालत जारी रहा। सिरसे पैरतक मै तुम्हारे प्रेमसे रँग गया। रोम-रोममें तुम्हारी कमनीय मूर्त्ति अङ्कित हो गई और तुम्हारे नामकी मधुर ध्वनिसे सारा शरीर गूँज उठा। तब मैंने जाना कि राधा कृष्णको कितना प्यार करती रही होगी। मेरे जीवनमें यह एकदमसे नया अनुभव था। इसके पहले जिसे प्रेम समझ रक्खा था, वह प्रेम न था, प्रेमका कपट-रूप था। वह तो वासना या कामनाका झोका-भर था। उपन्यासोको पढ़कर शृंगारकी मानसिक विलासिताका उफान था। अभीतक आगसे खेलनेका स्वॉग करते हुए मनोरञ्जन किया करता था, परन्तु अब मालूम हुआ कि प्रेमकी ज्वाला कितनी भयकर होती है। ज्वालामुखीमें उतर जाना आसान है, लेकिन प्रेमकी धधकती ज्वालामे पडकर सही-सलामत निकल आना आसान नही। पतङ्गेकी तरह मै जल-भुन गया। मेरी वासना, मेरी कामना, मेरे विकार, मेरी ममता

और मेरी लालसा, सभी जल-भुनकर खाक हो गई। मेरे विकार सब नष्ट हो गये, मेरे व्यक्तित्व का अब पता नही। तुम्ही अब मेरी लालसा हो, आकांक्षा हो, मेरे प्राण और मेरा जीवन हो। मेरा अब कुछ नही शेष रहा। जो बचा है, वह तुम्हारे लिए प्रेम। तुम्हींमे मेरा अस्तित्व है, तुम्हीं मेरे लिए संसार हो। जो नाच नचाओ, नाचूँगा, जो कहो, करूँगा। न कहोगी तो निर्जीवकी तरह पड़ा रहूँगा। तुम्हीं मुझे ऊपर उठा सकती हो और यदि चाहो तो रसातलमें भेज सकती हो। तुम्हारे रङ्गमे, मैने कहा है, मै रँग गया हूँ। यह ठीक नही। प्रिये, तुम्हारे प्रेमने मुझे इतना रगड़ा है कि मेंहदीकी पत्तीसे बदलकर मैं अब रङ्ग हो गया। तिल था, अब तेल बन गया। खुदड़ा सबका सब निकालकर प्रेम भी भट्ठीमें जला दिया गया।

हाँ, इसको वह नही समझ सकता, जिसपर खुद न बीती हो। उसे मैं बताने भी तो नहीं जाता। मेरा प्रेम गूँगेका गुड़ है! खानेहीसे उसका मजा मिल सकता है। लेकिन जहाँ उसमें मिठास है, वहाँ वह कड़ुवा भी कितना है! कितना रुलाता है, कितनी पीडा पहुँचाता है! सचमुच, जेल तो मेरे लिए अमावस्याकी विकट अँधियारी रात-सा हो गया था, यद्यपि सारी दुनिया दिनके प्रकाशमे आनन्द मनाया करती थी। और अँधियारी भी कैसी कि उसमें आशाके टिमटिमाते हुए नखतकी एक किरनका भी पता न था। मुझे आशा कैसी? क्या वहाँ स्वप्नमें भी यह आशा कर सकता था कि जिसके लिए मैं तड़प रहा हूँ, वह कभी भी मेरा प्यार करेगी? मैं इतना मनहूस कि कोई मेरी ओर यदि एक बार धोखेसे भी देख ले तो दोबारा फिर कभी उस ओर न देखना चाहेगी। न रूप, न गुण, न धन, न यौवन, न पद और न नाम। मुझसे अधिक दीन और निकम्मा विरला कोई तुम्हें दुनियामे मिलेगा। उसपर खोटे काम। तुम्हे मेरी खोटाईका पूरा-पूरा पता था। जहाँ विधनाने मुझे उन तमाम गुणोंसे वञ्चित रक्खा, जिनकी बदौलत संसारमें पुरुष स्त्रियोंकी निगाहोंमें आदरणीय और आकर्षक होता है, वहा तुम्हे उसने रूप भी

दिया, यौवनकी मादकता भी दी और तरह-तरहके एकसे-एक सुन्दर गुणोंसे विभूषित और अलंकृत किया। तुम्हारे प्रेमको पानेकी चेष्टा उसी तरहसे उपहासके योग्य थी, जैसे मेरी आकाशको हाथसे छूनेकी कोशिश! कौन जानता था—कमसे-कम जेलमें तो इसका स्वप्न भी नही देख सकता था—कि तुम कभी मेरे ऊपर इतनी दया करोगी कि मेरी कङ्गालोके ऊपर अपने गुणोंकी चादर डालकर मेरे सारे ऐबोंको छिपा दोगी। अचंभेके दिन, लोग कहते हैं बीत गये। मै भी यही मानता था और मानते हुए अपने कर्मोपर रोता और सिर धुनता था कि हे भगवन्, मैंने कौनसे पाप किये है, जिसकी सजामें मै इस तरह बेरहमीके साथ सताया जा रहा हूँ।

कितनी मुश्किलोमे वे दिन एक-एक करके गुजरे थे। आज भी जब उनकी याद आती है, तो रोंगटे खडे हो जाते हैं। दुश्मनको भी इतनी व्यथा न कभी सहनी पड़े। मै महीनोंतक दुःखकी कन्दरामे पड़ा-पडा कराहा किया। निर्दय निराशा छातीपर हर वक्त सवार रहती थी। भीतरसे वेदना हृदयको रह-रहकर करोया करती। सचमुच जीवनकी वे घड़ियाँ अमावस्याकी रातसे भी अधिक काली और डरावनी थीं। मैंने प्राणायाम करना बन्द कर दिया। गीताको नमस्कार किया। सोचा, कहीं पागल तो न हो जाऊँगा। अकेले बैठनेमें भय मालूम होने लगा। अपनेहीसे मुझे डर लगने लगा। कोशिश करने लगा कि किसी घडी अकेले न रहूँ। दूसरोंके पास जाता और छेड-छेडकर उनसे बातें करनेको कोशिश करता। इधर-उधर जहाँ कोई मिलता उसके पास जा खडा हो जाता। लेकिन सब बेकार था। रातमे तो अकेले रहना ही पड़ता। तब नरककी यातना फिर शुरू हो जाती। फिर वही विचार आकर घेर लेते। फिर वही वेदना, फिर वही जलन, फिर वही निराशाकी काली-काली घटाएँ और दिन तो ज्यों-त्यों कट भी जाते, परन्तु रात पहाड़-सी भारू हो जाती। उसका एक-एक पल कितने धीरे-धीरे लँगड़ेकी चालसे खिसकता था।

वेदना असह्य हो गई। शरीर इस भीषण खींचातानीको अधिक दिनोंतक बर्दाश्त न कर सका। मैं बीमार पड़ गया। जब हालत ज्यादा खराब हुई तो और जल्द सुधरनेकी आशा न रही, तब जेलके अधिकारियोंके कहनेसे मै सजाकी मीयादके पहले ही छोड़ दिया गया।

उठूँ। अँधेरा हो चला। यहाँ रोशनी भी नहीं है कि अधिक लिख सकूँ। अब फिर लिखूँगा।

तुम्हारा अभागा,

कृष्ण

कृष्णाका राधाके नाम अन्तिम पत्र*

[प्रेषक—श्री० वेंकटेशनारायण तिवारी, एम० ए०]

३०

"मै ढूँढ़ थकी हूँ वनमे, तुम छिपे छली हो मनमे।
मै विरह-गीत तज दूँगी, बिखरे आँसू गूथूँगी।
प्रियतमके प्रेम-मिलनमे, फिर अब न थकूँगी बनमे।
मैं मग क्यो अधिक निहारूँ, तमकी ठोकरसे हारूँ।
तुम ध्रुव नक्षत्र गगनमे, फिर अब न छिपोगे मनमे।"

* पत्र-प्रेषक महोदयका कथन है कि नं० ४ से लेकर नं० २६ तकके पत्र लुप्त हो गये। इसलिए इस ३० वें पत्रको अन्तिम-पत्र समझना चाहिए।

अज्ञात-वास

२७-८-१९३३

प्रियतमे,

सप्रेम वन्दे ! लो, आज यह अन्तिम पत्र लिखने बैठा हूँ। मेरे अज्ञात-वासकी अवधिका आज अन्तिम दिन है। जिस लिए यहाँ आया था, वह संकल्प पूरा हुआ ! मनका मैल टटोला और उसे यथाशक्ति धो भी डाला। प्रेमकी समस्यापर भी सोचा, खूब ही सोचा। यह कहना तो भूल होगी कि उस अगम्य, अथाह रहस्यकी मैंने अच्छी तरहसे पड़ताल कर डाली। दुनिया मे ऐसा आजतक कौन समर्थ माईका लाल हुआ, जो प्रेमके मन्त्रकी महिमाको समझ सके ? प्रेम ही ईश्वर है और ईश्वर ही प्रेम है। ऐसी दशामे नेति-नेति ही वेदोके साथ कहना उचित होगा। प्रेमके पारावारका पता लगाना मेरे-से दुर्बल पुरुषके लिए बिलकुल असम्भव है। हाँ, यह ठीक है, लेकिन पिछले ३३ दिनोमे मैंने तुम्हारे और अपने विषयमे काफी सोच-विचार किया और कई छोटी-मोटी बातोंको, जिन्हे पहले न समझता था, अब समझने लगा हूँ। क्या सोचा और क्या विचारा इसको पिछले २९ पत्रोंमे मैंने विस्तारके साथ तुम्हें लिखा है। पर, हाय ! वे पत्र तुम्हारे हाथोमें तो न पहुँचेंगे। मै पहले ही लिख चुका हूँ कि पत्रोंको मैंने इस आशासे नही लिखा था कि, उनपर इस जीवनमे कभी निगाह पडेगी और न यही मुझे विश्वास है कि इस अन्तिम पत्रको भी तुम्हारे हाथोंमे पड़नेका कभी सौभाग्य प्राप्त होगा। फिर, क्यो मैंने पत्र लिखे ? महज इसलिए कि शाम-को जब इन्हे लिखता था, तब रात-दिनकी उलझनसे कुछ-कुछ छुटकारा मिल जाता था। एक और भी कारण था। इसी बहाने अपने दिल-के गुबारोंको आसानीसे निकाल भी लेता था। व्यथाकी बात दूसरेसे कहकर लोग अपने दर्दको हलका कर लेते है। यहाँ मेरे पास कौन था, जिसके कानोंमे मेरी करुण-कहनीका रोना पहुँचता ? और यदि कोई होता भी तो

उससे मैं कहने ही क्यो लगा ! बात तो तुम्हारे-मेरे बीचकी थी । फिर, किसी दूसरेसे कहनेसे लाभ ही क्या था ? कोरी सहानुभूति चाहे वह भले ही दिखा देता, पर बादको मनमे हँसता और कहता कि अच्छे आये यह भी प्रेमके एक नये शिकार । जग-हँसाईसे मैं बेहद डरता हूँ । तुम्हारी बदनामीका भी विचार मेरे ओठोंमे ताला डाल देता । ऐसी दशामे चुपचाप ही सब सहता और दिल विरहकी भयङ्कर ज्वालामे जला करता । पत्र लिखकर कुछ-न-कुछ शान्ति अवश्य मुझे मिल जाती थी । और यदि कुछ न होता तो इतना ही क्या कम था कि इसी बहाने, तुमसे चौबीस घण्टोंमें कुछ देरके लिए बातें कर लेता था, तुम्हारे नामके जापके साथ-साथ तुम्हे खरी-खोटी सुना लेता था ! खफा न होना; प्रेमीकी खरी-खोटी बातें भी सिर्फ मिन्नत-आरजूके अलावा और कुछ नहीं होती । उसके बिगड़नेमे भी दीनताकी पुकार है, रूठनेमे भी शिक्षाकी अदा है ।

खैर, जाने दो इन बातोंको । इनमे क्या धरा है । आज अन्तिम-पत्र लिख रहा हूँ । तुमतक पहुँचे या न पहुँचे, मुझे अब इसकी कुछ परवाह नहीं है । क्यों ? आश्चर्यसे तुम पूछ सकती हो । इसका उत्तर मैं और कुछ न दूँगा । इसी पत्रके ऊपर मैंने किसी अज्ञात कविकी जो पंक्तियाँ लिखी हैं, उन्हींमे मेरा उत्तर तुम्हें मिलेगा । बहुत दिन हुए, जब मैंने इन पंक्तियोंको पहली बार सुना था उस समय मैंने इन्हें अपनी नोट-बुकमे नकल कर लिया था । उसके बाद बरसोंतक उन्हें भूल-सा गया ! जब यहाँ आया तब कुछ किताबें और पुरानी नोट-बुकें अपने साथ लेता आया था । उन्हींमेसे प्रात-काल कुछ भजन या गीत पढा करता था । एक दिन अकस्मात् इस गीतपर नजर पड़ गई । उस दिनसे इसीको दोहराने लगा । इसकी ध्वनि मेरे कानोंमें समा-सी गई और मैं जहाँ अँधेरेमें भटक रहा था, वहाँ एका-एक प्रकाश-सा फैलने लगा । तुम्हारी ओरसे जो शङ्काएँ मेरे हृदयमें बहुत दिनोंसे उछल-कूद मचातीं और व्यर्थमें परेशान किये रहती थीं, उनका भी जवाब

इस गीतसे मुझे मिला। फिर क्या था ? यही गीत मेरी गीता बन गई और मौके-बे-मौके इसीके पदोको गुनगुनाया करता था। परन्तु मैंने इसमे कुछ उलट-फेर कर लिया था थोडेसे शब्द बदल दिये। अज्ञात कविसे अपनी इस धृष्टताके लिए मै माफी चाहता हूँ। जो रूपान्तर मैने इस गीतका किया है, उसे तुम्हारे विनोदके लिए नीचे लिखता हूँ :—

"मै ढूँढ़ थका हूँ बनमे । तुम छिपी छली हो मनमे ।।
मैं विरह-गीत तज दूँगा । बिखरे आँसू गूथूँगा ।।
राधाके प्रेम-मिलनमे । फिर अब न थकूँगा बनमे ।।
मै मग क्यो अधिक निहारूँ । तमकी ठोकरसे हारूँ ।।
तुम तो हो मेरे मनमे । क्यो ढूँढ़ थकूँ मै बनमे ।।"

दुनियामे इससे कहीं सरस और मर्मस्पर्शी गीत है। इससे कही अच्छे गीत तुमने और मैने अपने जीवनमे एक बार नहीं, अनेक बार सुने है। लेकिन अवसरने इस गीतको मेरी निगाहमे अनमोल बना दिया। इसलिए मुझे तो बहुत ही प्यारा मालूम होता है। मनमें रमती है जो देवी, उसको बनमे ढूँढने जाना और व्यर्थकी तालाशमें थकना कहाँ की बुद्धिमत्ता है ? सचमुच, तुम्हारी मूर्तिने तो मेरे हृदयमे अपना सिहासन जमाया है। पागल ही तो था कि तुमसे भागकर यहाँ जङ्गलमे तुम्हे ढूँढ रहा था। 'मै ढूँढ थका हूँ बन मे।' और तुम विराजमान थीं मेरे मनमें। कितनी छलिया निकली ? कितना निठुर कपट किया ? या दोप मेरा ही था कि मैने अपनी भूल इतने दिनोंके बाद पकड़ पाई। प्रेमको कवियोंकी कल्पनाने आँखोसे वञ्चित रक्खा है। मै भी प्रेममे अन्धा हो गया था। इसीलिए सत्यसे इतनी दूर भटक गया। खैर, भला हो उस कविका, जिसने मेरी मरी हुई आशाओंको फिरसे हरा-भरा कर दिया। बनमें आया था मनके मैलको टटोलने। मनका मैल धुला नहीं कि तुम मुझे मनके अन्दर ही मिल गईं। और क्या श्रीगौरीका सीताजीको यह वरदान कभी असत्य हो सकता है—"जिहिकर

जिहिपर सत्य सनेहू। सो तिहि मिलै न कछु सन्देहू।" प्रेमकी अजेय शक्तिके सामने क्या सम्भव नहीं है? इसके प्रभावसे तो नन्ददासके शब्दोंमें—

"सिला सलिल ह्वै चली सलिल ह्वै रह्यौ सिला पुनि।"

पाषाण भी पिघलकर वह निकलता है और पानी भी पथरा जाता है—यदि प्रेम सच्चा हो। फिर, क्यों इधर-उधर मारा-मारा भटकता फिरूँ? तुम्हारे द्वारपर धूनी रमा चिमटा न गाड़ूँ? इस दृष्टिसे मेरा तुम्हें छोड़कर यहाँ आना सरासर भूल ही थी। लेकिन नहीं, इस अनुभवका अनमोल मोल है क्योंकि इस गूढ सत्यको जितनी आसानीसे अब मैं समझ सका हूँ, उतनी आसानीसे तब न समझ सका था और न तुम्हारे पास ठहरकर ही दिनरातके झमेलोंमें आत्म-निरीक्षणका काफी मौका मिलता कि मैं अपने-आपको पहिचानता या तुम्हारे प्रेमके सच्चे स्वरूपको जान पाता।

मैं किस परिणामपर इतने दिनोंकी तपश्चर्याके बाद आया हूँ, सो भी तुम्हें एक बङ्गाली कविकी नीचे दी हुई पंक्तियोंमें व्यक्त ही क्यों न कर दूँ—

"सती असती, तोमाके विदित
भालो मन्दो जानी नाई।
कहे चण्डीदास, पाप-पुण्य सम,
युगल चरन मानी॥"

ठीक है, मुझे सती समझो, असती समझो, यह तुम्हारी मर्जीपर निर्भर है; मुझे तो अब इस प्रेमके प्रभावके कारण इतनी बुद्धि रही नहीं कि मैं स्वयम् भले-बुरेके भेद-भावको समझ सकूँ। तुम्हारे चरणोंको पकड़कर मैं तो अब बैठा हूँ। यदि जो कुछ मैं कर रहा हूँ, वह पाप है तो भी वह पाप मेरे लिए पुण्यहीके समान है। प्रेमकी धारामें अपवित्र भी पवित्र हो जाता है, यदि लगन सच्ची हो, यदि उसमें तन्मयता हो और साथ ही यदि उसमें कामुकताकी दुर्गन्धि न लिपटी हो। मैंने अपने हृदयको खब अच्छी तरहसे टटोला है और मैं बलपूर्वक अब यह कहनेका

दावा करता हूँ कि कामुकताका मेरे प्रेममें नामोनिशान भी नही है। त्याग ही प्रेमकी कसौटी है और तुम्हारे हितमें मै सर्वस्वको त्यागनेके लिए तैयार हूँ। कामना भी मुझे किसी बातकी नहीं है—सिर्फ एक ही बातकी कामना है और वह है, तुम्हे सुखी बनानेकी अभिलाषा। जिसमे तुम्हारा हित हो, जिसमें तुम्हारी बात बने, जिससे तुम सुखी हो, वही मै करूँगा, उसीमें मैं अपना सुख समझूँगा। मेरे अलग रहनेहीमें यदि तुम्हारा सुख सम्भव है, तो राधे, मैं वह भी करनेको तैयार हूँ। प्रेम किया : फिर आगा-पीछा देखनेकी कौन-सी बात? उसकी पुनीत पुकारसे आनाकानी यदि कोई करना भी चाहे तो कैसे कर सकता है? 'प्राणन बाजी राखिए, हार होय या जीत।'

आओ, चलते-चलते तुम्हारे साथ मेरा जो सम्बन्ध है, उस पर एक सरसरी नजर तो दौड़ा लें।

तुम्हारे साथ मेरा सात्विक सम्बन्ध है। मै उसे प्रकट रूपमें देखना चाहता हूँ। तुम उसे गुप्त ही रखना चाहती हो। तुम्हे सूरदास-से अनुभवी कविके वचनमें कुछ भी विश्वास नही है कि 'दुरै न प्रेम अरु सुगन्धिकी चोरी।' तुम समझती हो कि अभी कुछ दिनोतक यह प्रेम-कथा गुप्त ही रहे। घरवाले भी न जानें। लेकिन जीवनमे सचाई और सफाईसे अच्छी नीति और कोई नही है। लाख मैं सिर धुन चुका, पर तुमने एक न सुनी। खैर, जैसी तुम्हारी इच्छा। जो चाहो वही होगा। मै अपनी जबान न खोलूँगा. परन्तु क्या तुम इस चोरीको बहुत दिनोतक छिपा सकोगी? क्या अभी तुम्हारी बातों और बातोसे भी बढकर तुम्हारी हरकतोसे लोगोंमें इस सम्बन्धमें कानाफूसी नही जारी है? चबाइनोंमें चर्चा तुमने नही सुनी? फिर तुम्हीं बताओ, उस रहस्यको रहस्य कहना कहाँकी बुद्धिमानी है, जिसका भण्डा रोज ही सैकडो जबानोंसे फूटता रहता है? तुम सरासर अपने आपको धोखा देती हो कि जो मैं करूँ उसे खुदा भी नही जानता। खुदा को कौन कहे, तुम्हारे पडोसीतक

तो तुम्हारे नेहकी बाबत आपसमें कानाफूसी करने लगे है। परन्तु मुझे न तो इसका भय है, और न इसकी चिन्ता। तुम्हारा प्रेम कोई ऐसी-वैसी चीज नहीं है, जिसको पाकर मैं अपनेको इन्द्रसे अधिक सौभाग्यशाली न समझूँ। फिर उसे छिपानेको मुझे क्या जरूरत? कहती हो कि अभी थोड़े दिनोंतक उसे अप्रकट ही रहने दो। आज्ञा शिरोधार्य है, परन्तु उसका अर्थ होगा कि मै तुमसे कोसों दूर रहूँ। है स्वीकार? स्वीकार न होता तो मुझे अपने पाससे खदेड़ ही क्यों देतीं?

दूर तो रहूँगा, पर क्या इसके कारण तुम मुझे भूल न जाओगी? कहते है कि 'आँखिन देखे चेतना, मुख देखे व्यवहार।' यदि यह सत्य है और इस बातका खतरा है कि तुमसे अगर मैं बराबर न मिलता रहा तो तुम मुझे भुला दोगी—यदि यह सत्य है तो फिर मेरा दूर रहना और भी अधिक आवश्यक है। सच्चा प्रेम घटता नहीं, उल्टे बढता है, यदि प्रेमीकी गैरहाजिरीका सबब उसकी लापरवाहीके वजहसे नहीं, किन्तु प्रेमिकाकी हित-चिन्तनाकी वजहसे हो। मैं तुम्हारी कीर्तिको सदा उज्ज्वल देखना चाहता हूँ। तुमने एक बार मुझसे कहा था कि यदि मान न रहा तो मर जाना अच्छा है। ऐसी दशामें तुम्हारे प्रेमीका कर्तव्य और उसका धर्म यही सीख देगा कि मैं तुमसे दूर ही रहूँ, ताकि पड़ोसियोंकी आँखोंमें हम दोनों खटकने न लगें। काश्मीरकी बात दूसरी थी। अब तुम अपने घरपर हो। तुम्हारे साथ जो नौकर-नौकरानियाँ पहाड़पर गये थे, उनमें हम दोनोंके प्रेमकी बाबत काफी चहल-पहल मची थी। अपने प्रेमके आवेशमें, मदके उद्रेकमें, तुमने उधर ध्यान भी न दिया था। देखा भी तो परवा नहीं। सुनीको अनसुनी कर गईं। घर लौटकर यह निश्चित है, वे बिटियाके प्रेमकी कहानी काफी नमक-मिर्च लगाकर दूसरोंसे कहेंगी। उसपर यदि मैं भी तुम्हारे घर जाऊं तो फिर किसी दूसरे प्रमाण की जरूरत ही न रह जायगी। इस बातकी सचाईको साबित करनेके लिए कि हम दोनों अब ऐसे पुनीत पाशमें बंध गये हैं कि

मृत्युके अलावा कोई दूसरी शक्ति उसे खोलनेमे समर्थ नहीं हो सकती। फिर, तुम्हारी सहेलियाँ क्यो चुप बैठने लगी ? अतएव, तुम्हारी आज्ञाके पालनही का यह पहला उपहार मिल रहा है कि मै तुमसे दूर रहूँ। जब प्रेमका वाग्दान न हुआ था, तब तो मै तुम्हारे पास महीनो रह सकता था और अब आज, जब संसारमें सबसे अधिक मैं तुम्हारे करीब हूँ, तब विवश होकर मुझे खुद ही तुमसे दूर रहना पड रहा है। बलिहारी है इस प्रेमकी, जिसके राज्यमे मुझे देश निकालेकी यह आज्ञा मिल रही है! भगवान् तुम्हारा भला करें! इससे अधिक और मै कही क्या सकता हूँ ? फिर भी यही कहूँगा कि "दूरै न प्रेम अरु सुगन्धिकी चोरी।"

सचमुच, पागल हो गया हूँ। देखो न, कैसी बातें कर रहा हूँ। आया हूँ तुमसे लडकर, और बातें ऐसी करता हूँ कि मानो दोनोमे पहलेहीका-सा प्रेम मौजूद है। आशा भी खूब छलना जानती है। ऊपर जो कुछ मिलने-न-मिलनेके सम्बन्धमे मैंने लिखा है, उससे तो यही टपकता है कि हम दोनोमें कोई अन्तर पडा ही नहीं। कितनी घातक व्यञ्जना है, आशाका कैसा भुलावा है। स्वप्नको भी कितनी जल्दीमें मै सत्य समझ बैठता हूँ। असलियत तो यह है कि तुमने मुझे ठुकरा दिया, अपने पाससे निकाल भगाया। तरह-तरहके झूठे लाञ्छन लगाये। विकल होकर मैं महीनेसे अधिक वहाँपर पडा-पडा तडपा और जमीनको अपने गर्म आँसुओसे सींचता रहा। मेरे पास कोई दूसरा चारा न था। बेचारी वेदना करुणासे दुखित होकर मेरे पास बैठी-बैठी रोती रही और सहानुभूतिसे मेरी संगिनी बनकर मेरा दुःख उसने बँटाया। मेरी इस दीन दशापर तुम्हे न तो तरस आया और न तो दयासे तुम पिघलीं। वेदना रोई भी, साथ और पास रही भी। तुम्हारे स्थानको उसने पूरा किया। कहो, इसका हृदय अधिक कोमल है या उसका ?

याद है, तुमने मेरे ऊपर क्या इलजाम लगाया था ? तुमने कहा था कि मैं वासनाका गुलाम हूँ और प्रेमका ढोंग रचता हूँ। और पिछले तीन

पत्रोंमें मै वासना के विषयमे अपने विचारोंको स्पष्ट रूपसे प्रकट कर चुका हूँ। मुझमे वासना है। पर वासना होती किसमें नहीं ? कामुकताको मै वासना नहीं कहता। मैं न विरक्त बननेका दम्भ ही रचता हूँ। मे तुम्हारा प्रेमी हूँ। प्रेममें सौदा नही और प्रेममे तन और मनका भेद नहीं। जैसा मै कह चुका हूँ, मै तो प्रेमके माध्यमिक पन्थका पन्थी हूँ—इसी पथका पथिक हूँ। मैं न तो कुत्ता-पन्थी हूँ और न हिजड़ा-पन्थी। तनसे मुझे न घृणा है और न मैं उसे लज्जाकी वस्तु ही समझता हूँ। हाँ, मनका लाभी नहीं और न हाड-मासकी दूकानपर उसका आजतक कभी सौदा ही किया। शुद्ध निष्ठा और भक्तिसे मैने जिस देवीके चरणोमें मन अर्पित किया, उसीका सदाके लिए न केवल मनहीसे, किन्तु तन-मनसे हो गया। पतिव्रतका हमारा आदर्श भी तो यही है।

× × ×

मैने तुम्हे जो अन्तिम पत्र लिखना शुरू किया था वह कई कारणोसे अधूरा ही रह गया था, उसीकी पूर्ति करता हूँ। अन्तिम पंक्तिमे मैने ज्यो ही लिखा कि "मैंने जिस देवीको अपना मन दिया है, उसीको 'तन' भी अर्पित करता हूँ", त्यो ही, दो पुरानी बातें फिरसे बरबस जाग उठी, जिनके कारण तुम मुझसे रूठी थीं। मुझसे तुम्हारी लडाई इसी 'तन' शब्दके ऊपर हुई थी। तुम चाहती हो कि तुम तन दूसरेको दो और मन मुझे, क्योकि मन बरबस तुम्हारे काबूसे बेकाबू हो गया और उसे यदि वापिस लेना भी चाहो तो नही ले सकती हो। तुम्हारे विचारसे, प्रेमकी पवित्रताके लिए यह जरूरी है कि परस्परका सम्बन्ध एकदम निरिन्द्रिय हो—ऐसा सम्बन्ध हो, जिसमे शरीरका नाम भी न आने पाये। दो आत्माओंका सम्मिलन, मै भी मानता हूँ, सच्चे प्रेमका नाम है। मैं यह जानता हूँ कि संसारमे इन्द्रियलो-लुपोंने इन्द्रियोकी उपासनाहीको प्रेमके पवित्र नामसे पुकारा है। परन्तु आत्मा तो शरीरसे भिन्न है। क्या तुम या मै नही देखता हूँ कि दुनियामें कितनी

अशान्ति और कितना भीषण कलह फैल रहा है ? आजके दो प्रेमी, कलके प्राणोंके प्यारे दुश्मन हो जाते। जहाँ कल दो व्यक्ति एक दूसरेको बिना देखे जीवित नही रह सकते थे, वहाँ आज वे हो एक दूसरेका नाम नही सुनना चाहते। इसका कारण सिर्फ यही है कि अधिकाश लोगोंके विषयमे कामकी तृष्णा, रूप और यौवनकी चाह एकको दूसरेकी ओर खीच लाई थी। प्यास थी, पानी मिला, तृप्ति हुई और चाहकी जगहपर विरक्ति या उदासीनताने आकर अड्डा जमा लिया। इसीलिए ऐसे सम्बन्ध कभी स्थायी नही होते। किसीकी जवानी सदा नही टिकती और न किसीका रूप ही एक-सा बना रहता है। जहाँ रूपके जादूने किसीको अपनी ओर खीचा, वहाँ उस रूपके ढलनेपर उस जादूका खिचाव जाता रहता है। बाजारमे बैठनेवाली स्त्रियोकी करुण-कहानी ऐसे सम्बन्धोकी निस्सारता और अनस्थिरताका सबक हमें नित्य पढाती है। इसलिए मैने अपने जीवनमे तनकी पूजाको कभी कुछ भी महत्व नही दिया है, क्योकि उसका निश्चित परिणाम है—असन्तोष, श्रद्धाका ह्रास, विरक्ति और अन्तमे विच्छेद। यह वह पङ्क है, जो हमै न केवल गन्दा करता है, किन्तु जो फिर कभी छुडाये भी नही छूटता। नही-नही, हाड-चामके बाजारमे भूलकर भी मैं कभी सौदा करने नही गया, और न मैं चाहूँगा कि मेरा कोई स्वजन ही इसकी तडक-भडकके भुलावेमे फँस सुखके फेरमें दु:खको अपनी आत्माको बेचकर खरीदे। हिन्दू-सस्कृति और हमारी जातिके आदर्शो के यह बिल्कुल विपरीत है। विवाह-संस्कार दो प्राणियोंका आजन्म मेल हैं—आजन्म ही मेल क्यो—युग-युगान्तरोके लिए अमिट और अटूट बन्धन है। लेकिन उसके असली रूपको हम भूलकर आज-दिन अन्तरकी पूजामे, अनन्त परिवारोकी सुख-शान्तिकी कलहकी ज्वालामें आहुति करते हैं। हमारा विवाह-संस्कार भी क्या खूब ढोग है! संस्कार है या पापाचारका खुला पट्टा ? दो प्राणियोंका मेल है या इन्द्रियोपासनाका एक सरल साधन ? धर्म है या अधर्म ? कन्यादानसे अधिक पवित्र दान संसारमें कोई

नहीं। लेकिन वही दान सच्चा दान है, जिसे कन्या खुद दे। असलमें कन्या-दान था कन्याद्वारा दिया गया दान। वह देती थी अपनी स्वेच्छासे अपने प्रेम और तनका दान। परन्तु अब उसका अर्थ हमारे समाजमे हो गया है कन्याके तनका दान, और दान देनेका अधिकार उस बेचारीके हाथसे छीनकर अपने हाथमे ले लिया है उसके घरवालोने! क्या ढोंग है, क्या ढकोसला, क्या जाल है और कितनी मक्कारी! और सबसे अचरजकी बात तो यह है कि तुम भी इस तरहके सौदेका स्वागत करनेके लिए तैयार हो! इतना ही नहीं, बल्कि जब मैं तुमसे चिरस्थायी आमरण प्रणयकी भिक्षा माँगता हूँ, तब कहती हो कि प्रेम तुमसे करूँगी, लेकिन तन उसका होगा, जिसे घरवाले देनेको कहेंगे। सावित्रीकी कथा तो तुमने कई बार मुझे सुनाई है, दमयन्ती का नाम और कथानक भी तुम्हे मालूम है। श्रीसीता सतीशिरोमणि थीं। उमाकी आराधना हमारे घरोंमें प्रचलित है। तुम्हीं सोचो कि तुम जो करने जा रही हो, क्या वह ठीक है? मेरी बात न मानो, क्याकि स्वार्थके कारण उसमे पक्षपात हो सकता है। परन्तु अपने हृदयसे पूछ देखो। जो वह सलाह दे, उससे तो आनाकानी न करो। मुझे छोड़ना चाहती हो, छोड़ दो। मुझे वही मन्जूर है, जिसमे तुम्हारा हित हो, जिससे तुम्हें सुख मिले। परन्तु, ईश्वरके लिए, विवाहमे संस्कारको सुविधाका सौदा न समझो। यह उस पुरुषके साथ अन्याय और पापाचार होगा, जिसे तुम वरोगी, अपने मनके साथ नहीं; किन्तु मनके विरोध होते हुए महज दूसरोंको खुश करनेके लिए। तुम कुलवती हो, शिक्षिता हो और तुम्हे भले-बुरेका ज्ञान भी है। सोचो तो सही, ऐसे विवाहसे बाजारू सम्बन्ध किस तरहसे अधिक घृणित और त्याज्य है? भेद केवल इतना ही है कि एक स्थायी और दूसरा अस्थायी होता है। परन्तु दोनोंहीकी तहमें अर्थ-लाभ ही प्रेरक भाव होता है। तो फिर क्या हमारा विवाहसंस्कार स्त्रीके लिये रोटी-कपड़े कमानेका एक व्यवसाय-मात्र है? यदि मन मुझे दिया है तो तुम्हें मेरी ही होना चाहिए! नहीं तो

मुझे भूलकर किसी दूसरेको अपने प्रेमके दानसे कृतार्थ करो। मै तुमसे दूर ही रहूँगा; तुम्हे दु ख देने पास भी न फटकूँगा। हाँ, सेवाका अधिकार मैं अवश्य चाहूँगा; परन्तु वह भी एक ही शर्तपर कि मेरे कारण तुम्हें किसी तरहका भी संकोच न हो।

खफा न होना, और न यही समझना कि मैं चिढकर जली-कटी बाते लिख रहा हूँ। किससे चिढ़ूँगा, और किस मुँहसे जली-कटी बातें करूँगा? जो कुछ ऊपर मैने लिखा है वह केवल तुम्हारी हित-चिन्ताके वशमें होकर ही लिखा है, तुम मानो या न मानो। प्रेमको लोग अन्धा कहते है, लेकिन उसके इस अन्धेपनको वह ठीक-ठीक समझ नही पाये है। उनकी बुद्धिमें वह स्वार्थ और वासनासे मदान्ध होकर परहित-अनहितको देखनेकी शक्ति गँवा बैठता है। इसलिए वह उसे अन्धा कहते है। परन्तु वह तो प्रेमका उपहास करना है। यह प्रेम नही—खालिस बुतपरस्ती है, क्षणिक रूप-यौवनको भोगनेकी सर्व-ग्राहिणी लालसा-रूपिणी ज्वाला है। इसीको कामुकताकी मदान्धता समझना चाहिए। सच्चा प्रेमी तो प्रेमिकाके प्रेममे इतना डूब जाता है कि उसे अपना या अपने स्वार्थका कुछ ख्याल भी नही रहता—

"जब मै था तब तुम नहीं, अब तुम हो मै नाहि।
प्रेम-गली अति साँकरी, यामे दो न समाहि॥"

कबीरके दोहेको उलटकर, ऊपरका उद्धृत रूपान्तर जो मैंने दिया है, वही सच्चे प्रेमका असली मन्त्र है। ठीक है, क्योंकि—

"लाली देखन मै गई, मै भी हो गइ लाल।"

क्यो ऐसा होता है? इसलिए कि—

"लाली मेरे लाल की, जहँ देखा तहँ लाल।"

अतएव कबीरके शब्दोंमें सच्चे प्रेमीकी यही चाह रहती है कि वह अपना शीश काटकर प्रेमिकाके चरणोंपर अर्पित करनेके लिए सदा ही तैयार

रहे—तनका शीश नहीं, किन्तु अपने स्वार्थके शीशको जो काट डाले, वही इस पथका पथिक वन सकता है, क्योंकि—

"यह तो घर है प्रेमका, खालाका घर नाहि ।
सीस काटि भुईंमे धरै, तब पैठै घर माहि ॥
सीस काटि भुईंमे धरै, तापर राखै पॉव ।
दास कबीरा यो कहै, ऐसा होय तो आव ॥"

तभी तो मन्सूरने सूलीपरसे चिल्लाकर प्रेमियोंको ललकारा था :—

"चढ़ा मन्सूर सूलीपर, पुकारा इश्कबाजो को ।
यही है बामका जीना, वह आये जिसका जी चाहे ॥"

प्रेम सचमुच अन्धा है। उसे अपने वनने-विगडनेकी कुछ भी चिन्ता नहीं रहती। अपना सर्वस्व लुटानेही मे उसे परामानन्द मिलता है ; अपनेको खोकर ही वह प्रेमिकाके हृदयका अधिकारी वन सकता है। प्रेम जहॉ क्षमाका नाम है, वहॉं वह त्यागकी अन्तरात्मा है। वेदना उसका भाई और संयम उसका सहायक है। करुणा उसकी जननी है। सौन्दर्यका सहचर होते हुए भी, वह आत्म-विस्मृतिका समूर्त अवतार है। वलिदानके लिए अपनेको, अपनी इच्छाओं और कामनाओं, अपने अरमानों और हसरतोंको वह सदा समर्पित करनेकी टोहमे रहता है। उसमे वासना तो केवल इस वातकी बच रहती है कि प्रेमिकाके हितमें कब और कैसे वह अपने आपको मिटा सकता है। 'लल्ला ला' का उसे ज्ञान मरणान्त भी नहीं होता। दिन-रात वह एक ही अक्षर रटा करता है, और वह अक्षर है, 'दद्दा दा'। तभी उसमे तन्मयता और तल्लीनताका होना सम्भव होता है। नहीं तो अधकचरा ही, पथ-भ्रष्ट होनेके बाद, आप कामके पङ्कमे फसकर वह प्रेम, प्रेमिका और अपनी आत्मा-को खो देना है। यही इस पथके पथिकका वाना है, यही सनातनधर्म है, यही

अनुभव-सिद्ध सत्य है। फिर तुम्हे मेरी बातें क्यो अटपटी मालूम हों ? अपने दिलसे तो पूछ देखो। 'अपने हियसे पूछिए, मेरे हियकी बात।'

जाने भी दो। हम दोनोको तो अपने आपसी झगड़ोंको तय करनेके लिए, भगवान्‌ने यदि चाहा तो, हजारो अवसर अभी हाथ लगेंगे। तब आराम से बैठकर इनका निबटारा आसानीसे कर लेंगे। लेकिन इस समय तो कामकी बातें ही मै करना चाहता हूँ। मै चाहता हूँ कि यदि हमदोनोको फिर मिलना है तो पारस्परिक सम्बन्धके मूल सिद्धान्तोको तो समझ लें। यदि तुम्हारी राय इन मामलोमे मेरे मतसे भिन्न है, तो मै अपना ही दुर्भाग्य समझूँगा, तुम्हे दोष न दूँगा। लेकिन यह भी समझ लूँगा कि जीवनमें तुम मेरे साथ कदमपर-कदम बढाना नहीं चाहती हो, किसी दूसरे ही मार्गसे और किसी दूसरेहीके साथ चलना तुम्हे अधिक पसन्द है। मै रोऊँ भले ही, तुम्हे न कोसूँगा और न भला-बुरा ही कहूँगा। यही सोचूँगा कि यही क्या कम सौभाग्यकी बात है कि कुछ क्षणोके लिए हमदोनोकी जीवन-रेखाएँ मिलकर साथ-साथ चलीं। इसीकी स्मृति मुझे अपनी निराशा और विषम वेदनासे टूक-टूक की हुई जिन्दगीको गुजारनेमें ढाढस बँधायेगी और पीड़ामे सुखकी झलक दिखाई देगी। वह पीड़ा भी मुझे प्यारी मालूम होगी, क्योकि उसे तुम्हींसे मैंने पाया होगा। मैं कितना अभागा होऊँगा, यदि मैं तुम्हारे इस उपकारका बदला उपालम्भसे दूँ या इस उपहारको गलेमें पहनकर भी तुम्हारी निन्दा कर कृतघ्नताका भागी बनूँ। फिर, तुम यदि पीड़ा और वेदनाका विष-प्याला पीनेको दोगी तो 'मान' से दोगी और उसे पीकर मैं भी शङ्कर बन जाऊँगा, क्योंकि—

"मान सहित विष खायके, शम्भु भये जगदीश।
बिना मान अमृत पिये, राहु कटायो शीश॥"

याद रखना देवि, 'मान' मे यदि तुम मुझे हटा भी दोगी, किन्तु मनसे नहीं, तो भी मै 'जगदीश' ही बना रहूँगा · पर प्रेमरूपी मानके बिना जिसे

तुम रूप-सुधा पिलाओगी, वह बेचारा राहुकी तरह जीकर भी अधमरा ही घूमेगा। इसीलिए फिर कहता हूँ, जिसे मन दिया उससे मान करना छोड़ दो और मानपूर्वक उसे अपना लो, उसके प्रेमकी प्रार्थनाको अङ्गीकार करनेका परम अनुग्रह करो। मानकी भी हद होती है। वहुत रुला चुकीं, वहुत आजमा भी लिया। मानको भूल जाओ, मनको ओर निहारो। मनका अन्तर निकालकर मेरी विनतीका और अपने हृदयकी गोहारका मान करो। नेहकी नीति वर्तो, अनीतिको छोड़ो, और नरमे जहाँ नारायणकी पूजा करती हो, वहाँ नारायणमें नरका अपमान करना न सीखो। मनुष्य यदि आत्मा है तो उसके तन भी है। न पह विशुद्ध आत्मा है और न निरी हाड़-मासकी लोथ ही है। जैसे सितारमे सङ्गीत और पुष्पमे सुगन्धि है, चाँदमे चाँदनी और दीपमे प्रकाश है, वैसे ही तनमे आत्मा है। दोनोंहीका इस जीवनमे अभिन्न संयोग है और आत्माका आत्मासे पूर्ण सम्मिलन तभी सम्भव है, जब मन और तनके झूठे भेदको भुलाकर दुर्दमनीय उत्कण्ठा दोनोको तन्मयताकी सिद्धिको ओर द्रुत गतिसे वढनेके लिए आकुल कर दे। वियोगकी तीव्रता संयोगकी पूर्णताको सूचित करती है। यदि यह ठीक है तो फिर नाराजी किस वातकी?

वहुतसे लोग निरिन्द्रिय प्रेमका ढोंग रचते हैं। ग्रीसके प्रसिद्ध दार्शनिक प्लैटोने इस तरहकी प्रीतिपर वहुत कुछ लिखा है। इसीलिए इसका नाम प्लैटानिक प्रेम पड़ गया है। लेकिन हमे यह न भूलना चाहिए कि जिस देश और युगमे प्लैटोका जन्म हुआ, उसमें युवकोंके रूप-लावण्यको, युवतियोंके सौन्दर्यसे अधिक महत्त्व दिया जाता था। हिजटा-पन्थियोंकी उसी समयसे संसारमे काफी आवभगत रही है। विशिष्ट आत्माएँ अनादिकालसे मनुष्यके जामेको पापका धाम मानती चली आई हैं। इसीलिए उन्होंने वे उग्र तप निकाले, जिनका हाल पढ़कर रोंगटे आज भी खड़े हो जाते हैं। परन्तु यह कितने अचरजकी वात है कि ऐसे ही पुरुष भगवान्‌की भक्तिमें भी

अग्रगण्य हुए है—उसी भगवान्‌की, जिसने विश्वकी अनन्त सुन्दर विभूतियोंके साथ-साथ नर-तनकी भी रचना की और उसीमें अपने अंशका आत्माके रूपमें निवास कराया। प्रभुकी प्रभुताका बखान करनेवाले ही प्रभुकी बनाई हुई एक वस्तुका इतना घोर अपमान करें और उसपर भी उसकी अनन्त पवित्रता और अभिज्ञताकी दुहाई दे—यह आसानीसे समझमे नही आता। जिन्होने संसारको छोडनेपर अधिक जोर दिया है, उन्हे भी रूप-लावण्यके प्रलोभनका भूत रात-दिन इतना सताता रहा कि वे उससे भागनेहीमें, अपनी सारी शक्तिको खर्च करनेमें लगे रहे।

सच तो यह है कि मनुष्य-तन न पवित्र है और न अपवित्र, जैसे प्रकृतिके सारे पदार्थ न पवित्र और न अपवित्र होते है। उनके उपयोगका ढंग उन्हे पवित्र या अपवित्र कर देता है। कामीका शरीर अपवित्र इसलिए माना गया है कि उसका अनुचित कामोमे उपयोग होता है। लेकिन पतिव्रताके शरीरपर कबीरदासके शब्दोंमे 'मैं तो वारौ रूप करोड' चाहे वह कितना ही मैलाकुचैला क्यो न हो! तन तो उस लोहेकी तरह है, जिसमे पूजाका पानी एक भक्त भरकर अपने आराध्यके चरणोंमें चढाता है। जितनी ही उस भक्तकी श्रद्धा प्रगाढ होगी, उतना ही अधिक वह उसे मॉज-मॉजकर चमकायेगा और उसे शुद्ध रखनेकी चेष्टामे रत होगा। तन मन्दिर है, जिसमे आत्माका निवास है। जितनी ही उच्च और उज्ज्वल आत्मा होगी, उतनी अधिक शुचिता और पवित्रताका उसे ध्यान रहेगा। कौन पूज्यदेवके स्थानको निरन्तर साफ न रखना चाहेगा? स्वस्थ मन और प्रेममे पगी आत्मा जिस तनमें होगी, वही तन कान्ति, शुचिता और निर्मलताका आकर होगा। उसमे वह अपार कान्ति होगी कि देखते ही लोगोंका हृदय उसकी ओर आपसे-आप खिंच जाता है। इसीलिए कामी जहॉ कुत्तापन्थी होता, वहॉ पतिव्रताके शरीरको यदि पापी छू ले तो वह 'भस्म' हो जायगा। लेकिन सतीके तनपर उसके प्रेम-पात्रका अनियन्त्रित अधिकार है।

ऊपर जो मैने कहा है, उससे यह बात तो स्पष्ट है कि शरीरका आत्मा-पर नही, किन्तु आत्माका शरीरपर नियन्त्रण होना आवश्यक है। इसीका नाम संयम है, इसको लोग कायिक शुद्धताके नामसे पुकारते हैं। जिसने प्यार किया, किसीसे नेह लगाया, उसके लिए यह असम्भव है कि वह कुत्ता-पन्थका मुरीद बने। उसके लिए प्रणयका व्रत उस महायज्ञके समान है, जिसमें आत्मा अपने दोषों, कामनाओं और कमजोरियोंकी आहुति चढाता और अपने 'सीस' को काटकर अपने स्वार्थकी बलि देता है। जो इस अग्नि-परीक्षामें पूरा न उतरेगा, वह प्रेमके मन्त्रका न तो अधिकारी है और न उसका प्रीतिके लोक मे प्रवेश करनेका कुछ हक।

मैं न तो कुत्ता-पन्थी हूँ और न हिजड़ा-पन्थी। जैसा मै अपने पहले पत्रोंमे कह चुका हूँ, मैं तो माध्यमिक मार्गका अनुगामी हूँ। न तो मुझे तनसे घृणा है और न मैं मनको तनसे इस जीवनमे भिन्न मानता हूँ। मेरी सम्मति मे जहाँ सच्चा प्रेम है वही सच्चा संयोग है—वही सच्चा विवाह है। जिसे मन दे, उसीको तन दे। दो तनोंका मिलन, मनमें अन्तर होते हुए, आत्माके प्रति विश्वासघात है, अन्तर्ज्योतिका घोर अनादर है। यह विशुद्ध अनाचार है, नग्न व्यभिचार है, आत्माकी हत्या और पापकी अर्चना है। जो इस रास्तेपर चलेगा, वही अपने-आपको इस लोक और परलोकमे दुःख और पश्चात्तापका पाहुन बनायेगा।

हरिद्वार

२३-६ १९२३

मानिनि,

सप्रेम वन्दे। मैंने जो अन्तिम पत्र लिखना शुरू किया था, उसे समाप्त न कर सका, वह अधूरा ही पड़ा रहा। आज कई दिनोंके बाद, उसे पूरा करने बैठा हूँ। कई बार मनमे यह बात आई कि अब और अधिक न

लिखूं। सनक थी लिखने लगा। परन्तु इन पत्रोंके लिखनेसे लाभ हो क्या? *तुम्हारे तो पास ये कभी पहुँचेगे नही। पहुँचे भी तो तुमको इनसे सरोकार ही* क्या? कहती तो हो कि तुम मुझे प्यार करती हो और समय यह दिखा देगा कि तुम्हारा प्यार कितना सच्चा है। होगा, मुझे नही मालूम। मुझे तो सिर्फ इतना ही मालूम है कि जिसे तुम प्यार कहती हो, वह मेरे प्रति तुम्हारे हृदयमें सिर्फ सम्मानका भाव है। तुमने मुझे निठुर भी कहा और देव-देव भी पुकारा। परन्तु क्षमा करना, अभीतक तुम्हे तो यह भी नही मालूम कि प्रेम किस वस्तुका नाम है। उसका ककहरा भी तुमने नही पढ़ा। ककहरा तो दूरकी बात है। अ आ इ ई तकका तुम्हे बोध नही है। खेल-तमाशेका नाम न तो प्रेम है और न किसी व्यक्तिके हृदयके उपहासमे कोई सहृदय क्रीडा या मनोविनोदकी तलाश ही करता है। चोचले करना और दूसरोको सताना प्रेम नहीं, हिसा है; करुणा नही, निर्दयता है; सहानुभूति नही, दूसरेके दु खका अनुभव है। नही, सच्चे प्रेमका अभीतक तुम्हारे हृदयमे उदय नहीं हुआ। मानसिक विनोद और यौवनपर इतराना ही अभीतक तुमने जाना है। ईश्वर करे, प्रेमरूपी रोगसे तुम बरसो बची रहो। जिस दिन उसका धावा होगा, उस दिन तुम्हारी यह सारी मस्ती काफूर हो जायगी; और तुम, मेरी ही तरह घायल होकर तडप-तडपकर रोती फिरोगी। तब न तनकी सुध रहेगी और न मनपर काबू। बेचैन, पागल-सी तुम दूसरेकी इच्छापर नाचोगी, उठो-बैठोगी; अपनापन खोकर; दूसरेके रंगमें रँग जाओगी। उसकी खुशीमें तुम्हे स्वर्ग दिखाई देगा; उसके आँसुओपर तुम्हारा खून बहेगा। वही अकेला तुम्हारा विश्व होगा और सारा विश्व उसके सामने तुम्हारी आँखोंसे विलीन हो जायगा। परन्तु घबरानेकी कोई बात नही है। उसे तुम मन दे देना; तन उसे देना जिसके साथ रहनेमें तुम्हें जीवनकी सारी संसारी सुविधाएँ मिल सकें। तनका सौदा ठोंक-बजाकर करना, ताकि पछताना न पडे। *यह न समझो कि मैं तुम्हें शाप दे रहा हूँ या कोसना चाहता हूँ।*

कदापि नहीं । तुमने तो अपने भविष्यका यही चित्र खींच रक्खा है कि 'राजी है हम उसीमे, जिसमे तेरी रजा हो।" प्रेमकी वैरागिन तुम नही बनना चाहती हो और यदि क्षणिक उत्साह या उन्मादमे तुम जोगिया जामा पहन भी लो तो फिर तमाम जिन्दगी अपनी भूलके लिए पछताती फिरोगी। ऐसी दशामे तुम्हें जानते हुए मैं क्यों तुम्हे अस्तुरेकी धारसे भी पतली और कटीली दुर्गम घाटी पार करनेकी सलाह दूँ। जोग रमानेकी कहानी पढ़ना और दो आँसू कमरेमे बैठे-बैठे बहाना एक बात है और खुद जोगी होकर जोग साधना दूसरी बात। दुनियामें एक ही राधा हुई है। नाम तो तुम्हारा भी राधा है, परन्तु उतनी न तो तुम नासमझ हो और न पागल। तुम्हारी बुद्धिमत्ताहीपर तो मैं मुग्ध हूँ। हानि-लाभका जितना खरा हिसाब तुम लगा सकती हो, उतना तो कोई बनिया भी न लगाता होगा। स्थिर-बुद्धिकी संसारको सख्त जरूरत है। खब्तियोंसे कोई क्या आशा कर सकता है? तुम्हारी इसी खूबीपर मै तो दिलोजानसे फिदा हूँ। एक पागल काफी है। तुम भी अगर पागल हो जाओगी तो काम कैसे चलेगा? घरमे एक-आध सरेख भी होना चाहिए। तुम सरेख हो! और मै?—मै तो पागल हूँ, वह दीवाना हूँ, जिसे अपने दीवानेपनका नाज है। मैं इसीमे खुश हूँ, तुमको वही मुबारक हो!

× × ×

मैं कहाँ से कहाँ बहक गया? क्षमा चाहता हूँ। मैं कितना पापी हूँ, कितना नीच, कितना अधम हूँ, कि तुम्हारे प्रेम-दानका इतना अनादर करता हूँ, तुम्हारी बातोंको नहीं पतियाता, तुममे इस तरहसे अविश्वास और अश्रद्धा प्रकट करता हूँ। मैं रोषमें या क्षोभमे इस तरहकी जली-कटी बातें क्यों लिख डालता हूँ, जिसको पढकर मुझे अपने ऊपर खुद ही क्रोध आता है? माफ करना। मेरी मूर्खताको, मेरे खब्तको भूल जाना। मैं विछोहसे पागलहो गया हूँ। मेरी बुद्धि हर गई है। सनकमे बह जाता हूँ। उन्माद ही तो ठहरा।

तुम दयाकी मूर्ति हो, करुणाकी अवतार हो। देखो, तुम्हारे निष्ठुर व्यवहारसे मुझे कितनी गहरी चोट पहुँचती है। रह-रहकर उसकी सुध मुझे टीसा करती है, काँटेकी तरह खटकती है। उसी पीड़ासे जब तकलीफ हदसे अधिक बढ जाती है, तब अनाप-शनाप बकने लगता हूँ। क्षमा करो, क्षमा करो। अब ऐसी भूल कभी न होगी।

मैंने अपने पिछले खतमें 'तन' पर लिखा था। आओ, आज उसी मसले को जहाँ छोड़ा था, वहीसे फिर उठाकर जो कुछ अभी और कहना बाकी है, उसे भी कह सुनाऊँ।

तनपर जो कुछ मैंने लिखा है, उसे देखकर, देवि, यह न समझ बैठना कि मैं 'तनका पुजारी हूँ।' नही, ऐसा नही है। मै कुत्ता-पन्थी' नही। मेरे मनमें, जहाँ तन नगण्य नही है, वहाँ वह प्रेमका प्रधान कारण भी नही है। उसका मान तो इसलिए है कि वह पात्र है उस आत्माका, जिसका मै प्रेमी हूँ। मै अघोरी नही कि शवसे प्रीति करता फिरूँ। रूप भी अनित्य और अस्थायी है। गुलावका फूल प्यारा है, इसलिए जरूर कि उसका रूप आँखोको लुभा लेता है, लेकिन, वास्तवमे, उसकी सुरभि मनको हरती है। यदि ऐसा न होता तो टेसूके फूलको लोग गुलावसे अधिक प्यार करते होते। कञ्चनसे अधिक रत्नकी प्रतिष्ठा है। सुन्दर शरीर तभी सुन्दर होगा जब उसमे सुन्दर आत्मा का वास हो। नही तो यदि कनक-घटमे अमृतके स्थानमें सुरा भरी हो तो कलवरियाको छोड़कर, दूसरी कौन-सी वह जगह है, जहाँके लोग उसे लेनेके लिए आतुर होंगे। इसी तरह, वे लोग भी उसे अपनानेके लिए दौड़ पड़ेंगे, जो उसके सोनेको वेचकर रुपया कमाना चाहते है। समाजमें ऐसे आदमी है, जो नर-तनका क्रय-विक्रय करते फिरते हैं। परन्तु उनके घृणित व्यापारकी न तुम प्रशंसा करती हो और न मै। इसलिए यदि तन नगण्य नही है, तो वह, यथार्थमे, गौण, अति गौण है। प्रेमके जगत्में आत्माहीका आधिपत्य है। दो आत्माओंका संयोग ही नर-योनिमे

परम पवित्र माना गया है। क्योकि इन दो भिन्न जीवोके मिलनसे दोनोको कमी मिट जाती है ; दोनों जो पहले अपूर्ण थे, मिलकर सम्पूर्ण हो जाते है। दोनो एक प्राण होकर जीवनकी सिद्धि लाभ करते है, इस संसारमें अपने आपको सार्थक बनाते है, और जहाॅ पहले खण्डित होनेके कारण वे असमर्थ और अपाहिज थे वहाॅ वे, संयोगके बाद, पूर्ण होकर अपने जीवन-धर्मको निबाहनेके लिए समर्थ और सबल हो जाते हैं। प्रेममे यही तो खूबी है कि दो अनमेल आत्माओंको वह उसी तरह एक रूप और एक रस कर देता, जैसे संसारमे तन-मनका संयोग है। एक होते हुए भी वे दोनो भिन्न है ; और उनकी भिन्नतामे भी एकता है। 'दो तन एक प्राण'की कहावत प्रसिद्ध है। मनुष्य था पशु और पशु आज भी बना है। लेकिन जहाॅ पहले वह निरा पशु था, वहाॅ अब उसमें वही दैवी, वही ईश्वरीय अंश सजग और सचेत हो गया, जो उसको पशुसे देवता बना सकता है। प्रेमहीमें यह अपार शक्ति है कि हममे जो कुछ खोटापन है उसे जला दे और जो कुछ खरा है उसे अधिकाधिक निखारता जाय। मानव-समाजके विकासका यही रहस्य है। माॅको देखो। बच्चेकी रक्षामें वह अपने प्राणोकी परवाह नही करती, यद्यपि प्राणोकी ममताके आगे दुनियाकी सारी चीजोंको आदमी हॅसी-खुशी छोड़नेके लिए तैयार हो जाता है। सावित्रीने इसी तरह अपने प्राणोको जोखिममें डालकर अपने प्रियतमकी जान बचाई थी। अपनी खुदीको भुलाकर, दूसरेके हितमें अपने जीवनकी सफलता, अपना सुख और कल्याण देखना हमें पहले-पहले प्रेम ही सिखाता है।

तुम कहती हो कि इसी प्रेमके कारण अनादि कालसे, स्त्रियोंको पुरुष छलते आए हैं। तुम उन अनेक उदाहरणो को दे सकती हो, जिनसे यह सिद्ध किया जा सकता है कि पुरुषकी नीचताने स्त्रीके प्रेमसे सदा अनुचित लाभ उठाया। स्त्री सचमुच पुरुषकी पशुताका शिकार आज भी बनी हुई है। ऐसी दशामे तुम्हें यदि मेरे प्रेममे अविश्वास है या कभी-कभी उसके बारेमें

तुम्हारे हृदयमे शंका उत्पन्न हो आती हो तो कौन-सी अचरजकी बात है ? जो कुछ तुम कहती हो, वह ठीक है। अपनी महारानीकी बात काटनेकी मुझमे हिम्मत कहाँ ? फिर, तुमसे तो जबान लड़ाना भी नही चाहता। इतनी बे-अदवी मुझसे न होगी। मै मानता हूँ कि पुरुष नीच है, लेकिन उसे नीचता के पङ्कसे उठानेकी शक्ति, स्त्रीको छोडकर और किसमें मिलेगी। दोनो ही प्रकृतिके हाथके रचे हुए खिलौने है। दोनोहीको उसने अपना मतलब पूरा करनेके लिए गढ़ा है। लेकिन गढ़ा है इस खूबीसे कि जबतक दोनो एक न हो, तबतक उसका काम नही चल सकता। इसीलिए उसने एकमें दूसरेके लिए वह कशिश भर दी है कि जबतक वे मिलते नही, तबतक छटपटाते रहते है। इसी कशिश, इसी खिंचाव, इसी आकर्षणको प्रेम या आसक्ति कहते है। यह ठीक है कि स्त्री या पुरुष अपनी अपूर्णताके कारण इसी आसक्तिके फन्देमे फँसकर प्राय अर्थका अनर्थ कर डालते है, जिसकी वजहसे उन्हे अपने प्राणोतकसे भी हाथ धोना पड़ता है। भूल-चूककी माफी प्रकृतिके राज्यमें नहीं मिलती। चूके नहीं कि मारे गए।

इन सबके होते हुए भी, क्या तुम्हे इस बातसे इन्कार है कि स्त्री पुरुषसे भिन्न और बडी है ? पुरुष, एक लेखकके शब्दोंमें, जहाँ विराम चिह है वहाँ स्त्री अल्प-विराम ही है। पुरुष वह पहेली है, जिसका आदि-अन्त सभी को मालूम है। परन्तु स्त्री तो उस पहेलीका नाम है, जिसका कोई उत्तर नहीं। वह सवाल है जिसका कोई जवाब नही, वह समस्या है जिसका कोई समाधान नहीं। नारी एक अज्ञात रहस्य है—वह रहस्य है, जो अज्ञेय और अगम्य है। संसारकी सारी शक्तियोकी जहाँ वह अजस्र स्रोत है, वहाँ उस स्रोततक पहुँचनेवाला आजतक कोई माईका लाल पैदा नहीं हुआ, उसपर अधिकार जमाना दूरकी-बात है। और पुरुष वैसा ही तो होगा, जैसा उसकी जननी और प्रेमिका उसे बनाएगी। अपने बलपर हम कुछ भी तो नहीं कर-धर सकते। क्योंकि तुम्हीं तो हमें पुरुषार्थ देकर पुरुष बना सकती हो,

तुम्हींसे वल पाकर हम बलवान् हो सकते हैं। तुम्ही, माताके रूपमे हमें जीवनका दान देती हो और प्रेयसी बनकर तुम्ही हमे स्वार्थको भुलाकर दूसरेके सुख-दु खके लिए जीना-मरना सिखाती हो। हमारी अपात्रता तुम्हारा कलंक है। हमारी दुर्वलता तुम्हारी देन है। तुम यदि अपने असली स्वरूपको न भूलो और अपात्रोंको उत्साहित करनेकी टेवको छोड़दो, तो देवि, पुरुष अपना कमीनापन छोड दे और स्त्रीकी अनुचित करुणासे उत्तेजित होकर अपने स्वार्थोंकी पूजा करना भूल जाय। तुम्हीं तो हमें स्वर्ग भेजती और तुम्हारी-ही वदौलत हम नरकके अतिथि बन जाते हैं। अपनी इस अगम्य, अपार अज्ञेय शक्तिको यदि तुमने न भुलाया होता तो पुरुष अपनी पशुता और पुरुपताको सदियों पहले त्याग चुका होता।

आत्मसमर्पण प्रेमका परिणाम है। परन्तु, देवि, प्रेमके अभावमें कितनी स्त्रियाँ आत्म-समर्पण करनेसे हिचकती है। तुम भी तो मन एकको देकर भी तनका समर्पण किसी दूसरेको करने जा रही हो, जिसे समर्पणके लिए तुमने नही चुना; बल्कि दूसरे चुन देंगे। ऐसी दशामें यदि कुछ स्त्रियाँ एकसे अधिकको तन देती फिरें तो अचरजकी कौन-सी बात होगी? इससे पुरुषके हौसले वढते और वह नित्य नए शिकारकी खोजमे इधर-उधर व्याकुल घूमा करता है। जब स्त्री अपनी आत्माके खिलाफ दूसरोंके कहनेसे अपने पवित्र तनका सौदा करनेके लिए रजामन्द हो सकती है, तब वह क्षणिक उन्माद या मोहमें गैरोंको भी अपने तनके उपयोगका अवसर प्रदान कर सकती है। दोष स्त्रीका, पर दोषी पुरुष समझा जाय। विगड़ें आप, बिगडनेपर भला-बुरा कहें पुरुषको। यह नीति नही, अनीति है, न्याय नही, अन्याय है, सत्य नहीं, असत्यका समादर है। तुम तो समझदार हो। विचार तो करो कि जो कुछ मैंने ऊपर कहा है, वह ठीक है या गलत। प्रेमकी हत्या स्त्री करती है या पुरुष? यदि स्त्री इस हत्यामे हाथ बँटानेके लिए राजी न हो तो पुरुष बहुत जल्द इस पथसे मुँह फेर चुका होता। सीता और ताराको देख

लो। रावणने लाख कोशिशें की, साम, दाम, दण्ड, भेद, सभी कुछ तो उसने बरता, परन्तु उसकी एक भी चाल न चली। सीताके तन-पर उसीका अधिकार था, जिसे वह मनसे दे चुकी थीं। यदि उन्होंने भी मन एकको दिया होता और तन दूसरेको, तो रावणको निराश न होना पड़ता। ताराकी कहानी मेरी बातकी सत्यताका प्रमाण है। क्या तुमने अपने पास-पड़ोसहीमें किसी ऐसी देवीको नही देखा, जो मनसे तो एकको प्यार करती है, लेकिन तनपर अधिकार दूसरेका है? इसका क्या यह परिणाम नही हुआ कि उनका तन सिर्फ दूसरेका नही रहा—हो गया वह दूसरेसे दूसरोंका भी। यही 'अघटित' घटना हमारे संसारमें नए रूपोंमे रोज ही घटा करती है। इससे तुम लाख इन्कार करो, इन्कार करना भी चाहो तो इन्कार नही कर सकती हो। इस पहलूपर अधिक मै कुछ न लिखूँगा। अपनी गुस्ताखीके लिए मै माफी माँगता हूँ। यदि कोई ऐसी बात कह गया हूँ, जिससे तुम्हे चोट पहुँचे तो क्षमा करना। अप्रिय सत्यके भी कहने और सुननेकी जीवनमें जरूरत होती है। फिर, यदि उसे तुमसे मै न कहूँगा तो दूसरा और कौन कहने आयेगा। तुममें मेरी जो अगाध श्रद्धा है, जो अपार प्रेम है, उसके नाते मुझे—और सिर्फ मुझे ही—इस संसारमे आज यह हक हासिल है कि मै साफ-साफ सब बातोंको तुमसे कह दूँ। तुम भी तो मेरा प्यार करती हो। और तुम्हारे ही मुखारविन्दसे तो मैने यह अटल सत्य सीखा है कि अनन्त प्रेममे अनन्त क्षमा होती है। इसलिए तुम मेरी बेअदबी को देखकर भी अनदेखो कर जाओगी और अपने अनन्त प्रेममें, मुझे अपराधी मानते हुए भी, क्षमाके कणोंसे मेरे दोषोंको धो डालनेकी अनुकम्पा दिखाओगी।

देवि, मानिनि, बहुत मान हो चुका। बहुत रुलाया, बहुत ही सताया। क्या मेरे लिए यह सजा कम है कि इतने दिनोंसे मैं तुम्हारे दर्शनोंसे विमुख हूँ और तुम्हारी रसभरी, सलोनी आँखोंके देखनेके लिए तड़प रहा हूँ। बहुत

हुआ। अब तो पसीजो और दयाकी भीख देकर मुझे निहाल कर दो। तुम्ही बताओ, तुम्हें छोडकर,मैं अब और कहाँ जाऊँ ? तुम्हारा हूँ और तुम्हारा ही सदा रहूँगा। जहाँ कही जाऊँगा, तुम्हारे नामसे विकूँगा।

> सुनिए, बिटपवर, पुहुप तिहारे हम,
> राखिहौ हमै तौ सोभा रावरी बढ़ावैगे।
> तजिहौ हमै तो हू बिलग न मान कछू ;
> जहाँ जहाँ जैहै, तहाँ दूनो जस गावैगे॥
> सुरनि चढ़ैगे, नर-सिरनि चढ़ैगे नित,
> सुकवि 'अनीस' हाट-बाटनि विकावैगे।
> देश मे रहैगे, परदेश मे रहैंगे,
> काहू भेस मे रहैगे, तऊ रावरै कहावैगे॥

ठीक है, देश हो या परदेश हो, जहाँ कही भी मैं रहूँगा, वही तुम्हारा ही कहाऊँगा, और तुम्हारा ही 'दूनो जस गावैगे।' फिर, यह मान किसपर और किस लिए ? दुतकारा, ठुकराया, कठोरसे कठोर बातें सुनाई। लाख माफी माँगी, मिन्नतें-आरजू हर तरहसे कीं, पर किसी बातका कुछ भी असर न हुआ। पत्थरकी मूर्ति बनकर मेरी विनतियोंको सुनी-अनसुनी कर गई। मही·ों ही दूर पडा-पडा तुम्हारे नामका जप करता और तुम्हारे प्रेमकी याद कर किसी तरह अपने बेचैन मनको समझाता रहा हूँ। एक-एक दिन पहाड़से भी भारी मालूम होते थे, परन्तु किसी-न-किसी तरह एक-एक करके वे भी अन्तमे कट ही गए। लेकिन अब तुम्हारे पास जानेकी हिम्मत नहीं होती। जाऊँ तो किस आशा से ? बोलोगी या नही ? देखकर तुम्हे खुशी होगी, या मुँह घुमालोगी ? तुम्हे देखते ही—इतने दिनोके विछुडनके बाद, तुम्हे देखते ही—मेरी क्या दशा होगी। कहीं खुशीसे पागल तो न हो उठूँगा ? अनाप-शनाप कुछ कर तो न

डालूँगा ? क्या कहूँगा, क्या न कहूँगा ? क्या कहना उचित होगा, क्या मुझे करना पड़ेगा ? अपराधी तो मै, दोषी तो मै, फिर कैसे बिना बुलाए तुम्हारे सामने जानेकी मुझे हिम्मत हो ? लाख इच्छा होते हुए भी पैर नही उठाते। दिल चाहता है कि दौड चलूँ, पर पिडुलियाँ भयसे थर-थर काँप उठती हैं। तुम्ही बुलाओ तो आऊँ। अभय-दान दो, प्रेमका फिरसे सन्देश दो, तब मुझे ढाढस बँधेगा। नही तो मरना भला ; परन्तु दोबारा तुम्हारी रुखाईका सामना करना मेरेसे आहत आदमीकी सामर्थ्यके बाहर है। इसीलिए कहता हूँ, बहुत हुआ, बहुत सताया। मान कर चुकी। उसका अब अन्त होना चाहिए। संसारमे और सर्व चोजोका अन्त है, यदि अन्त नहीं है तो तुम्हारे एक मानका। यदि वह अनन्त है तो फिर क्यो पहले यह विश्वास दिलाया था कि मेरे लिए तुम्हारी क्षमा भी अनन्त है ? उस वचनको तो अब पूरा कर दिखाओ। मै इतने दिनोमे मर मिटा, मेरा मान चकनाचूर होकर धूलमे पडा है। तुम्हारे प्रेमका जो गर्व था, वह अब मलीन हो गया। इतनेपर भी 'ना मलीन तेरो मान री !"

मान छोडो, न छोडो, 'तुम्हार मरजी।" मैने तो जिस दिन दिल-बदलौवलकी रस्म अदा की थी, उसी दिन अपने जीवनके सारे दिन भी तुम्हारे चरणोंमे अर्पित कर दिए थे। तुम्हें जब मैंने अपने प्रणयकी अधखिली कली भेंट की थी, तभी उसका फूल और फल भी समर्पित कर दिया था। जीवनको जो आशाएँ, अभिलाषाएँ और आकाक्षाएँ अनन्त धारोसे अनन्त दिशाओंमे बहती, उन सबको उस दिन एक धारमें लाकर एक ही ओर मेने बहा दिया। वे अब न तो फिर कभी विभिन्न धाराएँ हो सकती है, और न उनके बहावकी दिशा ही बदल सकती है। मेरा सब सुख-दु ख तुम्हारे हाथ है। तुम्हारी कृपासे सुखी होऊँ, तुम्हारी अकृपासे रोऊँगा। तुम्हें दुखित देखकर दुखी रहूँगा, और तुम्हारे सुखसे सुखी होऊँगा। अपनाओ तो वाह-वाह, न अपनाओ तो भी वाह-वाह। जीवन में सुखी विरले ही होते है। मनुष्य दु खका कीडा है। फिर मैं

क्यों अपने आपको दुनियाके वाहर समझूँ। तुम्हे प्यार करनेहीमे सुख है। मै अपने धर्मको निबाहूँगा। तुम्हे जो उचित समझ पडे, वह तुम करना।

तुलसी तृन जल कूलकी, निर्धन निपट निकाज।
का लावै, का जाय सँग, बाँह गहेकी लाज॥

तुम्हारा कातर प्रेमी,
—कृष्ण

राधाका एक पत्र कृष्णके नाम

[प्रपक—श्री० पण्डित कृष्णकान्त मालवीय]

[जेलखानेसे आनेके वादमे अस्वस्थताके कारण प्राय घरपर ही रहता हूं। अगर शरीर कुछ अच्छा हुआ तो प्रात काल थोडा-सा टहल लेता हूं। एक रोज टहलता हुआ द्रौपदीघाटकी ओर जा निकला। गङ्गा-तटमे कुछ दूर ही था कि दृष्टि सडकके किनारे पडे एक सुन्दर लिफाफेपर पडी। कौतूहलवश मैंने उसे उठा लिया। लिफाफा खुला था और उसपर किसीका नाम-पता कुछ न था। अन्दर एक पत्र रक्खा हुआ था। चलते-चलते मैंने उसे खोलकर पढना आरम्भ किया। पत्र राधा नामकी किसी प्रेमिकाने अपने कृष्ण नामके प्रेमीको लिखा था। मैंने पत्रका कुछ अंश पढा और सोचने लगा, शायद किसी स्नानार्थिनीका पत्र है असावधानीसे गिर गया है। वेचारीको याद पडेगी तो अवश्य ही ढूंढती आयेगी। असमञ्जसमे पड़ वहीं ठहर गया। जब आध घण्टेतक कोई न आया तो लाचार घर पहुंचकर पत्रको मैंने मेजकी दराजमें डाल दिया।

इस घटनाके कई दिन बाद जब मार्चके 'चॉद' में मैंने 'राधाके नाम कृष्णाका पत्र' छपा देखा तो मुझे उस पत्रका खयाल आया। दराजसे निकालकर पढा तो मेरा कौतूहल और भी बढ गया, क्योंकि पढनेसे स्पष्ट मालूम हुआ कि इसका सम्बन्ध उन्हीं पत्रों से है, जो 'चॉद' मे छपे है। मैने इसलिए यह उचित समझा कि यह भी 'चॉद' मे छप जाये। मुझे आशा है, पत्रकी लेखिका महोदया इसके लिए मुझे क्षमा करेंगी। इसके सिवा उनके पत्रका दूसरा सदुपयोग मैं कर नही सकता था।]

—कृष्णाकान्त, मालवीय

लिखी जायेगी किताब दिलकी तफसीरे बहुत।
होगी ऐ ख्वाबे-जवानी, तेरी ताबीरे बहुत॥

कृष्ण,

काश मै भी तुम्हारी-सी रङ्गीली भाषा लिख सकती। तुमसा ही भाषापर मेरा अधिकार होता। तुम्हारा-सा ही कुबेरके भण्डारके सदृश मेरा भी शब्द-भण्डार होता। क्या रवानी है, गंगाकी धारा-सी भाषा प्रवाहित होती है। कालिन्दीका कलकल नाद कहीं सुनाई नही देता। शब्दोंमें टीसोंकी टीसन है। वेदनाका चीत्कार हृदयको हिला देता है और पढते-पढते ऐसा मालूम होता है कि तुम्हारे बाहुपाश मदान्धतासे आलिंगन करनेको चढते आ रहे हैं। मुझे चाटुकारीकी आदत नहीं। तुम स्वयम् जानते हो मैं सत्य बोलना पसन्द करती हूं। तुमको इस लिए विश्वास होना चाहिए कि तुम्हें खुश करने के लिए या प्रशंसात्मक शब्दोसे तुम्हारे हृदयपर कुछ असर पैदा करनेके लिए यह सब नहीं लिख रही हूँ। मेरे हृदयमे पत्रोंको पढनेपर यही भाव पैदा हुए और इनको तुम्हारे सामने यदि मैं प्रकट न करती तो तुम्हारे साथ अन्याय होता। इसकी भावना से ही कितना कष्ट हो सकता है यह तुम खुद समझ सकते हो। बुरा न

मानना, पत्रोंमें तुमने उतावलेपनमें या पीड़ामें अनेक विरोधात्मक बातें लिख मारी है। साथ ही अगर तुम 'कुत्ता-पन्थी' और 'हिजड़ा-पन्थी' शब्दोंका प्रयोग करते तो कोई हानि न होती। कहाँ 'ठगी सी' और कहाँ 'कुत्ता-पन्थी' और हिजड़ा-पन्थी।' 'कुत्ता-पन्थी' और 'हिजड़ा-पन्थी' के संबधमें मुझे बहुत कुछ कहना है। समयसे इनके सम्बन्धमे अपने विचारोंको प्रटक करूँगी। इस समय इतना ही कहकर सतोष कर लूँगी कि कुत्ते तुमसे और हमसे अच्छे है। वे विशेष अवसर और विशेष स्थितिमें ही कामके शिकार होते है। परन्तु सृष्टिका सिरमौर ३६५ दिनोंमें चौबीसो घण्टे कामसे प्रेरित हुआ करता है। खैर, ये बातें फिर कभी कर लूँगी। इस समय तो तुम्हारे पत्रोंके सम्बन्धमें ही कुछ तुमसे निवेदन कर लूँ।

परसो रात्रिमे गर्मी बहुत थी। मसहरीके पास मच्छरोंकी भनभन सुनकर नींद आनेका नाम नही लेती थी। चाँद अपनी विमल चाँदनी फैलाये संसारको ठण्ढक पहुँचाना चाहता था। चाँदनीकी विमल ज्योतिमे, मालूम नहीं कैसे तुम्हारे पत्रोंका प्रतिबिम्ब छपे हुए रूपमे मेरी नज़रोंके सामने आ गया। मै कुछ विस्मित-सी हो गई। तुम्हारे हृदयमें कौनसे भाव प्रवाहित हो रहे हैं, इसको जाननेका अवसर मुझे मिलेगा, ऐसी मुझे कभी आशा न थी। किन्तु यदि स्त्रियोंका तुमको कुछ भी ज्ञान है, तो तुमको मालूम होना चाहिये कि प्रत्येक स्त्री, जो किसीसे प्रेम करती है, अपने प्रेमीके हृदयके सूक्ष्म-से-सूक्ष्म भावोंको जाननेके लिए लालायित और उत्सुक रहा करती है। बडी उत्सुकता के साथ मैंने तुम्हारी मर्मभेदिनी पंक्तियोंको पढा और मेरे हृदयमे यह आकांक्षा प्रबल हुई कि मै भी अपने पक्षकी बातोंको कम-से-कम तुमको सुनानेकी चेष्टा करूँ। शायद मेरे साथ उदारताके साथ कुछ न्याय कर सको। मुझे तुम जितना कठोर, अन्याय-पथपर आरूढ और विवेकहीन समझते हो उतनी मैं साबित न हूँगी।

मै पहिले ही कह चुकी हूँ कि मुझे तुम-सा लिखना नहीं आता।

लिखनेके लिए कम-से-कम हृदय चाहिए। किन्तु ढूँढ़ती हूँ, प्रयत्न करती हूँ, तब भी वह मुझे ढूँढ़े नही मिलता। जो है भी वह मुफलिसके सदृश है। अगर तुम्हारी भाषामे लिखना चाहूँ, तुम्हारी नकलपर ही उतारू हो जाऊँ तो यह कह सकती हूँ कि मेरा हृदय एक अँधियारा मन्दिर है, जिसमें जीवन नही, जो एक खण्डर है, जहाँ न आरतीकी झलक है और न घण्टेकी गुञ्जार, जहाँ केवल अतीतकालकी पूजाकी स्मृति है और वह भी स्वप्न समान। इसमें न पीड़ित हृदयकी दर्दभरी आह है, न आनन्दसे उल्लसित सङ्गीतका नाद। इसमे केवल एक वीरान-सी गूँज है जिसका मेरे निकट कोई अर्थ नही। यह न जीवनके कोलाहलकी सूचक है, न अमरताके उच्च-स्वरकी। यह एक हँसी है जिसमे आह्लाद नही, एक रोना है, जिसमे आन्तरिक वेदना नही। तुम ही बतलाओ, इस हृदयसे क्या यह कुछ कहने या लिखने लायक है? अब तो इसका मुझे रोना भी नही। मैं ता इतना भी साहस नहो कर सकती कि जबानसे स्वप्नमें भी एक बार यह कह सकूँ कि किसने मेरे हृदयकी यह दशा की। तुम तो पत्र लिखकर अपने दिलको बोध दे सकते हो, कुछ कालके लिए यह तुम्हारे लि मनोरञ्जन हो सकता है। तुम पत्र लिखनेमें लीन हो सकते हो थोडी देरके लिए संसारके काविश और कोफ्तको भुला सकते हो किन्तु यह तो सोचो कि मैं क्या करूँ। पत्र भी लिखने बैठूँ तो कितनी देर लिख सकती हूँ? और अगर कोई पूछ बैठे तो क्य जवाब दे सकती हूँ? कुछ न कहलाओ। तुम्हारी और मेरी भलाई इसीमे है कि मेरी जबानपर ताले पडे रहे और मै लिखना-पढना और बातें कर सकना भी अनन्त कालके लिए भूल जाऊँ।

तुमने लिखा है 'बेचारी वेदना करुणासे दुखित होकर मेरे पास बैठी-बैठी रोती रही और सहानुभूतिसे मेरी सङ्गिनी बनकर मेरा दु ख उसने बटाया।' वेदना मेरी ही सखी या सहेली हो सकती है, कम-से-कम वह है स्त्री ही, मैं न रही तब भी तुम्हारे घावोपर मरहम पट्टी करनेके लिए मेरी कोई बहन

मौजूद ही थी। किन्तु सोचो तो कि मेरे पास कौन है? कौन मेरे दु:खको बटा सकता है और कौन एक मिनटके लिए भी मुझे ढाढस बँधा सकता है? तुम्हारी पुरुष-जातिमे है कोई, जो मेरी सखीको तरह मेरी भी सहायता कर सके?

कृष्ण, तुमने प्रेमके साहित्यका अच्छा अध्ययन किया है, तुम्हारे पास हृदय भी है। प्रेम करनेके ढंग तुमने खूब सीख रक्खे है, किन्तु माफ करना, तुम जानते ही नही कि स्त्री क्या है और उसका प्रेम क्या है। तुमने प्रेमकी बड़ी ही सुन्दर और प्रभावमयी व्याख्या की है। उसके त्यागकी तुमने अच्छी महिमा गाई है। तुमने प्रेमको ही ईश्वर और सर्वेसर्वा समझ रक्खा है। प्रेमको तुमने नेति-नेति कहकर पुकारा है, किन्तु तुमने यह भी कभी सोचा कि प्रेम स्त्रीकी एक क्षीण कलामात्र है। जिसकी एक कलाके सम्बन्धमें तुम्हारी नेति-नेतिकी पुकार है, उस सर्वाङ्गमयी कलाको तुम कैसे समझ सकते हो और तुम स्त्रीको जान ही क्या सकते हो?

मैं पण्डिता नहीं। तुम सैकड़ों नही, तो दस-बीस वर्ष तो मुझे पढ़ा ही सकते हो। यूनीवर्सिटीका द्वार भी मैंने नही देखा। तुम सोचते होगे कैसी मूर्खा है, मुझे लेक्चर सुनाने और उपदेश देने चली है, किन्तु कृष्ण, प्यारे कृष्ण, पण्डित-से-भी-पण्डित पुरुषकी अपेक्षा एक साधारण वेपढी स्त्री भी ऐसे माम-लातको समझनेमे पुरुषोसे आगे बढी होती है। सृष्टिकी स्रष्टा होनेके कारण, साथ ही प्रकृतिके अधिक निकट होनेके कारण स्त्री, पुरुषोकी अपेक्षा प्रकृतिगत मसलोंको खूब समझती है और पुरुषोकी अपेक्षा अधिक अच्छी तरह सम-झती है। मै तो लिख ही चुकी हूँ, मै पण्डिता नहीं, किन्तु स्त्री और स्त्रीके प्रेमके सम्बन्धमे एक अङ्गरेजी लेखकके विचार मै तुमको सुना देना चाहती हूँ। शायद इससे तुम्हे कुछ शान्ति और सन्तोष प्राप्त हो, और शायद कुछ लाभ मुझे भी पहुँच जाय। उसका कहना है "स्त्रीका प्रेम अद्भुत है, आरम्भ में वह इतना क्षुद्र है कि उसकी कोई संज्ञा नहीं, किन्तु अन्त उसका इतना

विशाल है कि जिसका अन्त नही। यह पानीकी उस छोटी बूँदके समान है जो बूँद-बूँदकर पहाड़से टपकती है, किन्तु जो आगे बढकर एक महान् नद बन जाती है। यह वह महान् नद है, जो सुखके दरिया बहाता, इठलाता, थिरिकता, चारो ओर आनन्दकी वर्षा करता, फैलता चला जाता है, जो मनुष्योंके हृदयको आनन्दसे पूर्ण करनेवाले वेडोका वाहक है, जो बीरान मैदानों और जंगलोको रंगबिरंगे सुन्दर सुमनोकी बनस्थली बना देता है और जो उत्सुक किसानोंके लहलहाते खेतोको प्रफुल्लित कर देता है। इसके साथ ही साथ स्त्रीका प्रेम, एक भीषण जल-प्रपात है जो वर्षाके तूफानमें आशाकी क्या-रियोको डुबोकर नष्ट कर देता है, जो विचारके बाँधोको तोड़कर मनुष्यकी पवित्रताके मन्दिरो और धर्मके देवालयोको मिट्टीमे मिला देता है और जो अपने प्रचण्डवेगमे गाँवोके मवेशियो और गरीब किसानोके झोपड़ोको बहाता, नाश करता चला जाता है। स्त्री क्या है, यह कौन कह सकता है, किन्तु यह सत्य प्रतीत होता है कि सृष्टिके आरम्भमे जब अन्तर्यामीने संसारके क्रमका विचार किया, उस समय रचना-क्रमके साँचेमे उसने स्त्री-प्रेमके बीजको डाल दिया, क्योकि यह अपनी विषम और अचिन्तनीय उत्पत्ति और वृद्धिसे समा-नताको जन्म देनेवाला है। यह युद्ध और सन्धि कराता है इस तरहसे भी समानता स्थापित करता है। कभी यह नीचोको अकथनीय आश्चर्यजनक ऊँचाई पर पहुँचा देता है और कभी ऊँचोको धूल-धूसरितकर मिट्टीमें मिला देता है। इसलिए जबतक स्त्री, प्रकृतिकी विस्मयजनक बेटी, संसारमे मौजूद है, पुण्य और पाप अलग-अलग नही उदय हो सकते या उग सकते, क्योंकि स्त्री सदा प्रेममें मदमत्त प्रेमके तरीकोंको लिए, सामने खड़ी रहती है और हमारे भाग्यका निबटारा किया करती है। कभी यह अमृत समान मीठे शब्द-जलको कटुता और जहरके प्यालेमे डाल देती है और कभी इच्छाके हलाहल से जीवनकी स्वच्छ, पवित्र स्वाँसको विषमय कर देती है। बगावत व्यर्थ है, पुरुष जिधर चाहे भागे, हर तरफ उसीका सामना है। स्त्रीकी निर्बलता, उसका प्रेम,

उसकी कोमलता पुरुषकी शक्ति है। उसका साहस, उसका हठ, उसकी विरक्ति, उसकी निडरता पुरुषके विनाशका कारण है, पुरुष उसका है और उसीका होकर रह सकता है। स्त्री आकाशके समान अनन्त, समुद्रके समान गम्भीर, विद्युतके समान चपल और विधिके समान अज्ञात और अज्ञेय है। स्त्रीका ही दूसरा नाम अदृष्ट है। पुरुष, इसलिए स्त्रीसे बचनेका प्रयत्न मत कर, तू जहाँ भी भागकर जायगा, भावीके समान वह तेरे साथ रहेगी और जो कुछ तू निर्माण करेगा, वह उसीका होकर रहेगा।"

तुमने व्यर्थमे ही हम दोनोकी पुरानी कथा लिख डाली। इसके लिखनेसे यदि तुम सब बातोपर विचार कर सको तो शायद भविष्यमे कुछ लाभ ही हो। तुमने पहले ही पत्रमे लिखा है कि 'मैंने तुम्हे अङ्क भरा, श्रद्धा और भक्तिसे तुम्हारे अधरोकी अर्चना की'… … 'तुमने कई बार भागनेकी कोशिश की, लेकिन तुम्हारे हृदय और तुम्हारे पैरोने तुम्हारी एक न सुनी और बरबस तुम मेरे भुज-पाशमे बँधी पड़ी रही।" एक दूसरी जगहपर तुमने लिखा है कि "उसी पगलाहटमें मैं नतमस्तक हो तुम्हारी कलाईको एकाएक चूमने लगा। .. …….. .इसके बाद मैंने फिर तुमसे कर-चुम्बनकी प्रार्थना की, उदारतासे तुमने मुझे बायाँ हाथ दिया, जिसे मैंने सत्कारके साथ, विनम्रताके साथ चूमा था। लेकिन उसके बाद तुम खिच गई। क्यो, मुझे नही मालूम। चोट तो लगी, पर मैंने उस घडीसे फिर अभी सालो तक न वचनसे, न निगाहसे और न किसी चेष्टासे तुम्हे छेड़ा। क्योंकि मैं ऐसे प्रेमका लोभी नही हूँ, जो बरबस बलसे छीना जाय। प्रेमका सौदा खुले बाजार होता है, बरबसताका वहाँ सवाल नही। जिसको जो चाहे दे, न जी चाहे न दे।" एक दूसरे स्थानपर तीसरे पत्रमें तुमने लिखा है—"आँखोमे अप्रसन्नता तो प्रत्यक्ष है, परन्तु उसके पीछे गुप्त मुसकान और निमन्त्रण भी तो साफ-साफ झलक रहे हैं।" मैं अपनी ओरसे कुछ भी नही कहना चाहती, मुझे शिकायत ही नहीं और हो भी

तो मे करने वाली कौन और क्यो करूँ ? पर न्याय और सत्यके नामपर, धर्मके और ईश्वरके नामपर उपर्युक्त उद्धरणोको एक बार नही, दो बार और तीन बार पढकर तुम्ही सोचो कि ये क्या कहते है ?

तुमने, जब अङ्कमे मुझे भरा था, तब क्या तुमने मुझसे अनुमति ली थी, मुझसे आज्ञा माँगी थी और मेरी स्वीकृति पाकर तुमने यह किया था ? तुम कहते हो पगलाहटमें तुमने मेरी कलाई चूम ली थी, तुमने इसके पहले मुझसे आज्ञा तो नही माँगी थी ? तुमको शिकायत यह है कि मै खिंच गई । गोया मै पहले कभी आगे बढी थी । तुम सालभर अलगसे रहे, इशारेसे, कनायेसे या किसी चेष्टासे, तुम कहते हो, मुझे छेड़ा नही—क्या न्याय है, क्या फैसला है, कैसी उदारता है, और क्या प्रेम है ! तुमने एक जगहपर लिखा है—"अपने हियसे पूछिये, मेरे हियकी बात ।" क्या मुझे अधिकार है कि मै यह कह सकूँ कि, 'अपने जियसे जानिए, मेरे जियकी बात ?' तुम शायद चाहते थे कि कि मै तुम्हें पागल भी बनाऊँ, साथ ही तुमसे यह भी कहूँ कि मैं मर रही हूँ, लिल्लाह, मुझे, अपने अङ्कमें भर लो, खुदाके नामपर मुझे चूम लो, मै मरी जा रही हूँ, मिन्नत करती हूँ, प्रार्थना करती हूँ, और तुम्हारे पावो पडती हूँ । कृष्ण, कहते हो "प्रेम सचमुच अन्धा है", पागलपन, अपनेको भूल जाना, अपनी सुध-बुध खो बैठना एक तरहका अन्धापन ही है । मैं भी अन्धी थी और तुम भी अन्धे थे, इसी कारणसे तुम्हारे भुज-पाशसे निकलनेकी कोशिश करनेपर भी मैं निकल न सकी और खड़ी रह गई . किन्तु हाय, यह अन्धापन तुम्हारा बहुत दिनों टिक न सका, तुम्हे दिखाई देने लगा कि मै खिच गई और अपने ही शब्दोमें सालो तक तुमने कोई चेष्टा नहीं की । वाह रे कृष्ण, और इन सब बातोंके होते हुए भी दोषी मैं हूँ । जरूर हूँ, मैं स्त्री हूँ और तुम पुरुष, मेरा दोष जरूर है और इसकी सजा इन घडियोंकी स्मृतिके रूपमें मुझे जीवनभर सहनी पड़ेगी । तुम कहते हो कि "मै ऐसे प्रेमका लोभी नहीं, जो बरबस

वलसे छीना जाय।" ठीक है, तुम वेश्याओ और निम्न श्रेणीकी, सड़कपर वैठनेवालियोका प्रेम चाहते होगे, जो अपना प्रेम लुटाया करती है और उसकी खुले दिलसे वर्षा किया करती है। जो चाहे उसे ले ले। सच कहो, क्या तुम चाहते थे कि मै तुमसे कहती कि मुझे छेडो। मेरे मस्तिष्ककी क्रियाशीलतापर भी कुछ विचार करो, दोषी तो मैं हूँ ही, मुझे तुमने कलङ्कित किया और तुम्हे अव अधिकार है कि जितना दोषारोपण तुम कर सकते हो कर लो, मुझे कोई उज्र नहीं, कोइ गिला नही। सोचो तो कि एक वार, दो वार तुम्हारे स्पर्शका आनन्द प्राप्त करनेके वाद मेरे मस्तिष्कमें किसी तरहके विचारोंका उठना स्वाभाविक था या नहीं, मुझे भविष्यकी चिन्ता करनी चाहिए थी या नहीं ? यह भी सोचो कि क्या सम्भव भी था कि अगर दस सितम्वरको मुझे स्वर्गीय सुख मिला था तो ग्यारहवी सितम्वको मैं दौड़कर तुम्हारे अङ्कमे भर जाती! अपनेको इस तरह खो देनेके कारण क्या किसी तरह का शील-सङ्कोच, नजरका नीची रखना मेरे लिए स्वाभाविक वात न थी ? खिंच गई, क्या मै कोई तलवार थी ? मै खिंच गई थी तो खिंच गई थी, तुम्हारा पागलपन कहाँ चला गया था ? कहलाओ नहीं, कृष्ण!

"तुमने मुझको हाथसे गर खो दिया अच्छा किया। मेरा क्या विगडा, तुम्हारी दिल्लगी जाती रही।"

लो, मेरी एक सहेली आ रही है, मैं तो अपने हृदयके विचारोंको लिख भी नहीं सकती, इसकी भी आजादी नहीं। खैर, खत्म करती हूँ, अधिक कहने-सुनने से लाभ भी क्या है ? ....

तुम्हारी,
नहीं, नहीं,
अपनी राधा

पियकी पाती

(श्री स्वर्गीय पद्मसिंहजी शर्मा)

कर लै चूमि चढ़ाय सिर, उर लगाय भुज भेटि।
लहि पाती पियको लखति, बाँचति, धरति समेटि ॥

❀ ❀ ❀

नैन नीर बरसत देखिबे को तरसत
लागे कामसर सत पीर उर अति की।
पाये न संदेसे ताते अधिक अंदेसे बढ़े
सोचे सुकुमारि पै न कहै मन गति की ॥
ताही समै औचक ही काहू आनि चीठी दीनी
देखत ही 'सेनापति' पाई प्रीति रति की।
माथे लै चढ़ाई, दोऊ दृगनि लगाई, चूमि,
छाती लपटाय राखी पाती प्रानपति की ॥

❀ ❀ ❀

सेनापतिजीने पाती पानेकी भूमिका खूब बढाकर बाँधी है। प्राण-पतिका संदेसा न पानेसे सुकुमारीको अँदेसा (चिन्ता) बढ रहा थी, उसकी आँखोसे नीर बरसता था, इत्यादि। प्राणपतिके पत्र पानेपर इस प्रकारकी हर्षोत्पत्तिका कारण खूब खोलकर कह दिया है, जिससे देखनेवाला समझ जाय कि इस चिट्ठीको यह इतना महत्व क्यों दिया जा रहा है। माथेपर चढाना, दोनों आँखो से लगाना, चूमकर छातीसे लिपटाना, यह सब क्यों हो रहा है! बहुत दिनोंमे काले कोसोंसे कुशल-पत्र आया है इसलिए ऐसा हो रहा है।
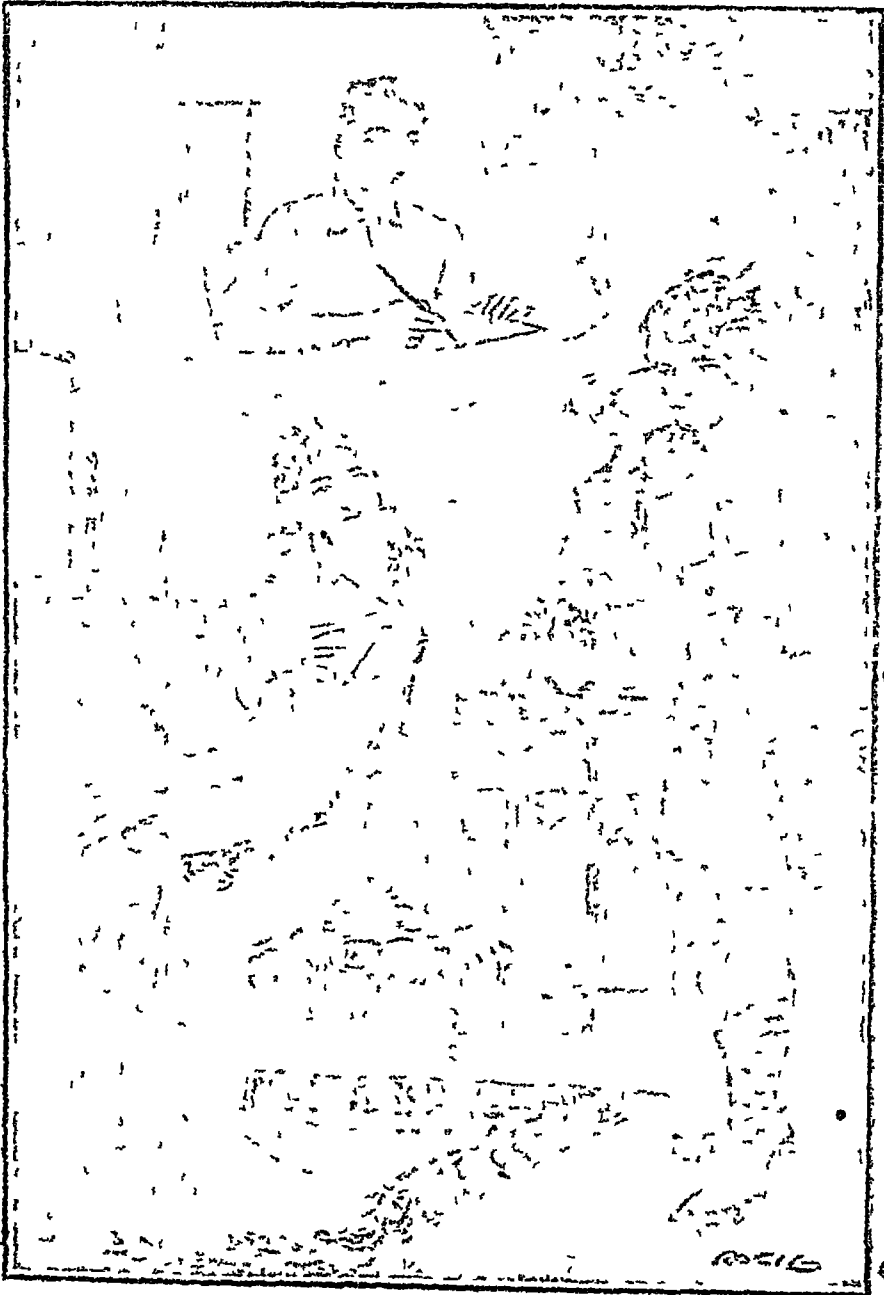
पति वियोगिनी नायिका को पति-प्रेषित-पत्र देकर डाकिया इनाम पा प्रसन्न होरहा है ।

कर लै, चूमि चढ़ाइ सिर, उर लगाइ भुज भेटि ।
लहि पाती पियकी लखति, बाँचति, धरति समेटि ॥

पर बिहारीलालने लम्बे उपाख्यानकी कुछ आवश्यकता नही समझी। यह सारी कथा, पियकी पाती' यह शब्द अपनी ध्वनिद्वारा स्वयं कह रहा है। प्रिय पास न होगा, दूर होगा, तभी पाती भेजेगा। इसकी भी जरूरत नहीं है कि वह इतनी दूर बैठा हो जिससे यथासमय संदेसे न पहुँच सकते हो और तभी चिट्ठीका इस प्रकार आदर किया जाय। प्रियकी प्रेम पत्रिका कहींसे किसी दशामे आवे हर हालतमें वह इसी बरतावकी मुस्तहिक है कि हाथमे लेकर होठोंसे चूमी जाय, सिर चढायी जाय, छातीसे लगायी जाय। भुजाओसे भेटी जाय, आदरसे देखी जाय, उत्सुकतासे बाँची जाय और एहतियातसे गैरोकी नजरसे बचानेको, लपेटकर रक्खी जाय। आखिर अन्तरंग सखीद्वारा प्राप्त प्रियकी "प्रेम-पत्रिका है", कुछ डाकद्वारा पहुँची 'समाचार-पत्रिका' नहीं है। सेनापतिके 'कुशल-पत्र' और बिहारीके 'प्रेम-पत्रमे' बहुत भेद है। बिहारीकी बन्दिश कितनी चुस्त है! पेचमे कसी हुई रुईकी गाँठ है। इसके मुकाबलेमें सेनापतिका कवित्त ढीलमढाला फूला हुआ घासका गट्ठर है!

'तोष' कविने भी पियकी पातीका वर्णन अपने खास ढंगमे खासा किया है—

"पढ़ि न सिराति पाती भूलि-भूलि जाती नेकु (देख)
सखियाँ न पावै निज अँखियाँ दिये रहै।
रूसती रिसाती हँसि - हँसि बतराती चूमि
चाहि - मुसकाती—प्रेम आसव पिये रहै।
कहै कवि 'तोष' जिय जानि दुख काती ताते
छाती की तबीज पिय - पाती को किये रहै,
नेकु न पत्याती दिन राती इहि भाँति प्यारी
बिरह अपाती ताकी काती सी लिये रहै।"
—तोष

———

विरहिणीके पत्र

[कुछ प्राचीन कवियोंकी अनोखी सूझ]

पाती लिखि सुमुखि सुजान पिय गोबिन्दको,
श्रीयुत सलोने स्याम सुखनि सने रहौ।
कहैं पद्माकर तिहारी छेम छिन-छिन,
चाहियतु प्यारे मन मुदिति घने रहौ॥
बिनती इतै है कै हमेस हू मुहै तौ निज,
पाइनकी पूरी परिचारिका गने रहौ।
याही मैं मगन मन मोहन हमारो मन
लगनि लगाय लग मगन बने रहौ॥१॥

× × ×

बाँचत न कोऊ अब वैसियै रहति खाम,
युवती सकल जानि गई गति याकी है।
झूठ लिखिबेकी उन्हैं उपजे न लाज कछु,
जाय कुबजाके बसे निलज तियाकी है॥
दूसरी अवधि 'द्विजदेव' राधिकाके आगे
बाँचै कौन नारि जौन पोढ़ छतियाकी है।
ऐसे ही मुखागर कहो सो कहो ऊधो इहाँ,
उठि गई ब्रजमे प्रतीत पतियाकी है॥२॥

× × ×

आहि कै कराहि काँपि कृशतन बैठी आइ,
चाहति सखीसों कहिबेको पै न कहि जाय।

फेर मसि-भाजन मँगायो लिखिवेको कछू,
चाहत कलम गहिबेको पै न गहि जाय ॥
एतेमे उमगि अँसुवानको प्रवाह आयो,
चाहति है थाह लहिबेको पै न लहि जाय ।
दहि जाय गात बात बूझेते न गहि जाय,
बहि जाय कागज कलम हाथ रहि जाय ॥३॥

× × ×

ऊवत हो डूबत हो डगत हो डोलत हो,
बोलत न काहे प्रीत रीति न रितै चले ।
कहै पदमाकर त्यों उससि उसासनिसो,
आँसू ह्वै अपार आय आँखिन इतै चले ॥
औधिहीके आगम लौं रहते बनै तो रहो,
बीच ही क्यों वैरी बाद वेदना बितै चले ।
एरे मेरे प्रान प्रान-प्यारेकी चलाचलमे,
तब तो चले न अब चाहत कितै चले ॥४॥

आवति चली ही यह विषम बयारी देखि,
दबे - दबे पाँयन किवारन लरजि दै ।
कैलिया कलकिनीको हेरी समुझाय मधु-
माती मधुपालिनी कुचालिनि तरजि दै ॥
आजु ब्रजरानीके वियोगको दिवस तातें,
हरैं - हरैं कीर बकवादिन हरजि दै ।
पी-पीके पुकारिवेकी खोलै ज्यों न जीह न त्यों,
जूहन पपीहनको बावरी बरजि दै ॥५॥

❀ ❀ ❀

कियहु न मैं कबहूँ कलह, गह्यो न कबहूँ मौन।
पिय अब लौं आयो न कत, भयो सुकारण कौन॥

× × ×

वायस राहु भुजंग हर, लिखति तिया तत्काल।
लिखि-लिखि मेटति फिरि लिखति,कारण कौन जमाल॥

❀ ❀ ❀

पाती लिखी अपने करसो दई हे रघुनाथ बोलाइके धावन।
और कह्यो मुख पाठ यौ बेग कृपाकर आइये आवत सावन॥
भाँति अनेकनिके सनमानकै दै बकसीस पठायो बुलावन।
पायो न पौरिलौं जान कहा कहौ बीच ही आयगयो मनभावन॥

× × ×

लावति न अञ्जन मँगावति न मृग-मद,
कालिन्दीके कूल ना तमाल तरे जाति है।
हेरति न घन वन गहन बनक बैनी,
बाँधई रहति नीली सारी ना सोहाति है॥
गोकुल तिहारी यह पाती बाँचि है गो कौन,
याहूमे तो कारे अखरानहीकी पाँति है।
जा दिनतें मिले बागमे री ! गूजरीसो कान्ह,
ता दिनतें कारो रंग हेरे अनखाति है॥

× × ×

लिखन चाहौ मसि बोरि जब, अरुनाई तुव पाँय।
तब लेखनिके शीशको, ईंगुर रँग ह्वै जाय॥

लव-लेटर्स

कर कम्पै, लेखनि डिगै, अंग अंग अकुलाय।
सुधि आए छाती जरै, पाती लिखी न जाइ॥

पगलीका पत्र

[ले० कविवर श्री० अयोध्यासिंहजी उपाध्याय 'हरिऔध']

प्रियतम !

सुना है, तुम मुझे पगली कहते हो। हाँ, मैं पगली हूँ। तुम्हारे सुन्दर मुखड़ेकी पगली हूँ ; तुम्हारे घुँघराले अलकोंकी पगली हूँ, तुम्हारी जादू-भरी आँखोंकी पगली हूँ, तुम्हारी सुधा-भरी मुस्कानकी पगली हूँ, तुम्हारी उस मुरलिकाकी पगली हूं, जो संसारको पागल बना देती है, और पगली हूँ उस पत्थरकी मूर्त्तिकी, जो वास्तवमें अनिर्वचनीय है ; आज दिन जो हमारा जीवन-सर्वस्व है ; जो पत्थर होकर भी मुझपर पसीजती है, जो अकरुण होकर भी मुझपर उस करुण-रसकी वृष्टि करती है, जिसका स्वाद वही जान सकता है, जिसने उस रसको चखा है।

तुम कहोगे, छि इतनी स्वार्थ-परायणता ! पर प्यारे, यह स्वर्थ-परायणता नहीं है, यह सच्चे हृदयका उद्गार है, फफोलोंसे भरे हृदयका आश्वासन है, व्यथित-हृदयकी शान्ति है, आकुलताभरे प्राणका आह्वान है, संसार-वञ्चिताकी करुण-कथा है, मरु-भूमिकी मन्दाकिनी है, और है सर्वस्व-त्यक्ताकी चिर-तृप्ति। मैं उन पागलोंकी बात नहीं कहना चाहती, जो बड़े-बड़े विवाद करेंगे, तर्कोंकी झड़ी लगा देंगे, ग्रन्थपर ग्रन्थ लिख जावेंगे, किन्तु तत्वकी बात आनेपर कहेंगे, तुम बतलाए ही नहीं जा सकते, तुम्हारे विषयमे कुछ कहा ही नहीं जा सकता। मैं तो प्यारे ! तुमको सब जगह पाती हूँ, तुमसे हँसती-बोलती हूँ, तुमसे अपना दुखड़ा कहती हूँ, तुम रीझते हो तो रिझाती हूँ ; रूठते हो तो मनाती हूँ। आज तुम्हे पत्र लिखने बैठी हूँ। तुम कहोगे यह पागलपन ही है। तो क्या हुआ, पागलपन ही सही, पगली तो मै हुई हूँ, अपना जी कैसे हलका करूँ, कोई बहाना चाहिए—

भरे है उसमें जितने भाव !
मलिन है या वे हैं अभिराम !
फूल-सम हैं या कुलिश-समान !
बताऊँ क्या मै तुमको श्याम ?
हृदय मेरा है तेरा धाम !!

एक दिन सखियोने आकर कहा—आज राणा महलोमे आएँगे, बहुत दिन बाद यह सुधा कानोमें पडी, मैं उछल पडी, फूली न समाई। महलमें पहुँची, फूलोंसे सेज सजाई, तरह-तरहके सामान किए। कही गुलाब छिडका, कही फूलोके गुच्छे लटकाए, कही पॉवडे डाले, कही पानदान रक्खा, कहीं इत्रदान। सखियोने कहा—'यह क्या करती हो, हम सब किसलिए हैं ?' मैंने कहा—'तुम सब हमारे लिए हो—राणाके लिए नही। राणाके लिए मै हूँ, ऐसा भाग्य कहॉ कि मैं उनकी कुछ टहल कर सकूँ।' एक दिन राणाके पॉवमे कङ्कडी गड गई, उस दिन जीमें हुआ था कि मैंने अपना कलेजा वहॉ क्यो नही बिछा दिया, आज मै ऐसा अवसर न आने दूँगी। धीरे-धीरे समय बीतने लगा, बहुत देर हो गई, राणा न आए। मैं घबराई, उठ-उठकर राह देखने लगी। जब बहुत उकताई, वीणा लेकर बजाने लगी, फिर गाया —

गए तुम मुझको कैसे भूल !
किस लिए लूँ न कलेजा थाम ?
न बिछुड़ो तुम जीवन-सर्वस्व !
चाहिए मुझे नहीं धन-धाम !
तुम्ही मेरे हो लोक-ललाम !!

गाना समाप्त होते ही राणा आए ! मेरा राम आया; जो मेरे रोम-रोममें समाया है, वह आया ! उनको देख, मैं अपनेको भूल गई ! उस समय मैंने क्या किया क्या नही, कुछ याद नही। वे वोले—'मीरा !' मैंने कहा—'नाथ !'

उन्होने कहा—'आजकल तुमको क्या हो गया है ?' मैंने कहा—'क्या हो गया है ?' उन्होंने कहा—'तुम पगली हो गई हो, लोक-लाज धो वहाई है· कभी गाती हो, कभी नाचती हो, कभी साधुओके संग फिरती हो, कभी ऐसा काम करती हो, जो राज-मर्यादाके अनुकूल नही। मीरा ! सँभलो, हमारा मुँह देखो।' इस समय मै उन्हींका मुँह देख रही थी, सोच रही थी—यही तो मेरे गिरिधर गोपाल है, यही तो मेरे वंशीवाले है। उनके कण्ठमें मुरली-सी माधुरी पाकर मुझको उन्माद हो रहा था, उनके स्वरूपमे प्यारे मुरली-मनोहरका सौन्दर्य देखकर मै आनन्द-समुद्रमे निमग्न हो रही थी। उनकी बात समाप्त होते ही मैने कहा—'मै आपका हो मुँह तो देख रही हूँ ! क्या आपका गुणानुवाद गानेका मेरा अधिकार नही ? आपका गुण गाते-गाते जब मेरा मन नाच उठता है, तब मै नाचने लगती हूँ। आप जो नाच नचाते है, वही नाच तो मैं नाचती हूँ, इसमे मेरा अपराध ? लोक-लाज किसे कहते है, मैं नहीं जानती। जो कार्य आपके प्रेममें बाधा डाले, उससे मैं नाता नहीं रखना चाहती। साधुसन्त आपके ही रूप तो है, उनमे भी तो आप ही बसते है, उनकी सेवा-सुश्रूषा करना आपहीको तो रिझाना है, फिर मै आपको क्यो न रिझाऊँ ? मेरे राजा-महाराजा आप ही तो है—आपकी मर्यादा करनी ही तो राज-मर्यादा है। मै जो कुछ कर रही हूँ, आपकी मर्यादाका महत्व समझकर ही कर रही हूँ, फिर वह अनुकूल क्यो नहीं ?' यह कहते-कहते मै प्रियतमके मुखचन्द्रकी चकोरी बन गई, उनके ध्यानमे मग्न हो गई। जब आँखें खुली तो उस समय महलमे राणा नहीं थे। हृत्तन्त्रीमें यह ध्वनि हुई —

रँग सका मुझे एक ही रंग !
दूसरोसे क्या मुझको काम ?
भलो या बुरी मुझे लो मान !
भले ही लोग करें बदनाम !
रमा है रोम-रोममे राम !!

कुछ दिन वीत गए। एक दिन कुछ सखियाँ आईं। उनका मुख सूखा हुआ था, आँखोमें जल था, बात मुँहसे सीधे नही निकलती थी, उसके कलेजेपर पत्थर रक्खा हुआ था। उनके हाथमें एक सोनेका कटोरा था। उसमे कुछ था। मैंने पूछा—'क्या है?' वे बोल न सकी, उनकी घिग्घी बँध गई, शरीर काँपने लगा। मैंने कहा—'डरकी बात क्या है, लाओ कटोरा मुझको दो। क्या इसे राणाने भेजा है?' एकने कहा—'हाँ!' मैने कहा—इसमें सुधा है, मेरे लिए मेरे मनमोहनने जो भेजा है, वह दूसरी वस्तु होगी, तो भी वह जीवन-धनके कर-कमलोका स्पर्श करके सञ्जीवनी वन गई होगी। मैंने उसको उनके हाथोसे लेकर पान किया। उसमें अलौकिक स्वाद था। सुधा मैंने आज तक पी नही थी, उसकी माधुरीका वर्णन सुना था। उसे पीकर मुझे ज्ञान हुआ कि सुधा कैसी अलौकिक वस्तु है! मै उसे जितना ही पीती थी, मेरा हृदय उतना ही उत्फुल्ल हो रहा था। मैं सव पी गई, फिर भी चाह वनी रह गई कि और होती तो पीती। इस सुधा-पान करनेके वाद ज्ञान हुआ कि वह मद कौनसा है जिसको पानकर आत्मा कुछ औरसे कुछ और हो जाती है। जिस दिन मैंने उसे पान किया, उस दिनसे तुम मेरी आँखोंमे और अधिक समा गए, यह मिट्टीका संसार सोनेका वन गया और मेरा जीवन सार्थक हो गया। उसी दिनसे में वास्तवमें पगली हुई, और प्राय मेरे कण्ठसे यह गान होता रहता है :—

गरल होवेगा सुधा - समान!
सुशीतल, प्रवल - अनलकी दाह!
बनेगी सुमन-सजाई सेज!
विपुल - कण्टक - परिपूरित रात!
हृदयमे उमड़े प्रेम - प्रवाह!!

संसार वुरी जगह है, वहुत कुछ निर्लेप रहनेपर भी उसके पचड़े कुछ

सता ही देते है । एक दिन कुछ कारणोंसे मैं खिन्न हो गई, बड़ी आत्म-ग्लानि हुई, भाव-परिवर्त्तनके लिए गृहोद्यानमे आई । सन्ध्या-समय था, हरे-भरे वृक्ष लहरा रहे थे, फूल फूले हुए थे, चिड़ियाँ गा रही थीं, तितिलियाँ नाच रही थी और भौरे गूँज रहे थे । वायु मन्द-मन्द चलकर तरु-दलोसे खेल रहा था, तितिलियोको प्यार कर रहा था और लताओको गोदमे लेकर खेला रहा था । वृक्षोंका हरा-भरा और आनन्दित भाव देखकर मुझको बड़ा हर्ष हुआ । वे पृथिवीमें गडे हुए थे, फिर भी प्रसन्न-वदन थे । जो दल चाहता उसे दल देते, जो फल चाहता उसे फल देते, जो उनकी छायामे जा वैठता, उसे आराम देते । नाना पक्षी उनकी गोदमे बैठे हुए चहक रहे थे । वे उनको सहारा दे रहे थे, उनके खोतोंकी रक्षा कर रहे थे । कोई ढेला मार जाता, तो भी उनसे कुछ न वोलते , सम्भव होता तो एकाध सुन्दर फल उसको भी दे देते । मैंने जी हो जीमें कहा — धन्य है इनका जीवन ! क्या मनुष्यमें इतनी सहिष्णुता और उदारता भी नही ? फूलोकी ओर दृष्टि गई तो देखा, वे कॉंटोमे रहकर भी विकसित थे । जो रसकी कामना करके उनके पास जाता, वे उसीको थोडा-वहुत रस दे देते, फिर भी निष्काम रहते । हवा पास होकर निकलती तो उसको सुरभित कर देते, झड़ पडते तो पासकी मिट्टीको सुगन्धित वना देते । सव ओर इस प्रकार आनन्दका प्रवाह और औदार्यका विकास देखकर मैं कुछ औरसे और हो गई । मन-ही-मन कुछ लज्जित भी हुई । इतनेमे चन्द्रदेव निकले, धीरे-धीरे ऊपर आए । उनकी चॉदनीसे रात्रिका मुख उज्ज्वल हो गया, वसुधा धुल गई और उसपर वडी सुन्दर सफेद चादर बिछ गई । चन्द्र-देव हॅस रहे थे और सव ओर सुधाकी वर्षा कर रहे थे । उनके इस औदार्य की सीमा नही थी । सब ओर उनकी निराली ज्योति जग रही थी । सव उनके सुधावर्षणसे तृप्त थे । चन्द्रदेव सबको एक ऑखसे देख रहे थे । उनके लिए फूल-कॉंटे, जल-स्थल, तृण-तरु, पशु-पक्षी, कीट-पतङ्ग समान थे वे तुम्हारे ही अङ्ग तो हैं, तुम्हारी ही एक ऑख तो हैं, दो ऑखसे किसीको कैसे देखते ?

मैं देरतक इन दृश्योंको देखती रही। जितना ही उनको देखती, जितना ही उनके विषयमें विचार करती, उतना ही विमुग्ध होती, उतना ही अपनेको भूलती, उतनी ही पगली बनती। जिधर मै आँख उठाती हूँ, उधर ही नाना विभूतियोंके रूपमें तुमको देखकर मुखसे यही निकलता है—'इन आँखिन प्यारे, तिहारे बिना जग दूसरो कोऊ दिखातो नही।" मै पगली कही गई हूँ, तो पगली ही रहूँगी और यही कहती फिरूँगी :—

बताता है खग-वृन्द-कलोल !
सरस-तरु-पुञ्ज प्रसून-मरन्द !
वायु-सञ्चार प्रफुल्ल-मयंक।
हमारा ब्रज-जीवन-नभ-चन्द !
सत्य है, चित है, है आनन्द !!

तुम्हारी,
—पगली मीरा

परलोक-विद्या

[ले० श्री० रामदास गौड़, एम० ए०]

लखनऊ,
१३ पौष, १९८४

प्रियवादिनी विद्यावती,

सादर नमस्ते !

तुम अचरज करती होगी कि मैं चुप क्यों हूँ। परन्तु जानती हो कि जो वज्रपात हमारे ऊपर हुआ है, उसके बाद मैं जीती ही क्यों हूँ ? अबतक निर्लज्ज जीवन बना हुआ है, यही अचरजकी बात है।

अभी कल सोना की माँ आई थी। उससे पता लगा कि तुमने एक नई विद्या सीखी है, जिससे मुझे जीवन-दान मिलनेकी आशा हो गई। वह कहती थी कि तुम प्रेतात्माओंको बुलाती हो, उनसे बातें करती हो। क्यो बहिन, यह कहाँ तक सच है, मुझे तुरत लिखो। क्या तुम उनकी प्रेतात्माओंको बुला सकती हो? क्या प्रेत देखते भी हैं, या केवल बातें होती हैं? अगर बुला सको तो मैं बन्दोबस्त करके दस-पाँच दिनोंके लिए तुम्हारे पास आ जाऊँ।

एक बातकी मुझे भारी शङ्का होती है। मैंने अबतक यही समझा था कि मरनेवालेका कही जन्म हो गया होगा। स्वामीजी तो प्रेत-योनि मानते नही। फिर क्या प्रेत-योनि भी होती है? क्या श्राद्ध भी ठीक है? बहिन, बुरा न मानना। मेरी शङ्का है, तुम समझा सको तो विस्तारसे लिखो।

लल्लू अच्छा है। तुम्हे नमस्ते कहता है। उत्तर शीघ्र देना।

तुम्हारी सहेली,

—चम्पा

काशी,
१५ पौष, १९८४
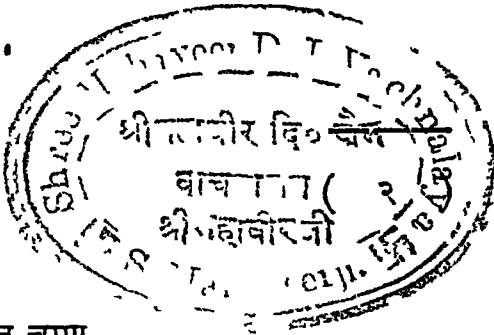
वहिन चम्पा,

नमस्ते!

मैंने तुम्हें तबसे छ: पत्र भेजे थे। उन सबके उत्तरमे तुम्हारा पत्र आज ही मिला है। मैं तुम्हारी मानसिक अवस्था जानती हूँ। तुम्हारी पीडाका कोई इलाज नहीं। वह रोना तो जीवन भरका है। किसीका उसमें अधिकार नहीं। भगवान् तुम्हारे चित्तको शान्ति दें।

सोनाकी माँ ने ठीक कहा था। मै एक नई विद्याका अभ्यास कर रही हूँ। दो महीनेकी बात है, एक दिन जीजाजी एक यन्त्र लाए! उसे वह प्लाञ्चेट

कहते थे। पानके आकारकी एक तख्ती है, जिसमें दो ताँबेके पहिये है, और सिरेके पास एक पेन्सिल है। मैंने उस यन्त्रपर ज्यों ही हाथ रक्खा, त्यो ही चलने लगा। मेरे आश्चर्यका ठिकाना न रहा। अपने आप कुछ देर उसने सीधी रेखाएँ खींची, फिर नाम लिखा—"रामनाथ"। जीजाजी मौजूद थे, उन्होंने कहा कि यह कोई प्रेत है। फिर तो इससे वह प्रश्न करने लगे और यों उत्तर लिखा जाने लगा। थोड़ेसे प्रश्नोत्तर तुम्हारे मनोरञ्जनके लिए देती हूँ।

प्र०—आप कौन हैं ?

उ०—मैं खत्री हूँ।

प्र०—कहाँके रहनेवाले हैं ?

उ०—काशीका।

प्र०—किस मुहल्लेमें ?

उ०—करणघण्टा।

प्र०—मृत्यु कब हुई ?

उ०—दो बरस हुए।

प्र०—तब आप क्या करते थे ?

उ०—एक यन्त्रालयका मैनेजर था।

प्र०—इस समय आप क्या करते है ?

उ०—दूत-कर्म करता हूँ।

प्र०—किस योनिमे हैं ?

उ०—प्रेत-योनिमें।

प्र०—क्या आप कृपाकर सदैव मेरे यहाँ रहा करेंगे और मेरे लिए दूत-कर्म करेंगे ?

उ०—सदा तो नहीं रह सकता, पर जब आप बुलाऐंगे तब आ जाऊँगा। जो हो सकेगा, कर दूँगा।

प्र०—क्या आप कृपाकर तिलक महाराजको बुला देंगे ?

उ०—तिलक महाराज बैकुण्ठमें हैं। मेरी पहुँचसे बाहर हैं, मैं उन्हें बुला नहीं सकता।

प्र०—क्या सचमुच बैकुण्ठ-लोक भी कोई लोक है ?

उ०—अवश्य है।

प्र०—क्या आप वहाँ गए हैं ? आप कैसे जानते हैं ?

उ०—मेरे भाग कहाँ ? मैं वैकुण्ठको उसी तरह जानता हूँ, जैसे आप लन्दनको जानते हैं, पर वहाँ गए नहीं हैं।

प्र०—आप तो दूत हैं, क्या वहाँतक सन्देश पहुँचा सकते हैं ?

उ०—नहीं।

प्र०—आपकी पहुँच कहाँ-कहाँतक है ?

उ०—भूलोक मात्र।

प्र०—आपको और कौन लोक मालूम हैं ?

उ०—पितृ-लोकसे सीधा सम्बन्ध है। इसके सिवा और भी लोक हैं—पितृ-लोक भुवर्लोक है ; स्वर्लोक स्वर्ग या देवलोक है ; महर्लोकमें ही विष्णु, शिव, ब्रह्मा, वैकुण्ठ, गोलोक, साकेतलोक आदि अनेक लोक हैं। इनके सिवा, जन, तप और सत्यलोक भी हैं।

प्र०—पितृलोकसे कैसा सम्बन्ध है ?

उ०—महाशक्तिके द्वारा उनसे हमलोग उसी तरह बातचीत कर लेते हैं, जिस तरह आपलोग नवशक्ति द्वारा हमसे बातचीत करते हैं।

प्र०—नवशक्ति क्या है ?

उ०—यही लिखनेकी रीति।

प्र०—क्या आपलोग भी लिख-पढ़कर काम लेते हैं ?

उ०—हाँ हम भी यन्त्रसे काम लेते हैं।

प्र०—आपका यन्त्र किस आकार-प्रकारका है ?

उ०—समझाना मुश्किल है। हमारे देशकालका परिमाण कुछ भिन्न है।

प्र०—महाशक्तिद्वारा कौन लोग सूचना-विनियम करते हैं ?

उ०—देवदूत !

प्र०—क्या आप पितरोंको देख सकते हैं ?

उ०—नही।

प्र०—क्या पितृगण आपको देखते है।

उ०—हॉ।

प्र०—क्या पितृ-योनि प्रेत-योनिसे अच्छी है ?

उ०—हॉ, प्रेत-योनि कड़ी कैद है, पितृ-योनि सादी कैद।

प्र०—तो क्या प्रेत-शरीर या पितृ-शरीर एक प्रकारका दंड है ?

उ०—अवश्य दंड है। बंदीकी दशा है, मुक्तकी दशा नहीं है !

इस तरहके प्रश्न पहले रामनाथजीसे किए गए, फिर और-और प्रेतोंसे भी किए गए। पीछे पितरोंसे भी यही बातें पूछी गईं। सबके उत्तर एक-से ही मिले।

दो महीनेसे नित्य सैकड़ो बातें पूछी और लिख ली गईं। मैं कहॉतक लिखूॅ। जब आओगी, तब दिखाऊॅगी।

हॉ, यह तो मुझे निश्चय हो गया कि मरनेके वाद तुरन्त ही जन्म लेना आवश्यक नही है। मरनेपर अक्सर लोग प्रेत होते है। प्रेत-योनि छूटती है, तो पितृयोनि मिलती है। निश्चित कालतक पितृ-योनिमे रहकर तव फिर मनुष्ययोनिमें जन्म होता है। कभी-कभी मरते ही दूसरे गर्भमें जाना पड़ता है। अपने-अपने कर्मोंके अनुसार मरनेवालेको चाहे हजारों बरस वाद जन्म लेना पड़े, और चाहे नव ही महीने बाद जन्म लेना पड़े, एक ही लाठीसे सव नही हॉके जाते।

किसीके मानने न माननेसे सच्चाईपर कोई प्रभाव नही पड़ता। मुझे तो दो मासके अनुभवमें सैकड़ों जॉचें ऐसी करनेमें आईं, जिनसे प्रेतका होना पक्की,

पोढो तौरसे सिद्ध हो जाता है। अनेक बातोसे बिना प्रेत माने बनता ही नही। और कोई माने या न माने, देखे या न देखे, बहिन! मैंने तो अनेक बार प्रत्यक्ष देखा है और डर गई हूँ। मैं तो एक स्त्रीका रूप एक महीना हुआ नित्य सन्ध्या को देखती थी, सबलोग मौजूद रहते थे, पर मेरे सिवा और किसीको रूप नही दीखता था। उसके लिए उपाय करने पड़े। मेरे घर तो पुरानी रीतियाँ बरती जाती हैं। पूजा-पाठ, होम-जाप, मन्त्र-जन्त्र, टोटका, श्राद्ध, पिण्डदान---सब कुछ किया जाता है। मैंने तो इन सबसे प्रत्यक्ष लाभ देखा है। बहस दलीलसे चाहे कोई एकके दो या बारह या तीन सौ पैंसठ सूर्य सिद्ध करे, पर सूर्य निकलता ही है और हमे गरमीका अनुभव होता ही है। अनुभवकी कसौटीपर मैंने जो बात कस रक्खी है, उसमें दलीलकी जरूरत मैं नही समझती।

मैंने आपके पूज्य पतिदेवको आरम्भमें ही बुलवाया, पर उन्हे आनेकी आज्ञा नही थी। छ मास बाद आज्ञा मिल सकेगी। इसलिए उनसे बातचीत करनेको चार महीने और प्रतीक्षा करनी पड़ेगी, मुझे आप ही उनसे बहुत-कुछ पूछनेका कुतूहल है। वह कट्टर आर्य-समाजी थे। अब मरनेके बादके अनुभवोंसे उनके विचार किस तरहके रहे, यह जानना बड़े महत्वकी बात है।

सच मानना बहिन, तुम्हारी चिट्ठी पाकर बड़ा आनन्द आया। मैं आप ऊपरकी सब बातें कहनेको अकुला रही थी, परन्तु सङ्कोच यह होता था कि शायद तुम मुझे झूठी और ढोंगी समझो। छातीपरसे एक भारी बोझ हट गया—शंका मिट गई। तुम जितनी बातें चाहो, पूछो। मालूम होगा तो बतानेमे आनाकानी न करूँगी?

लल्लूको मेरी ओरसे प्यार कर देना। यहाँ सब अच्छे है?

तुम्हारी,

——विद्यावती।

---

(३)

लखनऊ,
१८ पौष, १९८४

प्रियवादिनी विद्यावती,
सादर नमस्ते !

तुम्हारा उत्तर मुझे आज ही मिला। मेरी मुरझाई आशालता हरी हो गई। उनसे बातचीत चार महीने बाद भी होगी, तो यह थोड़ी बात नहीं है ! तुम मुझे कट्टर समझती रही हो, परन्तु बहिन, मै अब वह नही रही ! तुम्हारी कट्टर चम्पा तो उनके साथ ही चली गई ! विवाहके पहले तो मैंने बहुत कुछ पढा-लिखा न था ! जिसने चम्पाको दलील सिखाई, जिसने उसे संसारमें मार्ग दिखाया, वह परम गुरु तो चम्पाके प्राण अपने साथ लेता चला गया ! मैं तो जैसी मूढ़ा ब्याहसे पहले थी, वैसी ही—बल्कि उससे भी अधिक—अब हूँ। मैंने बडी भूल की, जो उनके लिए श्राद्ध-दान आदि कुछ न किए ! अब चार महीने बाद उनसे पूछकर सब कुछ करूँगी।

एक बातकी मुझे शङ्का होती है। जब सब कोई प्रेत देख नहीं सकते, तब तो कोई दूसरा प्रेत झूठ नाम-पता देकर ठग सकता है। यह निश्चय कैसे होता है कि कहनेवाला सच ही कह रहा है ! मैंने यह भी बचपनसे सुन रक्खा है कि प्रेत भाँति-भाँतिके रूप धर सकता है। फिर अगर दीखे तो यह कैसे निश्चय किया जाय कि वही है, या सच कह रहा है—किसीने ठगनेका रूप नहीं बनाया है? फिर आज्ञा न मिलनेवाली बात समझमें न आई। अगर प्रेत है तो उसका जेल-दारोगा कौन है? उसे किसकी आज्ञा लेनी पडती है? क्या प्रेतोंका भी कोई हाकिम होता है? यदि हाकिम है तो प्रेतोंका संसार भी अलग होगा, उनके कारबार अलग होंगे। बहिन, तुम्हे ये बातें मालूम हों तो शीघ्र लिखो। मैंने तो आनेका बन्दोबस्त आरम्भ कर दिया था, परन्तु इस चार महीनेकी प्रतीक्षाने रोक दिया। क्या तुम कोई ऐसी युक्ति नहीं पूछ

सकती, जिससे चार महीने पहले उनसे बातचीत हो सके ? वह बन्दी है, तो क्या कोई उपाय उनकी मुक्तिका नहीं हो सकता ? मैं तो अर्द्धाङ्गिनी हूँ। हो सके तो मुझे बताया जाय, करूँ! उत्तर भरसक जल्दी देना। सबको यथायोग्य।

तुम्हारी सहेली,

—चम्पा

———

(४)

बनारस,

२१ पौष, १६८४

वहिन चम्पा,

नमस्ते!

जब तुमने पहला पत्र लिखा, तभी मेरे जीमें आया कि उनके कष्टोंकी बात तुमको लिख दूँ, परन्तु मैं डरी कि तुम्हे व्यर्थ मानसिक कष्ट होगा। तुम्हारे विचार और तरहके है, शायद परिणाम और भी अनिष्ट न हो जाय। परन्तु तुम्हारे अतरसोंके पत्रसे मुझे आशा हो गई कि तुम अवश्य ही उनके उद्धारका यत्न करोगी। परन्तु उसकी बातचीत मै पीछे करूँगी, पहले मैं तुम्हारे प्रश्नोंका क्रमसे उत्तर दूँगी।

यह सच है कि जैसे भले बुरे, खोटे-खरे आदमी होते है, वैसे ही प्रेत भी एक-से-एक धूर्त और एक-से-एक साधु होते है! जब नवशक्तिपर किसी प्रेतको अपना दूत नियुक्त करना होता है, तो उसकी भलमनसाहत, उसकी सच्चरित्रता, उसका सौजन्य परखकी कसौटीपर कस लिया जाता है। फिर कई-कई ऐसे दूतोंसे विविध वर्णनोंको सुनकर जो बातें समानरूपसे ठीक पाई जाती हैं, उनकी जाँच करके निश्चय किया जाता है फिर भी बताई हुई या निश्चय की हुई

बातोमें पीछे जो त्रुटियाँ मिलती है, वह उसी तरह सुधार ली जाती हैं, जिस तरह इतिहासका खोजी सुधार लेता है। जहाॅ बोलने या लिखनेवाले का रूप नही दीखता, वहाॅ उसके बोलने और लिखनेकी विशेषताओसे व्यक्ति की पहचान की जाती है। यह भी सच है कि प्रेत भाॅति-भाॅतिके रूप धर सकता है, परन्तु व्यक्तिके विशेष चिन्होसे इसमें भी छलीकी पोल खुल जाती है। विशेष अङ्गोकी बनावट, दाग, बोलनेका ढङ्ग आदि प्रत्येक व्यक्तिका अलग-अलग होता है। जिनसे घनिष्ठ सम्बन्ध है, वह धूर्तोंके धोखेमें नही आ सकते।

इस मर्त्यलोकमे जिसे कैदकी सजा मिलती है, उससे मिलना कठिन हो जाता है। साधारण कैदमें तीन-तीन मास पर कैदी किसी एक स्वजनसे मिल सकता है। परन्तु जिसे काल-कोठरी मिलती है, उससे कोई मिल नही सकता। काल-कोठरी ही सरीखी, बल्कि उससे भी अधिक दारुण दुखवाली यातनाएँ किसी-किसी प्रेतको मिलती है। ऐसे प्रेतोको फुरसत नही दी जाती। उनके कष्टोंका पता भी नही लगता। वह बतला नही सकते। जब दारुण यातनाके पीछे वह सादी कैदमें आते है, तब उन्हे वह यातना अधिकांश भूल जाती है। सब याद भी रहे तो उसकी कोई उपयोगिता नही। प्रेतोंसे नित-नितकी बातचीत और बहससे यह बातें मालूम हुई है। जैसे इस दुनिया में ज्वर आदि रोगोंसे सभी पीडित होते है, परन्तु पीड़ाका अनुभव सबको अलग-अलग परिमाणमे होता है, हर रोगीका विस्तृत विवरण भी भिन्नता और अपनी-अपनी विशेषता अलग-अलग रखता है, ठीक उसी तरह प्रेतावस्थाके कष्टोंमें भेद है। बहिन, मैंने नरकके सम्बन्धमें बहुत पूछ-ताछ की है। जान पड़ा है कि जो यातनाएँ मिलती हैं, वह अपार हैं। उनकी तुलना इस संसारकी यातनाओंसे नही हो सकती। भिन्न देश-काल और वस्तुका वर्णन करनेमें कहनेवाला अपने जगत्के ही देश-काल, वस्तुकी यत्किञ्चित् समानताओंसे काम लेता है। इसीलिए पुराणोंमें नरकोंका

जो कुछ वर्णन है, वह मर्त्य-लोकसे मिलता-जुलता है। वास्तवमें उन दारुण दु खोंका इन वर्णनोसे ठीक अन्दाजा नही मिलता।

मर्त्य-लोकमें ही देखते हैं कि हम मनचाहा पाप और पुण्य कर सकते हैं; परन्तु अनेक पाप ऐसे हैं कि हाकिमोंके डरसे या समाजकी लाजसे करनेमें हम हिचकिचाते हैं। बहुत सुन्दर इन्द्रायणका फल भी विप होनेके भयसे हम नही खाते। सद्य प्राप्त दु खका भय तो सबके लिए निवारक है। प्रेतोंको समाजकी लाज नही है, क्योंकि वह अपना रूप बहुत छोटा और बहुत भिन्न बना लेते हैं। मनुष्यके बदले पशु, कीट, पतंगे भी बना सकते हैं। उन्हें हाकिमका डर नही है, क्योकि हाकिमोंके लिए भी उनकी मायाका पता लगाना कठिन हो जाता है। परन्तु हाकिम लोग भी प्रेतोंको दिखाई नही देते। उनके प्रेत-दूत भी तरह-तरहके रूप बदलकर, प्रेतोके मित्र बनकर पता लगाते रहते हैं। जिस तरह अपराघी भारी धूर्त हैं, उसी तरह प्रेत-लोकके हाकिमोंके गुप्तचर उनसे कही बढ़े-चढे धूर्त होते हैं। सब लोकोके सबसे बड़े हाकिम, सहार करनेवाले भूतेश्वर भगवान् शङ्कर परमात्माके सगुण रूप है और उनके गणोमें और सेनामे देवताओंकी, ऋषियोकी, गन्धर्वोंकी, यक्षोकी, किन्नरोकी, पितरोको और प्रेतोकी अलग-अलग सेनाएँ है। प्रेत अपनेसे सूक्ष्म लोकोंके प्राणियोंको नही देख सकते, परन्तु सूक्ष्म प्राणी अपनेसे स्थूल प्राणियोको देख सकते है। अब जेलके दारोगाका हाल सुनिए। जेलके दारोगा है भगवान् यमराज। यह भगवान् शङ्करके नायब और नरक-लोक, पितृ-लोक तथा प्रेत-लोकके हाकिम हैं। मृत्युके वही अधिकारी और कर्मके खातेके वही रक्षक हैं। जब किसीके शरीर छूटनेका कारण उपस्थित हो जाता है, तब उनके अदृश्य दूत मनुष्यके लिङ्ग-शरीर या प्रेत-शरीरको उसके स्थूल-शरीरमेंसे अलग करके उनके सामने ले जाते हैं। तेरह दिन तक हवालातमें रखकर प्रेतका पूरा हिसाब-किताब किया जाता है। इस बीच प्रेतको जो कुछ दिया जाता है, उसे मिल सकना

है। तेरह दिन पीछे निश्चय किया हुआ दण्ड मिलता है। जब इस दण्डका आरम्भ होता है, तब कारागारके बाहरवालोंसे सम्बन्ध बिलकुल नही रहता। यह आवश्यक नही कि सभी तेरह दिन हवालातमें रहे। किसी-किसीके लिए तो यह तुरन्त तय हो जाता है कि वह जन्म ले। वह प्रेत-शरीर भी तुरन्त ही छोड़ देते हैं और पितृ-शरीर ही नए गर्भमें प्रवेश करता है।

बहिन चम्पा, मै भी पहले समझती थी कि पुराणोकी कहानियाँ जी बहलानेकी सामग्री है, परन्तु अब मालूम पड़ा कि वह सच्ची बातोंके आधारपर लिखी गई है।

मनुष्यके लिए यह समझ लेना कि बस जितने संसारको मैं जानता हूँ, उसके सिवा सृष्टि है ही नहीं, परमात्माकी मर्यादा और शक्तिको घटा देना है। सच्ची बात यह है कि हमारा संसार कुआँ है और हम उसके मेढक है। भगवान्‌की सृष्टि अपार है, अनन्त है, यह जगत् उसमें एक कणकी भी हैसियत नही रखता। प्रेत-जगत् इस मर्त्य-जगत्‌से कही बड़ा और विस्तीर्ण है। पितृ-लोक उससे भी अधिक विस्तारमें है। यह सब इसी पृथ्वीपर हमारे जगत् में ही है, पर उनके देश-काल और वस्तु तीनो उपादान हमारे उपादानोंसे भिन्न है। इसीलिए हमारे हाथके पास ही पितृ-लोक हैं, परन्तु लाखो मील दूर है। उसके दिन-रात हमसे भिन्न है।

मैंने तुम्हारे पूज्य प्राणेश्वर से बात करनेकी कोशिश की, तो पहले उसी नामके कई प्रेत आए। जब उनके पिताका नाम, पत्नीका नाम, कुलका विवरण आदि पूछा, तब पता लगा कि उसी नामके और सज्जन आए हैं। मेरे प्रेत-दूतने अन्तमे कहा कि पता नही लगता उनका जन्म हो गया है। मैंने कहा—जन्मके सिवा और भी कहीं हो सकते हैं? पितृ-लोकमें तो नही है? स्वर्गमें तो नहीं है? जरा महाशक्तिके सहारे पता लगाना चाहिए।

मेरे दूतोंने कई घण्टेके बाद बताया कि वह ऐसी जगहमे है, जहाँसे आनेकी आज्ञा नहीं है।

प्र०—वह कैसी जगहमे हैं ?

उ०—अच्छी जगहमें नहीं हैं।

प्र०—उसमें क्या बुराई है ?

उ०—कष्टकी जगह है।

प्र०—तो क्या वह कष्टमे हैं ?

उ०—हाँ।

प्र०—क्या उन्हें मदद दी जा सकती है ?

उ०—नहीं।

प्र०—उन्हें श्राद्ध, पिण्ड-दान आदि पहुँच सकता है ?

उ०—नहीं।

प्र०—तो श्राद्ध करनेवाले भूल करते हैं ?

उ०—नहीं, वह तो ठीक करते है। पहले तेरह दिनतक पहुँच सकता है, परन्तु वह तो बीत गए।

प्र०—फिर उन्हे क्या मदद दी जा सकती है ?

उ०—मेरी समझमें कोई मदद नहीं दी जा सकती।

प्र०—क्या उनकी पतिव्रता धर्मपत्नी भी कुछ नही कर सकती ?

उ०—पहले शायद कुछ कर सकतीं, अब न कर सकेंगी।

मेरे मनमे भी शङ्का थी कि बहिन तो प्रेतलोक मानतीं ही नहीं, फिर उनसे क्या कहूँ। मैंने सुना था कि श्रीमद्भागवतको कथा सुननेसे धुन्धकारी नामका प्रेत मुक्त हो गया। जिन पण्डितजीने वह कहानी मैंने छात्रावस्थामें सुनी थी, वह पण्डितजी भी मर गए, आज पाँच बरस हुए। बस, यह बात ध्यानमें आते ही मैंने सोचा कि मैं पण्डितजीको क्यों न बुलाकर उपाय पूछूँ।

मैंने दूसरी बारकी बैठकमें पण्डितजीको बुलवाया। वह बहुत जल्दी आए। उनकी पहचान भी मैंने कर ली। ठीक वही थे। अब मैंने पूछना आरम्भ किया :—

प्र०—पण्डितजी, आप किस योनिमें है ?

उ०—बेटी, मैं तो प्रेत हूँ।

प्र०—क्या आपको भी कोई दण्ड मिला है ?

उ०—हाँ, मैं भी भुगत रहा हूँ।

प्र०—किस पापका, आपको क्या दण्ड मिला है ?

उ०—मैने झगडा करके घर तीन दिनका उपवास किया था, इससे अपनी आत्माको सतानेका दोषी ठहरा। मुझे छः बरस प्रेतावस्था मिली है। भूख लगती है, पर भोजन नही कर सकता, यह दशा एक बरस और रहेगी, तब मैं पितृलोकमें चला जाऊँगा।

प्र०—पण्डितजी आप तो पूजा-पाठ करते थे। आपको सीधे स्वर्ग जाना चाहिए था ?

उ०—स्वर्ग के लिए वहुत पुण्य चाहिए। हॉ, यदि तीन दिनका यह अविहित उपवास मेरे खातेमें न होता तो मै सीधे पितृलोक जाता। मेरे शेष कर्म अच्छे थे।

प्र०—क्या नरक भी होता है ?

उ०—क्यो नही ! परन्तु मुझे उसका अनुभव नही है।

प्र०—क्या भागवतमें लिखी वातें सव सच है ?

उ०—मुझे विश्वास है कि सव सच हैं : परन्तु अनुभव 'केवल प्रेत-शरीरका है ! जो कुछ थोडा प्रेत-वर्णन है सो सच है, परन्तु वह अत्यन्त थोड़ा है।

प्र०—क्या श्रीमद्भागवत सुननेसे प्रेत मुक्त हो जाता है ?

उ०—जरूर ! परन्तु प्रेतको सुनानेका सामर्थ्य भी चाहिए। सभी प्रेत श्रीमद्भागवत नही सुन सकते। राम-राम नही कर सकते। गोकर्ण और धुन्धकारीकी वात न्यारी थी।

प्र०—क्या आपकी सजा घट सकती है, अथवा कोई ऐसा उपाय हो सकता है कि आप मुक्त हो जायें।

उ—अब कुछ नही हो सकता। पत्नी और पुत्र दोनो मेरे पहले ही मर चुके थे। वह जीते भी होते तो उन्हे उपाय कौन बतलाता?

प्र०—अब मै कुछ कर सकती हूँ?

उ०—नहीं, पुत्र, पत्नी या गुरुके सिवा कोई उद्धार नही कर सकता।

प्र०—अच्छा, यह लोग मौजूद होते और मै आपसे पूछकर उन्हे बता सकती तो क्या बताती?

उ०—जानकर क्या करोगी?

प्र०—उपकार।

उ०—अच्छा उपकार करोगी तो मै बताऊँगा। घोर-से-घोर यम-यातना भोगनेवाले प्राणीकी पतिव्रता पत्नी या परमात्माका भक्त पुत्र उसको बैकुण्ठ पहुँचा सकते है।

प्र०—कैसे? श्राद्धादिसे?

उ०—नही। श्राद्ध तो भोजन-मात्र है। मुझे भूखो मरनेका दण्ड है। पुत्र लाख श्राद्ध करता, मुझे भोजन मिल ही नही सकता। मेरा सुई जैसा गला निगल नही सकता। श्राद्धसे मुझे कोई लाभ नही पहुँचा, यद्यपि मेरे भाईने सब कुछ किया। मेरी पत्नी मौजूद होती और श्रद्धासे एक लाख राम नाम भगवान् रामेश्वरको अर्पण करती कि मैं मुक्त हो जाऊँ, तो मै कभीका बैकुण्ठ चला गया होता। पतिव्रता पत्नी अर्द्धाङ्गिनी है। उसका पुण्य मरे पीछे भी पतिको अच्छी गति देता है। शर्त्त यही है कि पतिसे उसे सच्ची भक्ति हो, वह पतिपर निछावर हो; और पतिको सद्गति दिलानेकी उसकी उत्कट इच्छा हो।

प्र०—क्या यह उपाय सबके लिए है?

उ०—हाँ, हिन्दूमात्रके लिए राम-रामका जाप और दूसरे लोगोंके लिए उसके मतानुसार भगवन्नाम। यह उपाय सबके लिए है।

मैंने पण्डितजीसे सैकड़ों बातें पूछ-समझ डाली, परन्तु उनका यहाँ कोई प्रसङ्ग नहीं है। तुम्हारे पतिकी मुक्तिके सम्बन्धमें ऊपरकी बातें काम आ सकती हैं। बहिन, तुम कर सको तो एक भारी बातकी परीक्षा हो जाय—यदि सत्यार्थ-प्रकाश बाधक न हो।

लल्लूको प्यार।

तुम्हारी सहेली,

—विद्यावती

(५)

बनारस,

२७ पौष, १९८४

बहिन चम्पा,

जय रामजी की!

लो, बधाइयाँ लो! आनन्द मनाओ। तुम्हारे प्राणेश्वर आज बैकुंठसे नवशक्तिपर पधारे। धन्य तेरे भाग्य!

तुमने मेरे पिछले पत्रका उत्तर डाकसे न भेजा, परन्तु उत्तरमें अपने प्राणेश्वरको ही भेज दिया। पतिभक्ता हो तो तुमसी। तुमने तीन लाख राम-नाम कह डाले और तीन दिनमे ही पतिको नरकसे उबारकर बैकुंठ पहुँचाया। मुझे बतलाया नही। जान पड़ता है कि नामके जापके पीछे समय न मिला।

उन्हें तुमसे बात करनेकी बड़ी अभिलाषा है। बुलाया है। जल्दी आओ।

आगमनाभिलाषिणी,

—विद्यावती

(६)

ॐ रामायनमः

लखनऊ,
२६ पौष, ८४

प्यारी विद्यावती,

जय राम-नाम की !

तुमको मेरे चुप रहनेसे शङ्का हुई होगी कि चम्पाको विश्वास न आया, चुप बैठ गई।

मैंने तुम्हारी चिट्ठी पढ़कर तुरन्त पड़ोसके राममन्दिरके पुजारीको बुलवाया। उससे कहा कि मैं अपने पतिकी सद्गतिके लिए तीन लाख राम-नामका जाप करूँगी और उसे भगवान् रानेश्वरको अर्पण करूँगी। तुम सङ्कल्प करा दो। मैंने संकल्प लिया। परसों, कल और आज, तीन दिन दूध और फल खाकर रही। प्रात काल ६ बजेसे बारह बजेतक राम-राम कहती रही। फिर कुछ विश्राम करके रामचरित-मानस पढती रही। आज सायङ्कालमे बैठकर लिख रही हूँ। आज दोपहरको तीन लाख पूरे हो गए। अब मुझे विश्वास है कि वह अवश्य नरकसे छूट गए होंगे। अब उनसे बातचीत करनेका अवसर मिलेगा। जल्दी पूछकर उत्तर दो।

तुम्हारी,
—चम्पा

(७)

ॐ रामायनमः

लखनऊ,
२६ पौष, ८४

प्रियम्वदा विद्यावती,

श्रीराम-नामकी जय हो !

मैने २६ को पत्र लिखा, तुमने २७ को। दोनो राह काट गए ! तुम्हारा मुझे अभी मिला। मै परसों शामकी डाकगाडीसे चलूँगी। बहिन, तेरा एहसान जन्मभर न भूलूँगी। तुमने वह काम किया, जो बहुतसे महात्माओंसे भी न बन पड़ेगा।

तुम तो यों ही विद्यावती थी, पर अब तुम्हारा नाम सार्थक हो गया। मैं आकर एक महीना तुम्हारे पास रहूँगी, परलोक-विद्या मैं भी सीखूँगी।

तुम्हारी प्रेमवती सहेली,
—चम्पा

[ले० आयुर्वेदाचार्य, प्रोफेसर चतुरसेनजी शास्त्री]

[१]

सू.. ......,

यह मदमाती चार दिनसे आई है, पर मिली आज है। ओह! देखनेमें नशा; छूनेमें नशा; बातोंमे नशा; आँख, कान और नस-नसमें नशा! मूर्तिमती मदिरा है। भयानक, अति भयानक, किन्तु महा मायामयी! प्यारे, मैं तो विमूढ हो गया हूँ। जगत्‌मे जो कभी न देखा था, न चखा था—अरे कल्पना और आशासे बिलकुल दुर्लभ—दुर्घट! छलिया, तू कबसे पी रहा था, चुपचाप और नीरव!, न कभी कहा, न भेद खुलने दिया। यही आश्चर्य है कि अबतक मैं इसके विना कैसे जीवित रहा! यह जगत् ही कैसे जी रहा है? वाह रे वसन्त! कैसी वायु वह रही है—वह लज्जावती कुसुम-कलियोंके घूँघटको चीरती हुई, उन्हें खिलखिलाकर हँसाती हुई, उनके हृदयका सारा रस एक ही साँस में पीकर मेरे घरमे घुस पड़ी है। यह कैसी सुन्दर है! अरे कितना आलस्य इसने बखेरा है। तुम क्या जाग्रत रहते हो, इस वसन्तमे? यह असम्भव है—आँख 'तो खुलती ही नहीं। मैंने कह दिया है, समझा दिया है—

आ प्यारी नयनों बसो, पलक ढाँप तोहे लूँ !
ना मैं देखूँ और को, ना तोहें देखन दूँ !!

वाह रे स्वाद ! लाख प्राणोंको देकर मैं इसकी एक बूँद लूँगा। और, और, और, अरे ! हाय ! हाय !! सब, सब, सब। क्या इतना ही है—और एक बूँद भी नही रहा, मैं नही मानूँगा—इससे न चलेगा। मै स्वयं घड़ेका मुँह खोलूँगा, मैं स्वयं पीऊँगा। हाँ, जोर-जुलुम, छल-बल, सब तरह छककर, तृप्त होकर और फिर इसीमें एक गोता लगा लूँगा—मैं डूबूँगा, चाहे लाख बार मरना पडे !

हे प्यारे तुम आओ तो, इस बसन्तमे कैसा स्वाद है, कैसा रस है, तुम देखो तो ! मेरी शपथ—मेरे प्राणोंकी शपथ, आओ, आओ, आओ !

तुम्हारा,
—प०

---

[२]

प्रिय !

पोस्टमैनने धीरेसे द्वार खटखटाया। मै धीरेसे उठा और तुम्हारा बासन्ती पत्र ले लिया ! यह अभी जरा सोई है, रातभर. .... ! हाय रे दुख पर ईश्वरको धन्यवाद है, रात कट गई है। पत्रमे इतनी महक किस इत्रकी है ? मैं नही पहचान सका, इस समय मेरी बुद्धि कुण्ठित हो रही है ! शायद आजकल मे यह सदाको जा रही है.......... ! फिर पता नहीं, कितनी

फ़ुर्सत मिलेगी! क्या तुम्हारे घरमे वसन्त इतने जोर-शोरसे आया है? मैंने तो द्वार-खिड़कियाँ वन्द कर रक्खा है। इसमे वसन्तकी उस उन्मादिनो वायुके झोंकोको सहनेकी शक्ति कहाँ है? उमसे इसकी अवशिष्ट हड्डियाँ खड़खडा उठनी है। उसके रूखे, मैले और उलझे हुए बाल और भी उलझ जाते हैं। परन्तु वाह, देखो कैसा अद्भुत योग है। तुम्हारा पत्र फूट-फूटकर हँस रहा है? सामने यह मानो तटस्थ समाधिलीनसी हम दोनों मायाग्रस्त मूर्खोंको चुपचाप देख रही है। वे उन्मीलित नेत्र, शुष्क ओष्ठ और प्रत्येक श्वासमे सूखे पत्तेकी तरह काँपता हुआ हृदय कितने कष्ट, कितने संयम, कितने दुस्समयका द्योतक है। तुम सोचोगे, यह वडा दारुण दु ख है, पर मैं मोचता हूँ—यह गनीमत है। यह भी अब इस भाग्यमें के घडी और है।

यह पत्र, मस्ताना पत्र, तुम्हारे हृत्तन्त्रीकी गतिमें लय मिलाकर कैसा मोहक अनन्त सङ्गीत गा रहा है, पर कैसे कुसमय? चुप—अरे चुप, उसकी नींद खुल जायगी, वह विकल हो उठेगी, वह कराहेगी, वह तड़पेगी, वह जल, एक वूँद जल माँगेगी। वह दाह, वेदना और अदृष्ट दर्शनसे छटपटा जायगी। यह इतना उन्माद, इतना रस, इतना मद! अरे प्रिय! अब इस कुसमयमें और नहीं, तुम इन सबको उस आनन्दालोकमें वैठकर अकेले पियो, पर मुझे अभी माफ करो!

तुम देखने भरका (?) मुझे न्योता देते हो और धिक्कारके योग्य वात तो यह है कि मैं उसके लिए लालायित भी हूँ, पर भाई, तुम्ही पियो—छको। मैं छक तो नही, पर चख जरूर चुका हूँ। केवल चखना या छकना तो भाग्याधीन है। मुझे तुमपर डाह नहीं, वसन्तके प्रति भी नहीं। पुराने पत्ते झाड़ना और नई कोंपल खिलाना उसका स्वभाव है। परन्तु प्यारे! इस समय तो यह मद मेरे लिए सिरके के समान है। समय ही तो है। प्रति वर्ष वसन्त आता है, पत्तोंको वखेरता और फूलोंको खिलाता है और न जाने क्या-क्या उत्पात करता है। तुम जिन्हे

फूलोंका रस छककर पियो। मैं तबतक बिखरे पत्तोंको बटोरनेका प्रयत्न कर देखूँ।

तुम्हारा,

—सू०

पुनश्च—

देखो, सम्भव है, पत्रसे प्रथम तार ही पा बैठो।

—सू०

---

[३]

सू.....,

हाय! अकेले रह गए? तार और पत्र एकके बाद दूसरे वज्रकी तरह टूट पड़े। क्या करूँ, क्या करूँ? तुमने मुझे लिखा भी नहीं, कहा भी नहीं। वे पद-चिन्ह मेरे बिना देखे ही अनन्तमें विलीन हो गए? ओसकी बूँदकी तरह? इतनी जल्दी! हाय रे भाग्य! और मैं क्या कर रहा था? प्रिय! प्रिय! मुझे लज्जा आ रही है! मेरी छाती फटी जा रही है! अब कैसे रहोगे? कैसे सहोगे? मैं ही वहाँ कहाँ आऊँगा? किस मार्गसे वे गईं? बता सकोगे। बताना पड़ेगा! मैं आऊँगा। उन्हें फिरा लाऊँगा! न होगा, देख ही आऊँगा? क्या इतना भी अशक्य है? जीजी! जीजी! क्या तुम सुन रही हो? मुझे आशा थी, हम लोग आकर फूल-से बच्चेको गोदमें लेकर चूमेंगे और तुम्हारा आशीर्वाद ग्रहण करेंगे! भाई! अरे मेरे बन्धु! माताने अन्तिम बार अपने हृदयके समस्त स्नेहसे पाली हुई यह जीवित कुसुमकलिका मुझे सौंपी थी। वह मैंने तुम्हें सँभाल दी थी—जैसे चिड़िया अपने बच्चेको वृक्षके खोखलेमें

रखती है। बता, वह कहाँ है बन्धु ! मित्रकी घरोहरकी रक्षा करना तुम्हारा धर्म है। प्यारे ! तुमने अवश्य ही उस रत्नको सँभालकर रक्खा होगा। मेरे विश्वासी ! विश्वासघात न करना ! मैं आता हूँ !

—प०

[४]

प्रिय !

बडा सुख है, अब मैं रात-दिन चाहे जब निस्सङ्कोच रो लेता हूँ। कोई सुननेवाला नही, देखनेवाला भी नही ! सन्नाटेकी रातमें नितान्त दूर टिमटिमाते तारोंके नीचे, स्तब्ध खडे काले-काले वृक्षोंके नीचे घूम-घूमकर मैं रातभर रोता हूँ। यह मेरा अत्यन्त सुखकर कार्य है। इसमे मेरा बड़ा मन,लगता है। और इस पवित्र रुदनके लिए ये स्थान उपयुक्त भी है। निकट ही गीदड़ रो रहे है। कुत्ते भी कभी-कभी रो पड़ते हैं। घुग्घू बीच-बीचमें रोनेका प्रयत्न करता है, परन्तु मेरे रुदनका स्वर तो कुछ और ही है, वह अन्तस्तलकी प्राचीर-भित्तिको विदीर्ण करके एक नीरव लहर उत्पन्न करता हुआ नीरव लयमे लीन हो जाता है ! उसे देखनेकी सामर्थ्य किसमे है ? नीद अब नही आती है। दो महीने रात-दिन सोता रहा हूँ। अब नीदसे हिसाब साफ है। हाँ, चटाईपर औंधा पड़ जाता हूँ और आँख बन्दकर चुपचाप कुछ सुननेकी चेष्टा करता हूँ। तब रात्रिके गम्भीर अन्धकारको विदीर्ण करके एक अस्फुट ध्वनि सुनाई देती है और मैं विवश होकर उसमें स्वर मिलाकर विहाग या मालकोशकी रागिनीमें रुदन-गान करने लगता हूँ। आँसूओंके प्रवाहमें रात्रि भी गलने लगती है। तब हठात् वह उसी विमल परिधानमें आती है और पहले वह जैसे बलपूर्वक मेरे कागज-पत्र उठाकर मुझे सोनेपर विवश करती

थी, उसी तरह मेरे उस सङ्गीतको उठाकर रख देती है। पर हाय ! अब मैं सो नहीं सकता ! आँख फाड़कर देखता हूँ तो अकेला रह जाता हूँ। मैं शेष रात्रि इस वृक्षसे उस वृक्षके नीचे घूम-घूमकर काट देता हूँ।

सू०—

---

[५]

सू०.

न कहने योग्य बातको कैसे कहूँ ? परन्तु नस-नसमें रमी हुई बातको बिना कहे कैसे रहूँ ? तुम्हारा यह सुख देखने-सुननेकी वस्तु नहीं। इसका अन्त हो, यह भस्म हो। युक्ति और तर्क वहुत है, भावनाओंकी नदी उमड रही है, स्मृतियाँ हिलोरें ले रही है, परन्तु सबके ऊपर तुम तैर रहे हो! मैंने तुम्हें छोड़ और कब किसे देखा है ? मेरे प्यारे बन्धु, मुझे आज भी सब तरफसे अन्धा बनकर तुम्हींको देखने दो। अतीतके महा गर्त्तमें तो विश्वकी समस्त विभूतियाँ हैं, पर वर्त्तमान क्षणभंगुर जन्तु वहाँ जानेसे प्रथम वहाँकी सत्ता ही क्या रखता है ? उधरका ध्यान छोड़ो। उस दिन तुमने मेरा अनुरोध माना था, आज मेरी इस विद्युल्लहरीका मानो। वह चम्पेकी कलीके समान कोमल और कच्चे दुग्धके समान स्वच्छ बालिका भाग्य-बलसे तुम्हारे लिए प्रस्तुत है। वह इसकी सगी बहिन है। प्यारे ! परम प्यारे बन्धु ! तिनकेका आसरा रहते इच्छापूर्वक मत डूबो। जीवनका मध्य युवावस्था है, वह क्षणभरके लिए अधम प्राणीको स्वर्गके अक्षय भण्डारसे दी गई है। उसे यों नष्ट न करो। मैं क्या कहूँ ? मुझे भय है, मैं निष्ठुरता कर रहा हूँ; परन्तु मैं इस बातको जानता हूँ। बोलो—क्य तुम इसका अनुरोध रक्खोगे ?

तुम्हारा,

—प०

---

[६]

प्रिय !

तुम्हारे पत्रका प्रत्येक अक्षर मूर्तिमान कालकी तरह सिरपर मँडरा रहा है। इससे कैसे रक्षा होगी, कब वज्र-प्रहार होगा? कौन जानता है। भावनाकी वरसातमें लालसाकी क्षुद्र नदी उमड चली है। संयमका अपूर्व पुल टूटकर बहा चाहता है! बहावकी दूसरी कोरपर वह एक चट्टानकी काली-काली कूट-शिखा दीख रही है। वहाँसे लोक-लाज मुझे पुकारकर सावधान कर रही है, पर आत्म-वेदनासे अङ्ग-सञ्चालनतक मेरे लिए अशक्य है, पर, पर—हे भगवन्! क्या यह सम्भव है? ओफ! कैसी तेजीसे वह कृष्ण कूट निकट आ रहा है। इस भीषण प्रवाहमे अब एक ही धक्केमें सब समाप्त है।

जीवन अभी है, वहुत है। हृदय-दीपमे भी अभी काफी स्नेह है—सब नही जल पाया है, परन्तु..... परन्तु—हे मित्र! मुझ दीनको पतित न करो—तरसाओ मत! ठहरो, मै मृत्यु या जीवन, दोमेंसे एक वस्तुको चुन लेता हूँ!

सू०

---

[७]

सू......,

खेद है, सम्मिलित न हो सका; मेरी पत्नीने सब कुछ वर्णन किया। मेरी अभिलाषा मनहीमें रही, परन्तु अव बहुत शान्ति मिली! क्यों? क्या तुम्हे कुछ भी सुख मिला? देखो जगत्का काल-चक्र। दिनके वाद रात, रातके वाद दिन। परन्तु धन्य है वह शक्तिमान् प्रभु, जिसके महाराज्यमे सव रोगोकी औषधि, सव दुखोका प्रतिकार, सव वेदनाओंकी शान्ति है। वस्त्र फटता है, उसे सीए विना तो नहीं चलता। जीवनमे ठोकरें लगती है—

उठना और फिर चलना मर्दका काम है ! फिर ग्लानि क्यों ? फिर गुप्त पापसे प्रकट पाप उत्तम है। इन्द्रियाँ कब धोखा दें, कब प्रबल हों, क्या ठिकाना है ? उद्वेगकी शान्ति शरीर-धर्म है। शोक-सन्ताप, सुख-दुख, शरीर और जगत् के साथ है। सहो और आगे बढ़ो। जगत्के युद्धमें साथवाले आत्मीय योद्धा गिरते हैं, पर शेष योद्धा आगे बढ़ते हैं। तुम भी बढ़ो। प्रारब्धके चक्रमें जो क्षणभर भी खड़ा रहकर सोचविचारमें पड़ेगा—पिस जायगा। इस चक्रके निस्तारकी गति तो चले ही जाना है।

—प०

---

[८]

प्रिय

उसकी स्मृति बलपूर्वक हृदयसे निकाल फेंकी। बड़ी कसक है, जैसे एक पसली छातीसे उखाड़ फेंकी हो ! ग्लानि और अनुतापकी हिलोरें हाहाकार करती उठती हैं, पर यह निरपराधिनी है ! यह अनाथा, असहाया, दीन-हीन दुखिया अपनी स्वाभाविक सरलता और नैसर्गिक विश्वासको लेकर मेरे पास आई। उस दिन जब शीत-तुषारसे कम्पित पल्लवकी तरह उसने अपना कण्टकित हाथ बढाया, मैं कुछ सोच ही न सका—मैंने उसे पकड़ लिया !

क्षमा ! ओ स्वर्गवासिनी ! क्षमा ! अधम, निरीह, नर-पशुपर क्षमा !! शोक-समुद्रमें एक बूँद स्वाति-जलकी पड़ी। दूधमें मिश्रीकी तरह यह मुझमें घुल गई है। सब घाव सूख गए, सब कसक मिट गई ! इस सञ्जीवन स्पर्शको पाकर बहुत दिन बाद आज फिर सुख-निंदिया आई है !!!

—सू०

---

[९]

सू. . . ,

कबसे तुमने नहीं लिखा ! जीते हो या मरे । क्या नवीन रसमें जगत्को भुला बैठे ? उस अवसरपर मैं तुम्हारी आज्ञाका पालन न कर सका, इसके लिए बारम्बार क्षमा-प्रार्थी हूँ । अवसर ही ऐसा था । तुम्हें देखनेकी बडी लालसा है । एक ही रस, चाहे जैसा हो, मुँह फेर देता है । 'मीठे भावे लौन पै, मीठे हूँ पै लौन ।' अब कुछ क्षण इस लतासे पिण्ड छूटे और खुली हवा लगे ! पर यह तो ऐसी लिपटी है कि हड्डियोंतक घुस गई है । मद है तो मद—परन्तु पेट भरेपर. इधर पेटका प्रश्न कुछ विकट हो चुका है । तुम्हारी कैसी गुजरती है लिखो ! पिछली बातके लिए नाराज न होना । शीघ्र ही मिलूँगा ।

—प०

---

[१०]

प्रिय !

मैं अच्छा हूँ, पर मुझे यह सहन नही होता कि तुम मुझे मनाओ । इससे मैं बहुत बेचैन हो उठता हूँ । जैसे जङ्गली पशु अपने घावोको चाट-चूटकर आराम कर लेते हैं, वैसे ही मैं भी अपने हृदयके सब घावोको आराम कर लेता हूँ । मुझे उसकी आदत पड़ गई है । फिर मेरे पास एक ऐसी तेज शराब है, जो हर वक्त मुझे गर्क रखती है । कसक तो कभी मुझे मालूम ही नही होती । तुमने मुझे ठगा । खैर, मैं तुम्हारे लिए अपनी आशाके कच्चे डोरेको इतना मजबूत समझता था कि इतराता था, पर तुमने उसे तोड दिया । अगर मै औरत होता तो तुम्हारे मर्दपनपर धिक्कारता; क्या मर्दोंकी कुदरती शक्ति ऐसी होनी चाहिए ? साँसके झटकेसे टूट जानेवाले प्यारकी आशाका अभागा तार तो सिर्फ प्यारके ही घमण्ड पर बाँधा जाता

है। कोमलताका तो यह स्वाभाविक ही घमण्ड है कि वह अपनेको कठोरतासे सदा जबरदस्त समझती है। कोई सजीव कठोरता तो उनके सम्मुख तनकर खड़ी रह ही नही सकती।

मै तुम्हे प्यारके पत्र अब इसलिए नही लिखता कि अब मै अपने प्यार के बचे-खुचे रसको बहुत ही किफायतसे खर्च करना चाहता हूॅ। मैंने उसे बुरी तरह लुटाया है। वह किसीके पल्ले कम पडा है—पर बिखरा बहुत है। अभी तो मरनेमें देर है। इन सबको खर्च कर दूॅगा तो जीऊॅगा कैसे? युग बीत गए—उसे तो कभी लिखा ही नही। वहॉतक डाक जाती ही नही। पर जब भी वह आती है, मानो कही गई ही न थी। बातचीत और प्यारका जो प्रसंग चलता है, वह आरम्भ और समाप्तिसे रहित, सिर्फ मध्य भागसे समझो! मध्य भागसे! हाय, तुम नही समझोगे, उधर गए हुओसे तुम्हारी मुलाकात ही नही है। तभी तो तुम ऐसी तुच्छ बातें जबानपर ले आते हो! मुझे जरा उधर जाने दो, मैं प्रमाणित कर दूॅगा कि मैं तुम्हारे लिए कितना उदार हूॅ!

—सू०

[११]

सू०......,

किस लोककी तरफ तुम्हारा लक्ष्य है? और तुम सर्वथा प्रत्यक्ष इन्द्रियार्थ सन्निकर्ष ज्ञानकी अपेक्षा किस कल्पित लोकको देख रहे हो? तुम अमर, अविनाशी, अलिङ्ग और लीन आत्माके विषयमे कौन-सी भ्रान्त धारणा कर रहे हो? सुखसे ऑख मूॅदे रहे हो—दुखवादमे पडे हो, वह न अनुरक्ति है, न विरक्ति। तुम्हारा विज्ञानवाद क्या यही है? रूप-सुधा पियो, ज्ञानको लात मारो, उन्मत्त रहो, अवशिष्ट दिन यो व्यतीत करो।

देखो, कैसा वह रूप है, इसे हवामे खुला छोड, तुम किस भावनामे डूबे बैठे हो। वह ठण्डा और वर्बाद हुआ जाता है!

—प०

—:❀:—

[१२]

प्रिय !

यह उन्मत्त हास्य तो मुझे मार डालेगा! बिजली चमकती है और बादल रोते है! किसी भी तरह मैं इसके साथ नहीं हँस सकता। हास्य मेरे लिए हास्यास्पद है। वह समाप्त हो चुका। इतने घाव ? इतनी वेदनाएँ ? इतना भार लेकर किससे हँसा जाता है ? जब मै हँसता था, तब किसकी मजाल थी कि उसे रोक सके! मास्टरके हजार डॉटनेपर भी हँसी नहीं रुकती थी। पिता बार-बार कहते थे—अरे वेटा, इतना नहीं हँसा करते! हाय! वे दिन गए! वे दगाबाज दिन इस गढ़ेमे ढकेल गए, अब क्या होगा ? मेरा हृदय रो रहा है, मानो उसमे नासूर हो गया है, जिसमेसे रुदनका अटूट झरना वह रहा है। जागरणकी अपेक्षा स्वप्नमे सुख मिल रहा है। वास्तविक वस्तुकी अपेक्षा कल्पना मीठी दीखती है। आह! उस अनन्तमे इतनी दूर—वह क्या चमक रहा है। अवश्य ही वही है—पर इस अधम पार्थिव शरीरको लेकर मै वहाँ जा कैसे सकता हूँ ? वह स्वर, जो प्रति क्षण सुनाई देता है, कैसे इन चर्म-चक्षुओंसे देखा जाय! इस आत्माका शरीरसे विच्छेद कब होगा ? कब ज्ञानकी धाराएँ जगत्‌भरसे अपने ध्येयको ढूँढ लावेंगी—कब, कब, कब ?

चमकती हुई बिजलीके बीचसे झर-झर बरसते बादल तो बड़े सुन्दर दीख पड़ते है, किन्तु जब वह हँसती है, तब मैं रोता हुआ क्यों नहीं अच्छा लगता ? फिर भी उसमे इतना सुख मिलता है। उस दिन इसे देखते ही हर्षके मारे लोहू नाच उठा था। देखते-देखते पेट ही नहीं भरता था। पर

आज इससे डरता हूं। इसकी वे कटोरी-सी आँखें भूखे शेरकी तरह मेरी ओर घूरा करती हैं। हाय! इतनी प्यास इसे किस रसकी है? मैं भी तो जवान हुआ था। शायद इतनी प्यास मैने कभी नही देखी थी। मेरे पास सदा ही रसका टोटा रहा, पर अब तो दिवाला है। लोग कहते है कि मै अघा रहा हूँ, पर मैं रेत फॉककर जी रहा हूँ। तुम कहते हो रूप! अरे, यह रूप तो धूप है। धूप क्या सदा शरीरको सुहाती है? उसके लिए समय चाहिए, ऋतु चाहिए, और शरीर चाहिए। ग्रीष्मकी यह धूप क्या मेरे-जैसे घायलके तापनेकी वस्तु है? मै मानता हूँ स्नेह है, बहुत है। पर मानो वह किसी अछूतका छुआ जल है; पीनेकी तरफ प्रवृत्ति ही नही होती। या कोई दारुण रोग-पुञ्ज नही बुझने देता। कहीं मन नही लगता, कुछ अच्छा नहीं लगता।

—सू०

---

[१३]

सू. .. .,

पत्र पढ़कर इच्छा हुई कि सीधा आऊँ और फिर हम दोनों उस प्राचीन बालकालकी तरह गंगा-स्नान करने चलें, किन्तु लौटें नही, वहीं रह जायें।

तुम्हारे दुखका यह दुर्धर्ष विषय मेरे समझनेका विषय शायद नहीं। तुममें रूप है, गुण है, धन है, ऐश्वर्य है, परी-सी सुन्दर स्त्री है...! हाय! यह पाकर तुम मृत्यु-कामनाकी ओर इतनी तीव्रतासे बढ रहे हो कि भय लगता है! क्या मृत्यु ऐसी सुखकर वस्तु है? जगत्को देखा कि जो कुछ तुम्हारे पास है, उसीकी प्राप्तिमे असफल हो, लोग मृत्यु-कामना करते हैं; पर तुम उन्हें पाकर भी मृत्यु-कामना करते हो यह क्या वात है? यह मृत्यु-सुन्दरी कौन है? किस प्यारीकी यह दूती है? यह किस अभिसारिकासे मिलाएगी? बोलो, फिर हम तुम दोनों ही चलें! चलो!

—प०

---

[१४]

प्रिय !

मेरे दु:खका कोई खास कारण नही है, पर मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि दुख मेरे शरीर और आत्मामे नही है। मैं उसके प्रवाहमे किसी अतर्क्य शक्तिसे गिर गया हूँ और वहा चला जा रहा हूँ ! कहाँ जाकर इस प्रवाहका अन्त होगा, अब विधाता ही जान सकता है ! मुझे कुछ प्रिय नहीं ; मेरे मनका कही ध्रुव नहीं ; किसी वात, किसी कार्यमे उत्साह नहीं , किसी वस्तुमे रस नहीं ; ऐसा मालूम होता है, मेरा कहीं कोई नहीं है ! और जीवन तेजीसे समाप्त हो रहा ! पता नहीं एक ही घटनाने क्या जादू कर दिया। शरीरके स्थानपर शरीर, आत्माके स्थानपर आत्मा हाजिर है, वैसा ही माधुर्य, वैसा ही इन्द्रिय-जाल और उनकी साधना सामग्री, किन्तु मानो जीवन-तत्व नहीं रहा है। तव अनायास ही जो प्रवाह प्राप्त था—वह इतनी चेष्टा, सावधानी और अभिलाषा होनेपर भी छिन्न-भिन्न ही दीखता है। सच पूछो तो मैं वासनाका पशु, वासनाकी नदीमें, वैतरणीमे, वीच धारमें पडा उस पार जानेका घोर प्रयत्न कर रहा हूँ, यह जानते हुए भी कि उधर, उस पार नरक ही है।

हाय ! कहाँ गई वह पवित्रात्मा—मेरे दुख, दरिद्रता और जीवनके कठिन संग्रामकी सङ्गिनी, विपत्तिकी ढाल, मेरे शरीर और हृदयकी स्वामिनी ! छाया की भाँति उसकी स्मृति मन-मन्दिरमे वैठी है—अभी वैठी है। सोचा था निकालनेको, परन्तु वह भूल थी ! कहाँ है वह ? क्या वहाँ जाना और उसे बुलाना दोनो ही शक्तिसे वाहर—असम्भव है ? पर मैं आशा न छोड़ूँगा। मैं उस घड़ीकी प्रतीक्षामें हूँ ! सच कहो, क्या ऐसा कोई लोक है, जहाँ कोई किसीकी प्रतीक्षा करता रहता है ? वहाँ क्या निष्ठुर, निर्मम, वज्र-पुरुष भी जा सकते हैं ! कहो मित्र ! तुम्हारा ज्ञान, अनुभव और विचार-शक्ति क्या कहती है ? आशा दिलाओ तो मैं कुछ और भी जल्दी करूँ।

—५०

[१५]

प्रिय !

दुपहरीके सूर्यकी तरह इस ज्वलन्त रूपको एक क्षण भी देखना मेरे लिए अशक्य है। उसे मैंने उसके पिताके पास भेज दिया है ।। वह हँसती हुई गई है, उसी तरह, बल्कि उससे भी अधिक जोरसे ! मुझे मोह लेनेकी सफलताका गर्व उसके होठो और नेत्रोमें मस्ती कर रहा था ; और यौवनका गर्व उसकी छातीसे फूटा पड़ता था। अब कहाँतक इसके सम्मुख तनकर सीधा खड़ा होता ? वह देखो, पीत निष्प्रभ मुख, उन्मीलित नेत्र, प्रकम्पित प्रच्छ्वास और समाप्त जीवन—प्रिय बन्धु, अब मुझे यही जी भरकर देखने दो ! मै आनन्दालोकमे जा रहा हूँ, जिसकी न परिधि और न रूप-रेखा है। धीरे-धीरे चारों ओर एक ज्योति फैल रही है। मन इन्द्रिय अब भार-से जँचते है। मै इस अतर्क्य भावनामे लहरीकी तरह विलीन होना चाहता हूँ। मेरी परिचित कण्ठ-ध्वनि ही निकट ही निकट सुनाई दे रही है! निश्चय ही कही निकट है! मुझे उसकी खोज करने दो, और किसीसे मेरी पटेगी ! मुझे रूप नही योवन नहीं, प्यार नही, रस नही—यह कुछ नही चाहिए—मुझे चाहिये मेरी वही श्री, वही महाकल्याणी, मेरी सहधर्मिणी और मेरे दु:ख, दरिद्रता, रहस्य और भीतर-बाहरकी सङ्गिनी !

कल मेरा उसकी खोजमें प्रस्थान है, क्षमा करना। हमारे बचपनसे अबतक का सब हिसाब-किताब बेबाक। उस लोक मे अवश्य ही मिलेंगे। ओम् शान्ति !

—सू०

विशेष—

अपनी समस्त सम्पत्ति मैंने उसके नाम कर दी है और उसकी शुभि-भाविका तुम्हारी पत्नी है। कागजात रजिस्ट्रीसे तुम्हारे पास जा रहे हैं। कृपाकर उसके प्रति दया और क्षमाका व्यवहार रखना। मेरे अनुरोध अपनी पत्नीसे भी कह देना।

—सू०

विवाहके बाद

[ले०—डॉक्टर धनीराम प्रेम]

पत्र १

माई डियर रमेश

तुम्हारा पत्र मिला। तुमने जो कुछ सुना है, वह ठीक है, अक्षरश ठीक है। मैंने करुणाके साथ सिविल मैरिज कर ली है। तुमको खबर भी नहीं दी, इसकी शिकायत करनेका तुम्हे अवश्य ही अधिकार है। क्योकि तुम जैसे गहरे मित्र दो एक ही हैं। लेकिन भाई, कई ऐसे कारण थे, जिनसे विवश होकर हमने विवाहको कुछ समयतक प्रकट करना न चाहा। कभी समय पडने पर मिलेंगे तो तुम्हें सारी कथा सुनाऊँगा। परन्तु एक बातका उल्लेख इस पत्रमे अवश्य करूँगा। तुम कहते हो, मैं हमेशा स्वप्न देखनेवाला रहा हूँ, विवाह के विषयमे बड़े भारी आदर्शोंके स्वप्न देखनेवाला, फिर मैंने करुणासे शादी कैसे कर ली। इन सब बातोंसे तुम्हें आश्चर्य हुआ है। ठीक है, आश्चर्य होगा ही। परन्तु बात यों हुई —

मेरा बिचार अगर ठीक है तो तुमने करुणाको पॉच बरस पहले अलीगढमें देखा था, जब हम धर्मसमाज हाईस्कूलमे पढते थे। हमारे और तुम्हारे मकानके सामने ही तो करुणाके पिता रहते थे। करुणाको हम अच्छी तरह जानते थे और कभी-कभी बातचीत भी हो जाया करती थी। मुझे अच्छी तरह याद है कि तुम करुणाको उस समय नीरस और पत्नी—आधुनिक पत्नी होने के अयोग्य कहा करते थे। और यही मेरा खयाल था। यह ठीक था कि वह

पढ़नेमें चतुर थी और उन दिनों आठवी क्लासमें पढ़ती थी। लेकिन उसके रहन-सहन, वेषभूषा, बोलचाल, व्यवहार आदि सब दकियानूसी ही थे। और इसी कारण जैसा तुम अब भी समझते हो, यह असम्भव था कि मैं उसे चाहूँ या उसके साथ प्रेम करूँ और सबसे अधिक, उसके साथ विवाह बन्धनमें बँध जाऊँ।

परन्तु भाई, संसार अजीब है। आदमीमें जैसा परिवर्तन हो सकता है, इसकी कल्पना करना भी कठिन है। कोई कसम खाकर कह सकता है कि जिस बच्चेको हम सिधाईकी प्रतिमूर्ति समझते है, वह बडा होकर अपराधी न बन जायगा? या एक पिछड़ा हुआ बच्चा बड़ा होकर एक महान् विद्वान् न समझा जायगा? यही हाल करुणाका हुआ। तुमने तो उसे तबसे देखा भी नही है। उसके पिताकी बदली तभी यहाँको हो गई थी।

जब मैंने आगरासे इण्टर पास करके बी० ए०मे यहाँ नाम लिखाया, तब मुझे मालूम पड़ा कि करुणा भी इसी कालेजमें फर्स्ट इयरमें दाखिल हुई है। वास्तवमें हम दोनो एक ही साथ दाखिलेके लिए दफ्तरमें पहुँचे थे। उस समय मैंने देखा कि करुणा दो बरसमें ही बिलकुल बदल गई है। कह नहीं सकता क्यों, उसी समयसे करुणा मेरे हृदयमे बस गई।

फिर तो करुणाको नित्य देखना, नित्य मिलना-जुलना और नित्य उसके गुणोपर मुग्ध होना। तुम ठीक ही कहते हो कि मैं स्वप्न देखनेवाला रहा हूँ। हाँ, मैं स्वप्न देखा करता था, सर्वगुणसम्पन्ना युवतीका, जिसे मैं प्यार कर सकूँ और जो मुझे प्यार कर सके। ऐसी युवतीका. जो संसारको मेरे लिए और अपने लिए स्वर्ग बना दे। किसी जगह, किसी समय भी उसे देखकर मैं गर्वसे यह कह सकूँ कि हाँ, यह मेरे स्वप्नकी युवती है और मेरा स्वप्न वास्तविक था। मैं जानता हूँ रमेश, हमारे समाजमे प्रेम-विवाह न होनेके कारण लगभग सौ फीसदी दम्पति दुखमय अवस्थामे हैं। यो क्या हुआ कि वे विना समझे, विना देखे या विना

अनुभव किये मैशीनों जैसे चलते रहे और मंजिलपर लग गए। परन्तु उसे जीवन नही कह सकते। मैं यह जानते हुए विवाहसे काँपता था। एक छोटी-सी भूल और सारा जीवन नष्ट।

परन्तु जितना ही मै करुणाको जानता जाता था, उतना ही वह मेरे आदर्शके समीप आती जाती थी। वह अब दकियानूसी नही थी, अप-टू-डेट थीं। लजीली नही थी, सबसे मिलती-जुलती थी। पहनाव-उढाव, बातचीत, व्यवहार, सभी में आधुनिक। गाना वह जाने, बाद-विवादमें वह भाग ले, पढ़नेमें सबसे तेज। और फिर मुझे प्रेम करे हृदयसे। मै तो समझता हूँ, ईश्वरने सोच-समझकर करुणाको मेरे लिए ही बनाया था, तभी तो वही अकेली मेरे आदर्शके अनुसार मिली।

अब तुम समझ गये होगे कि क्यों मैंने यह विवाह किया। मै तो समझता हूँ कि हमलोग आदर्श सुखी दाम्पत्य जीवन व्यतीत करके औरोंके सामने एक आदर्श रख देंगे।

हाँ, मिठाई जरूर मिलेगी खानेको। लेकिन तारसे मिठाई कैसे भेजता, यार! इस पत्रके साथ पेड़ेका चूरा रख रहा हूँ। मुँह मीठा कर लेना। जब यहाँ आओगे तो बाकायदा मिठाई मिलेगी। पत्र डालते रहा करो।

तुम्हारा ही—
विनय

पत्र २

प्यारी सुधा,

पंद्रह दिन पहले मैंने तुम्हें विवाहके बाद जो पहला पत्र डाला था, उसका उत्तर आज मिला। तुमने पत्र बधाइयोंसे और शुभाकाक्षाओंसे भर डाला है। शायद किसी औरको यह पत्र मिलता या शायद मुझे ही यह एक सप्ताह पहले मिलता, तो हृदय इसे पढ़कर हर्षसे फूला न समाता। लेकिन आज इसे पढकर मुझे रोना आ रहा है।

तुम शायद समझोगी कि मैं पागल हो गई हूँ, जो ऐसी बातें लिख रही हूँ। सौभाग्यके समय रोना ; और उस स्त्रीके लिए, जो अपनेको संसारकी सबसे अधिक सौभाग्यशालिनी पत्नी समझती थी ! तुम यदि मेरी बातें पढ़ोगी और मेरे हृदयकी दशाको भलीभाँति समझोगी, तो तुम सारा रहस्य जान जाओगी। तब तुम मुझे पागल नहीं, बल्कि दया और सहानुभूतिकी पात्री समझोगी ।

विवाहके पहले विनयको मैं प्रेमका देवता समझती थी। वह भी मुझे बहुत प्रेम करता था। जिस दिन हम दोनोंने विवाहका निश्चय किया था, उस दिनको मै भूली नही हूँ। अपने जीवनमें उस दिनको मैने स्वर्णाक्षरोंमें लिखने योग्य समझा था। विनयको मै बहुत चाहती थी। देखनेमें सुन्दर, व्यवहारमें सुशील, कालेजमें प्रथम श्रेणीका छात्र और प्रेम करनेमें रोमियोके समान। फिर कमी किस बातकी थी, ऐसा पुरुष जिस किसी स्त्रीसे भी विवाहका प्रस्ताव करे, वह अपनेको भला कैसे भाग्यशालिनी न समझे। जिस समय विनयने कहा था—

'करुणा, तुमसे अधिक कहनेकी आवश्यकता नही। तुम जानती हो कि हमारे हृदयोंमें प्रेमकी दो धारें अलग-अलग बह रही हैं। क्यो न उन्हे मिलाकर हम एक कर देवें। संसारमें अभी कितनी ही मञ्जिलें पड़ी हैं, क्यों न उन्हें हम साथ-साथ पार करें एक विश्वासके साथ, एक ध्येयके साथ और एक निष्ठाके साथ ?'

उस समय मैं विस्मित-सी रह गई थी। कानोंने चाहा कि बार-बार विनय उन्हीं मधुर शब्दोंको सुनाता रहे।

इन सब शब्दों, इन सब भावों और भावुकताओंके बीच हमारा विवाह हुआ। परन्तु विवाह हमारे प्रेमका अन्त तो न था, जो उतना ही सुन्दर होता जितना हमारा प्रेम था। वह तो एक दूसरे जीवनमें प्रवेश करनेका द्वार था। क्या हम उस जीवनको जानते थे ? नही ! क्या हमने कभी यह सोचा था कि

वह जीवन हमारे प्रेम-जीवनसे भिन्न होगा और कितना भिन्न होगा ? नही। और हमने ही क्यों ? जितने भी प्रेमी विवाह करते हैं, वे प्रेमसे परे क्या है, इसका विचार नही करते, और इसीलिए विवाहके बाद विवाहित जीवनसे सामना करना होता है, तो प्रेमकी वे बातें, वे भावनाएँ, उल्लास और आकांक्षाओंकी लहरें नष्ट हो जाती हैं। दुर्भाग्यवश यही मेरा अनुभव हुआ!

विवाहके एक सप्ताह बाद विनयने किरायेपर एक घर ले लिया। हम साथ-साथ रहनेके लिए वहाँ पहुँच गये। और पहले दिनसे ही विवाहित जीवनकी कटुताका अनुभव होने लगा। उस दिन बात-की-बातमें विनयने मेरा अपमान कर दिया। घरको अन्दरसे सजानेकी बात थी। मै कह रही थी कि आसमानी रङ्ग अच्छा रहता है। विनयकी राय थी कि हरा रङ्ग अधिक खिलेगा। कुछ बडी बात भी नही थी। अगर हरा पसन्द था तो हरा ही सही। मै चुप हो जाती। लेकिन दो-चार बातें मैने पूछी और कही तो मुझे टका-सा जवाब दे डाला—तुम्हारे घरमें कभी अच्छे रंग हुए भी थे।

इसपर मुझे क्रोध आ गया और मैंने कह दिया—तुम यह मत समझना कि मुझे स्त्री समझकर हुक्म चला लोगे। मैं कोई सीता-सावित्री नही हूँ कि रात कही तो रात और दिन कहा तो दिन।

तुम्हीं बताओ सुधा, मैंने कुछ बुरा कहा। तुम क्या मेरी जगहपर होतीं तो ऐसा न कहती ? क्या और कोई शिक्षित नारी अपना ही नहीं, बल्कि समस्त स्त्री-जातिका इस तरहका अपमान सह सकती थी ? इस घटनासे कोई मुझे क्रोधालु समझ ले भले ही, परन्तु इसमे क्रोध और शान्तिका सवाल ही क्या है ? यहाँ तो सिद्धान्तकी बात है। असलमें सुधा, मेरा अनुभव यह कहता है कि विनय इतना शिक्षित और आधुनिक होते हुए भी स्त्रियोंके विषय में अभीतक पुराने विचार ही रखता है। उसकी समझमें एक स्त्रीका स्थान पुरुषसे नीचा ही रहेगा, वह चाहे जितनी उन्नति कर ले, संसारमें वह चाहे पुरुषसे हर बातमें बाजी भी मार ले जाय। जब उसके ऐसे विचार हैं तो

निर्वाह कैसे होगा, यह समझमें नही आता। यह ठीक है कि प्रेममें इन छोटी बातोके लिए स्थान नही। लेकिन जीवनमें सिर्फ घण्टेभर रोज प्रेमकी बातें करके अलग हो जाना ही तो नही। वहाँ तो अन्य सभी बातोका, छोटी-छोटी बातोका भी विचार करना पड़ता है।

इसका अर्थ यह नही कि मैं गर्विता हूँ या मानिनी हूँ। मै विनयकी सेवा एक दासीकी तरह करनेके लिए तैयार हूँ। लेकिन जब वह मेरी स्त्री होनेके कारण ही तिरस्कार करे या मुझसे अधिकारके रूप में सेवा कराना चाहे, तो यह मुझसे वर्दाश्त नही हो सकता।

अगर मैं विवाहके पहले ही यह जान जाती कि विनयके ऐसे विचार है, तो शायद यह विवाह कभी न होता। परन्तु हाय, इस प्रेम विवाहका यह फल होता है कि हम प्रेममें इतने रँग जाते है कि वास्तविकताओंकी ओर ध्यान भी नही देते।

मै समझती हूँ कि मैंने तुम्हे बहुत-कुछ लिख दिया है। अब फिर कभी लिखूँगी। पत्र शीघ्र देती रहा करो। इससे बड़ी सान्त्वना मिलती है।

तुम्हारी ही—करुणा

पत्र ३

माई डियर विनय,

विवाहित दुखी जीवनके विषयमें तुम्हारे कई पत्र मिले। परन्तु सबसे अधिक दुखद तुम्हारा पिछला पत्र है, जिसे मैं अपने सामने रखकर इन पंक्तियोंको लिख रहा हूँ।

इस पत्रमें तुमने लिखा है कि करुणा तुमसे रूठकर अपने पिताके यहाँ चली गई है। मुझे केवल इसमें रूठना ही नहीं दीखता। अन्तर्दशा रूठनेसे भी अधिक भयङ्कर दीख पड़ती है। रूठना तो पति-पत्नीके साथ लगा ही रहता है। लेकिन करुणाके जानेके समयकी सारी बातें तुमने जिस ढंगसे लिखी हैं, उनसे पता चलता है कि करुणाका जाना रूठना नही, एक प्रकारसे विवाह-

विच्छेदका प्राक्कथन है। सच जानना, विनय, मुझे इससे बड़ा दुःख हुआ है।

उस दुःख के दो कारण हैं। एक तो यह कि तुम मेरे अन्यतमसुहृद हो, विलकुल भाईकी तरह हो। दूसरा यह कि विवाहके सम्बन्धमें मेरे विचार भिन्न हैं।

विवाह केवल इसीका नाम नही है कि दो मनुष्य जो एक दूसरेको प्यार करते हैं, कानून या जनताके समक्ष एक हो जायँ। यह एकत्व स्थायी नही हो सकता, यदि हम भूल जाँय कि उस एकत्वको स्थायित्व देना ही विवाहका और विशेषकर उसके बादके जीवनका उद्देश्य है। हम विवाहित जीवनको उसी समय सुखी बना सकते हैं, जब हम त्यागका और दूसरेके हृदयको समझनेका भाव अपने अन्दर पैदा कर लें और मैं जहाँतक समझता हूँ तुमने और कदाचित् करुणाने भी इन भावोंको अभीतक पैदा नही किया। तुम अपना आधिपत्य जमाना चाहते हो और वह अपना आधिपत्य जमाना चाहती है। ऐसी दशामें एकता कैसे हो सकती है। दोनों मिलकर एक हो सकें इसके लिये दोनोंको एक रस होना चाहिए। मुझे विश्वास है, तुम दोनों अब भी एक दूसरेको उतना ही प्रेम करते हो। परन्तु प्रेमके परे एक दूसरेको कोई भी नहीं समझ सका। दोनों किसी-न-किसी प्रकारकी भूलमें पड़े हैं और यही कारण है कि आपसमें झगड़े हो रहे है।

मेरी सलाह तो यह है कि तुम दोनो एक दूसरेको समझो और सुलह कर लो। पहले तुम्ही थोड़ा झुको, फिर करुणा तुमसे अधिक झुक जायगी। व्यर्थका अभिमान किधर भी न रहना चाहिए। बोलो, तुम उसे लेने और मनाने जाओगे ?

शीघ्र उत्तर देना ! मेरी तो यही कामना है कि तुम दोनों फिर जल्दी एक हो जाओ, ताकि मैं उस दिन हर्षके अवसरपर वहाँ आकर अपनी चढ़ी हुई मिठाई वसूल कर सकूँ।

तुम्हारा—रमेश

———

प्यारी सुधा,

अन्तमें जो होना था, सो हो गया, मै विनयको छोड़कर चली आई हूँ। तुम इस समाचारको पढ़कर चकित होओगी और तुम यह न कह सकोगी कि मैंने ऐसा एकबारगी ही कर डाला है। क्योंकि मैं तुम्हें कई बार इस बातका संकेत कर चुकी हूँ। सम्भव है कि यदि जीवन उसी प्रकार चलता रहता तो यह अवसर न आता। परन्तु विनयका व्यवहार ही बुरा हो, यहींतक बात न रही। उसका चरित्र भी बिगड़ने लगा।

जबसे हममें झगड़ा और मनोमालिन्य रहने लगा था, तब से हममें बोलचाल न रही थी और कभी कोई बात करनी होती तो नौकर हमारा माध्यम बनता था। जीवन दुखी और अशान्तिमय था सही, परन्तु वह असह्य नही था। सम्भव है, कभी उसमें परिवर्तन हो जाता। परन्तु एक दिनकी घटनाने उसे असह्य बना दिया।

मुझे वह दिन अच्छी तरह याद है। रातके एक बज गये थे, विनय उस दिन सुबहसे घरसे निकला था तो तबतक आया न था। मैं कभी उससे इस विषयमें पूछती न थी, न यही ध्यान रखती थी कि वह कब जाता है, कहाँ जाता है, क्या करता है, कब आता है आदि। लेकिन उस रातको न-जानें क्यो मेरे मनमें यह भाव उठा कि कही विनयपर कोई आफत तो नही आ गई। इस विचारके दिलमें आते ही मेरी आँखोंमें आँसू आ गये। मुझे मालूम हो गया कि मैं अब भी विनयको बहुत चाहती हूँ।

मै पिछले दिनोकी सारी घटनाओंपर विचार करने लगी। यह स्पष्ट था कि विनयका ही सारा दोष था। परन्तु फिर भी मैंने सोचा कि मैं सब कुछ भूल जाऊँगी और उसे क्षमा कर दूँगी। उसके उच्च विचारोंसे एक बार अपील करूँगी और सम्भव हैं कि मैं कुछ नीचे उतर जाऊँ और वह कुछ ऊँचा चढ़ आवे और हम दोनों एकसार भूमिपर मिल सकें—बिना किसी खतरेके।

विनय आया। उसने मेरी ओर देखा नहीं। उसकी भावभङ्गी बदली

हुई थी। उसकी चाल बदली हुई थी। वह सीधा अपने कमरेकी ओर चला गया। मैं उठी और धीरे-धीरे उसके कमरेकी ओर चली। द्वार खुला था और विनय बेतरतीबीसे अपने पलङ्गपर पड़ा था।

-'विनय डियर !'—मैंने पुकारा।

'यू गेट आउट करुणा, गेट आउट ऑफ हियर ! आई हैव गॉट एनदर, मोर ब्यूटीफुल, मोर लाइवली।' (करुणा तुम इस कमरेसे बाहर निकल जाओ ! मुझे दूसरी मिल गई है—अधिक सुन्दर, अधिक सहृदय)'—वह लड़खड़ाती हुई जबानसे बोला !

मुझे मानों काठ मार गया हो ! मैं पुतलाकी भाँति वहाँ कुछ देर खड़ी रही। देखा उसे, समझा उसे। वह शराब पिये था और अवश्य ही किसीके यहाँ गया होगा। किसी अधिक सुन्दर और अधिक सहृदयके यहाँ, और यह वही विनय था, जिसे मैं क्षमा करनेकी बातें सोच रही थी, जिसके लिए कुछ देर पहले ही मेरी आँखोंमे आँसू निकले थे ! उफ, मानव-हृदय !

"मैं सदाके लिए तुम्हें छोड़कर जा रही हूँ विनय, तुमने मेरा भारी अपमान किया है।"—मैंने जोरसे कहा।

"सचमुच तुम जा रही हो ? ऑल राइट, गुडलक !" उसने बस यही कहा और मैंने बस यही सुना, क्योंकि मै अपनी बात समाप्त होते ही उसके कमरे से निकल आई थी।

बस दूसरे दिन सुबह ही मैं अपने पिताके घर चली आई। कुछ दिन हुए, मैने सुना था कि विनय बीमार था। तबियत हो आई कि एक बार देख आऊँ, सम्भव है फिर मिलन हो जाय। परन्तु उसके एक मित्र से सुना कि वह मेरा मुख भी नहीं देखना चाहता। बस उसने अन्त ला दिया। क्या तुम समझती हो कि मैं उसकी खुशामद करती फिरूँ, और ऐसे पतित व्यक्तिकी ? कभी नहीं ! इससे तो मर जाना अच्छा है। अगर उसको सेरभर अभिमान है तो मुझे सवा सेर अभिमान है !

जीवन शायद इसी प्रकार रोनेके लिए बना था। सोचो तो, मैं ऐसा कह रहीं हूँ जो 'प्रेम-विवाह' को आदर्श समझती थी।

पत्रोत्तर शीघ्र देना!

तुम्हारी ही—करुणा

पत्र ५

माई डियर रमेश,

तुम्हारा पत्र मिला तुम्हारी बातें बिलकुल ठीक हैं। मैंने पिछली सारी परिस्थितियोंपर विचार करके यही निश्चय किया है कि हमने अभीतक विवाहित जीवनका अर्थ ही न समझा था। अपने-अपने अभिमानमें हमने जरा-जरा-सी बातोंको बढ़े हुए रूपमें देखा है। जब मनकी स्थिति इस प्रकारकी होती है, तो साधारण घटनाएँ भी विषसे भरी हुई मालूम होती हैं।

करुणाके यहाँ से जानेमें मेरा ही सबसे बड़ा अपराध था, यह मैं माननेको तैयार हूँ। लेकिन इतना अवश्य ही कहूँगा कि यदि वह कुछ समझदार—यानी मुझसे अधिक समझदार—होती तो ऐसी विकट परिस्थिति उपस्थित न होती। बात यह थी कि हम दोनों ही झूठे अहङ्कारके कारण एक दूसरेसे खिंचे हुए थे। और विवाहके बादके दिन ही ऐसे होते है, जब मनुष्य साथी चाहता है, बोलने बतलानेके लिए, विचार-विनिमयके लिए, न कि झगड़ेके लिए। और यदि ऐसा साथ घरमे नहीं मिलता तो मनुष्य बाहरके प्रलोभनोंका शिकार हो जाता है।

यही दशा मेरी हुई। मुझे घरमें करुणाकी ओरसे घृणा, द्वेष और कटाक्ष मिले, पर बाहर मिला प्रलोभन उन चीजोंका, उन भावोंका, जिनके लिए मैं उन दिनों तरस रहा था। करुणाने अपनी मूर्खतासे मुझे उन प्रलोभनोंकी ओर ढ़केल दिया, मैं अपनी मूर्खतासे उन प्रलोभनोंका शिकार हो गया और इस प्रकार एक दिन मेरा पतन हो गया।

उसी रातको करुणासे कहा सुनी हो गई और वह चली गई। मुझे पीछे बड़ा पश्चात्ताप हुआ। जीमें आया कि करुणा सामने हो तो उसके चरणों-पर सिर रखकर उससे क्षमा माँगू। परन्तु अहंकारने रोक रक्खा। पता नही करुणाके मनोभाव इस समय कैसे हैं। अगर उसके हृदयमें भी क्षमा करने और भूल जाने के भाव विद्यमान हैं, तो सम्भव है किसी दिन हम फिर नये सिरेसे विवाहित जीवन शुरू कर सकें।

तुम्हारा ही—विनेय

पत्र ६

माई डियर विनय,

तुम्हारा लिफाफा घरपर पन्द्रह दिनतक रक्खा रहा था, क्योंकि मै कार्य-वश बाहर चला गया था। आज सुबह लौटकर उसे खोला और पत्र हाथमें लेते ही मैं सन्न रह गया। यह क्या? 'माई डियर रमेश' की जगह 'डियर फादर-इन-लॉ' यह कैसी गुस्ताखी? समझ गया कि या तो पागल हो गए हों और या बहुत ज्यादा पीना सीख गए हो। मैने पत्रको आगे नही पढ़ा। मुझे क्रोधने लाल कर दिया था। आखिर करुणासे हटकर अपने मित्रोंका अपमान भी करने लगे। लिखनेमें कुछ गलती तो हो ही नहीं सकती थी क्योंकि लिफाफेपर मेरा ही पता था। लेटर पेपर तुम्हारा ही था और अक्षर भी तुम्हारे ही हाथोंके थे। क्रोधमें आकर पत्रको टुकड़े-टुकडे करके आगके हवाले कर दिया।

परन्तु पीछे खयाल हुआ कि पत्रको पढ़ तो लेना था। सम्भव है, कोई रहस्य हो! तुम्ही लिखकर बताओ कि क्या बात थी? अगर तुम्हारा उत्तर शीघ्र न मिला, तो मैं स्वयं वहाँ आकर सब कुछ देखूँगा।

तुम्हारा ही—रमेश

पत्र ७

माई डियर रमेश,

तुम्हारा क्रोधसे भरा हुआ पत्र मिला।

बात वास्तवमें बड़ी मजेदार हुई, जिसे यहाँ लिखता हूँ। लेकिन इसके पहले तुम्हें यह बता देना चाहता हूँ कि मेरे होश हवास बिलकुल दुरुस्त हैं। न तो मै पागल हुआ हूँ और न ज्यादा पीना ही सीखा हूँ।

बात यों हुई। मैंने उस दिन दो पत्र लिखे थे, एक तुम्हारे लिए और दूसरा अपने ससुरके लिए। लेकिन भूलसे तुम्हारा पत्र उनके लिफाफेमें रख दिया और उनका पत्र तुम्हारे लिफाफ़ेमें।

इस भूलका नतीजा बड़ा अच्छा हुआ। तीन दिन हुए, अचानक करुणाको साथ लिए हुए आ पहुँचे। मैं तो विस्मित रह गया। मानिनी इस प्रकार अपने आप कैसे आई? मुझे क्या मालूम था कि मेरी छोटीसी भूल इतना बड़ा काम कर जायगी। वह पत्र करुणाने ही खोलकर पढ़ा था और वह समझी कि मैंने जान-बूझकर वह पत्र ससुरजीके पास भेजा था, ताकि करुणा उसे क्षमा-पत्र समझकर यहाँ आ जाय। बस वह अपने पिताके साथ आ गई और हमारा पुनर्मिलन हो गया। जब मैंने उसे तुम्हारा पत्र दिखाया तो वह भी खूब हँसी। इतना जरूर है कि वह समझती है कि मैं ही पहले झुका। मैं भी चुप हूँ। क्योंकि मैं समझता हूँ कि वह पहले झुकी!

हाँ, तुमने आनेको लिखा है। सो तुमको फौरन ही आना पड़ेगा। करुणा भी निमन्त्रण दे रही है। तुम्हारी मिठाई भी चढ़ रही है। एक कारण और है। करुणाने अपनी सखी सुधाको भी बुलाया है। तुम जानते हो, कौनसी सुधा? वही जो तुम्हारे साथ कुछ दिनों बाद बँधनेको है। अच्छा तुम दोनो हमारे अनुभवोंसे भविष्यके लिए कुछ सीख जाओगे।

तुम्हारा ही—

विनय

[रचयिता—कविवर श्री० रामचरितजी उपाध्याय]

(१)

जाने लगे जब छोड़ मुझको, क्यों न तब मैं मर गई ?
निर्लज्जताका अन्त है, जो पत्र लिखती हूं तुम्हे !!

(२)

तुमने प्रणय-प्रणको तजा, धोखा दिया, आए नहीं !
तो प्राणका पालन मुझे—होगा उचित किस न्याय से ?

(३)

दोषी न हो तुम, मैं न हूँ, विधि निन्द्य है, मतिमन्द है !
तुमको निठुर चञ्चल रचा, विश्वासिनी भोली मुझे !!

(४)

"नर स्वार्थ-लोलुप हैं सभी" मुझसे किसीने था कहा !
मैंने न माना सत्य था, विश्वास पर अब क्यों न हो ?

(५)

मेरे हृदयको ले भगे, अपने हृदयके साथमें !
दिन गिन रही हूँ मैं यहाँ, क्या नय प्रणयका है यही ?

(६)

मैंने हृदञ्जलिके सहित, स्वागत किया था आपका !
चञ्चल ! इसीसे क्या कभी, हटते दृगञ्चलसे नहीं ?

(७)

जो कुछ कहा तुमने उसे—सोचे बिना मैंने किया !
अपराधिनी क्या मैं इसीसे, हो गई ? लिख भेजना !!

(८)

हटना रहा तो क्यों मिले ? मिलकर न हटना चाहिए !
प्रण कीजिए पूरा, नहीं—कहकर मुकरना चाहिए !!

(९)

मिलकर बिछुड़ता जो कभी, मिलता बिछुड़ करके वही !
ऐसा न यदि होता नियम, तो मैं न रहती विश्वमें !!

(१०)

तुम हट गए, मैं जी रही हूँ, कौन-सा यह प्रेम है ?
बस, दम्भ मेरा है निरा, तुम हो वहाँ, मैं हूँ यहाँ !!

(११)

झटपट चले आओ यहाँ, बैठी हूँ दर्शनके लिए !
जीवन तुम्हारे हाथ है, प्रभुता दिखाती हूँ नहीं !!

(१२)

मै सेविका, तुम नाथ हो, दुखभागिनी मैं, तुम सुखी !
"चाहती, तुम ऐठते" यों, क्यों लिखूँ, साहस नहीं !!

(१३)

तुम चल पड़े, मैं रो पड़ी, तुमने तुरत तब यों कहा—
"सत्वर मिलन होगा प्रिये !" क्या है स्मरण कुछ या नहीं ?

(१४)

हे नाथ ! मैं तो थी अनाथा, साथ जब रहना न था—
फिर हाथ क्यो पकड़ा वृथा ? शालीनता क्या है यही ?

(१५)

जाने न देती मैं कभी, यदि जानती तुम हो छली !
हा ! चूक कैसी हो गई, अब हाथ मलना हाथ है !!

(१६)

आखेट करने जन्तुओका, तुम यहाँ आए रहे !
आखेट पर मेरे हृदयका—कर गए हा ! क्या कहूँ ?

(१७)

बेहाथ हो मन साथमे, तो आपके था ही गया !
पर आपके पीछे लगी, निद्रा निगोड़ी भी गई !!

(१८)

तन सूखता ज्यों-ज्यो अधिक, अनुराग त्यो-त्यो बढ़ रहा !
तो भी न तुमको दोष देकर, नित्य हूँ गुण गा रही !!

(१९)

तबतक सुधाकर-रश्मियोके, स्पर्शसे तन क्यो जले ?
जबतक स्मरण प्रिय आपका, मनमे हिलोरे ले रहा !!

(२०)

जो बात छूटी हो उसे, मेरे हृदयसे पूछना !
इस पत्र लिखनेके बहुत—पहले हृदय है जा चुका !!

[श्री लक्ष्मणनारायण गर्दे कृत 'श्रीकृष्ण-चरित्र']

इस समय श्रीकृष्ण भगवान्‌की अवस्था २५ वर्षकी थी। यौवनका पूर्ण विकाश हो चला था। उन्होने अपने लिये एक स्वतन्त्र घर भी बनवा लिया था, पर यह गृह गृहिणीके बिना सूना ही मालूम होता था। बलरामका विवाह मथुरामें ही हो चुका था। उन्हे आनर्त्त-देशकी राज-कन्या रेवती ब्याही थी और इसी सम्बन्धके सुभीतेसे, श्रीकृष्ण और यादवोंने आनर्त्त-देशके समीप समुद्र तटपर अपना नगर बसाया था। श्रीकृष्णका विवाह देखनेके लिये सब-लोग उत्सुक हो रहे थे। श्रीकृष्णको भार्या भी ऐसी मिलनी चाहिये थी, जो श्रीकृष्णके सौन्दर्य, पराक्रम, बुद्धि और सौजन्यको शोभा देती। ऐसी तो एक रुक्मिणी ही थी। पर रुक्मिणीके साथ विवाह कैसे हो? क्षत्रिय-कन्याका विवाह तीन प्रकारसे ही हो सकता था, स्वयंवरसे, दानसे अथवा हरणसे। स्वयंवर तो रुक ही गया था। दानकी बात सम्भव नहीं थी; क्योंकि भीष्मक और उसका पुत्र रुक्मी दोनों ही जरासन्धके पक्षमें थे। रह गया हरण—सो इसमें किस समय क्या अनर्थ हो जायगा, इसका कोई ठिकाना नहीं। इसमें भी एक बातका विचार था। वह यह कि, यदि कन्याने मन-ही-मन किसीको पति मान लिया हो, तो ऐसी भार्या सम्भावितके कामकी नहीं हो सकती। इस प्रकार एक नही, हजारों ऐसी बातें थी, जिनसे यादवोंका मन उथल-पुथल हो रहा था। इतनेमें यह समाचार आया कि, जरासन्धके कहनेसे रुक्मिणीको

शिशुपालके साथ ब्याह देनेका निश्चय किया गया है और कुण्डिनपुरमें रुक्मिणीके विवाहोत्सवकी तैयारी बडे जोरोंसे हो रही है।

शिशुपाल और रुक्मिणीके विवाहका मुहूर्त भी निश्चित हो चुका और जरासन्ध आदि राजा-महाराजा भी कुण्डिनपुरमे आ एकत्र हुए। शिशुपालके पिता, राजा दमघोषने विवाहका निमन्त्रण श्रीकृष्ण तथा अन्य यादवोके पास भेजा। यह सब देख-सुनकर कृष्णको यह न सूझा कि, अब क्या करें और क्या न करें ?

श्रीकृष्णने पहली बारके स्वयंवरके ही दिन, रुक्मिणीको अपना मन दे दिया था। वह मन फिर वहाँसे हटाये हट नही सकता था। रुक्मिणीने भी श्रीकृष्णको अपना पति मान लिया था, यह पहले कहा ही जा चुका है। अत-एव रुक्मिणी अहर्निश कृष्णके ही ध्यानमें मग्न रहती थी। उसने लज्जा त्यागकर अपने माता-पितासे स्पष्ट ही कह दिया कि, मैं कमल-नयन, मदन-मोहनको छोड और किसीसे विवाह न करूँगी, पर उसके बडे भाई रुक्मीकी हठ बडी भारी थी। वह कृष्णको अपना शत्रु कहता और तरह-तरहसे उनकी निन्दा करता था। इससे रुक्मिणीका कृष्णके प्रति प्रेम कम न होकर बढने लगा। प्रेम ऐसी ही वस्तु है। इसे रोकनेका जितने जोरोंके साथ प्रयत्न कीजिये, उतने ही जोरोंसे यह सारे प्रतिबन्धोंको तोड़कर प्रवाहित होने लगता है।

ज्यों-ज्यों विवाहका दिन समीप आने लगा, त्यों-त्यों रुक्मिणीके प्राणोंकी व्यथा बढ़ने लगी। उसने माताको सावधान कर दिया कि, यदि कृष्णको छोड़ और किसीके साथ जबर्दस्ती मेरा विवास किया गया, तो मेरे प्राण न बचेंगे, पर उसकी सुनता कौन था ? रुक्मीके कठोर भाषणसे रुक्मिणीके नेत्र अश्रु-धारासे उत्तर देकर बन्द हो जाते थे। अन्तमें उसे एक उपाय सूझा। उसने सोचा कि भाई, बहन और माता-पितासे बढकर भी स्त्रीके लिये पति ही है। उसीकी शरणमें जाना चाहिये। यही सोचकर, रुक्मिणीने भक्ति, विनय और अनन्य भावसे भरा हुआ यह पत्र कृष्णको लिखा.—

प्रेम-पत्र

श्रुत्वा गुणान्भुवनसुन्दर शृण्वतां ते निर्विश्य कर्णविवरैर्हरतोऽङ्गतापम् ।
रूपं दृशां दृशिमतामखिलार्थलाभं त्वय्यच्युताऽऽविशति चित्तमपत्रतं मे ॥

का त्वा मुकुन्द महतीकुलशीलरूपविद्यावयोद्रविणधामभिरात्मतुल्यम् ।
धीरा पति कुलवती न वृणीत कन्या काले नृसिंह नरलोकमनोभिरामम् ॥

तन्मे भवान्खलु वृतः पतिरङ्ग जायामात्मार्पितश्च भवतोऽत्र विभो विधेहि ।
मा वीर भागमभिमर्शतु चैद्य आराद् गोमायुवन्मृगपतेर्वलिमम्बुजाक्ष ॥

पूर्तेष्टदत्तनियमव्रतदेवविप्रगुर्वर्चनादिभिरलं भगवान्परेशः ।
आराधितो यदि गदाग्रज एत्य पाणिं गृह्णातु मे न दमघोषसुतादयोऽन्ये ॥

श्वो भाविनी त्वमजितोद्वहनेविदर्भान् गुप्तः समेत्य पृतनापतिभिः परीतः ।
निर्मथ्य चैद्यमगधेन्द्रबलं प्रसह्य मां राक्षसेन विधिनोद्वह वीर्यशुल्कान् ॥

अन्तः पुरान्तरचरीमनिहत्य बन्धूंस्त्वामुद्वहे कथमिति प्रवदाम्युपायम् ।
पूर्वेद्युरस्ति महती कुलदेवियात्रा यस्यां बहिर्नवधूर्गिरिजामुपेयात् ॥

यस्यांघ्रिपङ्कजरजः स्नपनं महान्तो वाञ्छन्त्युमापतिरिवात्मतमोपहत्यै ।
यर्ह्यम्बुजाक्ष न लभेय भवत्प्रसादं जह्यामसून्व्रतकुशान् शतजन्मभिः स्यात् ॥

ब्राह्मण उवाच—इत्येते गुह्यसन्देशा यदुदेव मयाऽऽहृताः ।
विमृश्य कर्तुं यच्चात्र क्रियतां तदनन्तरम् ॥

—श्रीमद् भागवत दशम स्कन्ध उत्तरार्ध अ० ५२ ।

"हे त्रिभुवनसुन्दर, सुननेवालोंका शरीर-सन्ताप हरण करनेवाले तुम्हारे गुण और देखनेवालोंको सफल करनेवाले तुम्हारे रूपकी कीर्ति सुनकर ही मेरा निर्लज्ज मन तुम्हारे चरणारविन्दमें लिपट गया है। अब वह वहाँ से हटता ही नहीं। कुल, शील, रूप, विद्या, धन और तेज, इन गुणोंमें तुम्हारे सदृश तुम ही हो, ऐसे तुम्हारे ऊपर कौन उपवर-दुहिता बलि न जायगी? इसी लिये, प्रभो! मैंने तुम्हें अपना पति माना है, अपनी आत्मा तुम्हें अर्पण की है, इसमें कोई आश्चर्य नहीं। अब जो उचित है, उसे करनेमें विलम्ब न करो। नहीं तो, सिंहका शिकार जिस प्रकार शृङ्गाल ले जाय, उसी प्रकार यह दुष्ट शिशुपाल मुझे ले जायगा। यदि मैंने भक्ति-भावसे देवताओं, ऋषियों, गुरुजनों और परमात्माकी पूजा की होगी, तो तुम इस समय मेरी उपेक्षा न करोगे। यदि यह सोचो कि, रुक्मिणीको ले जानेसे उसके भाई-बन्धुओंको मारना पड़ेगा, तो विवाहके एक दिन पहले, हमारे कुल मे वधूको गिरिजाके दर्शनके निमित्त ले जाते हैं, उसी अवसरपर आकर तुम मुझे ले जाओ। हे पद्मनयन श्रीकृष्ण! यदि तुम मुझपर कृपा न करोगे, तो मैं मर जाऊँगी और जन्म-जन्म तुम्हारा ध्यान और व्रत करके तुम्हें प्रसन्न करूँगी।"

रुक्मिणीने एक विश्वास-पात्र आदमीके हाथ यह चिट्ठी देकर उसे द्वारकामें श्रीकृष्णके पास भेजा। श्रीकृष्ण रुक्मिणीका ही ध्यान कर रहे थे। रुक्मिणीके लिये उनके प्राण तरस रहे थे, पर कोई उपाय सूझता नहीं था। इतनेमें सेवकने आकर खबर दी, कि कुण्डिनपुरसे एक ब्राह्मण-देवता आये हैं। कृष्णने उन्हें सादर बुला, स्वय सिंहासनसे नीचे उतरकर उनका सत्कार किया और उन्हें उच्च आसनपर बैठाकर समाचार पूछा! उत्तरमे ब्राह्मणने श्रीकृष्ण के हाथमें वह चिट्ठी दे दी। रुक्मिणीका वह प्रेम-पत्र पढकर श्रीकृष्णका अन्त-करण उमड़ आया। उनके नेत्रोंसे आँसू गिरने लगे। रुक्मिणीकी अनन्य भक्ति देखकर आनन्दसे उनके रोंगटे खडे हो गये। उन्होंने पत्र पढ़ते ही निश्चय किया और ब्राह्मणसे कहा कि, मैं रुक्मिणीको इस दुःखसे अवश्य छुड़ाऊँगा

बन्दीका पत्र-व्यवहार

[रचयिता—श्री जगन्नाथजी मिश्र, गौड़ 'कमल']

प्रेमिकाकी ओरसे

इष्टदेव !

··· थी चाह—तुम्हारी चरण-धूलि मिल जाती !
निसन्देह यह नीरव यात्रा, आज सफल हो जाती !!

कभी मिलोगे यही सोचते, गया समय जीवनका !
चली अन्तमें बिखराकर, मैं प्रणय हृदय-मधुधनका !!

शून्य प्रेम-मन्दिर है मुझको, सता रहीं बेकलियाँ !
नाच रही हैं तरल तरंगों—सी ये अन्तिम घड़ियाँ !!

रख देती हूँ स्मृति-निकुञ्जमें, लिख हृदगत अभिलाषा !
रहकर हाय करूँ अब क्या मैं, दलित हुई सब आशा !!

आते क्या न जहाज आदि, इस ओर कभी हे प्यारे !
मेरी आतुरताके साक्षी, हैं नभतलके तारे !!

मुझसे तुम्हें विलग कर क्यों, ले गए क्रूर निर्मोही ?
ये अभागिनी मुझ अबलाके, वे वैभव-विद्रोही !

जो कुछ मैं लिखती हूँ, पढ़ते जाते धवल सुधाकर !
मिले न यदि यह पत्र उन्हींसे, लेना पूछ दयाकर !

किन्तु न होती आश मुझे, तुम पुनः यहाँ आओगे !
आओगे भी तो न प्रेमिका—को जगमे पाओगे !!
देश छुडाना आह ! किसीका, है निष्ठुरता भारी !
कैसे फूले और फलेंगे, ऐसे अत्याचारी !!
चली—चली अब है असह्य, वेदना अहा अनुरागी !
अन्तिम पत्र समाप्त कर रही···,

दासी,
—अधम अभागी

वन्दीकी ओरसे

प्रिय जीवनकी संगिनि !

·· ·· ·आज दिलाता हूँ, उस दिनकी याद !
जब हथकड़ियाँ पड़ी हाय ! अपराधी कहलानेके बाद !!
खिड़की खोल देखती थी तुम, सजल दृगोसे मेरी ओर।
मै वन्दी था मुझे मिला था, कारागृहका दण्ड कठोर ।।
संकेतोसे कभी-कभी मैं, देता था तुमको सन्तोष।
किन्तु अश्रुमे तुम डूबी थी, हृदय तुम्हारा था बेहोश ।।
खीच ले चले मुझे दूत, मै चला तुम्हारा ध्यान बिसार।
...सोचा वन्दी आज बनूँ, छेड़ूँगा फिर स्वतन्त्रता-तार ।।
है प्रभातका समय आ रहा, छिद्रोसे शुचि मन्द-समीर।
प्रिये ! तुम्हारी स्मृतिकी किरने, उतरी है जीवनके तीर ।।
बन्द यहाँ कारागृहमे मै, रहा यन्त्रणाओको भोग।
बिछी प्रतीक्षा-पथपर आँखे, कब आता सुखका संयोग ।।

प्रेम-देवि ! देखा निशीथमें, स्वप्न तुम्हारा मैं अभिराम ।
तुम योगिनि-सा वेश बनाकर, जपती हो नित मेरा नाम ॥
'तुम हो रमणी-रत्न' गूँजती, ध्वनि मानसमे बारम्बार ।
सम्बोधन योगिनि कह कैसे, करूँ हो रहा दुःख अपार ॥
अपराधी था उनके सम्मुख, करना चाहा मुझे हताश ।
कैद किया इससे क्या? क्या न,हृदय पाएगा कभी विकाश॥
तुम्हे ज्ञात है मेरे इस जीवनका, ललित लक्ष है दूर ।
वहीं पहुँचना है मुझको, चाहे शरीर हो चकनाचूर ॥
तुम न कभी अपराधी कहना, होगा मुझे आन्तरिक क्लेश ।
जिससे जीवन हो उत्फुल्लित, समझो वही सत्य उद्देश ॥
बनो पुजारिन स्वतन्त्रता-मन्दिरकी, कर भविष्यका ध्यान ।
बेड़ा होगा पार दिखाई, देगा सभी ओर कल्यान ॥
सतियोकी है शक्ति अनोखी, उन्हे विजय-कौशल है ज्ञात ।
करो यत्न खिल जाए जगमे, मृदु भावोका रम्य प्रभात ॥
मेरी चिन्ता करो न मैं हूँ, पुण्य-तपश्चर्या में लीन ।
कारागार तपोवन है मैं बन्दी हूँ, तो भी—'स्वाधीन' ॥
होगा मिलन भरोसा रखना, अब न करेगा समय विलम्ब ।
मै हूँ पास न इससे क्या ?सतियोंका है सतीत्व अवलम्ब ॥
हृदय भरा उद्गारोसे, लिखनी है बातें अभी अनेक ।
कितना लिखता जाऊँ ! बस,········

सर्वस्व तुम्हारा,
—बन्दी एक

[—श्री कृष्णदेव प्रसाद गौड़, एम० ए०
उर्फ 'बेढब' बनारसी]

......

१७—८—३८

प्राणाधार,

पत्र मिला, हृदय शीतल हुआ। जिसकी बाट देखनेमें आँखें ज्योतिहीन हो चली थी, वह कागजका टुकड़ा मिल गया। इसके लिये किसे धन्यवाद दूँ, आपको या ईश्वरको। सम्भवत एम० ए० की तैयारीमें जहाँ कविता-काननके फूलोंकी सुगन्धिमे हृदय रात दिन भीना रहता है, हमारी सुधि रह भी नही सकती थी। फिर वहाँ घरपर जो शेक्सपियर और शेलीमें पढ़ते होंगे, कालेज में उसे प्रत्यक्ष रूपसे देखनेका अवसर भी मिलता होगा। ऐसे आनन्दकी लहरोंपर जो झूला झूलता हो उसे एक सीधी-सादी स्त्रीका ध्यान भी कैसे आ सकता है; जिसमें शृङ्गारकी कला नही, बनावके लिये बुद्धि नही। ...... किताबें तो आपने बहुत-सी भेज दी हैं, इतनी कि यहाँ एक लाइब्रेरी बन सकती है। उसीको पढ़ रही हूँ। यदि यही याददाश्त है तब तो ईश्वर ही कुशल करें। अभी पत्रकी बातें भूल गये, कल मुझे भी भूल जायँगे। मैं तो पहले से जानती थी कि न तो आप पुस्तकें भेजेंगे, न पत्रिकाके लिए आपने लिखा होगा। मेरा अनुमान ठीक ही निकला। इसलिये उस सम्बन्धमे अब और कुछ लिखना मैं बेकार समझती हूँ। ×× किशोरीको भाई पैदा हुआ

है। देखनेमें बड़ा सुन्दर, गोल-मटोल-सा है। अभी सात आठ दिनका तो है मगर बड़े भावसे मुस्कराता है। उसका मुस्कयाना बड़ा सुन्दर लगता है। दसहराकी छुट्टीमे दर्शन देनेकी कृपा कीजियेगा। सिनेमा और संगिनियोके स्नेहमे दो-एक दिन गँवा मत दीजियेगा।

दासी

. .. ती

———

काशी

२—६—३८

प्रिये,

जिस प्रकारसे नेत्रोंके कटाक्षसे हृदयको जख्म भी मीठा मालूम होता है, उसी प्रकारसे तुम्हारे पत्रके व्यङ्ग भी शैम्पेनके समुंदरमें मुझे छोड देते है। तुम्हारी चीठी पढ़कर मुझे नशा हो जाता है। आबकारी विभागवाले यदि कही सुन पाएँगे तो तुम्हारे पत्रोपर भी लैसंस बैठा देंगे, ऐसा मुझे भय है। आरम्भसे लेकर अन्ततक प्रत्येक शब्द मादक है। फिर उसका उत्तर देनेके लिये होश कहाँ। बहक जाना स्वाभाविक है। हमें तो शेक्सपियर और शेली पढनेसे अधिक तुम्हारे पत्रोंके पढनेमे ही आनन्द आता है। रह गयी कालेजमें किसीको देखनेकी बात वह तुम्हे बता दूँ। हमारे कालेजमें और दर्जोंकी बात तो नही जानता, हमारे एम० ए०, क्लासमे एक रमणी पढती है। उन्होने भी अंग्रेजी ही ले रखी है मेरे दुर्भाग्यसे। जहाँतक रंगकी बात है, वह खराब नही है। काशमीरके साबुनमें सनलाइट साबुनका असर है। जो वहाँ पैदा होता है, सफेद हो जाता है। यह महिला भी काशमीरी है, इसलिये सफेद हैं। उनकी नाक ऐसी है जो उनके चेहरेपर बेकार है, यदि कहीं और होती तो आसानीसे खूँटीका काम दे सकती। कपोलोंसे अधपकी पावरोटीका धोखा मुझे अकसर हो जाता है जब चशमा उतार देता हूँ। कमरका घेरा सम्भवतः

उतना ही होगा जितनी इनकी लम्बाई। सारा शरीर ऐसा मालूम होता है मानो दो पैरोंपर जूसीका पीपा खड़ा है। यदि थोडा-सा मै और लम्बा होता तो वह मेरी कमरतक पहुँच जाती। अभी जहाँतक मैंने पढा है, न तो शेक्स-पियरने न मिल्टनने न शेलीने न कीट्सने किसी ऐसी सुन्दरीका वर्णन किया है। और न मैं ऐसा कलाकार हूँ कि ऐसी देवीपर मुग्ध हो जाऊँ। और फिर जब तुमसे तुलना करता हूँ, तब तो ऐसा मालूम पडता है कि यदि तुम सुन्दरतामे कंचन-जंघा हो तो वह गोबरकी ढेरी।

किताबें मैने नहीं भेजीं। मै स्वयं मेवामे लेकर देवीको अर्पण करूँगा। उसमे तो कुछ आनन्दका अनुभव होगा। डाकविभागका पियन अपने हाथोंसे तुम्हे ले जा करके पुस्तकें दें, यह मै कब सहन कर सकता हूँ। पत्रिकाओंमे मुझे 'सरस्वती' ही प्रिय है। उसीके लिये लिख भेजा है। वह तुम्हारी अपनी पत्रिका होगी। किशोरके भाईका हाल सुनकर बडी प्रसन्नता हुई।

तुम्हारे लिये मैने एक जारजेटकी साडी खरीद रखी है, वह स्वयं लाऊँगा और पहनाकर तसवीर उतारूँगा। एक-दो दिन खराब करनेको तो बात क्या मै एक दिन पहले ही वहाँ पहुँच आऊँगा। जबसे तुम्हारा पत्र मिला है तबसे हर जगह तुम्हारे ही पत्रके अक्षर तुम्हारी चंचल आँखोंकी तरह नाचते रहते हैं। ऐसी अवस्थामे सिनेमा देखनेके लिए दिल कहाँसे आएगा।

तुम्हारा केवल

लॉर्ड क्लाइवके प्रेम-पत्र

अनुवादक—श्री विश्वम्भरनाथजी कौशिक

[बंगालके सबसे पहले अंगरेज-गवर्नर लॉर्ड क्लाइवके घृणित व्यक्तिगत चरित्रका परिचय इतिहासके अनेक विद्यार्थियोंको नहीं है। नीचेके दो पत्र हम क्लाइवकी एक अंगरेजी जीवनीसे अक्षरशः अनुवाद करके दे रहे हैं। इन पत्रोंसे कई बातोंका परिचय मिलता है। एक यह कि क्लाइव व्यक्तिगत आचरणमें भी कितना भ्रष्ट एवं पतित था। दूसरा यह कि उस समय भारतमें इस तरहके अंगरेज भी मौजूद थे, जो क्लाइवके राजनीतिक कृत्योंको अन्याय और अत्याचार समझते थे। तीसरे यह कि भले घरोंकी अंगरेज-स्त्रियोंमें भी सतीत्व-रक्षाका भाव इतना ही प्रबल होता है, जितना कि संसारके किसी भी देशकी स्त्रियोंमें। चौथे यह कि वर्षों भारतमें रहने और नवाबोंके दरबारोंमें बैठनेके बाद भी क्लाइवको भारतीय भाषाओंका ज्ञान इतना अद्भुत था कि वह 'जादी' को पुरुष-वाचक और 'मिरजा' को स्त्री-वाचक समझता था। पाँचवें यह कि क्लाइवके इस तरहके पाप-प्रयत्नोंकी यह केवल एक छोटी-सी मिसाल थी, इत्यादि। उस पत्रको क्लाइवने रूपकके रूपमें लिखा था, जिसमें अपना नाम ज़ादी और पत्र पानेवाली महिलाका नाम मिरजा रक्खा था।

—अनुवादक]

कैरेकियाली कृत "लाइफ ऑफ क्लाइव" भाग एक, पृष्ठ ४४७ पर लिखा है :—

"एक अत्यन्त सुन्दर अङ्गरेज-महिलाकी ओर, जो अपने चरित्रके लिए प्रसिद्ध थी और जो आजकल इङ्गलिस्तानमें रहती है, क्लाइवका चित्त आकर्षित हुआ। उस महिलाको देखकर क्लाइवकी काम-वासना जाग्रत हुई। क्लाइव जानता था कि वह महिला अपने निष्कलंक चरित्रके लिए विख्यात

थी। स्वयं क्लाइव प्रतिष्ठित समझा जाता था और एक सम्माननीय ढङ्गसे रहता था, इसलिए वह जानता था कि उस महिलातक अपने हृदयके भावोंकी खबर पहुँचानेके लिए अत्यन्त सावधानी और गुप्त उपायोंकी आवश्यकता है। कम्पनीके मुलाजिमोंमें एक नौजवान अङ्गरेज था, जो सदा इस तरहके प्रेम-पत्रोंके पहुँचानेमे वफादारीके साथ लॉर्ड क्लाइवकी सहायता किया करता था। उस महिलाके साथ पत्र-व्यवहार करना भी इस अङ्गरेज मुलाजिमको ही सौपा गया। वह महिला बहुत समझदार और हाजिर-जबाब थी। ज्यों ही उसे इस बातका पता लगा कि लॉर्ड क्लाइव मेरे गुणोंके लिए कितना अधिक आदर रखता है और मुझे कितना अधिक प्यार करता है, उसने क्लाइवके प्रेम-प्रदर्शन और उसकी इच्छाओंको उपहासके साथ ठुकरा दिया।

"एक दिन प्रातःकाल उस महिलाने देखा कि उसके शृङ्गारकी मेजपर पूर्वीय शैलीमें लिखा हुआ निम्न-लिखित पत्र पड़ा हुआ था। मालूम होता है कि क्लाइवके चतुर दलालने उस महिलाके किसी चाकरको अपनी ओर कर लिया था और उस चाकर द्वारा वह पत्र उस मेजपर रखवा दिया गया था। इस पत्रमें लॉर्ड क्लाइवने रूपक बाँधकर अपने वीर-कृत्योंको और साथ ही उस महिलाकी ओर अपने प्रबल प्रेमको निम्न-लिखित शब्दोंमें प्रकट किया है :—

"जादोको आरम्भमें व्यापारके काममें नियुक्त किया गया था। उस काममें अत्यन्त धन-वैभव प्राप्त किया जा सकता था, किन्तु जादोमें युद्धके लिए स्वाभाविक योग्यता और असाधारण प्रवृत्ति मौजूद थी। इसलिए एक वीरके सदृश धन-वैभवका तिरस्कार करते हुए जादोने अपनी भीतरी प्रेरणासे उन वीरों और मनुष्य-जातिके उपकारकोंके यशस्वी जीवनमें प्रवेश किया, जोकि बादशाहों और कौमोंको विजय करके अपने पराजितोंको सुख और शान्ति प्रदान करते हैं। युद्धके मैदानमे जादोकी सबसे पहली सफलताका परिणाम यह हुआ कि उसने एक धन-सम्पन्न प्रान्त विजय कर लिया। इसके बाद

उसने एक युद्ध-प्रेमी और बलवान शत्रुके हाथोंसे एक महत्वपूर्ण दुर्ग विजय किया, जिसके द्वारा उसने अपने विजित प्रान्तको सुरक्षित कर लिया। यह दुर्ग एक तुच्छ अन्यायी नरेशका प्रबल दुर्ग था, जिसके जङ्गी जहाजी बेड़ोंने योरोप और एशियाके व्यापारको आपत्तिमें डाल रक्खा था। यह दुर्ग जादोकी विजयी सेनाके सामने न ठहर सका। जादोने शीघ्र ही उस स्थानको, जहाँपर कि एक निर्दय, असभ्य और विश्वासघातक नरेशने भयङ्कर हत्याकाण्ड मचाया था, फिरसे प्राप्त करके अपने देश-वासियोंकी निर्दय हत्याका बदला लिया। जादोने उस स्वेच्छाचारी, अन्यायी नरेशकी प्रबल सेनाको परास्तकर उसे तख्तसे उतार दिया। जादोके चित्तमें अपने लिए बादशाहतें प्राप्त करनेकी कोई इच्छा न थी, इसलिए इसके बाद उसने बादशाहतें प्रदान की। इस प्रकार वह एशियाका भाग्य-विधाता बन गया। जादोकी विजयकी कीर्त्ति गङ्गाके तटोंसे लेकर योरोपकी पश्चिमी सीमातक फैल गई। जादो फिर अपनी जन्म-भूमिको लौटा। वहाँपर जादोको यह देखकर सन्तोष हुआ कि उनलोगोंने, जिन्हें कि जादोने एक धन-सम्पन्न प्रायद्वीपका स्वामी बना दिया था, खुले-तौरपर जादोकी सेवाओंका आदर किया, और वहाँके अनुग्रहशील बादशाहने जादोको इनाम दिया। इसपर जादोने उदारताके साथ उस विशाल धनके समस्त सुखोंको तिलाञ्जलि देकर, जोकि उसने अपने व्यवहार और अपनी वीरतासे उपार्जन किया था, फिर भारत लौटकर अभागे देशी नरेशोंको उनके पैतृक राज्य वापस दिलाने और इन पूर्वीय प्रदेशोंमे, जहाँपर कि जादो इतनी बार विजय प्राप्त कर चुका था, स्थायी और गौरवान्वित शान्ति स्थापित करनेका निश्चय किया। किन्तु इन समस्त स्मरणीय वीर-कृत्योंके बाद और उनके कारण जादोके महान यश प्राप्त करनेके बाद, उच्च आत्माओंकी सर्वोच्च भावना अर्थात् प्रेमने जादोकी समस्त महत्वाकाङ्क्षाओंपर पानी फेर दिया। जादोने मिरजाको देखा है, और जबसे जादोने मिरजाका दिव्य मुखड़ा देखा है, तबसे जादोको एक क्षणके लिए भी सुख अथवा चैन नसीब नहीं हुआ। यद्यपि जादोके पास

धन और उसका यश इतना अधिक है कि शायद योरोप तथा एशियाके अन्दर अनेक सुन्दर स्त्रियाँ उससे प्रगाढ प्रेम दर्शानेको तैयार हो जाती, तथापि जादी-के हृदयमें किसी दूसरी स्त्रीके लिए अणुमात्र भी विचार अथवा स्थान नहीं है। जादीके समस्त मन, हृदय और आत्माके अन्दर प्रियतमा मिरजा ही मिरजा भरी हुई है। जादीके लिए मिरजा ही उसका विश्व है। यदि जादीको यह पता लग जाय कि वह प्रबल मोहिनी, अर्थात् मिरजा जादीकी प्रतिज्ञासे प्रसन्न है, तो जादी सृष्टिमें अपनेको सबसे अधिक भाग्यवान समझेगा और अपना समस्त धन और वैभव मिरजाके चरणोंपर अर्पण कर देगा। जादीके लिए मिरजा ही इस पृथ्वीपर सबसे बडी सुन्दरी है। जबतक जादीको मिरजा के अन्तिम निश्चयका पता नहीं लगता उसे विश्राम नहीं मिल सकता। प्रेमके मामलेमें सन्देह और शङ्काकी अवस्था इतनी अधिक कष्टकर होती है कि उसका वर्णन नहीं किया जा सकता। इसलिए जादी अपने प्रसंगा-पात्र मिरजा-से प्रार्थना करता है कि जादीकी अधीरताको देखते हुए वह इस पत्रका शीघ्र ही उत्तर दे। दयालु परमात्मा मिरजाके चित्तमें वह दया उत्पन्न करे कि मिरजा जादीकी सन्तप्त आत्माको फिरसे शान्ति प्रदान कर सके। जहाँपर आपको यह अप्रकट लेख मिले, वहीँपर इसका उत्तर रख दीजिए। उत्तर जादीके हाथोंमे सुरक्षित पहुँच जायगा।"

उस महिलाने तुरन्त अनुमान कर लिया कि इस पत्रका भेजनेवाला कौन है। उसने इस बातकी जाँच करना उचित न समझा कि जादीका यह पत्र, जिसमें उसने अपने प्रेम और यश दोनोंकी डींग हाँकी थी, मेरे सोनेके कमरे-में किस तरह पहुँच गया। उसने स्वभावत यह समझा कि जादीके किसी आदमीने मेरी किसी नौकरानीको रिशवत देकर अपनी ओर कर लिया है। उस महिलाके सतीत्वने उसे इस बातकी इजाजत न दी कि वह जादीके प्रेमका आदर करे। जादीके इन प्रेम दर्शनोंसे छुटकारा पानेके लिए और इस विचारसे कि जादी मेरे चुप रहनेका यह अर्थ न समझे कि मैं उसके प्रेमको स्वीकार

करनेके लिए तैयार हूँ, उस महिलाने साहसके साथ निम्नलिखित पत्र उत्तरमें भेजा'—

"मिरजा ईमानदार, परिश्रमी और प्रतिष्ठित माता-पिताकी लड़की है। उसके माता-पिताने अपनी आँखोंके सामने उसे समस्त आवश्यक सद्गुणोंकी शिक्षा दी है। मिरजा जादीके पूर्वीय, अत्युक्तिपूर्ण पत्रका उत्तर देनेका कष्ट न उठाती, चाहे जादीका पद कितना भी उच्च क्यों न हो; किन्तु मिरजाको यह विश्वास न हुआ कि जादी मिरजाके उत्तर न देनेका यह अर्थ समझ लेगा वा नही कि मिरजा जादीके प्रेम-प्रदर्शन और धृष्टता को घृणाकी दृष्टिसे देखती है। मिरजाको इस बातकी कोई आकांक्षा नही है कि वह अपने पिताकी जीविका, अर्थात् वाणिज्य व्यापारसे बढ़कर इस तरहके किसी नीच कामकी ओर जाय। मिरजा उस धनके प्रलोभनोको घृणित समझती है, जो धन कि दूसरोंको लूट कर और बर्बाद करके कमाया गया हो, विशेषकर जबकि वह धन निर्दोष स्त्रियोंको बहकाने और उनके निष्कलङ्क चरित्रको कलङ्कित करनेके लिए काममें लाया जाय। यदि जादीकी क्रियात्मक वुद्धि और उसका युद्ध-कौशल अब लड़ाई के मैदानमें और अधिक नही चमक सकता, तो उसे चाहिए कि शान्तिके उद्योगोको उन्नति दे और शान्तिसे शासन करके करोड़ों दुखित जनताको फिर से शान्ति और समृद्धि प्रदान करे। सच्चे वीर वास्तवमें वे है, जो मनुष्य-जातिके मित्र हैं, उसके नाशक नही। यदि जादी वर्त्तमान मानव-समाज और उसकी भावी सन्ततिकी दृष्टिमे उनका मित्र दिखाई देना चाहता हैं, तो मेरी रायमें उसे चाहिए कि वह अपने उन कृत्योंका इतिहास, जिनकी वह डीग हाँकता है, अपने हाथसे लिखे। कायर देशी नरेशोंको वश में किया गया, उन्हें धोखा दिया गया और अन्याय द्वारा उन्हें गद्दीसे उतार दिया गया। निर्दय लुटेरोंने उनकी दुखित प्रजाको सताया। अब चाहिए कि उनके देशकी जिन पैदावारों पर गैरोंने अपना अनन्य अधिकार जमा लिया है, वे फिरसे देशवासियोंको दे दी जायें निरजा जादीके उन भयङ्कर कृत्योंको दुहरानेका प्रयत्न

न करेगी, जिनमें कि जन-संहार, बर्बादी, एक अन्यायीको गद्दीसे उतारकर उसकी जगह दूसरे अन्यायीको गद्दीपर बैठाना इत्यादि शामिल हैं। समय ही इस बातको साबित कर सकेगा कि योरोप और एशियामें जादीकी कीर्त्ति 'न्याय द्वारा प्राप्त की गई हैं अथवा अन्याय द्वारा,' और जादीके संग्राम मानव-जातिके अधिकारोंका समर्थन करनेके लिए लड़े गए हैं अथवा अपनी धन-पिपासा और महत्वाकाङ्क्षाको शान्त करनेके लिए। रही उपाधियों और सम्मानकी बात, सो ये चीजें इतनी अधिक बार अयोग्य मनुष्योंको प्रदान की जाती हैं कि उन्हें सच्ची योग्यता और न्यायपरताका पारितोषिक नही कह जा सकता। जादीको चाहिए कि नि.स्वार्थ सेवा और दयालुता द्वारा भारतवासियोको इस बातका विश्वास दिलावे कि वह उनको दुख देनेके लिए नहीं, बल्कि उनकी रक्षा करनेके लिए आया था। यदि भारत-वासी क्षणिक शान्तिका सुख भोग रहे हैं, तो उसके साथ ही वे न्याय-विरुद्ध लूट-खसोट और दुष्कालके भयङ्कर कष्टोंका भी अनुभव कर रहे हैं। जादीको चाहिए कि वह अपनी विजयोकी छायामे स्वयं ही आनन्दसे बैठे और प्रतिष्ठित घरानोंको अपमानित और कलङ्कित करनेका विचार न करे। सच्चा और हार्दिक प्रेम वास्तवमे उच्च आत्माओंकी एक वासना है, किन्तु वह पाशविक वासना नही जो कि निर्दोष और सच्चरित्र लोगोको चरित्र-भ्रष्ट करनेका अपनेको अधिकारी समझती है। मिरजा चाहती है कि जादी पूर्ववत् आनन्दसे रहे और फिर कभी इस तरहके एक व्यक्तिका अपमान न करे, जो अपने सदाचारके लिए जादीके आदरका पात्र है। जादीके धन और उसकी शानसे चकाचौध हो जाना वेश्यायोंका काम है, मिरजाको जादी और उसके प्रेम-प्रदर्शन, दोनों से हार्दिक घृणा है।"

क्लाइवकी जीवनी लिखनेवाला अङ्गरेज लेखक, जो उसका समकालीन था, लिखता है:—

"इस उत्तरने लॉर्ड क्लाइवके पत्र-व्यवहारको समाप्त कर दिया। फिर कभी उसने उस महिलाको पत्र लिखनेका प्रयत्न न किया। रूपकके रूपमें यह

प्रेमपत्र और उस महिलाका जबाब दोनो मुझे उस महिलाके एक घनिष्ठ मित्रने दिए है और उसकी इजाजतसे दिए है। यह घटना सन् १७६६ के प्रारम्भ की है। यदि पाठकको इन पत्रोकी सत्यतापर कोई सन्देह हो, तो वह महिला इस समय हैनोवर स्क्वेयर, सेण्ट जॉर्जके पैरिसमे रहती है। यदि आवश्यकता हो तो अपने मित्र द्वारा वह इस बातको तसदीक करनेके लिए तैयार है कि जो पत्रोत्तर मैने ऊपर दिया है, वह मूल पत्रोकी ठीक-ठीक नकल है।"

वङ्गालके अन्दर गोरी और काली दोनो रङ्गकी स्त्रियोकी अनेक ऐसी मिसालें मौजूद थी, जिन्होंने अपमानके साथ क्लाइवके प्रेम-प्रदर्शनको अस्वीकार किया और उसे ससारके सामने उपहासका पात्र बनाया।"

[लेखक— देवनारायण द्विवेदी]

(१)

ता० ३—६—३८
काशी

मेरी हृदयेश्वरी,

आज मैं फिर अपने हृदयकी बिकलतासे विवश होकर तुम्हें यह पत्र लिख रहा हूँ। हमेशाकी भाँति आज भी मेरे दिलकी यही धारणा है कि तुम मेरे पत्रका उत्तर अवश्य दोगी; किन्तु पिछली वारकी भाँति इस वारभी मेरे हृदयको उस धारणाकी तहमें इस वातकी स्पष्ट झलक दिखायी पड़ रही है कि

तुम मेरे पत्रका उत्तर कदापि न दोगी—क्योंकि तुम रूठी हो। मेरे हृदयकी तन्त्री वज रही है कि तुम रूठी नहीं हो, मान किये वैठी हो; किन्तु एकाधिक तन्त्रियाँ तुमुल ध्वनिसे उस एक तन्त्रिके स्वरको अपनेमे विलीन करके उच्च स्वरमे वज रही हैं कि नहीं, तुम मान किये नहीं वैठी हो, रूठी हो। जो भी हो, इतना तो मै अच्छी तरह जानता हूँ कि अभी भी तुम्हारे हृदयके किसी कोनेमे मेरी मधुर स्मृति शेप है। उसीके फल-स्वरूप पत्र न लिखनेका दृढ संकल्प करनेपर भी उस संकल्पको तोड़कर मुझे यह पत्र लिखनेके लिए विवश होना पड रहा है।

याद है न तुम्हे अपने वे शब्द जिन्हे तुमने जाते समय कहा था? तुमने कहा था कि 'अवतक मेरा भाव तुम्हारी ओरसे जरा भी नहीं वदला था, पर अब तुमने जवर्दस्ती उसे अपनेमे वदल दिया।' क्या तुम अपने हृदयपर हाथ रखकर कह सकती हो कि मैंने तुम्हारा भाव वदल दिया? क्या मै इतना अनाडी हूँ कि अपने ही हाथसे अपने पैरमें कुल्हाडी मारूँगा? मेरी रानी! रोषमें आकर मुझपर अन्याय न करो। वे दिन याद है जव तुम मेरे लिए करवटें वदलना भी मुश्किल कर देती थी और करवट वदलते ही मूक भाषामे सूचित करती थी 'मेरे पास तुम्हारा दिल नहीं लगता, इसीसे तुम मुँह फेर लिया करते हो?' मेरे जीवनकी वे सुनहली घडीयाँ थी जव मुझे जरा-सी नींद आतेही तुम मानिनी बनकर आँसू वहाने लग जाती थी और कसमे दिलाकर वहुत पूछनेपर कहती थी, 'मेरे पास आते ही तुम्हें नींद आने लगती है—वैसे हो तो रात-भर जागरण करो।' मै तुम्हारे उस भोलेपनको, लज्जासे ढँके हुए उस शान्त और गम्भीर प्रेमको आमरण नहीं भूल सकता। ओफ्! उस समय तुम अपने प्रेमको प्रकट होने देनेमें भी लज्जित होती थी। मेरे सोजाने पर तुम्हारा मेरे वालोंपर कघी फेरना, मुँहपर वडे यत्नसे क्रीम लगाना, चकोरीकी भाँति पुलकित नेत्रोसे मेरे मुख की ओर देखते रहना उसका द्योतक था। तुम्हारे कोमल करोंके स्पर्शसे मेरी नींद खुल जाती थी

और मैं सोया हुआ-सा पड़ा रहकर तुम्हारे प्रत्येक कार्यको बड़े ध्यानसे देखकर मन-ही मन आनन्द-सागरमें डूबा करता था।

जानती हो तुम्हारा प्रेम इतना क्यों था और मैं आनन्द विह्वल क्यों रहा करता था? इसलिए कि हम दोनोके हृदयमें सन्देह नहीं था; एक दूसरेका आकर्षण, हृदयस्थ प्रगाढ़ प्रेमकी ओर था। 'हित अनहित पसु पच्छिउ जाना।' मनुष्य अपना मनोगत भाव न वाणी द्वारा प्रकट करता है और न अन्य किसी प्रकारसे व्यक्त होने देता है; किन्तु दूसरा मनुष्य अनायास ही उसके हृदयका गुप्त भाव ताड़ जाता है। यही तो आत्मैक्यका प्रभाव है; यही तो प्राकाम्य शक्ति है।

किन्तु हाय! आज वही तुम मुझपर झूठा सन्देह करके तनी बैठी हो। मेरे और अपने सुखमय स्वर्गीय जीवनको मिट्टीमें मिला रही हो। किसलिए? इसलिए कि उस दिन मैं रेखासे हँसकर बातें करता हुआ थोड़ी दूरतक उसके साथ चला गया था। उस दृश्यको तुमने खिड़कीसे देख लिया था। इतनी-सी बात ही सारे अनर्थकी जड़ हो गयी। उसी दिनसे तुम्हारे हृदयका भाव मेरे प्रति बदल गया। बातोंमें कड़वाहट आ गयी। बोलीमें असह्य गम्भीरता आ गयी। व्यवहारमें तनाव हो गया। उच्छृंखल अवस्था होनेके कारण कुछ दिनोके लिए उसका प्रभाव मेरे हृदयपर भी पड़ गया था। मै भी तुमसे कुछ खिच-सा गया था। परिणाम-स्वरूप दोनोके हृदयमें अन्तर पड़ता गया। उसके बाद तो मैं रेखाकी परछाईंसे भी बचकर रहने लगा, पर उसका फल कुछ न हुआ। कुछ दिन बाद ही तुम अपने पिताके साथ मायके चली गयी, और आज यहाँतक नौबत आ गयी कि मेरे पत्रोंका उत्तर देना भी तुम अपनी शानके खिलाफ समझ रही हो।

इतनेपर भी मैंने, यदाकदा ही सही—पत्र भेजना जारी रखा है। यह इसलिए कि तुम्हारे जानेके बाद मैंने गम्भीरतापूर्वक आपसके वैमनस्यपर विचार किया और इस परिणामपर पहुँचा कि हमलोग जीवन-सुलभ मार्गको

छोड़कर ऐसे कंटकाकीर्ण मार्गसे आगे बढे जा रहे हैं कि कुछ ही दूर और आगे जानेपर हम विकट झाड़ीमें फँस जायँगे और उससे निस्तार पाना कठिन ही नहीं एक प्रकारसे असम्भव-सा हो जायगा। जीवन तो हमदोनोंको एक साथ रहकर ही बिताना पडेगा—चाहे उसे आनन्द-पूर्वक वितावें अथवा कुढ-कुढ़कर। ऐसी दशामें हम क्यों न हृदयकी मैलको धो बहावें? तुमसे मेरा यही अनुरोध है कि तुम अपने दिलके झूठे शकको निकाल बाहर कर दो। इससे अहितके बदले हित नहीं हो सकता। यदि तुमने अपना शक तुरन्त ही मुझसे कह दिया होता, तो सम्भवत मैं तुम्हारा शक दूर कर देता और तिलका पहाड़ न हो पाता। सुन्दरी युवतीसे किसी युवकका मौका आनेपर एक बार हँसकर बोल देना इतना बड़ा गुनाह नहीं है कि उसके लिए दाम्पत्य जीवन ही बर्बाद कर दिया जाय। मेरी बातोंको ध्यानसे पढो और शान्तभावसे उसपर विचार करो। इस प्रकार तन बैठना तो एक प्रकारसे चुनौती देना है जिसका परिणाम हम दोनोंके लिए अच्छा नहीं हो सकता। तुम्हारे रूठनेका तो मेरी समझसे यही अभिप्राय होगा कि इससे मैं अन्य किसी युवतीके प्रेममें न फँसकर फिर तुम्हारे निकट आ जाऊँ न कि यह कि मैं तुमसे दूर हो जाऊँ। किन्तु ऐसा समझना तुम्हारी भूल है। मैं दृढताके साथ कहूँगा कि तुमने गलत रास्ता अख्तियार किया है। किसीके हृदयको अपनी ओर आकर्षित करनेकी शक्ति प्रेममें है न कि व्यर्थ रूठनेमें। 'नखरा राह राहको नीको।' यदि तुम्हें शक ही हुआ तो तुम्हें चाहिए था कि कुछ दिनोंतक पूर्ण सतर्कता-से मेरी गति-विधिपर लक्ष्य रखती, इतनी जल्दबाजीसे काम न लेती। मेरा विश्वास है कि वैसा करनेपर तुम्हारा शक अपने-आप ही दूर हो जाता और हमदोनों व्यर्थ ही एक दूसरेके लिए इतना अधिक मानसिक कष्ट न भोगते।

इसलिए मेरे कहनेसे तुम अब भी चेत जाओ। भेद-भावको मिटाकर पूर्ववत् हो जाओ। अभी हमलोगोंमें बिगाड़ ही किस बातका हुआ है। सुबह-का भूला हुआ यदि शामतक घर आ तो उसे भूला हुआ नहीं कहा जा

सकता। आशा है कि तुम मेरी बातोंपर विचार करके अपने तथा मेरे उत्तप्त हृदयको शीतल करनेका प्रयत्न करोगी। अन्तमें मैं ईश्वरको साक्षी देकर फिर कहता हूँ कि मैं निष्कलंक हूँ और तुम्हारा शक झूठा है। तुमने मेरे हृदयकी रमणीक प्रेम-बाटिकाको उजाड़कर क्या फल पाया? मैं तो समझता था कि मेरे तुम्हारे बीचके प्रेममें आदान-प्रदानका भाव है ही नहीं। किन्तु यह तुमने क्या किया? क्या प्रत्यक्ष सत्य बातपर भी एक बार विश्वास न करना तुम्हारे प्रेमके लिए बडप्पनकी बात न होती? किन्तु हरि इच्छा बलवान है, तुम्हारा कोई दोष नहीं। मेरे ऐसे भाग्य कहाँ कि मैं अपनी अर्द्धाङ्गिनीका घृणा-पात्र न बन सकूँ।

तुम्हारा वही

......म।

---

(२)

कानपुर

६—६—३८

प्राणनाथ,

तुम्हारा ३—६—३८ का पत्र मिला। इसके पहलेके पत्र भी यथा-समय मिलते गये थे; किन्तु अबतक मैं इसी उधेड़-बुनमे लगी रही कि उत्तर में क्या लिखूँ। कभी जीमें आता था कि खूब फटकारकर पत्र लिखूँ; किन्तु लिखने बैठनेपर उसमें मैं अपनेको कमजोर पाती थी। कभी सोचती थी अपने हृदयका आँसू तुम्हारे पासतक पहुँचाऊँगी, किन्तु उसमें भी मैं असफल ही रहती थी। इधर दो-तीन दिनसे मैं एक परिणामपर पहुँची थी और तुम्हें पत्र लिखनेवाली थी, इतनेहीमें तुम्हारा यह पत्र भी आ पहुँचा। मैंने अच्छी तरह सोचकर देखा, तुम्हारे बिना मुझे सुख और शान्ति कहीं नहीं मिल सकती। इसीसे मैं चाहती थी कि यदि मुझसे कुछ अपराध हुआ हो तो उसके लिए

तुमसे क्षमा माँगूँ। किन्तु अब तो उसकी आवश्यकता ही नहीं रही। क्षमा-प्रार्थिनी बननेके पहले ही मुझे इस पत्रमें क्षमादान मिल गया।

हाँ, एक बात मेरी समझमें नहीं आयी, यदि प्राकाम्य शक्तिसे मनुष्य दूसरेके हृदयका भाव समझ ही लेता है, तो मैं तुम्हारे दिलका भाव क्यों नहीं समझ सकी? क्यों झूठा सन्देह कर बैठी? प्राणनाथ, सब दोष मेरा ही नहीं है। तुम्हीं बतलाओ, यदि तुम मेरे स्थानपर होते तो उस समय क्या निश्चय करते? मानती हूँ कि आदर्श प्रेममें आदान-प्रदानका भाव रहना ठीक नहीं; क्योंकि प्रेम स्वर्गीय पदार्थ है। उसमें तो यह भाव होना चाहिए कि तुम चाहो या न चाहो, पर मेरा प्रेम तुमपर ज्योंका-त्यों रहेगा। किन्तु विनिमयका भाव तो तुम्हारे ही प्रेममें दिखायी पड़ा—मेरे नहीं। यदि ऐसा न होता तो मेरे रूठनेपर तुम भी न रूठ जाते। मेरा रूठना तो स्वाभाविक था। अपने प्राणको निकलते देखकर किसे दुःख न होगा? अपने सर्वस्वको लुटते देखकर किसकी धैर्यच्युति न होगी? मुझे तुम्हारे चरित्र और स्वभावकी पवित्रतापर पूर्ण विश्वास था, किन्तु जब मैंने अपने प्राचीन इतिहासपर नजर डाली और बड़े-बड़े तपस्वी ऋषि-महर्षियोंको अपनी सारी तपस्याकी आहुति देकर मेनका, उर्वसी आदि अप्सराओंके चरणोंपर लोटते पाया, तब तो मेरा विश्वास निमेष-मात्रमें टूट गया। जो भी हो, अब गड़ा मुर्दा उखाड़नेसे कोई लाभ नहीं। यदि तुम मेरी गलतियोंको भूलकर अपने पत्रमें मेरी शंकाका समाधान करोगे तो मैं अपना अहोभाग्य समझूँगी। क्या मैं आशा करूँ कि शीघ्र अपने पास बुलाकर शान्ति दोगे? कब आओगे? दर्शन किये बिना हृदयका दुःख पूर्णतया दूर न होगा।

---

(३)

ता० १०—६—३८
सन्धाकाल ५॥ बजे
बनारस

प्राणेश्वरी,

तुम्हारे पत्रने मुझे उबार लिया। मै पत्रोत्तर पानेकी आशा छोड़ चुका था और भावी कर्त्तव्य स्थिर कर चुका था। तुम्हारा घृणापात्र बनकर जीवन व्यतीत करनेकी अपेक्षा तुम्हें पानेके लिए जीवनकी आहुति दे देना मैं श्रेयस्कर समझता था। किन्तु जान पड़ता है कि विधाताको वह स्वीकार नही था। इसीसे तुम्हारा बिचार हठात् पलट गया है और तुम स्नेह-सिंचित पत्र लिखनेके लिए बाध्य हुई हो।

प्राकाम्यके सम्बन्धमें तुमने जो प्रश्न किया है, वह बहुत ही उचित है। बात यह है कि मनुष्य बुद्धिद्वारा आविष्कृत वस्तुओंका सहारा न लेकर अपनी इन्द्रियोंसे जितना ही अधिक काम लेता है, प्राकाम्यकी उतनी ही अधिकता होती जाती है। यही कारण है कि यह शक्ति मनुष्यकी अपेक्षा पशुओंमें कहीं अधिक है। तुमने मुझे रेखाके साथ हँसकर बाते करते देखा, तुम्हारा दिमाग घूम गया। उस समय तुमने बुद्धिसे जरा भी काम नही लिया। क्रोधपर विजय करके शान्ति-पूर्वक उसे समझनेकी चेष्टा नही की। इसीसे तुम्हें धोखा हुआ। क्रोध और ईर्ष्याने तुम्हें मेरे दिलका भाव समझने नहीं दिया। जिन वस्तुओंसे यह शक्ति प्राप्त हुआ करती है, वे वस्तुएँ ही उस समय तुम्हारे भीतरसे निकल गयी थी। तपस्वियोंमें यह शक्ति बहुत अधिक होती है; वे दूसरोंके दिलकी बातें बहुत जल्द और अधिक स्पष्ट रीतिसे जान लेते है। क्यों? इसलिए कि उनका अन्तःकरण पवित्र रहता है। वे क्रोधादि शत्रुओंको अपने पास जल्द फटकने नही देते। आशा है कि अब तुम इस गम्भीर विषयको अच्छी तरह समझ जाओगी। मैं तुमसे खिंच गया था; किन्तु जब

मैंने यह जाननेकी चेष्टा की कि तुम मुझपर क्यों नाराज हो, तो फौरन ही मुझे सारी बातें मालूम हो गयी। यदि मैं उसे जाननेकी चेष्टा न करता तो मै भी तुम्हारी ही तरह अन्धकारमें पड़ा रहता। अस्तु;

तुमने जो यह पत्र भेजकर मेरे हृदयकी व्यथाको दूर कर दिया,है, उसके लिए मैं तुम्हारा चिरऋणी रहूँगा। इतने दिनोंतक मुझपर कैसी बीती है, शब्दोंद्वारा व्यक्त करनेमें असमर्थ हूँ। इस समय मेरा हृदय भी तुम्हारी ही तरह मिलनेके लिए अधीर हो रहा है। एक-एक क्षण युगके समान बीत रहा है। यदि यह पत्र ठीक समयपर तुम्हें मिला तो उसके चौबीस घंटेके भीतर हीं मैं भी तुम्हें लेनेके लिए तुम्हारे पास पहुँच जाऊँगा। ठीक है न? परमात्मा सब अच्छेहीके लिए करते हैं। इस सम्मिलनमें हमलोगोंको जो अपूर्व आनन्द आवेगा, वह शायद वैसे न आता। वास्तवमें जीवनमें घटनाओंका सघात प्राप्त हुए बिना जीवनमें सजीवता नहीं आती। अस्तु। असीम आनन्दका भार वहन करनेके लिए तैयार हो जाओ। मैं भी तैयारी कर रहा हूँ।

तुम्हारा

....म।
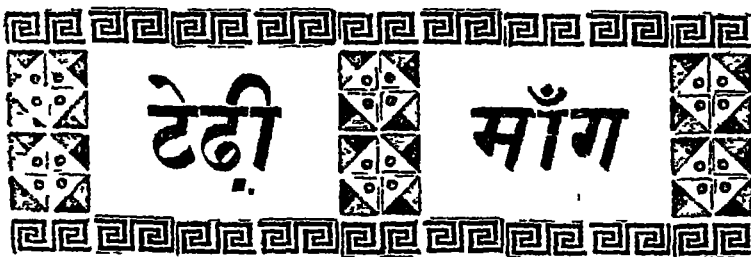
[लेखक—अन्नपूर्णानन्दजी]

प्रिये!

इसके पहलेके पत्रमें मैंने तुम्हे क्या लिखा था? प्राणेश्वरी या प्राणाधिके? भूल गया। खैर इतना याद है कि इस बार प्यारी प्राणवल्लभेकी थी;

पर लिखता हूँ प्रिये। मुझे दस हाथ लम्बा प्यारका शब्द पसन्द नहीं। तुम भी मुझे प्राणवल्लभ न लिखा करो। जरा वल्लभका तुक मिलाकर देखो। शलभ, वृषभ, रासभ, बस ऐसे ही शब्द मिलेंगे। मारो गोली! सबसे अच्छा प्राणप्यारे।

हाँ, प्रेमसे लबालब कोई लम्बा पत्र अब लिखना तो पेजोंमे आलपीन मत लगा देना। इस बार तुम्हारा पत्र पढ़कर छातीसे लगाया तो आलपीन चुभ गयी।

सोचता हूँ तुम्हारे खत सब लौटा दूँ। उनके पारायणमें बड़ा समय लगता है। कम्बख्त किताबोंको कब पढ़ूँ जिन्हें पढ़कर पास होना है।

गत दिसम्बरमें घरवालोंकी चोरीसे मैंने तुम्हारी तसवीर खिचायी थी। तुम्हारे २॥) में अपने ॥) मिलाकर पूरे तीन रुपये उस फोटोग्राफरको मैंने दिये थे। याद है न? पर यह न जानती होगी कि उस लुटेरे फ़ोटोग्राफ़रने इधर तीन महीनेमें तीन बार करके छः रुपये मेरे और ऐंठ लिये। जब उसे पान-पत्तेके लिये दो रुपयोंकी कमी होती है मुझे खत लिखता है कि भेज दीजिये, नहीं तो आपके बाबूजीसे कह दूँगा कि आपने अपनी बीबीकी तसवीर खिचायी है। मैं धीरेसे दो रुपये उसके नाम रवाना कर देता हूँ। क्या करूँ, जानती हो, बाबूजी कैसे मटियाफूस विचारोंके आदमी हैं; कहेंगे कि लड़केने कुलकी नाक काट ली। जो बापने नहीं किया, दादाने नहीं किया, परदादाने नहीं किया—सो इसने कर डाला।

खैर, उन तसवीरोंमेंसे दो मेरे पास भेज दो। दो जो मैं अपने साथ लाया था खर्च हो गयी। कैसे? एक तो मैं अपने हाथमें लिये हुए एक दिन सो गया। सुबह उस फोटोकी ऐसी गत बन गयी थी जैसे बरसों ऐरावतके अरदबमें पड़ा रह गया हो। जान पड़ता था कि कई सहस्र झुर्रियोंको एक स्थानपर बटोरकर उनका फोटो ले लिया गया है।

दूसरी तसवीर यहीं बोर्डिंगमें मेरे एक साथीके हाथ लग गयी। उस

नालायकने उसकी पुश्तपर एक कविता लिखी और लिखकर सारे बोर्डिंगको सुनाया। ज़रा तुम भी बानगी देखो—

दैवी गति, अनीति अजगैबी।
सखि ! तेरा पति अतिशय ऐबी॥
हूर परी-सी तुम, वह हौआ।
तुम कलकंठी, है वह कौआ॥
वह निमकौड़ी, तुम अंगूर।
तुम दिवाङ्गना, वह लंगूर॥
हाय करैं देखैं जो जोड़ी।
कोसैं विधिकी बुद्धि निगोड़ी॥

पूरा सुनकर क्या करोगी। इसी तरहकी बहुत-सी वाही-तबाही थी। मैंने उस लड़केको कई घूँसे लगाये—कुछ तो उनमे काफ़ी वज़नी थे—पर उससे होता क्या है। तबतक तो सौसे अधिक लड़कोंको पूरी कविता कण्ठस्थ हो चुकी थी। सबको लगानेके लिये इतने घूँसे कहाँ से लाता। सहस्रबाहुके लिये भी यह एक समस्या होती, मैं तो मै ही हूँ।

एक बात बहुत जरूरी लिखनेकी सोचा था। हाँ, याद पड गया। तुम अपनी माँग बिल्कुल बीचसे निकालती हो। मैं चाहता हूँ कि जरा बीचसे हटकर, एक बग़लसे निकाला करो। यो तो तुम अपने बाल चाहे जैसे बाँधो हर हालतमें वाह-वाह है। सच पूछो तो तुम्हारे खुले बालोंकी भी एक निराली ही छटा होती है। पर माँग एक दिन ज़रा एक किनारेसे निकालो तो मैं देखूँ कैसा लगता है। तुम्हारी शोभाका यह मदिर संस्करण देखते ही बनेगा। पर आँखे ठहरेंगी तब तो देखूँगा। लेकिन तुम्हे इससे क्या। तुम मेरा मन रख देना। भला न ! -

पर मैं अब भी यह माननेके लिये तैयार नही हूँ कि तुम्हारी चोटीमें फालसई फ़ीता उन्नाबीसे ज्याद. अच्छा लगता है। नाहक तुमने उस दिन

मुझसे बीस मिनटतक बहस किया। वह तो कहो कि मैंने तुम्हारे होठोंपर कसकर एक चुटकी काट ली, नही तो न जानें कितने बीस मिनट तुम्हारी बहस और चलती। तुम्हारे पिताजी तो कोई इतने कट्टर आर्य-समाजी भी नही हैं, फिर तुम्हे ज़रा-ज़रा-सी बातपर इतना बहस करना किसने सिखाया? ख़ैरियत है कि भगवानने आवाज़ ऐसी मीठी, ऐसी मुलायम दी है कि उन सारी बहसोंको भी मैं शर्बतकी तरह घुट-घुट पी जाता हूँ।

ख़ैर, अब में असली बातपर आता हूँ। कलका ज़िक्र है। मैं अपने कमरेमें बैठा पढ़-सा रहा था कि तुम्हारे बडे भाई साहब आ धमके—याने पधारे। मैने काफ़ी आवभगत की। मै क्या जानता था कि मेरा गला रेतने आये हैं। इधर-उधरके गपोडेके बाद कहने लगे कि पचीस तारीख़को मैं घर जाते समय लल्लीको भी तुम्हारे यहाँ से विदा कराता जाऊँगा।

यह सुनना था कि मुझे तो जैसे काठ मार गया। सारी आई-बाई पच गयी। २७ ता० से मेरी छुट्टी शुरू होगी, मै तीरका छूटा-सा भागता हुआ घर पहुँचूँगा, और आप उसके दो दिन पहले ही पीहर चल देंगी। यह खूब! भाई साहबने कह दिया और मैने मान लिया!! मै काठका उल्लू हूँ न कि तुम्हे जानेकी अनुमति दे दूँगा। मै घर आऊँगा झक मारनेके लिये, क्यों? तुम्हारे भाई साहबकी अक्ल चरने चली गयी है। मैंने उनका लिहाज़ किया, कुछ बोला नही. पर अपना मुँह मैने इस तरह और इतनी देरतक विचकाया कि उनकी चरती हुई अक्ल भी अपने ठिकाने लौट आयी। बात फेरकर वे चलते बने।

अब तुमसे यह कहना है कि भाई साहब अगर इसपर भी न मानें और तुम्हें विदा कराने वहाँ पहुँच ही जायँ तो तुम जाना मत। हीला करना, बहाना करना, सत्याग्रह करना, फ़ौजदारी करना, पर जाना हरगिज़ नही। जावगी तो मैं जी-जानसे नाराज़ हो जाऊँगा; कम-से-कम नाराज़ हो जानेकी कोशिश तो ज़रूर ही करूँगा।

यह खत तो यों ही काफ़ी लम्बा हो गया। मुझे अभी अपना विरह निवेदन करना था, अपने प्रेमका पचड़ा गाना था, तुम्हारे रूप और गुणकी प्रशंसामें सैकड़ों बातें लिखनी थी। पर यह प्रसंग अगर छेडूँगा तो अपनी उस नयी मुसीबतका हाल न लिख सकूँगा जो इस समय अकारण मेरे ऊपर आ पडी है।

मेरे एक प्रोफ़ेसर साहब पंजाबके रहनेवाले हैं। नौजवान आदमी हैं, मुझसे साल-छः महीने बडे होंगे। गत वर्ष उन्होंने अपनी शादी की, प्रयागमें। इधर उनकी बीबी अपने मायके चली गयी। अब प्रश्न यह उठा कि उसे पत्र कैसे लिखा जाय। प्रोफ़ेसर साहब पंजाबी होनेके नाते हिन्दी पढे नहीं थे और बीबी केवल हिन्दी जानती थी। ऐसी अवस्थामें पत्रद्वारा प्रेमका आदान-प्रदान कैसे हो। प्रोफ़ेसर साहबने रो-धोकर हिन्दीके दो एक प्राइमर पढ़ डाले, पर प्राइमरोंमें बीबीको पत्र लिखना सिखाया नहीं जाता। अन्तमें वे मेरी शरण आये। मुझसे पूछने लगे कि अपनी स्त्रीको हिन्दीमें कैसे पत्र लिखा जाता है, आरम्भ और अन्तमें क्या लिखा जाता है। मैंने बता दिया कि आरम्भमें प्यारी या प्रिये लिखिये और अन्तमें त्वदीय या तुम्हारा लिखिये। पर उन्हे यह पसन्द न आया, वे कोई चुह-चुहाती चीज़ चाहते थे। तब मैने बताया कि ऊपर लिखिये 'मेरे प्राणोंकी रानी' और नीचे लिखिये 'तुम्हारे प्रेमका प्यासा।' यह उन्हे पसन्द आ गया। पर खत लिखते समय उन्होंने घपला कर दिया। उन्होंने ऊपर लिखा 'मेरे प्रेमोंकी रानी' और नीचे लिखा 'तुम्हारे प्राणका प्यासा।'

बीबीको खत मिला तो वह 'प्राणका प्यासा' पढ़कर भडकी, और अपने जवाबमे उसने प्रोफ़ेसर साहबको ऐसा लताड़ा कि वे भी मान गये। पर अब वे मुझसे नाराज़ हो गये हैं, कहते हैं कि तुम्हीने तो ऐसे लिखना बताया था, तुम्हारी ही वजहसे मुझे इतना सख्त-सुस्त सहना पड़ा। यही नहीं, धमकी दे रहे है कि तुमसे इम्तेहान में समझ लूँगा। बड़ी मुसीबत है। क्या करूँ! होम करते हाथ जला।

एक तो यह सब चिन्ता, ऊपरसे तुम्हारी याद और भी जान मारती है। मैं जानता कि तुम्हारे बिना जीना दूभर हो जायगा तो शादी ही न करता। अभी और बीस रोज़ इसी बोर्डिंगके पिंजड़ेमें फटफटाना है। तब कहीं तुम्हें देख पाऊँगा। वह कौन घड़ी होगी जब तुम्हें देखूँगा! तुम्हारी ठुड्डीपर एक तिल है। आज रह-रहकर उसीका ध्यान आ रहा है।

तुम्हारा

......

प्यारे!

पहले तो अपनी आदतके अनुसार मैं आपको एक झिड़की सुनाऊँगी। पूरे नौ दिनके बाद आपने मुझे ख़त लिखा है। कैसी पराकाष्ठा है प्रेमकी! थोड़े धन्यवाद दे डालूँ? क्या सफ़ाई आप देंगे? कार्य्याधिक्य या आलस्य या कोरी हृदयहीनता? आपके लिये पढ़ना और पानी पीटना बराबर है। घंटेमें ५०० बार जिसका नाम आप रटते थे जब उसे आप इतनी जल्दी भूल गये तब आप कैसे उम्मीद करते हैं कि सालमे एक दो बारकी पढ़ी किताबें आपको इम्तेहानमें याद रहेगी। ख़ैर इस बार तो मै आपको क्षमा कर देती हूँ, पर अगर फिर ऐसा हुआ तो बस यही समझिये कि मैं आसमान सर पर उठा लूँगी।

और आपने यह कैसे जाना कि २५ ता० को भैया मुझे लिवाने आये तो मैं चली जाऊँगी। मैंने भाभीको साफ़-साफ़ लिख दिया है कि २७ ता० को आप आ रहे हैं, इसलिये मै अभी ठहरकर आऊँगी। जो इसे बेहयाई समझें समझा करें; गदहोंको बुद्धि बाँटना मेरा काम नहीं है। अपने पतिसे मिलनेकी इच्छा रखना अगर पाप है तब तो फिर स्त्री होना ही पाप है। ऐसे समय मैं क्यों चली जाऊँ जब आप दो महीने बाद घर आ रहे हैं।

यह तो बड़ा अन्याय होगा आपके साथ , और खुद अपने साथ भी। लाज मेरा आभूषण है, मै उसे अपना रोग नही बना सकती।

भाभीको मेरा खत जब मिलेगा और वे घरवालोंसे जब कहेंगी कि लल्लीको आना अभी मंजूर नही है उस समय सचमुच एक दृश्य उपस्थित हो जायगा। कुछ लोगोंको तो कलिकालकी माया प्रत्यक्ष दिखायी पड़ने लगेगी ; कहेंगे कि ससुराल जाते देर नहीं कि दुलहेका ऐसा चसका लग गया। पर आप ही इन्साफ़ करिये, कोई इन बातोंका कहाँतक ख़याल करे। मैं सौकी सीधी एक जानती हूँ कि जो हमारे हितू हैं वे आपका-मेरा प्रेम देखकर प्रसन्न होंगे ; और जो हमारे हितू नही है वे जहन्नुम मे जायँ, उनकी मैं कहाँतक चलाऊँ।

अच्छा सुनिये, आपको एक ऐसी घटना सुनाऊँ जिसे सुनकर आप घंटो हँसें। आप बनवारीको जानते है न ? अरे वही, लाला रामलाल कन्ट्राक्टरका लड़का। चार-पाँच मकान आगे जिसका मकान है। इन्ट्रेन्समें पढता है। मै तो उसे निरा छोकरा समझती थी पर परसो मालूम हुआ कि आप मेरे ऊपर अपना दिल निछावर कर चुके थे।

सदाकी तरह मै उस शामको भी टहलनेके लिये छतपर गयी। यह तो मैंने देख रखा था कि इधर बराबर जब मै अपनी छतपर जाती वह भी अपनी छतपर आ खड़ा होता। पर आज वह पतंग उड़ा रहा था। उसका पतग ठीक मेरी छतके ऊपर मँडरा रहा था—कुछ इस तरहसे कि जैसे उड़ानेवाला उसे मेरी छतपर ही गिराना चाहता हो। यही हुआ भी। पतंग उड़ते-उड़ते मेरी छतपर आ गिरा। मैने देखा कि बनवारी उसे उठानेकी कोशिश नही कर रहा है। मुझे कुछ कौतुहल हुआ। मै पतंगके पास गयी। उसके एक कोनेपर डोरेसे बँधा कागजका एक पुरजा मैंने देखा। पुरजेको मैंने खोल लिया। उस-पर एक कविता लिखी हुई थी। सुनियेगा ? सुनिये—

(१)

तुम्हे देख यह हृदय हमारा
करता धुक-धुक-धुक-धुक।
या फिर रुकने-सा हो जाता
चलता ऐसा रुक-रुक ॥

(२)

भूल गया अपनेको लेकिन
तुमको भूल सकूँ न।
गली-गली गलतान बना हूँ
किन्तु करूँ मैं चूँ न ॥

(३)

तुम हो रूप सुधाकी सरिता
मैं चाहूँ दो चुल्लू।
मुझे समझ लो, जी चाहे—
अव्वल नम्बरका उल्लू ॥

(४)

प्रेम निरा पागलपन मेरा
पग-पगपर है अंदस।
चूक परै, चट चौतरफासे
होने लगे कुटम्मस ॥

(५)

पलक बिछा दूँ पथमें तेरे
पायल चूमूँ झुक-झुक।
छिपा छिपकिली-सा छप्परमें
देखूँ कबतक लुक-लुक ॥

देखा आपने ? कैसी बहारदार कविता है ! एक बार तो मै खूब हँसी। बनवरिया देख रहा था या नही मैं नहीं कह सकती। न-जाने कैसे मुझे हँसते ही-हँसते क्रोध भी आने लगा। क्रोध मुझे इस बात पर नही आ रहा था कि वह मेरे रूपपर मुग्ध क्यों हुआ। भला इसमें उस गरीबका क्या कसूर ? अपनी आँखोंको वह क्या करे ! भगवान अच्छा रूप इस शर्तपर देता है कि इसपर मुग्ध होनेका अधिकार सब आँखवालोंको होगा। रूप अपना असर न छोड़े तो देखनेवालेकी आँखोंका क्या अपराध !

यहाँतक तो ठीक है पर उस नीचने यह क्यों समझा कि मेरे ऊपर ऐसी बातोंका, उसकी कविताका, प्रभाव पडेगा। आखिर वह भी तो हिन्दू ही है। क्या हिन्दू ललनाओंका आदर्श उसने कही पढ़ा सुना नहीं था ? मुझे क्रोध इस बातपर आ रहा था। उसे सफलताकी आशा करनेका साहस कैसे हुआ।

एक मन तो हुआ कि अभी चलकर यह कविता बाबूजीके हाथोंमे रख दूँ। आपके बाबूजी तो बस अपनी कुबडी उठाते और—फिर इसके बादका ब्योरा तो उस दिनके अखबारोंमे पढनेको मिलता।

लेकिन मुझे उसके ऊपर कुछ दया भी आने लगी। स्त्रीका हृदय भी कैसे अनमेल आवेशोंका अखाडा है, पहले हँसी—तब क्रोध—फिर दया। उसकी कुचेष्टामें मुझे पाप कम और मूर्खता ही अधिक दिखायी पडी। मूर्खता दयनीय है, दण्डनीय नही।

पतंग अब भी छतपर पडा था। बनवारी उसकी डोर पकडे चुपचाप अपनी छतपर खडा था। वह मेरे उत्तरकी प्रतीक्षा कर रहा था।

संयोगसे मेरी फाउन्टेन मेरे पास ही थी। मैंने पतंगपर ही अपना उत्तर लिख दिया। उत्तर लिखकर मैंने पतंगको उडा दिया। बनवारी उसे खींच ले गया।

आपके पेटमें अब चूहे कूद रहे होंगे—यह जाननेके लिये कि मैंने उसे क्या उत्तर दिया। सुनिये, आपने पत्र सुना, अब उत्तर भी सुन लीजिये। बहुत छोटा उत्तर था—

बाला हूँ सरला सुन्दर हूँ
पर हूँ हट्टी - कट्टी।
होश सँभाल—नहीं तो
तेरा सर औ मेरी चट्टी॥

उत्तर पढते ही बनवारी छतसे उतर गया। कल शामको वह छतपर न आया। आज भी नही आया। चलिये, साँप मरा, लाठी भी न टूटी। मेरा विश्वास है कि मेरे उत्तरसे उसके आत्मसम्मान को अमरम्मतीय क्षति पहुँची है। अमरम्मतीय लिखना यदि गलत है तो मेरी बलासे।

तो आप २७ ता० को ज़रूर आ जॉयगे न? अगर न आये तो मैं ऐसा गाल फुलाऊँगी कि आप भी याद करेंगे। ऐसे समयसे चलिये कि शामतक यहॉ पहुँच जाइये। रात दो बजेकी गाड़ीसे पहुँचना कोई भलमनसी है!

हॉ, आपकी प्रार्थना है कि मैं अपनी मॉग बगलसे निकाला करूँ। मैं इस-पर विचार करूँगी। अभी कुछ वादा नही करती हूँ। ज्यादः गिड़गिड़ाइयेगा तो देखा जायगा।

दासी

....

एक विधवाका अपने सखीको

[रचयिता—श्री० 'प्रभात']

.........।

प्रथम-मिलनके सुखका अनुभव, अभी न कर पाई थी हाय !
बन्द कलीके भीतर था, आशाओंका सौरभ असहाय ॥
चितवनमें थी लाज अधर—पर थी संकोच-भरी मुस्कान !
हृदय-कुमुदने अभी न पाया—था पावन-प्रिय-दर्शन-दान ॥

जीवन-वीणाके तारोंसे, नव-यौवनका पहला गान ।
अभी-अभी तो निकला ही था, प्रथम पुलक-सा शुचि-रुचिमान ॥
जाग रहा था धीरे-धीरे, अन्तरमें अजान-अनुराग ।
किसे ज्ञात था इतनेमें ही, फूट जायगा मेरा भाग ॥

विकसित होनेके पहले ही, सूख गई कलिका बनमें ।
दलित हुए दल काम-कमलके, वज्र-निपात हुआ छनमें ॥
प्यारी सखी ! रहा सुख अब क्या, इस विषादमय जीवनमें ।
आग लगी सौन्दर्य-सदनमें, रही हाय ! मनकी मनमें ॥

पथकी हुई भिखारिनि अब मैं, अभिशापिता प्रणय-धन-हीन ।
यौवनके चिर-रुदन-रागमें, हुई हास्यकी रेखा लीन ॥
निर्धना हुई [illegible]न ! खोकर मैं, जीवनका धन अलग महान ।
भस्म हुई जलकर इच्छाएँ, आज हृदय-तल बना मसान ॥

करकी चारु-चूड़ियाँ टूटीं, धुला माँगका शुभ-सिन्दूर।
बना भेष मेरा योगिनिका, हुईं हर्षकी घड़ियाँ दूर॥
अस्त हुआ सौभाग्य-दिवाकर, विधवा कहलाई मैं आज।
ललित-लोल-लावण्य-मुकुलपर, गिरी अचानक आकर गाज॥
सूखा स्रोत हृदयका, नीरस—हुआ चन्द्रिकाका शृङ्गार।
प्राणोंकी गति आज रुक गई, अन्त हुआ मेरा संसार॥
अङ्ग-अङ्गमें दहक रहे हैं, प्रलयंकर दाहक अङ्गार।
वसुन्धरे माँ! मुझे छिपा ले, अपना खोल चिरन्तर द्वार॥
अब न अधिक उन्माद-भरी, आहोंकी कथा सुनाऊँगी।
रोती हूँ—रो रो जीवनकी, घड़ियाँ शेष बिताऊँगी॥
एक रुदन ही रहा विश्वमें, अब मेरा अनन्त-आधार।
एक रुदन ही रहा विश्वमें, अब मेरा सर्वस्व अपार॥

❀ ❀ ❀

पढ़ना, हृदय थामकर पढ़ना, इन शब्दोंको सखी! उदार।
मुझ पापिनके अधम भाग्यपर, अश्रु गिराना तुम दो-चार॥

❀ ❀ ❀

अन्धकार सर्वत्र हृदयमें, और विश्वमें भी साकार।
अन्धकार उस पार दृष्टिके, अन्धकार इस पार अपार॥
अश्रु-लहर भीषण-ज्वाला—उन्माद प्रलय आकुल उच्छ्वास।
आज आ रहा मुझे निगलने, मुँह बाए अनन्त-आकाश॥
शिथिल हुई जा रहीं शक्तियाँ, दग्ध-हृदय-तलकी सारी।
और अधिक क्या लिखूँ ?.........................

तुम्हारी,
—अभागिनी सखि 'सुकुमारी'

अन्तःपुरका आत्मनाद

[लेखक—महादेव सिंह शर्मा]

(यह सब पत्र व्यक्तिगत हैं, सिर्फ नाम बदला गया है। जो नाम दिये गये हैं; वह फर्जी हैं।)

....
दो बजे रात
समुद्रका किनारा
....

.........री !

परसोंसे तबीयत घबरा रही है; उस दिन तुम्हे सपनेमें देखा। आशा थी, कि आज तुम्हारा पत्र मिलेगा, किन्तु सारा दिन डाकिये-की राह देखनेपर शामको आशा निराशामे बदल गई। उम्मी ! मैं तुम्हे और घरको जितना भूलनेकी कोशिश करता हूँ, उतनी ही विपत्तिकी तरह और अधिक याद आती है। मैं तो कहूँगा, कि यदि मैं नही भूल सकता, तो तुम्ही मेरे अपराधोको यादकर मुझे भूल जाओ। शादीके बाद मेरा धर्म्म था, कि मैं तुम्हारा पालन-पोषण करता ; तुम्हें सुखी बनाता, किन्तु संसारमे सभी तो लायक नहीं होते ? फिर नालायकको भूल जानेमे क्या हर्ज है; कम-से-कम तुम्हे शान्ति, सुख और सन्तोष तो होगा। जिस यादसे हृदयमें बेचैनी, तड़प, कोलाहल और उलझन हो ; जिससे माथेमे अशान्तिकी आँधी चले, उस यादमे आग लगा दो न उम्मी !

मैं जानता हूँ, कि तुम अपनी तकलीफें बहुत छिपाती हो ; यह भी मालूम है, कि तुम्हें बड़ा दुःख है ; लेकिन मैं तो ऐसा कापुरुष हूँ, कि न-जाने किस भयसे मै तुम्हारे कष्टोंके सुनने और पढ़नेमें भी आना-कानी करता हूँ। क्यों ? इसका कोई जवाब मेरे पास नही। आज्ञा नहीं हॉ, तुमसे एक प्रार्थना है, कि तुम अब मुझे कभी पत्र न लिखना और मैं भी तुम्हे कभी कोई पत्र न लिखूँगा। इसका यह अर्थ न लगा बैठना; कि तुम्हारे लिये मेरे हृदयमे कोई आदर नहीं, विचार नहीं और प्रेम नही। उम्मी ! आँखोमे आँसू भरे हैं, पर रो नहीं सकता, हृदयमे वेदना है, व्यक्त कर नहीं सकता। इस समय हृदयमे बल नही, कि मैं तुम्हारी तकलीफोंको बर्दाश्त कर सकूँ, अथवा संयुक्त परिवारके कीचड़से निकालकर तुम्हें ऐसी जगह रख दूँ, जहाँ दिन-रातमे सौ बार सोहागके सिन्दूरके धोये जानेका शुभाशीर्वाद सुन न सको।

जबतक बाबूजी है, माताजी हैं, तबतक वह जो चाहें, करें। मैं तो अभागा हूँ। चार पैसे मैं भी कमा पाता, तो भाइयो और उनकी स्त्रियोंके ताने क्यों सुनने पड़ते ! खैर, अपनेको सम्भालना; कभी किसीको कटु बात न कहना। स्त्रियोंकी लज्जा कच्चे घड़ेसे भी अधिक नाजुक है ; देखना, इसे बचाना ; किसी तरह भी ठेस न लगे। मेरा शरीर अच्छा है। यदि यह बेकारी कुछ दिन और रही, तो शायद कहीं दूसरी जगह चला जाऊँ अथवा आगे मै क्या करूँगा और क्या हाल होगा, मैं नहीं जानता। तुम अधीर न होना, यदि सुख न रहा, तो दुःख भी न रहेगा। जीवन रहेगा, तो फिर मिलूँगा। बस आज इतना ही—

तुम्हारा
वही अभागा।

आशापुर
काशी,

जीवनाधार ! ....

चरणोंमे अनेक प्रणाम।

चीठी आई, बड़ी प्रसन्न हुई। मेरी खुशीका क्या ठीकाना ! जैसे मुझे कोई खजाना मिल गया। जेठानीजी तो मेरी खुशी देख-के मेरे पास चली आई, पूछने लगी,—'क्या चिट्ठीमे नोट आये हैं ?' मैने सिर झुकाके कहा,—'बड़े नोट आये हैं, वह अच्छे है।' झुँझलाके उन्होने कहा,—'तब क्या उन्हे हैजा प्लेग थोड़े खाये जाता है। अपने मजा कर रहे है; जोडूको खिलाये-पहनाये, तो मालिक।' मैं चुप हो गई, क्या जवाब देती ? निगोड़ी मौत भी नही आती। खैर ! फिर भी मै सबकी बातोको सुन-सुनाके सुखी हूँ; जानते है क्यो ? वही आपकी तसवीर, हँसती हुई तसवीर !! जब बड़ी तकलीफ होती है, तब उसीसे हँसबोल लेती हूँ; छाती-की पीड़ा कम हो जाती है।

कई दिनसे चीठी लिखनेकी सोच रही थी; दिनमे कामकाज से फुरसत न मिली; रातको डेबरीमे तेल नही, जानते ही हैं, कि नापकर तेल सझौतीके लिये मिलता है; मुश्किलसे बिछौना लगा पाती हूँ। भाग्यसे भगवानने महीनेमे तीन दिन हमलोगोके लिये भी छुट्टीके बना दिये है, जान तो इसमे भी नही बचती; फिर भी दम मारने की फुरसत मिल जाती है। किसी तरह चीठी लिखी, तो टिकट नही, डाकमें छोड़नेवाला कोई नहीं। खैर, फिर भी मैं सुखी हूँ।

हाँ यह आपने क्या लिख डाला, कि पत्र न लिखना, क्या आप मेरे इस नन्हे-से अधिकारको भी छीन लेना चाहते हैं। यदि

कोई अपराध हुआ हो, तो क्षमा करें। मैं वो देहाती दुनियाकी गँवार लड़की हूँ, आप तो इतने पढ़े-लिखे हैं, कि देश-कोसवाले वाहवा! करते हैं। रुपया पैसा तो भाग्यकी बात है। कोई रुपया पैसा, जेवर, कपड़ा दिखाव-बनावपर गर्व करता है, तो मै तुम्हींको पाकर अभिमान करती हूँ। जी क्यों छोटा करते हो? घरपर जैसे सब लोग हैं; आकर आप भी रहें। वहाँ क्यों तकलीफ उठा रहे है? नही नौकरी लगी, तो न सही। यदि इतना अधीर होना है, और यहाँ आ नहीं सकते, तो मुझे ही अपने पास बुला लें, मैं कहीं पिसौनी करके, कसीदा-बूठा काढ़कर खानेभरका इन्तजाम कर लूँगी। नहीं होगा, तो कही दो लड़कियोको लेकर पढ़ाऊँगी, तौभी खाने-पहननेका काम चल जायेगा। प्राणेश्वर! दिल छोटा नहीं करना चाहिये। क्या रुपया कमानेके लिये ही पढ़ा-लिखा जाता है? कोई आपको मूर्ख तो न कहेगा; फिर आप जैसे बिद्वान्के लिये इससे बढ़कर और कौनसी कमाई है? यदि वहाँ काम न लगे, तो चीठी देखते घर चले आइये; मै कड़े रखवाकर खर्चेके लिये परसो रुपये भी भेज दूँगी। जरा भी दुःखी न हो, हमेशा रातके बाद ही दिन आता है। अन्धेरे-उजेलेकी भूलभुलैयासे आप जैसे समझदार और विद्वान्को घबरानेकी जरूरत नही। तीन-तीन बरस हो गये; एक बार घर तो चले आइये—पत्रका जवाब शीघ्र दें—अधिक क्या लिखूँ।

आपकी स्नेहमयी
उर्म्मिला

....
कोठरीका कोना

......गी !

तुम्हारा पत्र मिला, रुपये भी मिल गये। तुम्हारे पत्रसे बड़ा सन्तोष हुआ, शान्ति मिली। इसमें सन्देह नहीं, कि तुम्हारी-जैसी स्त्रियाँ ही हमारे घरोंकी जीती-जागती देवियाँ हैं। फटही धोती, आधा पेट अरुचिकर भोजन, चौबीस घण्टे बेदामके गुलामकी तरह काममें तुले रहना आदिसे साफ जाहिर है, कि यदि तुम्हारा अस्तित्व न होता, तो हमारे मकान श्मशानसे कम न होते। सन्तोष, सहन-शीलता, शान्ति और सेवा ही तुम्हारी शोभा है। सचमुच तुमने मेरी विचार-धारा पलट दी। जहाँ क्रोध, क्षोभ, चिन्ताकी आग धाँय-धाँय जल रही थी, वहाँ तुमने मीठी भावनाओंकी कैसी सुन्दर वर्षा की है, उसका बखान कर नहीं सकता। हाँ, यह सच है, कि मैंने बहुत पढ़ा-लिखा, किन्तु तुम्हारा विचार इस पढ़ाई-लिखाईको हजार बार मात करता है। मै तुम्हारा कायल हूँ, उम्मी !

तुमने लिखा है, कि घर चले आओ। सोचता हूँ, हारका हार पहनकर तुम्हारे सामने कैसे खड़ा हूँगा, तुम्हे भी समझा लूँगा, किन्तु और लोग तो यही कहेंगे न, कि इतना पढ़े-लिखे, लेकिन रोटीका ठिकाना कहीं न लगा, तो घर ही भागे आये। उम्मी ! क्या इन बातोंको सुनकर परसी थाली विषकी न हो जायेगी; नींद हराम न होगी ? तुम कहोगी,—'मैं कैसे बर्दाश्त करती हूँ ?' तुमको प्रकृतिने शक्तिमयी और शान्तमयी बनाया है। स्त्रीकी शक्ति अनन्त होती है, उनकी ताकत हमेशा अनूठी और अनोखी होती है। यदि उन्हे महिमामयी और पुरुषको कापुरुष कहा जाये, तो शायद उचित ही है। पुरुष इस सम्बन्धमे सदा कमजोर हुआ

करता है। वह लगती बातोंको नहीं सह सकते, स्त्रियाँ विषके घूँट पीती हैं, फिर भी वेदनाको छिपाकर अपनोंके सामने मुस्कुरा देती हैं। जब उपवासो और तकलीफोंसे जवानीमे ही बुढ़िया हो चली थी, दमदमाता चेहरा पीला पड़ रहा था और पेवन्द लगी धोतीसे लाज छिपाई जाती थी, तो तुमने—मुझे अच्छी तरह याद है—अपने भाईसे कहा था,—'मुझे मीठा ज्वर आता है; भूख नहीं लगती।' फटी धोतीको रोटी बनानेकी धोती कहके टाला था। यह सब क्या है, उम्मी ? मातृ जातिकी शोभा, कुल-ललनाका आदर्श और हिन्दू-स्त्री-जगत्का गौरव !! खैर।

मै जानता हूँ, कि मेरे भाई है, भौजाई हैं, मा-बाप हैं, पति-परायणा तुम हो, धन-दौलत, कारबार, सब कुछ है, लेकिन उम्मी ! दुःख है, कि न तो मै किसीका हो सका और न किसीको अपना बना सका। घरकी सारी बातें याद आती है, तब माथेमे हजार बिच्छुओंके डंक मारने जैसी ज्वाला उत्पन्न होती है। इस ज्वालाकी कौन-सी दवा है ? शायद कुछ भी नहीं। ऐसी हालतमे मै अभी-तक यह तय न कर सका, कि मुझे क्या करना चाहिये।

इधर बुखार आ रहा था, अब अच्छा है। तुम्हारे रुपयेने बड़ा काम किया, दवा तो अस्पतालसे लाता था, किन्तु पथ्यके लिये पैसे न थे, परमात्माने तुम्हारे ही हाथो पथ्य दिया। उम्मी ! सच-मुच तुम कल्याणी हो, तुम्हारी जैसी स्त्रीको तो तकलीफ नहीं होना चाहिये, यदि हो, तो विधिके विचित्र विधानके सिवा और कुछ नहीं कहा जा सकता। अभीतक तो मेरा विचार नहीं बदला है, आगे हरीच्छा। तबीयत सुधर रही है। अपना कुशल लिखना।

तुम्हारा...
अभागा।

आशापुर,

काशी,

आश्विन शुक्ल ११

प्राणेश्वर !

कृपा पत्र मिला। इस साल तो मेरी विजया बन गई। लोग दशहरेके दिन नये-नये कपड़े पहनते है, अच्छा-अच्छा भोजन करते है, स्त्रियाँ सोहाग भरती है; मिलती जुलती है, तरह-तरहसे खुशियाँ मनाती हैं; किन्तु मुझे भी ऐन दशहरेके दिन मेरे सोहागकी चिट्ठी मिली, बस इससे बढ़के मेरे लिये और सौभाग्यका दिन क्या हो सकता है ? सच मानिये; मै सारा दिन उछल-उछलके काम करती रही, शामके वक्त माँग भरी, वही सोहागकी चुनरी, हिस्सेकी चार काँचकी चूड़ियाँ, पावोमे महावर !! बस खाली दुल्हन !! जाकर माताजीके पाँव लगी, जेठानीके चरण छूए...बादको तुम थे, बात करते-करते निगोड़ी नींदने सुला दिया, सोई, तो तुम्हे पकड़ लिया—फिर तो.........नींद खुली,...आह !! इसके बाद आँगनमे आई, गश खाके गिर पड़ी। लोग कहते है, कि मृगीका रोग हो गया है, होगा। लेकिन जब बेहोश होती हूँ, तब तुम्हारे दर्शन होते है। इसलिये यही भगवानसे मनाती हूँ, कि चौबीसो घण्टे बेहोश रहूँ। मेरी बेहोशीकी दवा तलाशनेकी चेष्टा न करना, यह तुम खुद हो। जेठानीजी तो कहती है, कि पिछवारेके पीपलकी चुड़ैल है, माताजी नैहरका भूत बताती हैं। बाबूजीकी बात सुनियेगा तो हँसी आ जायेगी, कहते है,—'पट्टीदारकी जमीन्दारीका ब्रह्म है।'

भला तुमने मुझे अपने पत्रमे क्या-क्या बना डाला है। दासी-चरणदासीको क्या-क्या पद दे दिया है—पढ़े-लिखे है, इसीलिये

न। अच्छी बात है। विचार बदल दीजिये, घर चले आइये। कल दरवाजेपर चर्चा हो रही थी, कि यहाँ एक निसवाँ स्कूल खुलेगा और मुझे लोग पढ़ानेके लिये कहेंगे। बाबूजी तो राजी हैं; पर जेठानीजी कहती हैं,—'यह कैसे हो सकता है, कि घरकी बहू-बेटी मदरसा पढ़ाने जाये।' देवरानीजीकी पूछिये ही नहीं, शायद उनके मैकेकी गिलास मेरे कमरेमें उन्हींका बेटा फुसुआ पानी पीके छोड़ गया था। मैंने धोके रख दिया था। झनकती हुई आईं, तो कहने लगी,—'किसीकी गिलास क्यों चुराती हो, अब तो मास्टरानी बनोगी, बीस रुपये मिलेंगे, तब चाँदीकी गिलास खरीद लेना।' भला इन बातोंका क्या ठिकाना? यदि आप आ जायें, तो मैं मास्टरानी जरूर बन जाऊँ। मास्टर साहबके बिना मास्टरानीकी शोभा नहीं। पर्दा-प्रथा सौतकी तरह गलेपर सवार है यदि आप चाहें, तो मेरा भी भूतोंसे पिण्ड छूट जाये; निगोड़ी बेहोशी भी टूट जाये। बस प्राणनाथ! वापस आयें, यहाँ सब सुख है, जो आप विदेशमे रहके न कर सके, वह घरमे रहके कर लेंगे। कहावत है—

'उत्तम खेती मध्यम बान, निर्धिन सेवा भीख निदान।'

बाबूजीकी तबीयत खराब है, वह कई बार आपको याद कर चुके। वही इस बड़े परिवारके पतवार हैं, सब लोग आ गये हैं। आप भी चिट्ठी पाते ही चले आयें, जिन्दगीका क्या ठिकाना। जब वह देखेंगे, कि सारा परिवार उनकी आँखके सामने हैं, तब उन्हें मरनेमे भी शान्ति और सुख मिलेगा। अधिक क्या लिखूँ, चले आवो न नाथ!

चरणानुरागिनी

उम्मी।

परदेकी आवाज

[लेखक—श्रीयुत अमर, काव्यतीर्थ, एम. ए.]

[मेरा सम्बन्ध कुछ सिनेमा-संसारसे था और अब भी है। यूँ तो सिनेमा-जगत्का वातावरण कलुषित और जघन्य माना जाता है; फिर भी वहाँ अच्छे और सदाचारी स्त्री-पुरुषोंकी कमी नहीं। मेरे पास कितने ही मित्रोंके पत्र हैं। जिन्हें केवल अत्याचारोंके हथ-कण्डोंसे समाजको सावधान कर देनेके अभिप्रायसे कृत्रिम नाम देकर उद्धृत कर देना अनुचित नहीं कहा जा सकता।]

अल्मोड़ा

श्रद्धेय······जी !

आपके संवाद बड़े चुभते हुए हैं। विशेषतया जहाँ आपने लिखा है,—'पापका नाटक हँसीसे आरम्भ होता है और आँसुओं पर समाप्त होता है।' उस दिन बम्बईमें जब आपने मेरी उदासी का कारण पूछा था, मैं टाल गई। जानते हैं, क्यों ? मिष्टर...के भयसे, कि कहीं नाराजगी और न बढ़ जाये। पर देखती हूँ, मैं जितना झुकती गई, मुझे झुकानेमें कोई कोर-कसर न की गई। मुझे बड़े-बड़े सेठ-साहूकारोंको नजर करके खीसें भरनेकी तय्यारी की गई, मैं नट गई, तो बदमाशकी उपाधि दे दी गई। विश्वास रखें, मैं आपको अपना समझती हूँ, इसलिए अपने पचीस वर्षके नन्हेसे कच्चे चिट्ठेको सामने रखती हूँ। मैं...में पढ़ती थी। संस्कृतकी उत्कृष्ट परीक्षा पास कर चुकी थी। अन्य परीक्षा की

तय्यारी कर रही थी, कि इतनेमें......की दृष्टि पड़ी। लगे चक्कर काटने और प्रेमका मोहन मन्त्र पढ़ने। एक दिन गलेमें फाँसी लगाके झूलने चले, मैं झुक गई, उन्हे बचा लिया। बम्बई आई, परदेसे निकलकर तत्कालीन बेहतरीन चित्रोंके पर्देपर आई; पर कृपानाथ! जिनकी आँखें वासनाके सुरमेकी आदी हैं, उन्हे अपने वादे, सिविल मैरेज और संस्कारी विवाहकी क्या परवाह! मुझे धोका दिया गया, कि वह अविवाहित हैं। बाकायदे रजिष्ट्रारके यहाँ शादी हुई। पीछे मालूम हुआ, कि हजतरकी शादी हो चुकी है, स्त्री जावन और रूपवती है। देवीजी भी आगई, मैं झल्लाई तो जरूर; किन्तु भाग्यकी विडम्बना कहके चुप हो गई।

धीरे-धीरे उनका मन फिरा, मै बीमार होने लगी, वह बड़ी-से-बड़ी कम्पनी बनानेमे लगे। जान बड़ी प्यारी होती है। माँके पास भाग आई। आज पूरे बरस बीत गये, बीमार-सी ही हूँ। वह ऊँच है, मै नीच हूँ, केर-बेर क्या संग? मेरे योग्य कोई कार्य्य हो, तो लिखें मैं आने और काम करनेके लिये तय्यार हूँ। वैद्यजी को नमस्कार कहे। आशा है, कि आप देवी...के साथ प्रसन्न होगे।

आपकी वह

—वीणा।

बम्बई

.....

सुभद्रे!

कुशल है, चाहिये। पत्र मिला। पढ़कर बड़ा दुःख हुआ। अबतक इन बातोंको जानता न था। निस्सन्देह संसार ठगोकी बस्ती है। उन्होने कभी मुझसे यह न बताया। कि तुम उनसे नीची

जातिकी हो, इनकी श्रद्धा भक्ति और प्रेम मुझे जहाँ तक दिखाई देता था, सन्तोष जनक जान पड़ता था। उनके बाहरी व्यवहार और विचारसे जरा भी सन्देह करना कठिन था। यदि उन्होंने तुम्हारे जीवनको इस तरह बिगाड़नेकी चेष्टा की है, तो विश्वास रखे, समय और प्रकृति बिना बदला चुकाये न रहेगी। मै आपको क्या समझाऊँ। आप स्वय संस्कृतकी शास्त्री है। आपने काव्य-ग्रन्थोंको पढ़ा है, उनमे सन्तोष, शान्ति और सान्त्वनाका पर्याप्त मसाल है। यद्यपि जीवन प्रतिशोधमय है, फिर भी, आप जैसी विदुषी भद्र महिलाके लिये आनन्दमयी और दयामयीसे बदलके रुद्राणी और चण्डी बनना शोभा न देगा।

मेरी तुच्छ रायमे तो यही है,—'सच्ची मार कबीरकी, चितसे दिया उतार।' मै निस्सकोच कहूँगा, कि आपको पूरा धोका दिया गया। शायद उनके लिये परमात्माके दरबारमे क्षमाकी कोई गुञ्जाइश नहीं। आपकी यह धारणा सचमुच सराहनीय ही नहीं, वरं अनुकरणीय और अलौकिक है। जब एक पुरुषने धोका दिया, तब उसके पापका प्रायश्चित मृत्यु ही है, किन्तु इनकी मृत्युसे हमारी एक दूसरी बहनके जीवनका दीप निर्वाण होता है; सोहाग सिन्दूर धुलता है; हिन्दू स्त्रीके लिये माथेके सिन्दूरसे बड़के संसार-मे कोई वस्तु नहीं। अतः उन्हे क्षमा करना ही उचित प्रतीत हुआ। धन्य है आप और आदर्श है आपका त्याग। इसे शायद बिरली स्त्रियाँ सोच और कर सकती है। एक बार फिर आपके विचारोंके लिये साधुवाद !

हाँ यदि आपकी तबीयत ठीक है और आप काम करना चाहे, तो यहाँ कम्पनियाँ बहुत हैं, साथ ही आपका भावपूर्ण अभिनय अभीतक दर्शको और मालिकोंको भूला नहीं है। मैने कहीं-कहीं चर्चा

की है। लोग आपकी उत्सुकतासे चर्चा करते थे। हाँ; वेतन शायद वह न मिल सकेगा, जो आपको पहली कम्पनी अपने सुनहले युग-में देती थी। कृपया लौटती डाकसे अपना शुभ समाचार लिखें। मैं शीघ्रही काशी और वहाँसे कलकत्ते जाऊँगा। यदि मुझे वह मिले, तो यथेष्ट उलाहना दूंगा। श्रीमती जी पासही हैं, नमस्ते कहती हैं।

आपका

—'अमर'

(कई पत्र कुशल-समाचारके लिखे गये; पर कोई उत्तर न मिला। अन्तमें शिमलेसे निम्नलिखित पत्र १६-८-३८ का लिखा हुआ मिला, जो अतीव मार्मिक है।)

श्रीः

श्रीमत्पादारविन्देषु सादरं सविनश्च

प्रणतयः सन्तुतराम।

आपके सब पत्र मिले ! शीघ्र उत्तर न मिलनेका कारण मौसमी बुखार था, जो कि अभी तक भी पीछा नहीं छोड़ रहा है। डेढ़ महीनेसे विस्तरमे पड़ी हूँ, पहले रायल होसपिटलमे थी, अब एक सप्ताहसे शिमलेमे हूँ और यहाँ डाक्टरोंकी चिकित्सा करवा रही हूँ। अगर शीघ्र इसकी चिकित्सा समुचित न करवाई गई, तो डाक्टरोंकी राय है, कि तपेदिक हो जानेका भी अँदेशा है।

आप कलकत्ते जारहे है मेरी यह खुशखबरी, के० शर्माजी को भी सुना देना ; अगर आपको वे मिलें तो।

अधिक क्या लिखूँ, मेरी सेहत बिलकुल गिर गई है। मैं आज एक हड्डियोका ढाँचा रह गई हूँ जिसमे खूनका नाम भी नहीं। एक तकियेके सहारे बिस्तरमे बैठकर आपको यह खत लिख रही हूँ। स्वस्थ हो गई तो फिर भी लिखूँगी, नही तो क्षमा करना मेरी ओर से हुए अपराधोंको भूल जाना, विद्वन्!

मालूम हो रहा है, कि अब इस दुनियाँ से कूच कर जानेका समय आ गया है। देखो! मृत्यु देवी सामने खड़ी मुस्कुरा रही हैं। डाक्टरों और यम दूतोमे परस्पर होड़सी लगी हुई है। देखते है किसकी विजय होती है।

वह मृत्यु जिसका नाम सुनते ही संसारके प्रत्येक प्राणीका हृदय काँप उठता है, वही मृत्युदेवी आज मेरे सामने कितनी शान्तमयी मूर्त्ति बनकर आई है।

ओह! करुणामयी मा! आज तेरी गोदमे सोकर मेरी यातनायें दूर हो जायेगी; तुम मुझे थपकियाँ देकर सदाके लिये सुला दोगी। मै फिर एक बार उसी सुखका अनुभव करूँगी, जिसका बचपनमे करुणामयी जननीकी गोदमे लेटकर किया करती थी। परन्तु वह अन्त था, यह अनन्त होगा। और निकट आओ मा। आओ मा!!

न जाने मैं क्या लिख गई। दिमागमें कुछ विचारोंका ववण्डर सा घूम रहा है, किन्तु लेखनी लिखनेमे असमर्थ है। रक्तरहित हाथ काँप रहा है विद्वन्! 'अमर वरदे अमर'।

जीवन शेष रहा, तो बाकी फिर।

आपकी—वीणा

काशी
—५-३८

देवी !

पत्र मिला; पढ़कर बड़ा दुःख हुआ। अन्तःकरणसे परमात्मासे प्रार्थी हूँ, कि आप शीघ्र निरामय हों। केवल फसली बुखार है, कमजोरी है; निकल जायेगी। चिन्ता न करें, क्षयका रोग शत्रुको भी न हो। मैं एक भाईको इसीके हाथ खो चुका हूँ। यदि आने लायक हों, तो काशी आजायें। यहाँ अच्छे-से-अच्छे वैद्य हैं; गङ्गातट; हिन्दूधर्मका किला, शान्तिका स्थान, जलवायुका परिवर्त्तन अधिक लाभ होनेकी सम्भावना है। मैं सब तरहसे आपकी सेवा करनेके लिये तैयार हूँ। अधिक न लिखकर केवल इतना ही कहना है, कि आप चिन्ता न करें।

जिसकी उदारतासे दोचार बेकार और गरीबकी परिवरिश होती थी; वही अपराधिनी !! आश्चर्य ! हाँ, इतना अवश्य कहूँगा, कि बड़ोंपर ही भाग्यकी विन्डबना भी थिरकती है, आपके भाई और बहन कहाँ हैं ? क्या पिता और माताजी भी साथ हैं ? यदि मनोहर साथ हों, तो उन्हींसे पत्र दिजियेगा; स्वयं कष्ट न करेंगी। मुझे शुभ समाचार अवश्य मिलना चाहिये। बड़ी चिन्ता रहेगी। शेष कुशल ही है।

भवदीय शुभाकांक्षी
'अमर'

[अनमेल विवाहिता, वेश्यागामी पतिद्वारा परित्यक्ता, सास-ससुर द्वारा विताड़िता तथा विपत्तिकी मारी हुई एक निराधार युवती और कुशल अभिनेत्रीके कुछ पत्र, जिनके द्वारा साधारण जीवन पर प्रकाश पड़ता है]

काशी
—५-३८

देवी !

पत्र मिला; पढकर बड़ा दु:ख हुआ। अन्त:करणसे परमात्मासे प्रार्थी हूँ, कि आप शीघ्र निरामय हो। केवल फसली बुखार है, कमजोरी है; निकल जायेगी। चिन्ता न करें, क्षयका रोग शत्रुको भी न हो। मैं एक भाईको इसीके हाथ खो चुका हूँ। यदि आने लायक हों, तो काशी आजायें। यहाँ अच्छे-से-अच्छे वैद्य हैं; गङ्गातट; हिन्दूधर्मका किला, शान्तिका स्थान, जलवायुका परिवर्त्तन अधिक लाभ होनेकी सम्भावना है। मै सब तरहसे आपकी सेवा करनेके लिये तैयार हूँ। अधिक न लिखकर केवल इतना ही कहना है, कि आप चिन्ता न करे।

जिसकी उदारतासे दोचार बेकार और गरीबकी परिवरिश होती थी; वही अपराधिनी !! आश्चर्य ! हॉ, इतना अवश्य कहूँगा, कि बड़ोपर ही भाग्यकी विन्डबना भी थिरकती है, आपके भाई और बहन कहाँ हैं ? क्या पिता और माताजी भी साथ हैं ? यदि मनोहर साथ हों, तो उन्हींसे पत्र दिजियेगा; स्वयं कष्ट न करेगी। मुझे शुभ समाचार अवश्य मिलना चाहिये। बड़ी चिन्ता रहेगी। शेष कुशल ही है।

भवदीय शुभाकांक्षी
'अमर'

[अनमेल विवाहिता, वेश्यागामी पतिद्वारा परित्यक्ता, सास-ससुर द्वारा विताड़िता तथा विपत्तिकी मारी हुई एक निराधार युवती और कुशल अभिनेत्रीके कुछ पत्र, जिनके द्वारा साधारण जीवन पर प्रकाश पड़ता है]

बम्बई

प्रिय·· !

सादर प्रणाम। कुशल है—आपकी चाहती हूँ। मैं २७ वीं को यहाँ आगई। साथमें वही दोनो अभागिनी लड़कियाँ आई हैं, जिनकी चर्चा कर चुकी हूँ। आनेपर मालूम हुआ, कि आप चले गये। पता नही मालूम था, किसी प्रकार खोज लगा पता प्राप्त कर सकी।

अब आप वहाँ कब तक ठहरेंगे? आपके न होनेसे बड़ी कमी महसूस हो रही है। बिल्कुल अच्छा नहीं लगता। कृपया जहाँ तक हो सके, शीघ्रतासे काम निपटाके यहाँ आईये। मै अच्छी ही हूँ, समयका फेर है। अभी तक तो कोई सिलसिला आमदनीका नहीं है। आगे भगवान मालिक है, कृपया आप कुशल समाचार शीघ्र दीजियेगा। शेष क्या? दया चाहिये।

भवदीय
—सरस्वती।

× × ×

श्री मानू·····जी !

सादर प्रणाम—कृपा पत्र मिला; चित्त बड़ा प्रसन्न हुआ। आपने वहाँ जानेके बारेमें पूछा है। यह तो मजाक सा है। जो भी हो, दर्शन होने पर कहूँगी। आपकी तबीयत अब कैसी है? भगवान अच्छा करेंगे। मै यहाँ से बराबर शुभकामना करती रहूँगी। कृपानाथ! अभागिन हूँ न, किसी अपने बड़े या शुभचिन्तककी सेवा करना भी तो भाग्यकी बात है। ...कृपया आप शीघ्र आइये। मैं कुछ भी तो नहीं कर सकती। अभी तो बेकार हूँ। एक अजीब

परेशानी है—लिखियेगा, आप कब तक आयेंगे ? दयाके लिये धन्यवाद, कष्टके लिये क्षमा।

आपकी वही
सरस्वती।

बम्बई
....

मेरे परम पूजनीय······जी !

पत्र भी लिखे, तो रूठकर ! भला नीरियों पर जुल्म करना क्या पुरुष जातिकी आदत है ? मैं तो दुखिया हूँ। क्या कविके नीरस वसन्तकी पंक्तियाँ आपको भूल गईं !!

दुखिया हूँ, एकान्त अकेली, सूना है मेरा संसार।
कभी नहीं जाना जीवनमे मैंने किसी हृदयका प्यार।
अपने टूटे हुए हृदयको भला किसे मैं दिखलाऊँ ?
किन चरनोपर सखि ! ये अपने दुखिया आँसू बिखराऊँ ?

नहीं, तो इतना क्यो कहते। जानती हूँ, कि मैं अपात्र हूँ, किन्तु बड़ोंकी दया तो प्राकृतिक धूपसी है न ? फिर भेद क्यों ? क्या वहाँ जाकर बदल गये ? बदल जाना भी तो स्वाभाविक है। आँखोंकी ओट हुए, कि दिलमे खोट आई, दुनियाँ खोकर पाती है, मैंने पाके खो दिया !! विश्वास तो नहीं होता; फिर क्या सबब है, कि रुख पलटा हुआ दिखाई देता है। जिस भावना वेलिको सच्चे अन्तःकरणसे वर्षों तक प्रेम-आशा-सन्तोषके आँसूओसे सींचा था, उसे पुष्पिता और फलवती देखनेके पहले सूखते देखना कितना दुःखद होगा ? दयानाथ ! यदि आप हवाके झोंकेसे पत्तों का हिलना और समुद्रकी तरङ्गोंका चलना बन्दकर सकते हैं, तो

आज्ञा दीजिये, मेरे हृदयकी धड़कन, स्पन्दन और प्रगति भी अपने आप रुक जाये। जानते है, प्रकृतिको रोकनेसे विकृति होगी और विकृतिके बाद विनाश !!

उलहना नही दे रही हूँ; ठुकराना जितना आपके लिये सरल है, क्या उतना ही नारी-हृदयके ऊपर खिची हुई तसवीरको मिटा देना सहज है ? पहाड़से कुदाकर तमाशबीनोकी तरह तमाशा देखना आपको शोभा नहीं देता। क्या इस तमाशेके देखनेसे शान्ति मिलेगी ? हाँ; यह मालूम है, कि बजाय शान्तिके सन्तापकी आगमे जलना पड़ेगा। ज्यादा क्या लिखूँ, स्थितिवश हृदय बहुत शोकातुर है।

क्या होगा ? क्या करूँगी ? क्या सचमुच जीवन अवधि पूरी हो गई। पूरी होनेकी भी कुछ परवाह नही, दु:ख यही है, कि सन्ताप, बदनामी और पतित...ही साथ जायेगा। सुखने स्वप्नमे भी साथ नही दिया। चारो तरफ अधकार है। अंधकारमे तबीयत ऊब रही है। धुँधला प्रकाश भी लोप होना चाहता है। क्या आपके रहते हुए वह लोप हो जायगा ? नही, आप ऐसे असमर्थ नही है, कि लोप हो जाये। ज्यादा नही लिख सकती, सिर्फ अपनत्वका निर्वाह कीजिये; यही मेरी प्रार्थना है, अनुरोध है ? क्या दर्शनकी भीख भी अनाथिनीके भाग्यमे नहीं ! कृपया मुझे न ठुकरायें। आप तो कहते थे,—

हाथसे दामन पकड़कर, वह जो इठलाता चला।
दिल भी आगे हो लिया, ठोकरे खाता चला॥

आपकी अभागिन
सरस्वती।

अमरावती,

....

सरले !

पत्र मिला, पढ़ा; सोचा। परिणाम? आतुरता, अकारण दोषारोपण। बस यही न! इससे अधिक क्या? कहाँ यह दावा, कि मै आत्म-शक्ति, आत्म-संयम और आत्म-ज्ञान लेके ही चित्रमय जगत्मे आई हूँ। कहाँ परदेपर आते ही हिचकियाँ! वही बेबशी!! जो कच्चे मकानकी चहार-दीवारीके अन्दर थी। मुझे मालूम है, कि हमारे अन्तःपुरवालियोकी आँखोंकी बरसातसे परदे और अवांछनीय परम्पराकी दीवार टूट जाती है, किन्तु समय लगता है। तुम्हारी आँखोसे जेठ या पूसकी वर्षा हो रही है! असमयकी चीज अच्छी नहीं होती है। जबतक पास बैठा रता; प्रेमकी परिभाषा ही समाप्त न हुई, उसका ज्ञान ही नही हुआ; परीक्षा-कसौटी चल रही थी; अब परेशानी है! क्योजी! इसे स्त्री-चरित्रकी परिभाषामे डाल दूँ; बुरा तो न मानोगी? प्रेम दर्शन नहीं चाहता; स्पर्श नही चाहता; कोई प्रतिकार भी नहीं चाहता—चाहता है वह दो हृदयोका सामञ्जस्य! पत्रमे आह! ऊह!! करनेकी आवश्यकता ही नहीं। यदि सच्चा प्रेम है, तो 'आप ही चले आयेंगे, नालोमे असर होने तो दो।' जहाँ अन्धकार होता है वहीं पासमे तालाश करनेपर प्रकाश भी मिल जायेगा। जिसके दर्शनके लिये अँखियाँ प्यासी है, वह भी तो वहीं निर्गुन होके दिलके आईनेमें अपना-सा मुँह लिये बैठा है। फिर भीख माँगनेकी आवश्यकता? तबीयतमें तूफान लानेकी जरूरत? समझ कहती है, बेकार है; विचार बताता है, व्यर्थ है और परिस्थितिकी घोषणा है, कि यह प्रेम नहीं; कृत्रिमता है, माफ कीजिये वासनाकी धधकती ज्वाला है, जिसे

आत्य-सयम और आत्मशक्तिके ठण्डे जलसे अनन्तकालतकके लिये शान्त किया जा सकता है। कहती हो, 'वहाँ जाके बदल गये।' इधर तो बदलनेके लिए कोई चीज है ही नहीं। जो था उसे दे चुका हूँ, जो है, उसपर अपना कोई अधिकार ही नहीं। फिर अनाधिकारी होनेके कारण देने-लेनेकी कोई गुञ्जाइस नहीं।

जब भँवरा भी बसन्तकी आशमे गुलाबके मूलमे बैठा रहता है, तब तुम्हारे मुँहसे अवधिकी चर्चा अच्छी नहीं लगती। समय आनेपर ही सब होगा। इधर तबीयत खराब थी, फलतः पत्रमे देर; आनेमे देर और उधरसे आँधी, बदली, बरसात, कड़क, गरज; प्रलयका सामान !! मीराकी रट; चन्द्रावलीकी पुकार !! शकुन्तलाकी तड़प !!! सब एक साँसमे। सन्तोष रखो सरस्वती !! इन्तजारीमे जो मजा है, शायद वह मिलनेमे नहीं। दुःखके बाद सुखानुभव बड़ा मधुर और सुहावना होता है।

'मीठी भावे नोनपर, और मीठेपर नोन।'

बस आज इतना ही। तुम्हारा अपराधी

—बसन्त।

बम्बई

......

मेरी सान्त्वना !

चीठी आई, लेकिन जली-कटी। आह ! मेरा कैसा अन्धा विश्वास आपके प्रति है, उसे मैं नहीं समझ सकती, किन्तु दुर्भाग्यवश समय समझा रहा है। या यूँ समझिये, कि दुर्भाग्य नहीं सौभाग्य समझ रहा है, क्योकि यदि इस संसारमे जीवन रहता, तो उसकी बड़ी-बड़ी आशायें थी, कितने मनोराज्य थे; कितनी कल्पनायें थी

और कितना क्या था ? लेकिन यह मेरे ही पापोंका प्रायश्चित है। आप महान हैं ; बड़े हैं ; बड़े दिल रखते हैं ; यह तो मेरी दीवानगी है न, कि अपना सूईकी नोक-सा नन्हा दिल समुन्दर जैसे हृदयमें फेंककर अब वापसीकी भीक माँग रही हूँ, गिड़गिड़ा रही हूँ। जो चीज आपकी नजरोंमें हो ; आपके दिलमे हो और उसकी वेदना आप महसूस न करें, आश्चर्य ही है। अभागिन होनेपर भी वासनाकी पुतली नहीं। संसार स्वार्थका है। आपके साथ साहित्यिक चर्चा सन्तोषजनक वार्त्ता और आशा-जनक कल्पनाओंसे बड़ी शान्ति मिलती थी। महाराज ! जीवनका भेद सबसे रामायणकी तरह गाया नहीं जाता। आप तो हँसी उड़ा रहे हैं ; कटेपर नमक बुरकना इसे ही कहते है। 'जाके पाँव न फटी बेबाई, सो का जाने पीर पराई।' कहीं दिलपर ठेस लगी होती, तो पता चलता। फिर भी, देवता ! मै विपद्की मारी हूँ, जिसका जीवन दुःखोंकी आँधीमें बीता हो, उसे सहारा देके उठा देना मनुष्यत्व ही नहीं, देवत्व कहा जाये, तो कोई अत्युक्ति नहीं ! देखते तो हैं, ऐन जवानीमे चेहरेपर झुर्रियाँ दिखाई देती है, यदि 'मेकअप' अच्छा न हो, तो हम युवतियाँ भी बुढ़िया नजर आयें। मेरी दशा तो उस सुन्दरी नायिका जैसी है, जिसे उसने किसी मन चले युवकके प्रति कहा था।

श्रवण, नयन, कुच, नासिका, निरखत कहाँ सुजान !
मदन नगर बसि ऊजरो, ताको खड़े निशान !

मुझे वासना नहीं, सच्ची श्रद्धा और भक्ति हैं, आपकी उदारता है, जिसके वशीभूत होके बार-बार आपके दर्शन के लिये उत्सुक हूँ। आप जो चाहे कहे। मैं जानती हूँ, कि आपकी श्रीमतीजी मुझसे अधिक सेवा करती हैं ; सुन्दरी भी हैं, किन्तु वह भी तो दास ही कहे जाते हैं, जो खड़े रहकर आज्ञाओंकी प्रतीक्षा किया करते हैं।

इनमे मुझे भी एक समझ लीजिये। अतः दर्शन दें और मेरी डूबती नय्याको पार लगायें। मै अपना सर्वस्व सौंप चुकी हूँ, चाहे उबारें या डुबाये यह आपके आधीन है। समझदारको अधिक क्या समझाऊँ, कुशल समाचार लिखे नहीं, आके सुनायें यही प्रार्थना है।

आपकी अभागिन

सरस्वती।

मनचलोंके कुछ खतूत

[लेखक—दो दीवाने]

खाना बदोश,
ताज महल—
....

मेरी जान

अगर यह सौजान होती, तो बार-बार कुरबान होनेमे भी मजा आता। अफसोस वह एक है, जिसकी कुर्बानी, तुम्हारे हुस्नके मन्दिरमे उसी दिन कर चुका हूँ, जिस दिन कालेजमे हमदोनोंकी पहली बात-चीत हुई। उसदिन बेतहाशा मेरे मुँहसे निकल पड़ा था—'She smiled, a well was formed on her cheek, I fell in, whence there was no escape' तुमने मुस्कुरा दिया ; गालोपर एक कुँआ बना ; मैं उसमे गिरा और फिर निकल न

सका। लोग कहते है, कि हसीनोंकी बेरुखाई और बेवफाईसे दिली दुनियामे बेक़रारीका सैलाब आता है ; पर शुक्र है, कि यहाँ वह दुनिया ही नहीं। अगर कभी आँसुओंने बेवक्तकी बरसात कर भी दी, तो बेखुदी डूब जाती है ; दिलकी फुलवारी और निखर जाती है ; कहने-सुनने वालो के बेबुनियाद ख्यालात अपने आप धुल जाते है।

इरादा तो न था, कि तुम्हें खत लिखता, या दीदारका तालिब बनता। सिर्फ याद ही किसीकी दीवानगीके लिये काफी थी ; मैंने बारहा बेकाबू दिलको समझाया और कहा,

'याद न कर दिले हज़ीं, भूली हुई कहानियाँ।'

लेकिन दिलने जरा सब्र किया, कि कमबख्त आँखे तड़प गई और लगी तलाश करने; अगर तसवीर सामने आनेमे जरा भी देर हुई, तो वह ऐसी मचल जाती है, कि सावन-भादोंकी झड़ी लगा देती है। इन बदनसीबोंकी तो यह हालत है कि खुलती है; तो बन्द नही होती और बन्द हुई, तो खुलनेका नाम नही लेती। ज्यादा तङ्ग करो, तो वह उठती है, जनाब! मेरे पास उनकी हुस्न बयानी की ताकत होती, तो तुम्हारे 'कल दिखा देंगे, परसो ला देंगे!' के झूठे बातोमे अपनी बीनाई खोने की नौबत न आती! उनकी हालत तो यह है,—

'रात कटें गिन-गिनके तारे, ढूँढ़त नैना साँझ सकारे।'

इसपर जनाब दिल तान तोड़ बैठते है;—

'आय सुनाओ, मनके वासी मधुर-मधुर बैन!'

सुलोचने! तुम्हीं बताओ न, इस मरजकी दवा क्या है? दिल और आँखकी लड़ाईमे मै खामख्वाह रूईकी तरह जल रहा हूँ। आँखोने दिलपर इलजाम लगाया,—'तुमने हमको प्रेम सिखाया।'

यह सुनकर हजरत दिल कब चुप रहने लगे, उन्होंने छूटते ही फरमा दिया।

'रूप दिखाया , मस्त बनाया।'

अब तुम्हीं कहो ना! इन गरीबोंकी हालत कैसे सम्भाली जाये? बेचारे इतने नासमझ, बावफा और ईमानदार हैं, कि एक बार जिधर ढले, बस उधर ही चले। इसका नतीजा क्या है, मैं परेशान हूँ, नातवान हूँ, कमजोरी बढ़ती ही जा रही है; खब्तगी है जो रफ्ता-रफ्ता खानाबदोशीमें तबदील होती जा रही है। शायद तुम इसकी दवा जानती हो, कहाँ अमृतका घूँट बनकर जावेदानी बख्शनेकी अनायत होनेवाली थी; अगर उसकी जगह मेरी परेशानी ही मिट जाती, तो मैं गनीमत जानता। कमबख्त मिलकर मेरी दुनिया ही उजाड़नेकी फिराकमे हैं; हस्ती मिटानेकी ताकमे है। उस दिन तुमने कहा था, कि देवदास पिकचरमें दर्शन हो जायँगे, आखिरी तमाशेतक दरवाजेपर धरना देता रहा, तुम्हारा भीतर-बाहर कहीं भी सुराग न चला, मैं अपना-सा मुँह लेके वापस आया। खैर, इसका मै बुरा नहीं मानता, क्योंकि जिस राहका राहगीर हूँ, उसकी हर मंजिल कड़ी, हरएकमे ना उम्मीदी!—'अब दो बातें सोच रहा हूँ, एक तो यह, कि जबतक जीता हूँ यूँ ही रोया करूँगा। दूसरी यह, कि आखिर एक-न-एक दिन मरूँगा।

'मुनहसर मरने पै हो जिसकी उम्मीद,
नाउम्मीदा उसकी देखा चाहिये।'

सुलोचने! मुझे अच्छी तरह मालूम है, कि हमारे और तुम्हारे बीच समाज, जात और दीगर वजूहातका एक वसीअ समुन्दर बेतहाशा मौजें मार रहा है, एक बौना चाँदको मुट्ठीमे

बन्द कर लेनेकी बेहद कोशिश कर रहा है; फिर भी दिलकी सलतनतमें ऊँच-नीच, अमीर-गरीबका ख्याल नही होता। भगवान उसीका होता है, जिसमे पाक इबादतकी लव होती है। तुम्हारी सूरत और सीरत दोनोका मै तो अन्धा पुजारी हूँ, क्या मेरे अरमानोकी देवि! कभी मुझे भी जीभरके पूजा करनेजी इजाजत होगी? दस्ते मुकद्दसको चूमते हुए एक बार, सिर्फ एक बार तुमसे सुनना नसीब होगा?

पुजारी मन्दिरमें आओ।'

तुम्हारा पुजारी
—राजकुमार

सुन्दरपुर,
श्रीनगर,
......

.....कुमार!

सप्रेम बन्दे। खत मिला; निहायत मशकूर हूँ। सचमुच तुम मुस्सविर हो कुमार! आँखोमे एक सूरत नाचने लगी, सोये हुए दिली जजबातको नामेने झिझोड़के जगा दिया और मै चौंकके अतराफमे नजरसानी की; गौर तलब हुई, तो मालूम हुआ, कि कोई मेरे हाथोको चूमके जैसे कोई किसी नई दुल्हनके कानोंमें साँय-साँय मुहब्बतका पहला पाठ पढ़ा रहा हो। वह दुल्हन भी ऐसी अल्हड़ और बेसमझ जिसपर कभी भी मुहब्बतके सूरजकी किरनें नही पड़ी, गरीबने सिर्फ पहाड़ीकी तलैटियो और नदियोकी छातीपर खेलती हुई चाँदनीकी अठखेलियाँ देखी है। अब तो मैं भी महसूस करने लगी हूं।

'तान बाशद चीजके, मरदुम न गोयद चीजहा ।'

जबतक किसी बातमे असलियत नहीं होती, इन्सान उसे बढ़ाके नहीं कहता ! सचमुच मुहब्बत ऐसी शै है, इसमे इतना नशा है, कि आदमीको बेहोश और मदहोश बना देता है ।' साँपके काटेका तो उतार, जहर की दवा, सुनी है, लेकिन इस लामालूम मर्जका इलाज क्या है ? मै खुद नहीं जानती । जनाब फरमाते है; कूँएमे गिरा, निकल न सका, लेकिन उस कूँएका पानी अब तो सिर्फ तुम्हारे हाथ है, कितना पानी है, कैसा पानी है, यह मेरे तहरीरकी चीज नहीं; हुजूर खुद अपने फरायज समझ ले। आबदार मोतीकी परख जौहरी ही कर सकता है जब एक बादशाह सिर्फ मुहब्बतके पानीकी हिफाजतमे एक दुनियाकी सलतनत को बालाये ताक रख सकता है, ठुकरा सकता है, तो क्या एक राजकुमारसे यह भी उम्मीद न की जाये, जहाँ उनके यहां कितनी ही खादिमा बसराचश्म खिदमतमे मौजूद हो, वहां इसे भी दस्तबस्तह हुक्मबरदारीका मौका दिया जाये । क्या मै इतनी खुशनसीब हूँ, कि हुजूरके कदमनियाजोका फख्र बन्दीको भी हासिल होगा ?

कुमार ! तुमने मुहब्बतका इतना सुहावना तराना गाया, कि मेरे दिलकी बीना खुदबखुद बेखुदी मे बज उठी। जब जरा इधर गौर तलब होके कानोंको लगाके सुनती हूँ, तब वही तुम्हारी खुशअलहान रागिनी सुनाई देती है । तुमने कालेजमे गाया था—

'प्रेम डगरिया महा अगम ह, भूल न रखना पाँव ।
तन मन धन की बलिये चाहे, कभू न लीजे नाव ।।

हाँ, इतनी तमीज नहीं है तुम इसे कालेजके स्टेजपर गा रहे हो, या मेरे मनमे । बुरी हो उस साइतकी, जब मै कालेजके गर्ल्स एसासिएशनकी ओरसे तुम्हें 'वन्देमातरम्'के हीरोका बेहतरीन

पार्ट अदा करनेपर मुबारकबादी देने गई थी। माफ करना कुमार! मैं समझती थी, कि मै भी कुदरतकी फुलवारीके चमनका एक बे-मिसाल गुल हूँ। लेकिन हाँ, तुम्हें भी कुदरतने हर नाजनीके लिये एक युसुफ बनाया है, जिसके कदमोंपर मेरे जैसे बेशुमार गुल हजार बार न्योछावर किये जायें, तो भी कम है।

नामा फरमाता है, कि तुम पुजारी हो, किसकी? पाक मुब्बतकी, तो मेहरवान! मुझे भी साथमे पुजारिन बना ले, फिर तो एक नई दुनियाँ तय्यार होगी, जिसमे सोजिश, जलन, दर्द, ना उम्मीदी और फुरकतकी तकलीफोंका नामोनिशान न होगा। क्या इतनी नवाजिश कर सकते हो कुमार! तुम तो किसीकी तसवीर और तसव्वरसे निगोड़ी आँखों और बेकरार दिलको समझा भी लेते होगे, पर यहाँ तो दिल और आँखोंकी लड़ाईने कयामत वरपा कर रखा है। दिलके दर्दने नींद हराम करदी है। उस दिन कमरेमे बैठी हुई थी और तुम्हारा मजमून चाँदमें देखा, तो दिल रामने सिसकियाँ शुरूअ करदी। बेचारी आँखें घबरा उठीं, उन्हे कभी-कभी ख्वाबमे नियाज हासिल होता रहा, लेकिन हौलदिलसे सहा न गया, उसने गरीबोंकी नीद हराम करदी। बेचारी कहने लगी—

'नींद भी फुरकत में खा बैठी हैं, आने की कसम।
ख्वाबमे भी देखनेका, आसरा जाता रहा॥'

कुमार! मुझसे न पूछो, कि इसकी दवा क्या है, जिस मर्जमे हुजूर मुब्तला है, वही बला मेरे भी गलेकी फाँसी है। यह फाँसी तो तभी कट सकती है, जब महाराजकुमारकी नेक नजर हो। बालिदैनको मैं राजी कर लूँगी, सिर्फ तुम्हारी हाँकी जरूरत है, बराय मेहरबानी वह ग्रूपवाले फोटोकी एक कापी एनायत हो, ममनून हूँगी। दुनिया काश्मीरकी सैर करने आती है और हुजूर

ताजमहलकी रौनक बढ़ा रहे हैं, कहीं किसीसे.. ...लड़ न जायें, मनचलोंकी कौन कहे, बन्दी तो दोनो हाथ उठाके दुआ करती है।

जिसने दिया है दर्द दिल...उसका भला करे।

खादिमा...

—सुलोचनी।

ताज महल

....

१८-५-३८

.........!!

खत मिला, खुशी का क्या ठिकाना, गोया गूँगेको शीरनी दी गई; अन्धेके सामने कुदरतके नजारह की नुमाइश खोल दी गई, दीवानेके हाथमें दागका दीवान दे दिया गया; राहे मुहब्बतके मायूस मुसाफिरसे कहा गया, कि जिन्दगी की मञ्जिलका आखिरी पड़ाव पासमें है; हिम्मत से काम लो; सबको साथी बनाके आगे बढ़ो; सारी मुसीबतें मिट जायेगी। क्या यह सच है, कि यह तुम्हारा ही खत है और तुम्हारे ही हाथो लिखा गया!! मुझे तो ऐसा मालूम हो रहा है, गोया मैं एक सपना देख रहा हूँ, जिसका कोई वजूद नहीं। शायद मेरे जुनूनने कुछ ऐसी सूरत अख्तियार की है, कि मैं अपने खतका जवाब खुद-बखुद वैसा ही पढ़ रहा हूँ. जैसे मेरे ख्यालात दिल और दिमागमें चक्कर काट रहे हैं। डर तो यह है, कि लोग मुझपर सुबहा करने लग गये हैं। भूक नहीं, प्यास नहीं, नींद नहीं; न तो कपड़े पहननेका शौक और न टहलनेकी जुरत। कुछ अजीब परेशानी है; बेहोशीकी हालतमें जिन्दगीका चार लिए जीता हूँ। अरमानोंका अम्बार लगा

हुआ है ; नहीं मालूम, कि हसरतोंके तूफानमें जिन्दगीकी किश्ती किस घाट लगेगी।

सबसे बड़े सर्जन आते हैं, फेफड़ेकी कमजोरी, खूनकी पानी, मीठा बुखार, और न जाने क्या-क्या मर्ज बताते हैं। नौकर-चाकर, घरवाले, दोस्त अहबाब मेरी सेहतके लिए रात-दिन परेशान है, दवा-दारूके लिए रुपये पानीकी तरह खर्च किये जाते हैं। बला को खूबसूरत दाइयाँ रात-दिन मेरी हिफाजतके लिए थर्मामीटर और दवाकी शीशी लिए तय्यार हैं, मिलने-जुलनेवालों का भी हुजूम है, लेकिन मेरी बीमारी क्या है ? किसीको खबर नहीं। सुलाचने ! तुम खादिमा नहीं, दिलकी महारानी बन सकती हो। तुमने लिखा है, कि एक बादशाह मुहब्बतकी राहमें कभी और साबित कदम रहनेके लिए सलतनतको ठुकरा दिया। बेशक !! मैने तो जानकी बाजी लगाई है, शायद इससे बढ़कर प्यारी शै दुनियाके परदेपर नहीं। तुम्हारी हाँ मे मेरी जिन्दगी, राहत सब-कुछ है ; तुम्हारे नहींमे हसरतों और उम्मीदोंकी पामाली है। बुरा न मानो तो एक बार यहाँ जरूर आओ। वालिदैनको समझा लो, कि तुम्हारा एक क्लासफ्रेण्ड सख्त बीमार है, उसे एक बार देख लेनेकी इजाजत दी जाये। अगर मुनासिब समझो, तो उन्हे भी साथ लाओ।

कहते हैं, कि मुहब्बत अन्धी होती है, फिर इस अन्धीके पीछे इन्सान अपना सब कुछ कुर्बान करते हुए क्यों पागल बनता है ? क्या नफस अम्बारी ही मुहब्बतकी इन्तहा है ? मेरे ख्याले नाकिस में मुहब्बत वह पाक शै है, जो दो दिलोंमे एक ही वक्त और एक ही तरहकी हरकत पैदा करे। क्या इसे तुमने भी कभी महसूस किया है ?

यह खत मै रातके सन्नाटेमे लिख रहा हूँ, तमाम दुनिया सो रही है। सिर्फ मै जागता हूँ और सामने तुम्हारी तसवीर है। बार-बार ऐसा ख्याल हो रहा है, गोया तुम कुछ कहा चाहती हो, तुम्हारे होठ हिल रहे है; आँखोकी पुतलियाँ मुझे देख रही है; हल्की-सी मुस्कीने तुम्हारी खूबीको दो बाला बना दिया है; काश तुम पास होती, तो यकीनन मेरी सेहत अच्छी होती। उम्मीद है, कि तुम जरूर आके अपनी मसीहमई ताकतसे मुझे बचाओगी। इससे ज्यादा लिखनेकी हिम्मत नही; हाथ काँप रहा है, अगर जिन्दा रहा तो फिर......

तुम्हारा
—राजकुमार।

श्री नगर
.....
२७—८—३८

......श्वर कुमार!

एनायत नामा मिला, मशकूर हुई। सेहत और घबराहटकी बाटे पढ़कर निहायत रंज हुआ। इतना परेशान और हैरान होनेकी जरूरत नही। मै तो अर्ज कर चुकी हूँ। माना आजादीका जमाना है; फिर भी रस्म-रिवाज कोई चीज है। मेरी हस्ती और हैसियत नही, कि कुमारके दस्तयाबीकी तमन्ना करूँ। मैने माताजी से सारी कहानी बयान कर दी तो उन्होने पिताजीको सुना दी। उन्होने मुझसे पूछा, तो मैंने सर झुका लिया। 'खामोशी नीम रजा' वाली बात हुई। कुमार बरहमन है, मैं राजपूतिन हूँ, क्या हमारे वअल्लुकात खान्दानके लिये एक धब्बेका वायस न होगा? क्या

तालुकेके दीगर मूरिस और कुनबेके और लोग हमारी शादीको पसन्द करेंगे ? मेरे वालिदैन अन्तर्जातीय विवाहमें एत्तकाद रखते हैं और इस उसूलके कायल हैं, पर उधरसे क्या होगा ? जरा सोचनेकी बात है। हम लोग तालीमयाफ्ता है, क्या इस बीसवी सदीमे दकियानूसी ख्यालात हमारे तअल्लुकातमें रोड़े अटका सकते हैं ? मैंने तयकर लिया है, कि जल्द-से-जल्द मै आपकी खिदमत बजा लाऊँगी, लेकिन हमेशा मद्दे नजर रखना होगा, कि 'चार दिनाकी चाँदनी, फिर अन्धेरा पाख' न हो। मैंने तवारीखें और नावेलोंमें पढ़ा है, कि पहले जाँनिसारी और कुरबानीकी रवायते खूब सुनी जाती है ; लेकिन जहाँ दिलके ऊपर कब्जा हो गया, वहीं तोतेचश्मी अख्तियार कर ली गई।

माफ कीजियेगा, कुमार ! मै औरत हूँ, हजार पढ़ी-लिखी और आजाद तबीयत रखनेपर भी हिन्दुस्तानकी बेटी हूँ। मेरी असमतकी कीमत दौलत नहीं; सलतनत नहीं नफस अम्मारी नहीं, दुनियाका ऐशोआराम नही। मै चाहती हूँ, कि एकको अपना पति चुनूँ और ताजिन्दगी उसकी खिदमत बजा लाऊँ। पहले खतमे अपने दिली मुद्दआका इजहार कर चुकी हुँ। बार-बार उसका जिक्र लाना तहजीबके खिलाफ होगा। साफ तो यूँ है, कि मैं कुमारके साथ हर तरहसे हमदर्दी रखती हूँ, इन्सानियतके नाते, क्लासफ्रेण्डके नाते और भलमनसाहतके नाते सब तरह खिदमत करने के लिये तैयार हूँ।

हुजूर ! इसका यह मतलब न लगा बैठें, कि मैं अपने ख्याल को बदल रही हूँ, या आपकी गिरी हुई तबीयत या आजादीका नाजायज फायदा उठानेकी ताकमे हूँ। मैं साफगोईसे काम ले रही हूँ। मैं कुमारकी हूँ, कुमार मेरे हैं, अभीतक तो यही जानती और

समझती हूँ, लेकिन दुनियाकी अंगुश्तनुमाइसे जरा डरती हूँ। तन्दुरुस्तीपर ख्याल रखें, मैं भी हाजिर आती हूँ। कुमारकी मेहरबानी और यादकी दोबारा मशकूर हूँ। ईश्वरने चाहा तो दूसरे खतके साथ ही बन्दी भी कदमोंमें मौजूद होगी।

वही खादिमा

—सुलोचना।

कर्तव्य और प्रेम

[लेखक—श्री अनूप 'साहित्य-रत्न']

'मेरी रानी,

तुम कितनी कठोर हो मृणाल ! एक नहीं—तीन-तीन पत्र भेजे पर तुमने एकका भी उत्तर न दिया ! कहो तुम्हीं, यह तुम्हारी निष्ठुरता नहीं तो और क्या है ? नारी-हृदय इतना निर्मम—इतना कठोर—होता है, मुझे इसका भान न था ! मै तो सदैव यही जानता था, और अब भी जानता हूँ कि, नारी स्रष्टाकी सुकुमार सृष्टि है, उनमें कोमलता है, सरसता है, सदाशयता है; पर देखता हूँ, तुम कदाचित् इसका अपवाद हो और हो क्यों

[नोट—ऊपरके खतोंमें अरबी और फारसीके बहुतेरे आम बोल-चालके शब्द आये है, उनके नीचे-ऊपरके नुक्ते नहीं लगाके उन्हें अपने साँचेमे ढाल लिया गया है।—सं०]

न ! आखिर तुम मुझपर इतनी ममता क्यों करने लगी बुरा न मानना; न-जानें, तुम्हारा वियोग क्यों मेरे हृदय को डाँवाडोल किये देता है ! और ऐसी अवस्थामें मैं तुम्हें पत्र लिखनेको बैठ जाता हूँ, और जबतक मैं अपने भावोंकी लड़ियाँ अपनी लेखनीसे गूँथने लगता हूँ तबतक तुम, सच कहता हूँ, मेरी आँखोंके सामने डूबती-उतराती रहती हो—और तुम्हारा मुखड़ा—आह ! कैसे कहूँ—तुम्हारा भोला-भाला मुखड़ा न-जानें क्यों मुझे बड़ा भला मालूम पड़ने लगता है ! और यही कारण है कि, मुझे पत्र लिखने में परितृप्ति मिलती है और इसीलिये मैं तुम्हारे साथ, पत्र लिखने-का अन्याय कर बैठता हूँ। सम्भव है, तुम्हें मेरा पत्र रुचिकर न लगे, पर मैं तो अपनी कहूँगा, और यह कोई बात नहीं—जिससे मुझे आनन्द उपलब्ध हो उसीसे तुम्हें भी परितृप्ति लाभ हो। आह ! यदि ऐसा होता !

हाँ, सच कहो मृणाल ! तुम इतनी कठोर हो ? कह दो एक बार अपने मुँहसे। फिर मैं तुम्हें पत्र लिखकर तंग न करूँगा। मेरी ऐसी आदत नहीं कि मैं दूसरोंको यों छेड़ता फिरूँ। मैं जान-बूझकर तुम्हें नहीं छेड़ना चाहता; फिर भी तुम्हें यदि वास्तवमें मेरे व्यवहारमें रुक्षताका आभास मिलता हो तो सिवा इसके कि तुम मुझे क्षमा कर दो, और दूसरा चारा ही क्या है ?

आज मैं तुमसे बहुत दूर आ गया हूँ और इतनी दूर आ गया हूँ जिसकी मुझे कल्पनातक न थी; पर मैं लाचार हूँ, कर्त्त-व्यानुरोधसे मुझे, सम्भव है, यहाँसे न-जाने कितनी दूर जाना पड़े ! पर, यह दूरी चाहे जितनी लम्बी हो, मै और 'तुम'के बीच व्यवधान नहीं डाल सकती। हम दोनोंके हृदय एक ऐसे सूत्रमे आबद्ध हैं, जो न तो स्थान और समयकी दूरीसे छिन्न हो सकता

है और न किसी परिस्थितिसे। और मेरा तो ख्याल है, ज्यों-ज्यों मैं तुमसे दूर हटता जाता हूँ, त्यों-त्यों मै तुम्हे सम्पूर्ण रूपसे पाने-को प्रयत्नशील हो उठा हूँ! मैं सच कहता हूँ मृणाल, तुम्हें अब-तक पहचान नही पाया था—तुम्हे पाकर भी; पर तुम्हें—इस समय खोकर—जरा कठिन होकर कह रहा हूँ—अच्छी तरह पहचान रहा हूँ और मैने पहचान लिया है—तुम्हारे सुकुमार हृदयंको—उस हृदयको, जिसमे ममता है, सहानुभूति है, दया है, करुणा है, स्नेह है, सदाशयता है! टटोलकर देखोगी मृणाल, तुम अपने उस हृदय को? है न ये सब?......तुम्ही कहो,—मैने तुम्हे पहचाना है या नही? और तुम?...क्या तुम अबतक भी कठोर ही बनी रहोगी? खैर, रहो तुम कठोर, इससे मेरा बनता-बिगड़ता ही क्या है? चाहे तुम जैसी रहो मेरे प्रति, पर मै तो तुम्हे जिन आँखो से देख रहा हूँ, वह आँखे मेरी बनी रहे, मै और कुछ नहीं चाहता! मुझे दूसरेसे काम?...नही, तुम मेरी रानी हो मृणाल, मै तुम्हे छोड़कर पलभर भी नही रह सकता!...भाड़मे जाय कर्त्तव्य! ओह कर्त्तव्य?...कितना क्रूर, कितना निर्मम, कितना कठोर!!!...नही, कर्त्तव्य मुझे मार डालना चाहता है, मृणाल! मुझे तो, अब तुम्हारा प्रेम चाहिये! हाँ प्रेमका लघु—लघुतम कण ही चाहिये मुझे और तभी मैं अपनेमे जीवन ला सकूँगा।

जानती हो मृणाल, मेरे मित्र मेरे सम्बन्धमे क्या कहते है? कहते है—मै सूख सा गया हूँ, न-जानें मेरी स्फूर्ति कहाँविलीन हो गयी है! और जिसे तुम मचलकर कह उठती थी—गुलाब-सा है—वह गुलाब, सच कहता हूं—वह गुलाब न-जाने कैसे छूमन्तर हो गया? क्या तुमने आँख तो नही लगा दी? मैं समझ नहीं

पाता कि, आखिर हो क्या गया मुझे ? न सर्दी, न गर्मी, न ज्वर, न और कुछ ! सदैव काममें जुटा रहता हूँ, डटकर खाता हूँ, यार-दोस्तोंके बीच खुशियाँ मनाता हूँ, खेलता हूँ, कूदता हूँ—सुखके साधन मौजूद। फिर भी मैं सूखा-सूखा-सा क्यों होता जा रहा हूँ—जानती हो मृणाल, क्यों ? शायद तुम जान सको, इसलिये मैंने तुम्हें लिख दिया !

मृणाल, इस बार अवश्य पत्रोत्तर दोगी। आह, यदि इतना सा उपकार कर सको ! हाँ, कर सको तो मुझे कितनी कितनी प्रसन्नता होगी ? इसका अनुमान तुम्हीं लगा देखो तो भला ! मैं तुम्हारे पत्रकी प्रतीक्षामें रहूँगा।

हाँ, अचलाको पत्र लिखा है। सम्भव है, परसोंतक उसका पत्र मुझे मिल जाय। पता नहीं, वह अपने घर आती है या नहीं। वह कितनी सीधी, कितनी सरल है, मृणाल ! पर, उसे तो घर-भार मारे डालता है। इतनी कम उम्रमें उसपर कामका इतना भार पड़ जाना ! पर चिन्ता नहीं, अचला दिखला देगी—वह बापकी बेटी है। हो सके तो तुम उसकी मदद करती रहोगी।

बस, पत्रको यहीं शेष करता हूँ। लिखना बहुत कुछ था, पर अधिक लिखकर कुछ लाभ नहीं दीखता ! जितना ही लिखूँगा, उतना ही तुम्हें रञ्ज होगा। इसलिय मुझे बरबस अपनी लेखनी-को विश्राम देना पड़ रहा है। मुझे तो मालूम होता है, तुम पत्रको पढ़ती भी न होगी। भला पढ़ो क्यों, इसमें तुम्हें कौन-सा आनन्द आयगा ? जहाँ घरमे तुम्हारी आनन्दकी मन्दाकिनी चिरन्तन प्रवाहमयी है, वहाँ तुम उसमें अवगाहन न करो तो क्या करो। ....पर नहीं, न पढ़ो, पढ़नेकी आवश्यकता नहीं—और न पत्रोत्तरका ! मैंने यों ही लिख दिया, और कदाचित् मैं आगे भी

यों ही लिखता रहूँ। मै तो इसे भी अपने कर्त्तव्यमे ही परिगणित करता हूँ! कर्त्तव्यके सामने फलाफलकी आशाका मूल्य ही क्या? विदा, आशा है, तुम शरीरसे स्वस्थ होगी, सम्भव है मनसे भी।

तुम्हारा—जयन्त।"

पत्र-संख्या—२

"मेरे देवता,

तुम्हारे सामने आनेसे मुझे न-जाने क्यो झिझक होती है—कह नही सकती! तुम तो इतने बिगड़ बैठे हो कि मुझे कुछ लिखनेका साहस ही नही होता! पर मैं तुमसे रंज नहीं हूँ। तुम्हारे लिये ऐसा होना आवश्यक ही था। जानती हूँ—मैंने चुप्पी साधकर तुम्हे कितनी चोट पहुँचायी है। मैं नहीं जानती थी कि, तुम मेरी इतनी-सी असावधानीके कारण इतने दुखी होंगे! और मैं इसके लिए तुमसे क्षमाकी भीख नहीं माँगना चाहती— और भीख?......नहीं तुम्हे अधिकार है। जितना मैंने तुम्हे कष्ट दिया है, उससे अधिक कष्ट तुम मुझे दो। कदाचित् इससे भी मेरे पापोंका प्रतिकार होगा या नही, मैं नहीं जानती; पर मुझे कमसे-कम तभी परितृप्ति मिल सकती है, अन्यथा नहीं।

मेरे तुम! तुम कितने उदार हो, कितने भोले हो! तुम्हारी वे बातें कितनी सरल—कितनी भोली लगीं! तुम लिखते हो—मृणाल, यदि तुम्हे मेरे हृदयका परिचय मिलता!........मैं तो स्वयं मरी जा रही हूँ। कैसे कहूँ कि मैं तुम्हे पहचानती हूँ! आह! यदि मैं तुम्हें पहचान पाती तो कभी मै ऐसी भूल न कर सकती! तुम तो समझते होगे—मैं तुम्हारे पत्रोंको ठुकरा दिया करती हूँ,

पढ़ना तो दूरकी बात रही ! क्या तुमने ऐसा लिखकर मेरे प्रति अन्याय नहीं किया है ? तुमसे यह कैसे लिखे गया कि, मैं तो अपने घरकी आनन्द-मन्दाकिनीमे संतरण करती हूँ, फिर मैं तुम्हारे पत्रको यदि ठुकरा ही दूँ तो यह कोई बात नही—क्या यह मेरे प्रति तुम्हारा अत्याचार नहीं है ? अच्छा, यह तो कहो—ऐसी गाली देनेका तुम्हे क्या अधिकार है ? तुम ऐसी ओछी बात अपने मुँहपर कैसे ला सके ? मैं खुद आश्चर्यमे मरी जा रही हूँ। जानती हूँ—और ठीक ही जानती हूँ कि, पुरुष कठोर होते हैं ! ठीक ही कठोर होते है। मै जानती हूँ कि, तुम भी कठोर हो......और नहीं तो, आखिर, ऐसा लिखा क्यो ?

तुमने लिखा है—तुमने मुझे पहचान लिया है। पहचाना होगा पर मानव-जिवन क्या इतना सरल है कि कोई उसे बात-की बातमें पहचान ले ? मै तो कहती हूँ, जैसा कि तुमने लिखा है—मुझे अबतक तुमने नहीं पहचाना ! और शायद कभी पह-चान सकोगे या नही, नहीं कह सकती। मैं अवश्य इतनी सरल नही—भोली नहीं—मेरे देवता ! तुम यदि मुझे इस रूपमे देख रहे हो तो मै कहूँगी—तुम गलत राह पर जा रहे हो। मैं तो कहती हूँ—मैं संसार मे अधम हूँ—सबसे अधम हूँ। पर मैं प्रयत्न कर रही हूँ कि मै उठूँ; शक्तिभर उठनेका प्रयत्न करूँ ! उठकर देखूँ—यदि मै तुम्हे......तुम्हारे पाद-पद्मोतक पहुँच-सकूँ। हाँ, मैं इतना ही उठना चाहती हूँ—इससे न अधिक और न कम ! क्या तुम मेरी कर सकते हो ?...क्या नहीं कर सकते ?

और एक बात सुनोगे मेरी ?.....नहीं कहूँगी ! लाज लगती है। जानते हो, मै तुम्हे 'प्यारे नहीं कह सकती। चाहती

हूँ—एक बार 'प्यारे कहकर तुम्हें पुकारूँ पर कह नहीं सकती। 'प्यारे'—बड़ा भद्दा-सा लगता है?.........मैं इसी लिए तुम्हे प्यारे कहनेमें शर्माती हूँ। मुझे तो 'तुम' ही प्रिय है!......और इतना ही भर रहने दो!

हाँ सुनोगे एक बात? है तो बहुत पुरानी, पर शायद तुम्हारे लिए नयी ही हो; और वह यह है कि, जिस दिन तुम निर्मोही बनकर, मुझे छोड़कर भाग निकले, उस दिन सचमुच मैं तुमपर बहुत रंज थी—खीझ उठी थी। ऐसेसे आखिर सम्बन्ध हुआ ही क्यों, जिसके साथ फूल-शय्यातक...न एक सप्ताह न एक माह। यौवन! यौवनका उन्माद! नशा! ..मैं पागल थी! मुझे होता था—कह दूँ तुम्हे—मत भागो, जहर खालूँगी, और न-जानें क्या-क्या? आखिर तुम चले ही गये! पहला पत्र आया, रंजसे मैंने उसे खोलातक नहीं—नजर तक न डाली। फेक दिया उसे आलमारीपर; और उठकर अपनी सखियोंसे जा मिली! दिन किसी तरह काट लेती, मगर रात?......और न-जानें कितनी लम्बी रातें!......जाने दो, तुम क्या समझोगे—कितनी लम्बी रातें थी वे! और दूसरा पत्र आया, उसकी भी करीब-करीब वही हालत रही जो पहले की हुई थी—खोलातक नहीं। तुम जैसे दुष्टका पत्र? और वह खोलाजाय?......और तीसरा पत्र भी मिला। मैंने इस बार इतनी सख्तीसे काम न लिया। इसका कारण था, पर मैं उसे न बतलाऊँगी। तुम इतना ही जानो कि, तीसरेके चलते मैं पहले और दूसरेको भी पढ़ गयी। उसी दिन से सोचती—लिखूँगी तुम्हें और ऐसी तनकर लिखूँगी कि, तुम भी समझोगे—आखिर पड़ा है पाला किसीसे, पर मैं सफल न हो सकी। आज सौभाग्यसे चौथा पत्र सामने है, और

न-जानें इसे पाकर मैं क्यों तुम्हारी ओर अधिक आकर्षित हो उठी हूँ—कह नहीं सकती ! क्यों इतना आकर्षण है तुममें ? क्यों तुम इतने सुन्दर मुझे लग रहे हो—मेरे मनमोहन ! क्यो मेरे चित्तमे चंचलता भर रहे हो, मेरे चितचोर ! हाँ, तुम चोर हो—चोर !

रंज न मानना प्यारे ! मैं तुम्हारी दासी हूं—सेविका हूं ! मै तो तुम्हे ही चाहती हूँ ; और कुछ मुझे न चाहिए। जानते हो—सब-कुछ होकर भी जैसे लगता है, मुझे कुछ है ही नही । और तुम लिखते हो—आनन्द-मन्दाकिनी......। आह, इसीलिए तो कहती—यदि तुम मुझे पहचान पाते ! जानती हूँ—यह मेरी कमजोरी है, पर मुझे इसके लिए खेद नहीं। मैं इस कमजोरीका शिकार ही रहना चाहती हूं और इसीमे मेरी शोभा है !

पर, तुम मेरी ओर क्यो खिचते-से देख रहे हो, देव ? यहाँ तुम्हे क्या मिलेगा ? प्रेम चाहते हो ?—और मेरा ?—यह क्या कहते हो ? कर्त्तव्यके सामने इसका मूल्य ? नहीं, जीवनमें इसकी भी आवश्यकता है, मानती हूँ; पर प्रेम क्या दो जीवो की संलग्नतामें निहित है, प्यारे ? यह तुम क्या कह रहे हो ?...... मैं भी तुमसे यही चाहती हूं, पर मैं यह हर्गिज नहीं चाहती कि, तुम्हें मैं अपनी आँखोंके सामने सदैव देखती रहूं। और यदि मैं ऐसा सोचूँ तो समझना—मैं तुमसे प्रेम नहीं चाहती और वह मेरा मोह है। मोह अन्धा होता है, प्रेम नहीं। प्रेम तो चक्षुष्मान है। कहींसे रहकर देख सकता है; और तुमने सच ही लिखा है—'ज्यो-ज्यो दूर होता जा रहा हूँ, त्यो-त्यो......। मैं मानती हूँ और कदाचित मै अपने प्रति भी ऐसा ही कहती।

और इसीलिए देव, तुम मुझसे कितने ऊँचे उठे जा रहे

हो। उठो—ऊँचा उठो, प्यारे! मैं तुम्हे तुम्हारे कर्त्तव्यमे—विघ्न नही डालना चाहती। तुम बढ़ो; बढ़ते चलो! समय आयेगा! हमलोग मिलेंगे! आह, मिलेगे हमलोग? विश्वास है तुम्हे?—मैं तो अधीर होती जा रही हूं प्राणेश। सहारा दो—सहारा दो, निर्बल होकर लताका जीवन क्या सफल हो सकता है?

और क्या मेरे पापोके लिए मुझे क्षमा न करोगे तुम? मुझे शर्म आती है, क्षमा मॉगनेमे, फिर भी न मॉगू कैसे? आखिर नारी-हृदय!......तुमने तो कहा है......नही क्षमा कर दो, और बस!

अबसे मैं बार-बार तुम्हे पत्र दूॅगी। तुम इस पत्र से, जैसा कि मुझे बोध हो रहा है, ज्यादा घबरा उठे हो। ऐसा न हो—तुम सारे काम-काजको छोड़ भाग आओ।······भाग आओगे? ······यदि तुमने ऐसा किया तो जानते हो, इसका दण्ड तुम्हे क्या मिलेगा?······प्यार करते हो, करो प्यार......, पर प्यार पर अत्याचार न करो और अधिक तुमसे क्या कहूं?

अचला दीदी आयी थी। उन्होंने तुम्हारा पत्र भी मुझे दिखलाया। मैं तो उनके सामने कुछ बोल ही नही सकती; न-जानें क्यो? पर दीदी मुझे कितना मानती हैं! कितनी स्नेहमयी, कितनी ममता मयी हैं वे! दोनो भाई-बहन—! नहीं, न कहूॅगी! —अचला दीदी बोली—भैयाको पत्रमे लिख देना— × ×। लिखोगी न?

क्या उनकी जरूरत है आपको, अचला दी'!—मैंने पूछा। इसपर जानते हो—अचला दी' ने क्या किया? × मेरे गालों ओठोंपर × न जानें × × । और बोली—अब भी ऐसा बोलोगी

मैं क्या करती ? ज्यादा परेशान हो चुकी थी, कह दिया—नहीं ! दोनों बड़ी देरतक खिल खिलाकर हँसती रहीं।

अचला दी' बाहरसे जितनी प्रसन्न दीखती हैं, उतनी भीतर-से नहीं। मैं सोचती हूँ—इसका कारण क्या है। और होता है—मैं उनसे पूछूँ ; पर पूछनेका साहस नहीं होता। और तुमने सहायताकी बात लिखी है×! आखिर कैसे करूँ ? तुम्हीं बताओ बुरा तो न मानेंगी ?

अचला दी' इतनी स्नेहमयी है,—मुझे अब पता चला। अब तो इनके बिना मेरा रहना कठिन-सा हो जाता है। न-जानें क्यों, इनके देखते ही तुम्हारी आकृति मेरे सामने झूलने लगती है ! ×× भाई-बहनमें इतना साम्य ?×× अच्छा होता, यदि यह जोड़ी × !

खैर, कसूर माफ हो ! बिदा लेती हूँ।

तुम्हारी—मृणाल"

पत्र-संख्या—३

"प्रिय मृणाल,

तुम्हारा पत्र समयपर मिल गया था, पर इस बार मुझसे ही पत्रोत्तर देनेमें विलम्ब हो गया। क्या करता ? इधर कामका बोझ इतना भारी हो बैठा है कि, जरा दम लेने को भी समय नहीं मिलता, कभी-कभी तो ऐसा होता है, कि, जरा भी फुर्सत मिली और लेटनेका उपक्रम किया कि इतनेमें फिरसे कामका आदेश ! नींद पलकोंमें बीत जाती है। +क्या बताऊँ ? जी घबरा उठता है, मन विह्वल—बेचैन हो जाता है, पर इससे निस्तार पानेकी और राह नहीं दीख पड़ती।

तुम समझती होगी—मैं कदाचित् कामका बहाना निकालकर तुम्हे भुलावेमे डालना चाहता हूँ। नही मृणाल, सच कहता हूं—ऐसी बात नहीं है। तुम्हारे पत्रसे इस बार मुझे जैसा बल मिला है, जैसी उत्तेजना मिली है, उसका अन्दाज तो मुझे है, तुम क्या जानो? सच तो यह है कि यदि तुमने मुझे अपने पत्रमे यह न लिखा होता कि अपने कर्त्तव्यसे च्युत होकर भाग मत निकलना तो मैं अवश्य अबतक, भागकर ही तुमसे आ मिलता। पर अब तो मेरे लिए दोनो ओर खन्दक-ही-खन्दक दीखते हैं! एक ओर प्रेमका आकर्षण है और दूसरी ओर कर्त्तव्यका आह्वान! मैं कमजोर व्यक्ति···;··· ···दोनों ओरसे जैसे अधरमे लटका हुआ होऊँ। + +मै कुछ भी निश्चय नही कर पाता—कौन-सा पथ मेरे लिये श्रेयस्कर होगा! आह, मै कितने भ्रममे पड़ा हुआ हूँ, मृणाल!

मृणाल, आज मुझे लगता है—जैसे मै तुम्हारे सामने अपराधी होऊँ। और इसीलिये मै तुमसे यह कहनेमे कुण्ठाका अनुभव कर रहा हूँ कि मै तुम्हारा दाम्पत्य-जीवन सुखमय न कर सका। जानता हूँ, यौवनकी उद्दाम वासना बड़ी प्रबल होती है—इतनी प्रबल होती है कि वह शृङ्खलाबद्ध रहना नहीं जानती। इसे मै अस्वाभाविक भी नही कह सकता। माननीय प्रकृति चिरन्तन इस ओर आकर्षित रही है। इसके परे उठना दार्शनिकोंका काम हो सकता है—साधारण मानवका नहीं। और हमलोग तो अत्यन्त साधारण जन है—राग-विरागमे संश्लिष्ट! काम-क्रोध, मद-मत्सरसे ओत प्रोत! ऐसी अवस्थामें, जहाँ एक ओर मुझे अपने-आपके प्रति देखना चाहिये था, वहाँ तुम्हारी ओर—सुकुमार मनोभावना की ओर भी मुझे दृष्टि रखनी चाहिये थी; पर मैं ऐसा न कर सका—मै अपने कर्तव्यसे च्युत हो चुका हूँ!

मुझे लज्जा आती है कि मैं अपने आवेशमें आकर – – –तुम्हारे मीठे अरमान भी पूरा न कर सका ! आह, मानवतासे मै कितना हटा हुआ हूँ, मृणाल ! मै अपने कर्तव्यपर जितना ही कुण्ठित हूँ, उतना ही सन्तप्त भी । और यह तपन मेरे लिये असह्य हो उठा है । ऐसी अवस्थामे, चाहता तो यह हूँ कि तुमसे आ मिलूँ—तुम्हें प्रसन्न देख सकूँ, पर..... पर लाचार हूँ. .... हाय, मेरी लाचारी .... ।

पर नहीं, मैं युवक हूँ, और किसी भी युवकके लिये लाचारी कहना शोभा नही दे शकता । मैं अपनी लाचारीको शीघ्र दूर करूँगा—अपने-आपको बलि चढ़ाकर ! उस अवस्थामे तुमसे आकर मिलना मेरे लिये कितना आनन्दप्रद होगा मृणाल ! और

मुझे यह कहते हुए बड़ा खेद हो रहा है कि तुम्हारा पत्र, जो मुझे भेजा था, नायकके हाथ लग गया था । उन्होंने उसे पढ़ डाला था- यद्यपि तुम्हारी उत्तेजनापूर्ण भर्त्सनासे वह प्रसन्न हैं, फिर भी वह मेरी ओरसे सशंकित हो उठे हैं । उनका ख्याल है कि मैं अपने कर्तव्यमे ढीला होता जा रहा हूँ । उन्होने कल मुझे सचेत कर दिया है । कदाचित् वह मुझे अन्यत्र—बहुत दूर—स्टेशनसे बहुत दूरके देहातमे काम करनेको भेजना चाहते हैं, जहाँ मुझे तुम्हारा पत्र या तो मिल ही नहीं सकता, यदि मिलेगा भी तो काफी देर करके ! मैंने जब कर्तव्यकी प्रतिज्ञा ले ली है, तब जो भी आदेश होगा, पालन करूँगा ही ; पर मेरे लिये मिलन-पथ कितना तमसाच्छन्न होता जा रहा है, साथ ही कितना कन्टकाकीर्ण, मृणाल ! ......आह, क्या कहूँ ?

अचलाका भी पत्र मुझे मिल गया है । मुझे यह जानकर खुशी हुई है कि अचलाके प्रति तुम्हारे हृदयमे आदर है । कदा-

चित् तुम उसे पहचानती भी होगी। सम्भव है, ऐसा न भी हो! कारण है, अचला अपने आपको भुलाकर रखना जनती है। वह बाहरसे जितनी प्रसन्न रहती है, भीतर उसका उतना ही विषाद-पूर्ण रहता है; पर वह उसका पता किसीको देना नहीं चाहती। मेरे घरवालोंने उसके साथ बड़ा अन्याय किया है। उसके पति वृद्ध हैं, पर सद्वंशजात और अत्यन्त धन-हीन भी। इतना ही रहता तो कोई बात नहीं—पति बराबर रोग-ग्रस्त रहते हैं। अचलाको उनकी सेवा ही नहीं, अन्नके लिये भी प्रयत्न करना पड़ता है; पर उसने कभी कहा नहीं कि उसे इस प्रकारका कष्ट है! दिनभर काममें लगी रहती है, पति देवताकि न-जाने कैसी तीखी बातें सहना पड़ती हैं; पर वह कभी मुँहसे व्यक्त नहीं कर पाती! उसने लिखा है;—उसके पतिदेवता मरणासन्न हो रहे हैं, वह इन दिनों इसीलिये और भी व्यथित और व्यग्र हो उठी है। कहीं ऐसा न हो—भगवान् न करे—उसका सुहाग मिट जाय! मुझे ऐसे समाजपर बड़ा रंज आता है, जिसने अचला जैसी, न-जाने कितनी मूक बहनोंको अपने सुहागसे वञ्चित किया है! उफ् ...! निष्ठुर समाज!......अचलाकी देख-रेख रखना, और यदि हो सके तो उसके घर जाकर उसे धैर्य भी बँधाना। रुपये पैसेसे सहायता कर सकती हो, पर किसी बहानेसे। सीधे वह लेनेको किसी तरह तैयार न होगी।

एक बात कहूँ? बुरा तो न मानोगी? जिस तरह तुममें मेरी और अचला की आकृतिमें साम्य पाया है, उसी तरह यदि मैं भी कहूँ कि तुम्हारे ही जैसा एक युवक है, ठीक तुम्हारी जैसी आकृति है उसकी, वैसा ही रंगदार, वैसे ही सब कुछ! उसे तुम मुझसे भी अधिक मानती हो—और इतना अधिक मानती हो—प्यार

करती हो की उसके सामने मेरा अस्तीत्व ही क्या! तुम्हे पता है—वह युवक है कौन? जानती उसे अवश्य हो, पर तुम मेरे सामने कैसे बात चलाओगी उसकी! मगर नहीं, मैंने पकड़ लिया है तुमको। कहो तो कह दूँ—उसका नाम? ज्योति है न? उसकी तुम कौन हो, और वह तुम्हारा कौन है? अच्छा होता—यदि भाई-बहन न होकर........ । खैर, क्षमा करना। पत्रो-त्तरकी आशामें—

तुम्हारा—जयन्त।"

पत्र संख्या—४

"प्रिय मृणाल,

परसो वाला पत्र तुम्हे मिल गया होगा, आज फिरसे पत्र देनेका अवसर मिल गया; पर इस पत्रसे तुम्हे शायद प्रसन्नता न प्राप्त हो सकेगी। फिर भी कर्तव्यादेशवश मैंने तुम्हें सूचना दे देना आवश्यक शमझा।

तुम कदाचित् जानती होगी कि हमलोग देश-सेवाके जिस पवित्र अनुष्ठानमे अपनेको डालकर गर्वका अनुभव करते थे, वही अनुष्ठान कुछ हमारे विरोधियोके लिये शूलका कारण हो उठा। और यही कारण है कि हमलोग उनकी आँखों के काँटे हो रहे हैं। फलत: आज हमारे साथी हमारे बीच नही हैं। चन्द घण्टो-के बाद हमलोग कहाँ रहेगे, इसका भी पता नही। ...... खैर, जो कुछ होगा, देखा जायगा, घबड़ानेकी बात नही।

पत्र लिखनेका अब मुझे शायद अवकाश न मिल सके, इस-लिय मेरे पत्रकी प्रतीक्षामें तुम न रहोगी—!

तुमसे एक अनुरोध है—और वह यह है कि मेरी स्मृतिको यदि तुम भुला सको तो सुन्दर, अन्यथा तुम इससे सदैव विह्वल, बेचैन-सी रहा करोगी, और इससे लाभ ? सम्भव हो तो तुम अचलासे मिलकर कोई ऐसे काममे लग जाओ, जहाँ तुम अपने आपतकको भुलानेमे समर्थ हो सको। संसार क्रीड़ा-स्थल ही नहीं है—कर्मस्थल भी है, और यही हमलोगोका ध्येय होना चाहिये—भले ही हम जीवनमे असफल रह जायँ, पर्वा नहीं ; पर अपने कर्तव्यमे जुटे रहना चाहिये, इस शरीरकी शोभा इसीमे है। प्रेम-प्रेमकी रट लगाकर, वैराग्य-साधारण कर, आलसी—निकम्मे-जैसे बैठे रहना कर्मठ व्यक्तियोके लिये—किसीके लिये भी—कदापि उचित नही। और ऐसा तभी कर सकती हो, जब तुम्हारे उद्देश्य महान् हो।

अचलासे मेरा प्यार कह देना। मै उसके जीवनको सुखमय नही बना सका, इसके लिए मुझे आन्तरिक खेद है। पर यह खेद मुझे तुम्हारे लिए नही है। जानता हूँ, तुम अपने कर्तव्य-पालन से मुझे सुखी करने का प्रयत्न करोगी ही, फिर मै तुम्हारे लिये चिन्ता क्यों करूँ ? तुमपर मेरा अचल—अटल—विश्वास है, और रहेगा भी।

तुम अपना पत्र नवीनके पतेसे भेज सकती हो। उससे मैने कह दिया है। उसीके द्वारा तुम्हारे पत्र भी मुझे मिलते रहेगे।

शेष, विदा ! ..प्यार !

अभिन्न—जयन्त।"

पत्र-संख्या—५

"प्रिय...!

आज मैं निष्ठुर सत्यको तुमसे प्रकट कर ही देना चाहती हूँ। व्यथित-हृदय होकर मैं इस व्यथा-भारका संवहन न कर सकी। कहते आन्तरिक कष्ट होता है—अचला दी' का सुहाग लुट गया—उनके जीवन-सर्वस्व सदाके लिए उन्हें छोड़कर चल बसे अचला दी' इस शोकमें सन्तप्त हो उठी हैं। उन्हें मै कैसे धीरज बधाऊँ, जब मेरा हृदय रह-रहकर उनके प्रति आप ही उच्छ्वसित हो उठता है, पर धन्य हैं अचला दी'! मैंने तुम्हारा पत्र—अन्तिम पत्र—उन्हे पढ़ सुनाया, पर आश्चर्य; वह जरा भी व्यथित न हुईं। मुझे उन पर रंज भी हो आया और रंजीदा स्वरमे मैं बोल उठी—वे जेलमें पड़े हुए हैं और आपको जरा भी खेद नहीं? इसपर अचला दी' हँस पड़ीं और हँसती हुई ही बोलीं—इसमे खेद की कौन-सी बात है भाभी?

उनके उत्तर से मैं खुश न हुई और मैंने कहा—यह तो मैं तब जानती जब आपके...जेल गये होते!

इसपर वह और भी हँस पड़ीं। बोलीं—तुम्हें जेलकी ही पड़ी है, भाभी! कैसी सूधी हो तुम! जेलसे तो लोग एक वर्ष, दो वर्ष··दस वर्षके बाद निकल भी आते हैं, पर जो सदैवके लिए इस दुनियासे उठ गया है; वह क्या किसी भी दशामें वापस आ सकता है?

इस बार मैंने जाना—अचला दी'का हृदय कितना बलवान है! कैसी हैं वह जीवटवाली!

अचला दी' मानो अपना दुख भुला बैठी हैं, पर मैं अपनी क्या कहूँ? बहुत प्रयत्न करने पर भी मैं अपनेको सँभाल नहीं

सकती ! कैसे अशुभ क्षणमें तुमने इस ओर कदम बढ़ाया था। आह ! यदि जानती कि इसकी यही परिणति होगी तो मैं तुम्हे कभी घरसे बाहर नहीं निकलने देती ! रह-रहकर तुम्हारा प्यारा मुखड़ा आखोंके सामने भासने-उतराने लगता है ! कैसे मैं भुला दूँ उसे ? और तुम लिखते हो कि अपने आपको भूल जाओ। अपने आपको भूल जाना—शायद मुझसे सम्भव भी हो, परन्तु तुम्हें भूल जाना कभी सम्भव हो सकता है ? कैसे मैं अपने आप को इतनी बलवती बना सकूँगी—कुछ समझमे नहीं आता।

अचला दी' अपने ही घर इन दिनो आ गयी हैं, इतना ही मेरे लिए धैर्य का कारण है, अन्यथा मैं कोई-न-कोई अनर्थ कर बैठती। पर वह भी सदैव छाया की तरह मेरे साथ रहती हैं; जानती हैं, वह मेरी कमजोरीको। मैं मूक हो जाती हूँ, पर उनके ओठोपर वैसी ही मुसकान !

भगवान करे, तुम इससे निस्तार पाओ। मैं तुम्हारी कुशल जाननेको उत्कंठित हो उठी हूँ। यथा सम्भव शीघ्र पत्र देकर सुखी करो।

सन्तप्त-हृदया—मृणाल।"

पत्र-संख्या—६

"प्रिय···!

बाबू जी से तुम्हारे समाचार अवगत हुए ! उन्होंने जूरीका फैसला भी कह सुनाया !...ओह, सात वर्ष सश्रम कारावास ! कितना बढ़ा दण्ड है देव! आह, ये सात वर्ष कैसी लम्बी अवधि है।—स्मरण करके अधीर हुई जा रही हूँ ! कैसे कटेंगे ये दिन।

पर 'अचला दी' प्रशान्त महासागर जैसी गम्भीर है, वहाँ हर्ष-शोकका स्थान ही नहीं! उन्होंने उस दिनसे, जिस दिनसे बाबू जी तुमसे मिल आये हैं—गाँव-गाँवमे घूमकर संगठन का कार्य किया करती हैं! उन्होंने नारी-सेविका दल संगठन किया है। आप उसकी संचालिका हैं और मन्त्रिणी बनायी गई हैं। उनके व्याख्यानसे श्रोताओंपर अधिक प्रभाव पड़ता है, और भी अधिक प्रभावित हुई हूं और इतनी हुई हूँ कि, अब मुझे तुम्हारे लिए जरा भी चिन्ता नहीं रह गयी है। तुमने जिस ओर मुझे संकेत किया था, मै आप-हीआप उसी दिशाकी ओर जानेको उत्कंठित हो उठी हूँ! जब मैंने समझ लिया है कि, मेरे लिए ठीक यही पथ प्रशस्त है। अब मैं जरा भी नहीं घबराती। कभी-कभी तो ऐसा होता है कि खाने-पीनेकी सुधि भी नहीं रहती, काममे इतनी तल्लीन हो जाती हूँ कि, कुछ पता ही नहीं चलता—कब सूर्य उगा, कब दिन ढला, कब सन्ध्या आयी और किस तरह रात निकल गई! तुमने एक बार लिखा था—अपने आपको भुलाए रखो। आज समझ रही हूं कि अपने आप कोई किसतरह भुलाये रख सकता है! 'अचला दी' इन बातोंको बहुत पहलेसे जानती थीं, इसीलिए उन्हे कभी व्यथित-चिन्तत नहीं देखा—प्रफुल्ल रहना उनकी खास विशेषता है!

मेरे आराध्यदेव! अब मैं निश्चिन्त होकर समाज-सेवाके लिए अपने कर्तव्य-पथपर बढ़ती जाऊँगी—तुम्हे मेरी ओरसे चिन्तित होनेकी आवश्यकता नहीं। मै तुम्हारे विश्वासका हनन नहीं कर सकती, अपने काममे लगी रहूँगी, चाहे मुझे इसके लिए जितनी विपत्तियाँ उठानी पड़ें। जानती हूँ—यह हमलोगोकी साधनाका समय है और इसके लिए अपनेको जहाँतक हो, सम्पूर्ण करना

चाहिये तभी साधना सफल हो सकती है। क्या मेरी साधना कभी सफल हो सकती है?

पर, न भी हो, उसके लिए मैं भूखी नहीं, भगवान करे—तुम मुझसे मिल सको—मिल सको और उस दिन अपने-आपको धन्य समझूँगी—समझूँगी—मैं···!

अब और अधिक न लिख सकूँगी। कर्तव्यादेश मुझे पत्र शेष करनेको बाध्य करता है। कदाचित् बहुत अर्सेतक मुझे ऐसा न करना पड़े; पर इसके लिए तुम्हे खेद नहोगा—प्रसन्नता होगी।

प्यारे, विदा! सात वर्षकी लम्बी अवधिके लिए बिदा! अचला दी' का प्रणाम। और मेरा···!

सौभाग्यवती—मृणाल।"

[ले० श्रीमती कमला देवी]

प्रयाग
ज्येष्ठ,-शुक्ल ९

मेरे हृदयोद्यान के ऋतुराज!

परिताप की भीषण वह्निसे आज मेरा—नारीका—हृदय दग्ध हो रहा है ज्वाला की जिस वेदनासे आज मेरे तन-प्राण हाहाकार

कर रहे हैं, उसकी व्यथा तुम्हें कैसे बताऊँ ? मैंने तुमपर अवि-श्वास किया है, अभिमान किया है; और मेरा वही अभिमान आज तीखे बाणों की तरह मेरे मर्म को छेद रहा है !

प्रिय, शैशवके वे दिन जब याद आते हैं, विचारोंके बव-एडरसे माथा भर जाता है, हृदय पागल हो जाता है और प्राण सौ-सौ बार नाच उठते है ! वे दिन ? कैसे थे वे दिन !! उस समय हम तुम—दोनों ही—शैशवके वसन्तमें कामदेव और रति की तरह आनन्दकी बाँसुरी बजाते थे । न दुनियाँदारीका ज्ञान था और न मान अभिमानकी बात ही मालूम थी । बगीचोंमें—हम-तुम—भौंरोंकी तरह उड़ते फिरते थे—स्वच्छन्द, स्वाधीन ! फिर एक दिन आया, जब हमलोग विवाहके पवित्र बन्धनमे सदाके लिए बाँध दिए गए । उस समय नहीं जाना था, विवाह क्या है और क्यों किया जाता है ; पर यही देखकर कि जो कुछ हो रहा है, तुम्हारे साथ हो, हृदय उल्लाससे पुलकित हो रहा था । उस दिन हमलोगोंमे एक नए सम्बन्धकी सृष्टि हुई !

फिर—विवाह बाद—मैं तुम्हारे साथ उस स्वच्छन्नतासे न मिल सकती थी । जानते हो क्यों ? मै दुलहिन थी । लोग मुझे उढ़ा-पहनाकर गुड़ियों की तरह सजाए हुए थे, औरतें बड़े प्यारसे मेरा मुँह देखतीं और असीस देती थीं । मुझे इसमे बड़ा कष्ट होता । तब मैंने समझा, विवाह होना बड़ा खराब है । विवाह होनेपर तो तुमसे बोलना-चालना, यहाँतक कि तुम्हें देखना भी गुनाह है । मन ही-मन मैं बहुत दुखी हुई । विवाह होनेका यही परिणाम है ? तब तो मैं क्वाँरी ही बहुत अच्छी थी । उसके बाद, इन दस वर्षोंकी कोई बात तुमसे छिपी नहीं है ! जब मैं पन्द्रह वर्षकी छोकरी थी, तभी मास मेरे पुत्रका मुँह देखनेके

लिए व्याकुल हो गई। जन्तर-मन्तर, गण्डा-तावीज, पीर-पैगम्बर क्या-क्या उपाय उन्होंने मेरे पुत्र होनेके लिए नहीं किए, पर मैं माता न हो सकी। इस तरह तीन बरस बीत गए और मेरे द्वारा, पोतेका मुँह देखनेकी आशा सासको न रह गई। तुम्हारे दूसरे ब्याहका प्रबन्ध होने लगा और कुछ दिनों बाद तुम भी दूसरा ब्याह करने को राजी हो गए। मैंने मन-ही-मन सोचा, मैं माता न बन सकी, यह मेरी अयोग्यता है। पति दूसरा विवाह करेंगे। छुन-मुन करती नई दुलहिन घरमें आएगी, तब घरमें मेरी पूछ न रह जायगी। कुत्ते-बिल्लीकी तरह मुझे भी दो कौर भात मिल जायगा आह! अपने नए जीवनकी कल्पना करके मैं रो पड़ी; पर मेरा कोई वश न था। अपनी अयोग्यताका दण्ड मुझे भोगना ही पड़ेगा, चाहे रोकर भोगूँ या हँसकर। मन ही-मन हृदयको समझकर चुप हो रही। कुछ दिनों बाद तुम्हारा दूसरा विवाह हो गया। दुलहिन छोटी थी; तीन वर्ष बाद गौना करनेका निश्चय हुआ।

उस समय मैं अबोध थी, इतनी बातें समझ न सकती थी। आज जो उन बातोंपर विचार करती हूँ, तो क्षोभसे हृदय भर जाता है। हाय! जिस देशके लोग सन्तान-वृद्धि-निग्रहके लिए तरह-तरहके उपायोंका अवलम्बन कर रहे हैं, विज्ञानके नए-नए तरीकों-द्वारा प्रकृतिको भी धोखा देनेकी बात सोच रहे हैं, वहीं की माताएँ पुत्रका मुँह देखनेके लिए पागल हो रही हैं! हाय! यह कैसा अनर्थ है! अशिक्षा! घोर अन्धकार! तेरा परदा भारतकी नारियोंसे कैसे दूर होगा! तेरा जबतक अशिक्षाका रंगीन परदा भारतकी स्त्रियोंकी आँखपरसे न हट जायगा, यहाँ के पुरुषों का कोई मनोरथ सिद्ध न हो सकेगा। वे स्त्रियोंके अन्ध-विश्वास

और गाढ़ी मूर्खताको दूर न कर सकेंगे—उनके हृदयपर अपनी सच्ची बात जमा न सकेंगे।

जिस समय तुम विवाह करने गये थे, मैं अभिमानकी ज्वालासे जल रही थी। अबतक अपनेको समझा-बुझा रही थी, अब धीरज न धर सकी। भाईको बुलाकर उनके साथ नैहर चली आई। आते समय तुमसे बोली भी नहीं, आँख उठाकर तुम्हारी ओर देखा भी नहीं। हां, विवाहके पहले ही सहसा सास की मृत्यु हो गई। बेचारी अतृप्त आकांक्षा लेकर सदाके लिए चल बसीं।

यह आजसे चार वर्ष पहलेकी बात है। चार वर्षसे मैं तुम्हारे घर नहीं गई। इस बीचमें कई। बार तुम मुझे ले चलनेके लिए आए, पर मैं न गई। बार-बार सोचती थी कि अबकी आओगे तो अवश्य चली चलूँगी; पर जब-जब तुम आए—क्या मालूम क्यों—हृदयमें एक ऐसी वेदना का, एक ऐसे अननुभूतपूर्व भाव का आविर्भाव हुआ कि मैं तुम्हारे साथ जा न सकी, चेष्टा करके भी नहीं। कई बार तो कड़ी बातोंसे तुम्हारा तिरस्कार भी किया। आज वे बातें हृदय में शूल-सी चुभ रही हैं!

नाथ! मेरा अभिमान चूर-चूर हो गया है। तुम्हारे सिवा संसारमें कहीं भी मुझे सुख नहीं हो सकता! तुम न मेरा आदर करना, न मुझे प्यार करना; केवल तुम्हारे चरणोंमें स्थान पाकर ही मैं सुखी हो सकूँगी। भारतीय नारी पतिके सुखमें ही अपना सुख और पति के चरणोंको ही अपना सर्वस्व जानती है। आज मैं तुम्हारे सामने हाथ पसारे हुए हूँ, क्षमाकी भीखके लिए। क्या यह भीख मिलेगी?

तुम्हारे—नहीं-नहीं, अपने—घरमें आनेके लिए प्राण छट-पटा

रहे हैं। तुम जितना शीघ्र हो सके, मुझे आकर ले चलो। अबकी बार भर तुम और आओ। क्रोध न करना, तुम्हीं मुझपर क्रोध करोगे, तो मुझे कहाँ ठौर मिलेगी? देखो, देर न करना तुम्हे मेरी शपथ!

अनुतप्ता
गौरी

---

(२) काशी
सावन बदी ७

मेरे 'तुम'।

इधर कितने दिनोंसे तुमने मुझे कोई पत्र नहीं लिखा, कितने निष्ठुर हो! तुमने तो रोज-रोज पत्र लिखने का वादा किया था। इसी तरह वादा पूरा करते हैं? अगर मै भी तुम्हे पत्र न लिखूँ, नाराज हो जाऊँ, तब बोलो?

लेकिन मालूम पड़ता है, इधर तुम किसी मानसिक दुश्चिन्ता मे पड़ गये हो। ऐसा न होता तो तुम पत्र लिखने मे कभी देरी न करते; क्योंकि वैसी तुम्हारी आदत नहीं। और इसीलिए आज तुम्हे पत्र लिखने चली हूँ।

देरसे। सोच रही थी, तुम किस चिन्तामे पड़ सकते हो। बात कुछ समझमे न आती थी। अभी सहसा एक बात याद आ गई। सब बाते समझ मे आ गईं मै तुम्हारी चिन्ताका कारण समझ गई। कहो तो बता दूँ जादूगरनी समझोगे। तुम दीदी-के लिए चिन्तित हो। उनको तुमने कई बार घर लाना चाहा, वे न आईं। अब वे आना चाहती है, तुम सोच रहे हो, उन्हे लाऊँ कि नहीं—है न यही बात?

उस दिन तुम्हारे डेस्कका दराज खोल रही थी, एक चिट्ठी नीचे गिर पड़ी। स्त्रीके हाथकी लिखावट देखकर पढ़नेका कौतूहल हुआ। वह चिट्ठी तुम्हारे नाम की थी। मै पढ़ूँ या नहीं, पढ़ना उचित होगा या नहीं—यही बात सोचते मुझे देर हो गई, तबतक तुम कमरेमें आ गए। पत्रको झट आँचलमें छिपाकर बाहर निकल आई। आज तुमसे अपने हृदयका पाप कहती हूँ।

एक नजरमे, बाहर आकर मैं सारी चिट्ठी पढ़ गई। वह चिट्ठी दीदीकी थी। जब मेरा व्याह हुआ, उसी समय दीदीकी बात मैने सुनी थी ; फिर कभी उनकी बात मुझसे किसीने न कही। मैने भी उनके बारेमें कभी कुछ न पूछा। उस दिन उनकी चिट्ठी मैं पढ़कर दुखसे मर-सी गई। दीदी घरकी देवी है, सब कुछ उन्हीं का है! उनके साथ अन्याय हुआ है। उसका बदला देना होगा—तुम्हे दीदीसे क्षमा माँगनी पड़ेगी। उन्हे मनाकर घर लाना पड़ेगा।

दीदी मुझसे बड़ी हैं, मेरे पहले उनका व्याह हुआ है। घर-पर, घरकी सम्पत्तिपर, तुमपर—सभी पर पहले दीदीका अधिकार है, फिर मेरा। कभी तुमने इस बातपर विचार किया है ? यदि नहीं, तो बड़ी भूल की है। दीदी देवी हैं। लक्ष्मी-जैसा उनका स्वभाव है, सौन्दर्यकी तरह स्वरूप! यदि उन्होने तुमपर अभिमान किया तो उचित ही किया; पर तुम्हें तो उनपर अभिमान न करना चाहिए! उनका अपराध ही क्या था, जो उनपर अभिमान किया जाय ?

उस समय जैसी अवस्थामे वे थीं, कल्पना करो, यदि वैसी अवस्थामे तुम होते तो क्या करते ? शायद जहर खा लेते अथवा गले मे रस्सी डाल लेते। क्यो यही न कि और कुछ ? देखो, नारी

का हृदय विश्वास का रङ्ग-मञ्च है। तरह-तरहके अभिनेता उस मञ्च पर आते हैं। दृढ़ता और भीरुता, प्रेम और घृणा, करुणा और ज्वाला का उतना सुन्दर संयोग संसारमें तुम्हे कहीं न दीख पड़ेगा, जितना नारीके हृदयमे। नारीके हृदयको नारी ही जान सकती है, दूसरे नहीं। उसे जाननेके लिए, उसके अन्तर्नभतक प्रविष्ट होकर उसका सब कुछ देखनेके लिए, जिस आँखकी जरूरत होती है, वे आँखे सबके पास नही होती। इसीसे सबलोग उसकी बात जान भी नहीं सकते! समझा?

सच है, उन्हे लानेके लिए तुम कई बार उनके यहाँ गए थे, फिर भी वे न आई। इस बातको अपने पत्रमे उन्होने स्वीकार भी किया है, पर इसके कारणको जाननेका तुमने कभी प्रयत्न किया है? मैं समझती हूँ, नही। शायद प्रयत्न करके भी न समझ पाते। मै बताती हूँ, सुनो।

तुमपर उनका पूर्ण अधिकार था, तुम सब तरहसे उन्हींके थे केवल सन्तान न होनेके कारण, तुमने उनकी अभिलाषाओ, उनकी भावनाओ और उनके प्रेमतकको ठुकरा दिया; मुझसे व्याह करके उनका सारा हिस्सा, सारा अधिकार छीन लिया। कौन होगा; जो इस प्रकार अधिकार। छिन जानेपर चुपचाप बैठा रहेगा? वह केवल नारीका ही हृदय है, जो यह मृत्यु-यन्त्रणा पाकर भी पतिका मंगल चाहती है! तुमने इस बातकी कल्पना न की होगी; पर मैं खूब समझती हूँ। इतना करके भी तुम उन्हे बुलाने गए स्वभावतः उनके मनमे यह भावना जाग्रत हुई होगी कि अपना वैभव, अपना सुख दिखाकर, उन्हे कुढ़ानेके लिए ही तुम उनसे घर चलनेका अनुरोध कर रहे हो; और उनका ऐसा सोचना कुछ अनुचित भी नहीं था। वह तो मानव-स्वभाव है।

इसीसे वे न आई होगी उस समय उन्हें आना भी न चाहिए था।

किन्तु अब तो वे स्वयं आनेके लिए व्याकुल हो उठी हैं। अपनेको अपना कहकर पुकारनेके लिए उनके प्राण हाहाकार कर रहे है। तुम विलम्ब न करो—शीघ्र उन्हे बुला लाओ। याद रक्खो, जबतक वे उस घरमें न आ जायँगी, तबतक मैं भी उस घरमे पैर न रक्खूँगी। मैं अपने अङ्ग-अङ्गसे उनकी पूजा करती हूँ। यदि वे मुझपर क्रोध करेंगे तो मैं उन्हे मना लूँगी, तुम चिन्ता न करना।

पत्र देखते ही उन्हे बुलाकर उनके आनेकी सूचना दो। तब मै भी आकर तुम दोनोंके चरणोंका साथ ही दर्शन करूँगी।

चरण-स्नेही,
—चुन्नी

---

(३)

कानपुर,
सावन बदी १२

प्रणयकी कल्प-लता!

प्राणोंका प्यार! तुम्हारा सुधा-सिक्त पत्र यथासमय मिला था। कर आनन्दके हिंडोलेमे झूलने लगा यह जानकर प्रसन्नता हुई कि मुझसे अलग रहकर भी तुम मुझे कभी-कभी याद कर लिया करती हो। आशा है, तुम प्रसन्न होगी।

तुम्हारे ठोस तर्कों और चातुर-रचनाके कारण, तुम्हारी अध्ययनशीलतापर मैं प्रसन्न हूँ। इतना प्रसन्न कि तुम्हारा पत्र पढ़कर ठीक उसीके अनुसार मैंने कार्य किया, पर सुनकर तुम्हे

आश्चर्य होगा, गौरी अबकी बार भी मेरे साथ न आई। नारी-हृदयकी विचित्रताका पता किसे लग सकता है ?

सन्ध्याके सौन्दर्यसे विभावी पागल हो रही थी। उसी समय मैंने प्रयागके लिए प्रस्थान किया। जिस समय गौरीके घर पहुंचा, उसका भाई घरपर ही था। मुझे देखकर उसने गौरीको खबर दी। गौरी शायद आनन्दकी अधिकतासे मन-ही-मन नाच उठी।

जिस सयय गौरीको देखा, बरबस आँखसे आँसुओंकी दो बूँदे ढुलक पड़ी। सफेद वस्त्र पहने, केश बिखराए, निराभरण गौरी ऐसी मालूम होती थी, मानो कोई तरुण-तपस्विनी हो। आत्म-त्यागकी ज्योति उसके चेहरेपर छिटक पड़ी थी। अपूर्व लावण्य था। क्षणभरके लिए मैं आत्म-विस्मृत-सा हो गया!

धीरे-धीरे पास आकर उसने मुझे प्रणाम किया, फिर संकोचके साथ एक ओर खड़ी हो गई। कुछ देरतक हमदोनो चुप रहे। अन्तमे मैंने ही शान्ति भङ्ग की। कहा—गौरी, खड़ी क्यो हो, बैठो।

मेरी चारपाईके पास ही जमीनपर गौरी बैठ गई। अपनी विषादपूर्ण आँखे मेरी ओर स्थिर करके धीरे-धीरे बोली—इतने दुबले क्यो हो गए हो ?

मैने कहा—दुबला हो गया हूँ ? कहाँ! नहीं तो।

फिर वह कुछ न बोली। थोड़ी देर चुप रहकर फिर मैने ही कहा—गौरी, तुम्हारी यह कैसी दशा हो गई है ?

गौरीने भारी आवाजसे पूछा—कैसी ?

मैने कहा—यह क्यो पूछती हो ? सच कहो, तुम्हे क्या दुख है ? क्या तुम्हे चुन्नीपर क्रोध है ?

"क्या दुख है ?"—गौरी कहने लगी, "कैसे बताऊँ, क्या दुख है ? तुम्हारा—पुरुषका हृदय उसे समझ सकेगा ? विषमता-की जिन आँधियोंको यह हृदय पार कर चुका है, झंझाके जिन अघातोंसे चूर-चूर हो चुका है, उसकी कथा सुनकर क्या करोगे ? चुन्नीपर मैं क्यों नाराज होऊँगी ; उस बेचारीने मेरा क्या किया है, अथवा किसीने भी मेरा क्या किया है ? जाने दो उन बातोंको। चुन्नी कहाँ है ?"

मैंने कहा—अपने पिताके घर। उसने मुझे लिखा है कि जबतक दीदी उस घरमे न आएँगी, मैं भी पैर न रक्खूँगी। उसीके लिखनेसे मैं आज दौड़ा आया हूं।

कहनेको को कह दिया, पर पीछे मैं बड़ा लज्जित हुआ। ऐसी बात मुझे न कहनी चाहिए थी। उसने इस बातपर लक्ष्य किया, उसे लगी भी। तानेसे बोली—नहीं न आते ?

मैंने लज्जित होकर उत्तर दिया—आता क्यों नहीं। मगर...!

आगे कुछ न कह सका। बात करनेके लिए कुछ देर बाद बोला—तो कब चलोगी ?

उसने गम्भीर स्वरमे उत्तर दिया—कहाँ ?

मैंने कहा—अपने घर।

दृढ़ स्वरमें वह बोली—यहाँसे मैं कहीं न जाऊँगी। मैं आकाश से गिर पड़ा। आश्चर्यसे कहा—क्या ?

"यों हीं।"

"तब तुमने मुझे पत्र क्यों लिखा था ?"

"चलनेके लिए।"

"तो चलती क्यों नहीं ?"

"न जाऊँगी।"

"यह क्यो ?"

अबकी वह फूट पड़ी। रुँधे गलेसे बोली—देखो मै जन्मकी दुखिया हूँ, मुझे तङ्ग न करो। मैं स्वयं नहीं जानती, क्यो ऐसा कर रही हूँ! मै अबसे कुछ समय पहलेतक चलनेके लिए बिलकुल तैयार थी; पर अब, जब चलनेकी बात आई, मैं अपनेको चलनेके लिए तैयार नही पाती हूँ। मैं न जा सकूँगी, किसी तरह नहीं।

चुप रहना उचित न समझकर मैंने किसी प्रकार कहा—लेकिन यह ऐसा क्यो ?

वह मुस्कराई। उसकी मुस्कराहटमे उसके हृदयकी विशाल वेदना थी। बोली—इस प्रश्नका उत्तर मैं दे चुकी हूँ। जीवनकी जिस धारामें मैंने अपनेको बहाया है, न-जानें वह मुझे कहाँ ले जायगी; पर मैं उससे पैर पीछे नही हटा सकती, हटानेका कोई उपाय नही है—कोई भी नहीं।

मैने कहा—गौरी, क्या अभी भी तुम मुझपर अभिमान किए हो ? क्या अभी तुम्हारा क्रोध दूर नहीं हुआ ? क्या तुम मुझे क्षमा न करोगी ?

"ऐसा न कहो"—मेरे पैरोंपर गिरकर गौरी फूट-फूटकर रोने लगी—"मेरा अभिमान चूर-चूर हो गया है। अनुतापकी आगसे मेरा हृदय जलकर भस्मीभूत हो गया है। मैं तुमपर क्रोध नही कर सकती। तुम मुझे माफ करो।"

रोते-ही रोते गौरी उस कमरेसे निकल गई। अवाक् होकर चारो ओर देखने लगा।

दूसरे दिन लौटते समय दरवाजेपर गौरीसे मुलाकात हुई। उसकी आँखे डबडबाई हुई थीं। मैंने कहा—तो मैं जाऊँगी गौरी ? उदास स्वरसे वह बोली—जाओ।

आश्चर्यसे उसकी ओर मैंने देखा। बोला—गौरी, अब क्या तुम नहीं चल सकती ? मैं तुमसे क्षमा माँगता हूँ! तुम मु माफ करो—घर चलो।

लम्बी साँस लेकर वह बोली—मुझे अधिक न रुलाओ यदि मैं किसी तरह जा सकती तो अवश्य जाती, पर कोई र नहीं है। तुम जाओ।

मेरे उत्तरकी प्रतीक्षा किए बिना ही वह अन्दर चली गई मैं क्षुब्ध चित्त लेकर स्टेशनकी ओर चला।

चुन्नी! तुम्हारे ही शब्दोंमें मैं कहूँगा कि नारीका हृदय वि रङ्ग-मेञ्च है, जहाँ तरह-तरहके अभिनेता अपना अभिनय दिखा हैं, पर उनके अभिनयको सभी समझ नहीं सकते।

गौरीकी बातोंसे, उसके उदास जीवनसे मैं बहुत क्षुब्ध हो उठा हूं। अब मुझसे यह न देखा जायगा कि गौरी वैसा जीव बिता रही है। जैसे हो, उसे सुखी बनाना ही पड़ेगा। और चुन्नी। यह काम मैं तुम्हींको सौंपता हूँ। तुमने अपने पत्रमें लिखा है—नारीका हृदय सभी नहीं पहचान सकते। इस बातको सिर झुकाकर मैं स्वीकार करता हूँ। अब तुम नारीका हृदय पहचानो और गौरीको बुलानेका कोई उपाय करो। मैं इस जीवनमें उसको पहचान ही न सका। पहचान सकूँगा, इसकी भी कोई सम्भावना नहीं है।

मैं तुम्हें लेने शीघ्र ही आऊँगा। तुम्हारे आनेपर ही गौरीको बुलानेका उपाय किया जायगा।

तुम्हारा,

—नरेन्द्र

(४)

कानपुर
१३ भद्रापद

भैया घनश्याम !

आनन्द से उछलते हृदयके द्वारा आज तुम्हे इस मङ्गल दिवस की बधाई भेज रहा हूँ। आज मेरे घरमे लक्ष्मीका प्रवेश हुआ है। रूपके आलोकसे मेरा अन्धकारमय गृह आज चांदनी हो गया है। मेरे घरकी लक्ष्मी मेरे घरमें आई हैं। मेरी गृहस्थीमे सुखका सुनहरा सोता फूट चला है।

अपने पहले पत्रमे मै तुम्हें गौरीके यहाँ से वापस आनेतकका बृतान्त लिख चुका हूँ। वहाँ से लौटकर मैं चुन्नीको लाने काशी गया। पहले तो वह आती ही न थी। बहुत कहने-सुनने-पर पीछे आई। और उसीकी चतुरतासे आज गौरीने भी इस घरमे पदार्पण किया है। मेरी रूठी हुई लक्ष्मी, कितने दिनो बाद फिर मेरे घरमे आई।

चुन्नी ने एक आदमी के द्वारा मेरी बीमारीका झूठा सन्देश गौरीके यहाँ भिजवाया। सुनकर गौरी अस्थिर हो गई—अपनेको रोक न सकी। झट आनेके लिए तैयार हो गई। आते समय वह खूब रोई थी, खूब ही।

गौरीने काँपते चरणोसे मेरे कमरेमे प्रवेश किया। उस समय मैं एक पत्र पढ़ रहा था। उसे घरमे घुसते देखकर मैंने सिर उठाया। कहा—कौन ? गौरी ! तुम यहाँ ?

गौरीने कुछ उत्तर न दिया। मेरे पास आकर शरीरपर हाथ फेरती हुई बोली—अब तबीयत कैसी है।

मैंने आश्चर्यसे कहा—तबीयत ? मेरी तबीयतको क्या हुआ है ?

गम्भीर स्वरमें उसने कहा—तुम्हारी तबीयत खराब थी न ?

मैंने कहा—कहाँ ! नहीं तो !

"तब मुझे झूठी खबर क्यों दी ?"

मैंने विस्मयसे आँखें फाड़-फाड़कर उसकी ओर देखते हुए कहा—झूठी खबर कैसी ? तुम क्या कह रही हो गौरी, मैं कुछ नहीं समझ सका !

"ऐं ! यह क्या ? तो क्या तुमने मुझे नहीं बुलाया ?"

"नहीं ।"

"तुम्हारा आदमी मुझे तुम्हारी बीमारीकी खबर देने नहीं गया ?"

"नहीं ।"

वह एकाएक चौंककर उठ खड़ी हुई और दरवाजेकी ओर लपकी । इतनेहीमें बाहरसे आकर चुन्नीने उसके दोनों पैर पकड़ लिए बोली—दीदी, तुम उनपर रञ्ज न करो ! यह सारी शैतानी मेरी है । मुझे जो चाहो, सजा दो ।

गौरी ठिठककर खड़ी हो गई । बोली—तुम, तुम कौन ? क्या तुम्हीं मेरी सौत हो ?

चुन्नीने कहा—हाँ दीदी, मैं ही तुम्हारी छोटी बहिन हूँ । अब फिर तुम कभी मुझपर रञ्ज न करना । छोटी बहिनपर ऐसे रञ्ज होते हैं, दीदी ?

चुन्नी गौरीसे लिपट गई । गौरीने भी सारा क्रोध-अभिमान भुलाकर चुन्नीको प्यारसे चूम लिया और दूरपर बैठा हुआ मैं अतृप्त लोचनों यह स्वर्गीय दृश्य देखता रहा ।

भाई आज हृदयके प्यारेमें यह आनन्द छलक रहा है। मेरा घर स्वर्ग बन गया है। मैं बस स्वर्गका अधिपति हूं। क्या एक दिनके लिए तुम भी इस स्वर्गके मेहमान बनोगे ?

भैया, आशीर्वाद दो, मेरा यह सुख सदा बना रहे। संसारमें मुझे और कुछ भी न चाहिए। अपना कुशल-समाचार दो।

अभिन्न

—नरेन्द्र

[ले०—श्री० जनार्दनप्रसाद झा 'द्विज']

शाहकुण्ड,
सोमवार के सबेरे ६ बजे

मेरी प्यारी बहिन !

कल शामको 'मधुसूदन-धामसे' लौट आई। लाख कहा, पर माँने माना नहीं—साथ घसीटती ही गईं। और यह बड़ा ही अच्छा हुआ। भगवान्का कोई भी काम ऐसा नहीं होता, जिसमे हमारी भलाईके भाव न छिपे हों। यह काम भी वैसा ही हुआ। मैं वहाँ से तुम्हारे लिए एक बहुत ही सुन्दर और कीमती चीज लेती आई हूँ। देखते ही खुशीके मारे सब कुछ भूल जाओगी,

दीन-दुनिया किसीका भी ध्यान न रह जायगा। मगर वह इतनी सस्ती नहीं है कि तुम्हें घर बैठे ही मिल जाय। यहाँतक आनेका कष्ट उठाना पड़ेगा, गाँठके कुछ पैसे खर्च करने पड़ेंगे, मिठाइयाँ खिलानी होंगी, तब कहीं उसे पा सकोगी। जानती हो वह क्या है? वह है एक आदमी! कौन? वही तुम्हारे खोए हुए सर्वस्व, तुम्हारे रूठे हुए देवता, मेरे परम प्यारे जीजाजी!

बहिन! अचरज मत करना—अविश्वास मत करना। इसे सपनेकी बातें न समझ बैठना। जो कुछ कह रही हूँ, उसे सचके सिवाय और कुछ मत समझना। हाँ, इसे सच मानकर अपने दिलको काबूमे रखना—उठते हुए तूफानोंको दबाए रखना। हसरत-भरी निगाहोंमे पागलपनका प्रलयकारी ज्वार मत उठने देना। अपनी दर्द-भरी दुनियाकी छातीपर दिनरात किलोलें करनेवाली क़यामतसे कह देना, वह थोड़ी देरके लिए रुक जाय। अधीर मत हो उठना बहिन! तुम्हे मेरे सिरकी कसम। मैं खूब जानती हूँ, तह खबर पाकर तुम आपेमें न रह सकोगी—कोई रह भी नहीं सकता है। लगातार पाँच बरसोसे तुम जिस आगमें जल रही हो, वह इस समय भीषण-रूपसे धधके बिना न रहेगी। यह आकस्मिक सुख घी बनकर तुम्हारी विपत्-ज्वलाओंको और भी जगा देगा। मगर चाहे जैसे हो, तुम्हें इस धक्केको सँभालना होगा!

मेरी ये बातें सुनकर तुम हलचलमें पड़ गई होगी। तुम्हारी समझमें कुछ आ नहीं रहा होगा कि मैं क्या कह रही हूँ। साथ ही तुम्हारा कौतूहल भी बढ़ रहा होगा कि मैंने असम्भवको सम्भव कैसे कर दिखाया—जो कभी हो ही नहीं सकता था, वह हो कैसे गया! मगर सच तो यह है कि अपनी चीज खो जाने-

पर भी कभी-न-कभी मिलती जरूर है; बशर्ते कि वह सचमुच अपनी हो--उसको छोड़ दुनियामें मेरी और कोई भी चीज अपनी हो ही नहीं सकती। यही बात तुम्हारे लिए भी कही जा सकती है बहिन! नहीं तो किसे उम्मीद थी कि जीजाजी फिर हमारे घर आ सकेंगे? कौन जानता था कि मैं ही वहाँ से जीती लौटकर आज तुम्हे यह खुश-खबरी सुना सकूँगी? गत पाँच बरसोंसे जो आदमी माया-ममता छोड़कर, हृदयहीन पशुकी तरह अपना गन्दा जीवन बिता रहा था, वही पाँच मिनटके भीतर देवता बन जायगा, इसकी आशा किसे थी? मगर अब मैं समझ गई कि कोई भी आदमी जान-बूझकर बुरा नहीं हो जाता, किसी-को पापी बननेका हौसला नहीं रहता। दुनिया—यह स्वार्थसे भरी हुई मायाविनी दुनिया ही—उसे हर तरहसे जलाकर बुरा बना देती है। किसीकी थोड़ी-सी कमजोरियाँ देखकर हम उससे घृणा करने लगते है, उसकी उपेक्षा करने लगते है। उसे अपनेमें मिलाकर सुधारना नहीं जानते—दूर हटाकर उसे और भी बिगाड़ना ही जानते है। जीजाजीके साथ भी लोगोंने यही किया। परिणाम यह हुआ कि इन्हे मनुष्यतासे डाह हो गई—ये परले सिरेके अधम बनगए। मगर आज देखो तो आकर ये कैसे हो गए हैं? वही सरलता, वही सज्जनता, वही हृदय और वे ही लुभावने भाव। सच कहती हूं, देखते ही रीझ जाओगी।

अब यह सुनो कि तुम्हारी यह खाई हुई निधि मेरे हाथ कैसे लगी! कहानी कडुवी भी है और मीठी भी, मगर अब मैं उसका कडुवापन भूल गई हूँ। तुम भी उसपर बिलकुल ध्यान मत देना।

हाँ, यह तो तुम जानती ही हो कि इस अवसरपर मकर-

संक्रान्तिके दिन—'मधुसूदन' बाबाके दरबारमें, उस छोटी-सी पहाड़ीपर कैसी भयङ्कर भीड़ होती है। 'तिल धरने की जगह नहीं मिलती, पाँव रखनेकी तो बात ही क्या! इस बार भी वही भीड़ थी। न-जानें दिन-रात मे कितनी बार स्पेशल ट्रेनें जाती-आती रही, मगर सब खचाखच भरी हुई।

लौटते समयकी बात लिख रही हूं। जब मैं भागलपुर जङ्क-शन पर आई, तो देखा कि भीड़के मारे लोगोका नाकों दम है। मेरी माँ बहुत थक गई थीं—विश्राम आवश्यक था। मगर चिन्ता यह थी कि यदि इसी गाड़ी से घर न चल दूँगी, तो कल किसी तरह भी घरपर ब्राह्मण भोजन नहीं हो सकेगा। मैं तो तुम्हारी ही तरह इन बातो को विशेष महत्व नहीं देती। मगर माँ कब माननेवाली थीं? डट गई कि रातहीवाली गाड़ी से चलना होगा। खैर, मै माँका हाथ पकड़कर गाड़ी बदलनेके लिए दो नम्बरके प्लेटफॉर्मकी ओर चली। इसी समय गाड़ी आ पहुँची। भीड़में रेल-पेल मच गई—धक्के मुक्केसे जान आफतमें फँस गई। उसी समय मुझे ऐसा मालूम हुआ, जैसे किसी ने पैर लगाकर पीछेसे मेरे दोनो पैर खींच लिए। मै गिर पड़ी। माँका हाथ छूट गया। उठते-उठते मुझे दो तीन मिनट लग गये। उठकर देखा तो माँका कहीं पता न था! मै घबराकर इधर-उधर दौड़ने लगी। मुझे इस तरह दौड़ते देख एक टिकट बाबू मेरे पास आकर मीठे स्वरमें बोले—कोई खो गया है?

मुझे सहारा मिल गया। घबराए हुए स्वरमें मैंने कहा—हाँ।

"औरत है या मर्द?"

"मेरी माँ मुझसे छूट गई।"

"सफेद कपड़े पहने हुए है?"

पर भी कभी-न-कभी मिलती जरूर है; बशर्ते कि वह सचमुच अपनी हो--उसको छोड़ दुनियामे मेरी और कोई भी चीज अपनी हो ही नही सकती। यही बात तुम्हारे लिए भी कही जा सकती है बहिन! नहीं तो किसे उम्मीद थी कि जीजाजी फिर हमारे घर आ सकेंगे? कौन जानता था कि मैं ही वहाँ से जीती लौटकर आज तुम्हें यह खुश-खबरी सुना सकूँगी? गत पाँच बरसोंसे जो आदमी माया-ममता छोड़कर, हृदयहीन पशुकी तरह अपना गन्दा जीवन बिता रहा था, वही पाँच मिनटके भीतर देवता बन जायगा, इसकी आशा किसे थी? मगर अब मैं समझ गई कि कोई भी आदमी जान-बूझकर बुरा नहीं हो जाता, किसीको पापी बननेका हौसला नहीं रहता। दुनिया—यह स्वार्थसे भरी हुई मायाविनी दुनिया ही—उसे हर तरहसे जलाकर बुरा बना देती है। किसीकी थोड़ी-सी कमजोरियाँ देखकर हम उससे घृणा करने लगते है, उसकी उपेक्षा करने लगते हैं। उसे अपनेमें मिलाकर सुधारना नही जानते—दूर हटाकर उसे और भी बिगाड़ना ही जानते हैं। जीजाजीके साथ भी लोगोंने यही किया। परिणाम यह हुआ कि इन्हे मनुष्यतासे डाह हो गई—ये परले सिरेके अधम बनगए। मगर आज देखो तो आकर ये कैसे हो गए हैं? वही सरलता, वही सज्जनता, वही हृदय और वे ही लुभावने भाव। सच कहती हूं, देखते ही रीझ जाओगी।

अब यह सुनो कि तुम्हारी यह खोई हुई निधि मेरे हाथ कैसे लगी। कहानी कडुवी भी है और मीठी भी, मगर अब मैं उसका कडुवापन भूल गई हूँ। तुम भी इसपर बिलकुल ध्यान मत देना।

हाँ, यह तो तुम जानती ही हो कि इस अवसरपर मकर-

संक्रान्तिके दिन—'मधुसूदन' बाबाके दरबारमें, उस छोटी-सी पहाड़ीपर कैसी भयङ्कर भीड़ होती है। तिल धरने की जगह नहीं मिलती, पाँव रखनेकी तो बात ही क्या! इस बार भी वही भीड़ थी। न-जानें दिन-रात मे कितनी बार स्पेशल ट्रेनें जाती-आती रही, मगर सब खचाखच भरी हुई।

लौटते समयकी बात लिख रही हूं। जब मै भागलपुर जङ्क्शन पर आई, तो देखा कि भीड़के मारे लोगोंका नाको दम है। मेरी माॅ बहुत थक गईं थीं—विश्राम आवश्यक था। मगर चिन्ता यह थी कि यदि इसी गाड़ी से घर न चल दूँगी, तो कल किसी तरह भी घरपर ब्राह्मण भोजन नही हो सकेगा। मैं तो तुम्हारी ही तरह इन बातों को विशेष महत्व नही देती। मगर माॅ कब माननेवाली थीं? डट गईं कि रातहीवाली गाड़ी से चलना होगा। खैर, मैं माँका हाथ पकड़कर गाड़ी बदलनेके लिए दो नम्बरके प्लेटफॉर्मकी ओर चली। इसी समय गाड़ी आ पहुँची। भीड़मे रेल-पेल मच गई—धक्के मुक्केसे जान आफतमे फॅस गई। उसी समय मुझे ऐसा मालूम हुआ, जैसे किसी ने पैर लगाकर पीछेसे मेरे दोनो पैर खींच लिए। मैं गिर पड़ी। माॅका हाथ छूट गया। उठते-उठते मुझे दो तीन मिनट लग गये। उठकर देखा तो माॅका कहीं पता नही! मैं घबराकर इधर-उधर दौड़ने लगा। मुझे इस तरह दौड़ते देख एक टिकट बाबू मेरे पास आकर मीठे स्वरमें बोले—कोई खो गया है?

मुझे सहारा मिल गया। घबराए हुए स्वरमे मैने कहा—हाॅ।

"औरत है या मर्द?'

"मेरी माॅ मुझसे छूट गई"

"सफेद कपड़े पहने हुए है?"

मेरा भरोसा और भी बढ़ गया। मैने कहा—हाँ, वह कहाँ हैं ?

"उसे मैं अभी गाड़ीमे बैठा आया हूँ—वह भी बेटी-बेटी कर रही थी। चलो, जल्दी करो गाड़ीने सीटी दे दी।"

मैं बिना कुछ कहे-सुने उसके साथ चल पड़ी। गाड़ीने सीटी दे दी। उसने कहा—चढ़ जाओ इसी डिब्बेमे, वह उधर बैठी है। अगले स्टेशनमे उससे भेंट हो जायगी!

मेरे होश-हवास सब हवा हो गए थे। काँपती हुई मै उसीमे जा बैठी! गाड़ी खुल गई—मगर मुझे यह पता न चल सका कि वह किस ओरको जा रही है—दिशाका भ्रम हो गया!

अगले स्टेशनपर गाड़ी रुकी, तो देखा कि दरवाजेपर वही आदमी खड़ा है। इस बार उसने डपटकर पूछा—तुम्हे जाना कहाँ है ?

मैं सहम उठी! धीरेसे जवाब दिया—अकबरनगर!

"तो वहाँ क्यो नहीं बोली ? यह गाड़ी तो कलकत्तेकी ओर जा रही है।"

मुझे काटो तो खून नहीं। मैं घबराकर उतरने लगी। इस बार वह जरा मुलायम होकर बोला—अच्छा, कोई हर्ज नहीं; चली चलो इसी तरह, साहबगञ्जमे यह गाड़ी मेल खायगी। वहीं तुम्हें दूसरी गाड़ीपर बैठा दूँगा। तुम्हारे टिकटपर लिख दूँगा। दाम नहीं देने होंगे।

मैंने कहा—और मेरी माँ ?

"अब गाड़ी खुल रही है, जाकर बैठो—वहीं माँ से भी भेंट हो जायगी।"

मेरा कोई वश न चला। गाड़ी खुल गई।

भागलपुरसे आगे पूरबकी ओर तो कभी मै गई थी नही, क्या जानती कि कौन स्टेशन कहाँ है ? कई स्टेशनोके बाद एक जगह गाड़ी रुकी, मैंने देखा, वह स्टेशन बहुत छोटा था। वहाँ न तो कोई चढ़ा ही और न उतरा ही। गाड़ी रुकते ही वही आदमी फिर आ पहुँचा और बोला—उतर आओ। बस गाड़ीके आनेमें अब आध घण्टेकी देर है। यहाँ गाड़ी दो ही मिनट ठहरती है। उतरो जल्दी।

मैं घबड़ाकर उतर पड़ी। मेरे उतरते ही गाड़ी खुल गई। मैंने घबराकर पूछा—मेरी माँ?

"ऐ! वह तो गाड़ीपर ही रह गई।" वह अकचकाकर बोला—"अच्छा, कोई हर्ज नहीं है, मै अभी तार दे देता हूँ। अगले स्टेशनपर वह उतारकर उसी गाड़ीपर बैठा दी जायगी, जिसपर तुम्हे चढ़ना है। घबरानेकी कोई बात नही।"

यह कहकर वह मुझे अकेली ही छोड़, एक कमरेमे घुस गया। मैंने चारो ओर नजर डालकर देखा, वह जगह बड़ी भयावनी मालूम पड़ती थी। यह भी देख लिया कि वह साहबगञ्ज स्टेशन नहीं था। स्टेशनका नाम 'ओलाचक' या कुछ ऐसा ही था, याद नहीं। मै भयके मारे काँप उठी! मेरी आँखोके आगे अँधेरा छा गया। धीरे-धीरे मेरी समझमे सारी बाते आने लगी; मगर करती क्या? उसी जगह घबराकर बैठ गई।

इस बार वह आकर बोला—चलो, जनाना 'वेटिङ्गरूम' में तबतक आराम करो। तुम्हारी माँको तार देकर उतरवा लिया है, वह अभी आ जायगी।

मै डरके न-जाने क्या हो गई थी! उठी, और उसके बताए हुए कमरेमें घुस गई। मेरे घुसते ही कमरा बाहरसे बन्द

मेरा भरोसा और भी बढ़ गया। मैंने कहा—हॉ, वह कहॉ हैं ?

"उसे मैं अभी गाड़ीमे बैठा आया हूँ—वह भी बेटी-बेटी कर रही थी। चलो, जल्दी करो गाड़ीने सीटी दे दी।"

मैं बिना कुछ कहे-सुने उसके साथ चल पड़ी। गाड़ीने सीटी दे दी। उसने कहा—चढ़ जाओ इसी डिब्बेमे, वह उधर बैठी है। अगले स्टेशनमे उससे भेंट हो जायगी!

मेरे होश-हवास सब हवा हो गए थे। कॉपती हुई मै उसीमे जा बैठी। गाड़ी खुल गई—मगर मुझे यह पता न चल सका कि वह किस ओरको जा रही है—दिशाका भ्रम हो गया!

अगले स्टेशनपर गाड़ी रुकी, तो देखा कि दरवाजेपर वही आदमी खड़ा है। इस बार उसने डपटकर पूछा—तुम्हे जाना कहॉ है ?

मैं सहम उठी। धीरेसे जवाब दिया—अकबरनगर!

"तो वहीं क्यो नहीं बोली ? यह गाड़ी तो कलकत्तेकी ओर जा रही है।"

मुझे काटो तो खून नहीं। मैं घबराकर उतरने लगी। इस बार वह जरा मुलायम होकर बोला—अच्छा, कोई हर्ज नहीं; चली चलो इसी तरह, साहबगञ्जमे यह गाड़ी मेल खायगी। वहीं तुम्हे दूसरी गाड़ीपर बैठा दूँगा। तुम्हारे टिकटपर लिख दूँगा। दाम नहीं देने होंगे।

मैंने कहा—और मेरी मॉ ?

"अब गाड़ी खुल रही है, जाकर बैठो—वहीं मॉ से भी भेट हो जायगी।"

मेरा कोई वश न चला। गाड़ी खुल गई।

भागलपुरसे आगे पूरबकी ओर तो कभी मैं गई थी नहीं, क्या जानती कि कौन स्टेशन कहाँ है ? कई स्टेशनोंके बाद एक जगह गाड़ी रुकी, मैंने देखा, वह स्टेशन बहुत छोटा था। वहाँ न तो कोई चढ़ा ही और न उतरा ही। गाड़ी रुकते ही वही आदमी फिर आ पहुँचा और बोला—उतर आओ। बस गाड़ीके आनेमें अब आध घण्टेकी देर है। यहाँ गाड़ी दो ही मिनट ठहरती है। उतरो जल्दी।

मैं घबड़ाकर उतर पड़ी। मेरे उतरते ही गाड़ी खुल गई। मैंने घबराकर पूछा—मेरी माँ ?

"ऐ! वह तो गाड़ीपर ही रह गई।" वह अकचकाकर बोला—"अच्छा, कोई हर्ज नहीं है, मैं अभी तार दे देता हूँ। अगले स्टेशनपर वह उतारकर उसी गाड़ीपर बैठा दी जायगी, जिसपर तुम्हे चढ़ना है। घबरानेकी कोई बात नहीं।"

यह कहकर वह मुझे अकेली ही छोड़, एक कमरेमें घुस गया। मैंने चारों ओर नजर डालकर देखा, वह जगह बड़ी भयावनी मालूम पड़ती थी। यह भी देख लिया कि वह साहबगञ्ज स्टेशन नहीं था। स्टेशनका नाम 'ओलाचक' या कुछ ऐसा ही था, याद नहीं। मैं भयके मारे काँप उठी ! मेरी आँखोंके आगे अँधेरा छा गया। धीरे-धीरे मेरी समझमें सारी बातें आने लगीं; मगर करती क्या ? उसी जगह घबराकर बैठ गई।

इस बार वह आकर बोला—चलो, जनाना 'वेटिङ्गरूम' में तबतक आराम करो। तुम्हारी माँको तार देकर उतरवा लिया है, वह अभी आ जायगी।

मैं डरके न-जानें क्या हो गई थी ! उठी, और उसके बताए हुए कमरेमें घुस गई। मेरे घुसते ही कमरा बाहरसे बन्द

हो गया। साथ ही क्षणभरके लिए मेरी छातीकी धड़कन भी बन्द हो गयी। मै अपनेको सँभाल न सकी। वहाँ एक आरामकुरसी पड़ी थी, उसीपर गिर पड़ी।

थोड़ी ही देर बाद बाहर से कुछ गुनगुनानेकी आवाज आई। मैं उठ बैठी और दरवाजेके पास आकर ध्यानसे कान लगाकर सुनने लगी—

"पहले मै जाऊँगा भाई! चखूँ तो कैसा माल है।

"वाह जनाब! इतनी दूरसे ले आया हूँ मैं; और भोग लगाइएगा आप?"

"आप भी तो कभी-कभी ऐसा ही करते है, आज मै ही सही।"

'अच्छी बात है—जाइए।'

मै सब समझ गई। इन पिशाचोंकी बाते सुनते ही मेरा सारा भय भाग गया। मेरी नसोंमे क्षत्राणियोका खून खौल उठा। समूचे शरीरमे आग लग गई। तुम तो जानती हो बहिन! तुम्हारे दुलारे देवर—नन्नू बाबूकी वह छोटी-सी कटारी मुझे कितनी प्यारी है! जबसे उन्होने मुझे उपहार-स्वरूप वह दिया है, तभीसे एक क्षणके लिए भी मै उसे नहीं छोड़ती, हमेशा कपड़ेके नीचे कमरमे बाँधे रहती हूं। इस समय भी वह मेरे साथ है। उस समय भी वह मेरे साथ ही थी। मैने चटपट अपने वस्त्रोंसे सारे शरीरको खूब मजबूतीसे कस लिया—स्त्री-वेशमे नहीं रह गई, केवल केश ही भर लटक रहे थे। मेरे अङ्ग-अङ्ग मजबूतीसे कसे हुए थे। मैंने कटारी हाथमे ली और काली-मैयाकी तरह लाल-लाल ऑखे निकाले, अविचल भावसे द्वारसे हटकर कुछ दूरीपर खड़ी हो गई। कमरेका द्वार खुल गया।

आनेवाले उस सलोने नौजवानने जो मेरा वह रूप देखा तो

उसके रसीले अधरोंकी सारी मुस्कराहट न-जानें कहां भाग गई! उसके चेहरेपर सफेदी छा गई—उसपर हवाइयाँ उड़ने लगीं। न उससे आगे बढ़ा जाय न पीछे हटा जाय! साहस करके उसने किवाड़ बन्द कर दिया और दो कदम आगे बढ़ आया। मैं बेगसे कटारी लेकर उसकी ओर झपट पड़ी! अरे यह क्या? वह तो विद्युत्की भाँति आकर मेरे पैरोंपर गिर पड़ा! मेरे हाथसे कटारी गिर पड़ी—उसके शरीरपर नहीं, धरतीपर। मैंने हड़बड़ाकर उससे पैर छुड़ा लिया और लपक कर फिर अपनी कटारी उठाली। इस बार देखा, वह कातर-दृष्टिसे मेरी ओर देख रहा है—उसकी आँखोंसे आँसूकी धारा उमड़ रही है। वह बोला—आओ लक्खो! मेरी छातीमे वह कटारी घुसेड़ दो—मेरे पापोंका अन्त कर दो।

मालूम हुआ, जैसे मैं स्वप्न देखरही हूँ। सिरसे पैरतक मैं काँप उठी। मेरे मुँहसे निकल पड़ा—जीजाजी!

"हाँ, लक्खो रानी! कभी मैं तुम्हारा जीजा ही था, आज नरकका कीड़ा हूँ—मेरी ओर देखो भी मत। सीधेसे आकर छातीमे कटारी घुसेड़ दो। तुम्हारे पैरो पड़ती हूँ।"—कहकर वह मेरे पैरोंपर लोटने लगा।

अब मैं अपनेको सँभाल न सकी। साफ-साफ पहचान गई, वह मेरे जीजाजी ही थे। तूफानकी तरह चञ्चल होकरमैं रो उठी। उनके गलेसे चिपक गई और खूब रो लेनेके बाद बोली—बस, अब चलिए यहाँ से! आप को घर चलना होगा।

वे अपराधीकी तरह बोले—कौनसा मुँह लेकर चलूँ?

मैं उनके आँसू पोंछती हुई बोली—आपके मुँहकी ओर उँगली उठानेवाली आखें बैठ जायँगी। आप चलिएगा नहीं तो मैं अकेली जाऊँगी कैसे?

हो गया। साथ ही क्षणभरके लिए मेरी छातीकी धड़कन भी बन्द हो गयी। मै अपनेको सँभाल न सकी। वहीं एक आरामकुरसी पड़ी थी, उसीपर गिर पड़ी।

थोड़ी ही देर बाद बाहर से कुछ गुनगुनानेकी आवाज आई। मैं उठ बैठी और दरवाजेके पास आकर ध्यानसे कान लगाकर सुनने लगी—

"पहले मै जाऊँगा भाई! चखूँ तो कैसा माल है!

"वाह जनाब! इतनी दूरसे ले आया हूँ मैं; और भोग लगाइएगा आप?"

"आप भी तो कभी-कभी ऐसा ही करते है, आज मै ही सही।"

'अच्छी बात है—जाइए।'

मैं सब समझ गई। इन पिशाचोंकी बाते सुनते ही मेरा सारा भय भाग गया। मेरी नसोमे क्षत्राणियोका खून खौल उठा। समूचे शरीरमे आग लग गई। तुम तो जानती हो बहिन! तुम्हारे दुलारे देवर—नन्नू बाबूकी वह छोटी-सी कटारी मुझे कितनी प्यारी है! जबसे उन्होने मुझे उपहार-स्वरूप वह दिया है, तभीसे एक क्षणके लिए भी मै उसे नही छोड़ती, हमेशा कपड़ेके नीचे कमरमे बाँधे रहती हूं। इस समय भी वह मेरे साथ है। उस समय भी वह मेरे साथ ही थी। मैने चटपट अपने वस्त्रोंसे सारे शरीरको खूब मजबूतीसे कस लिया—स्त्री-वेशमे नही रह गई, केवल केश ही भर लटक रहे थे। मेरे अङ्ग-अङ्ग मजबूतीसे कसे हुए थे। मैंने कटारी हाथमे ली और काली-मैयाकी तरह लाल-लाल आँखे निकाले, अविचल भावसे द्वारसे हटकर कुछ दूरीपर खड़ी हो गई। कमरेका द्वार खुल गया।

आनेवाले उस सलोने नौजवानने जो मेरा वह रूप देखा तो

उसके रसीले अधरोंकी सारी मुस्कराहट न-जानें कहां भाग गई ! उसके चेहरेपर सफेदी छा गई—उसपर हवाइयाँ उड़ने लगी। न उससे आगे बढ़ा जाय न पीछे हटा जाय ! साहस करके उसने किवाड़ बन्द कर दिया और दो कदम आगे बढ़ आया। मैं वेगसें कटारी लेकर उसकी ओर झपट पड़ी ! अरे यह क्या ? वह तो विद्युत्की भाँति आकर मेरे पैरोपर गिर पड़ा ! मेरे हाथसे कटारी गिर पड़ी—उसके शरीरपर नहीं, धरतीपर। मैंने हड़बड़ाकर उससे पैर छुड़ा लिया और लपक कर फिर अपनी कटारी उठाली। इस बार देखा, वह कातर-दृष्टिसे मेरी ओर देख रहा है—उसकी आँखोसे आँसूकी धारा उमड़ रही है। वह बोला—आओ लक्खो ! मेरी छातीमे वह कटारी घुसेड़ दो—मेरे पापोंका अन्त कर दो।

मालूम हुआ, जैसे मै स्वप्न देखरही हूँ। सिरसे पैरतक मै काँप उठी। मेरे मुँहसे निकल पड़ा—जीजाजी !

"हाँ, लक्खो रानी ! कभी मै तुम्हारा जीजा ही था, आज नरकका कीड़ा हूँ—मेरी ओर देखो भी मत। सीधेसे आकर छातीमे कटारी घुसेड़ दो। तुम्हारे पैरो पड़ती हूँ।"—कहकर वह मेरे पैरोपर लोटने लगा।

अब मै अपनेको सँभाल न सकी। साफ-साफ पहचान गई, वह मेरे जीजाजी ही थे। तूफानकी तरह चञ्चल होकरमै रो उठी। उनके गलेसे चिपक गई और खूब रो लेनेके बाद बोली—बस, अब चलिए यहाँ से ! आप को घर चलना होगा।

वे अपराधीकी तरह बोले—कौनसा मुँह लेकर चलूँ ?

मै उनके आँसू पोंछती हुई बोली—आपके मुँहकी ओर उँगली उठानेवाली आखे बैठ जायँगी। आप चलिएगा नहीं तो मैं अकेली जाउँगी कैसे ?

इसी समय वह पिशाच भी, जो मुझे यहाँतक बहकाकर ले गया था, कमरेमे घुस आया और बोला—भाई ! तुम तो बड़ी देर कर रहे हो, गाड़ीका समय हो गया।

"चुप रहो, बदमाश कहींके !" जीजाजी शेरकी तरह गरजकर बोले—होशमे आकर बाते किया करो। यह मेरी बहन है, एक कदम भी आगे बढ़े तो सिर उड़ा दूँगा।

वह बेचारा सिकुड़कर हम दोनोकी ओर ताकता ही रह गया और हमलोग वहाँ से बाहर निकल आए।

बाहर निकलते ही मैने कहा—माँ भी साथ थीं।

"उनका साथ कहाँ छूटा ?" जीजाजी घबरा उठे।

"भागलपुरसे"—मैंने भर्राए हुए शब्दोमे उत्तर दिया—"मगर वह तो कहता था कि वह भी मेरे साथ एक ही गाड़ीमे आ रही थीं—साहबगञ्जमे उतरी होंगी।"

"सब बाते झूठी है, शायद वे वहीं छूट गई हों"—कहकर उन्होंने फोनसे साहबगञ्जके स्टेशन-मास्टरसे पूछा, "कोई औरत आपकी निगरानीमे है, जो इस गाड़ीसे भागलपुर भेजी जायगी ?"

उत्तर मिला—नहीं।

जीजाजी अस्थिर हो उठे। बोले—उसने तुमको सरासर धोखा दिया। माँ वहीं छूट गईं। इसी गाड़ीसे चलते है, वहाँ चलकर पता लग जायगा।

इसके बाद उन्होने कुछ लिखा और उसी पिशाचको बुलाकर लाल-लाल आँखे दिखाते हुए उससे कहा—ले लो सब चार्ज, मैं अभी इस्तीफा देता हूँ। इस नरकमे अब नहीं रहूँगा।

वह चुपचाप काँप रहा था। कुछ बोला नहीं। बैठकर कागज-पत्तर सभाने लगा।

गाड़ी आई और हम दोनों रवाना हो गए। भागलपुर पहुचते-पहुचते सूरज निकल आया। पहुँचते ही मैंने चारो ओर आँखें दौड़नी शुरू कीं। देखा, कुछ लोग प्लेटफार्मपर किसीको घेरे खड़े थे। मैं लपककर गाड़ीसे उतर पड़ी। जीजा भी उतर पड़े। हमलोगो-ने भीड़को चीरकर देखा, उसके बीच माँ बैठी-बैठी रो रही थीं। उनके सारे वस्त्र आँसूसे भींग गये थे। जीजाजी उनके पैरोंसे लिपट गए। मैं उनके गर्दनसे चिपक गई। तीनों जने खूब रोए, खूब रोए—इतना रोए कि आँसुओंकी बाढ़में हमारा सारा दुख, सारा दर्द बढ़ गया।

इसके बाद हमलोग गङ्गा नहाने चले गए। वहीं माँने ब्राह्मण-भोजन कराया। शामकी गाड़ीसे हमलोग घर पहुँच गए।

माँका विचार है कि इस खुशीमे खूब धूमधामसे सत्यनारायण प्रभुकी पूजा हो। पूजाका दिन तुम्हारे आ जानेपर निश्चित होगा। जीजाजीकी तबीयत आज जरा ठीक नहीं है—कुछ-कुछ ज्वरका अंश मालूम होता है। मगर तुम इसकी कोई चिन्ता मत करना केवल हरारतका फसाद है। तुम पत्र पाते ही यहाँके लिए चल दो। साथमें अपने दुलरुआ देवरजीको लाना, भूल मत जाना। उन्हें मेरी याद दिला देना और मेरी ओरसे मिन्नतें करना कि दो घड़ी-के लिए यहाँ आकर अपने भैयाको देख जायँ। तुम्हारी प्रतीक्षामें-

तुम्हारी छोटी बहिन,

—लक्खो

इसी समय वह पिशाच भी, जो मुझे यहाँतक बहकाकर ले गया था, कमरेमें घुस आया और बोला—भाई ! तुम तो बड़ी देर कर रहे हो, गाड़ीका समय हो गया।

"चुप रहो, बदमाश कहींके !" जीजाजी शेरकी तरह गरजकर बोले—होशमें आकर बातें किया करो। यह मेरी बहन है, एक कदम भी आगे बढ़े तो सिर उड़ा दूँगा।

वह बेचारा सिकुड़कर हम दोनोंकी ओर ताकता ही रह गया और हमलोग वहाँ से बाहर निकल आए।

बाहर निकलते ही मैंने कहा—माँ भी साथ थीं।

"उनका साथ कहाँ छूटा ?" जीजाजी घबरा उठे।

"भागलपुरमें"—मैंने भराए हुए शब्दोंमें उत्तर दिया—"मगर वह तो कहता था कि वह भी मेरे साथ एक ही गाड़ीमें आ रही थीं—साहबगञ्जमें उतरी होंगी।"

"सब बातें झूठी हैं, शायद वे वहीं छूट गई हों"—कहकर उन्होंने फोनसे साहबगञ्जके स्टेशन-मास्टरसे पूछा, "कोई औरत आपकी निगरानीमें है, जो इस गाड़ीसे भागलपुर भेजी जायगी ?"

उत्तर मिला—नहीं।

जीजाजी अस्थिर हो उठे। बोले—उसने तुमको सरासर धोखा दिया। माँ वहीं छूट गईं। इसी गाड़ीसे चलते हैं, वहाँ चलकर पता लग जायगा।

इसके बाद उन्होंने कुछ लिखा और उसी पिशाचको बुलाकर लाल-लाल आँखें दिखाते हुए उससे कहा—ले लो सब चाज, मैं अभी इस्तीफा देता हूँ। इस नरकमें अब नहीं रहूँगा।

वह चुपचाप काँप रहा था। कुछ बोला नहीं। बैठकर कागज-पत्तर संभाने लगा।

गाड़ी आई और हम दोनों रवाना हो गए। भागलपुर पहुचते-पहुचते सूरज निकल आया। पहुँचते ही मैंने चारों ओर आँखें दौड़नी शुरू कीं। देखा, कुछ लोग प्लेटफार्मपर किसीको घेरे खड़े थे। मैं लपककर गाड़ीसे उतर पड़ी। जीजा भी उतर पड़े। हमलोगों-ने भीड़को चीरकर देखा, उसके बीच माँ बैठी-बैठी रो रही थी। उनके सारे वस्त्र आँसूसे भींग गये थे। जीजाजी उनके पैरोंसे लिपट गए। मैं उनके गर्दनसे चिपक गई। तीनों जनें खूब रोए, खूब रोए—इतना रोए कि आँसुओंकी बाढ़में हमारा सारा दुख, सारा दर्द बढ़ गया।

इसके बाद हमलोग गङ्गा नहाने चले गए। वहीं माँने ब्राह्मण-भोजन कराया। शामकी गाड़ीसे हमलोग घर पहुँच गए।

माँका विचार है कि इस खुशीमें खूब धूमधामसे सत्यनारायण प्रभुकी पूजा हो। पूजाका दिन तुम्हारे आ जानेपर निश्चित होगा। जीजाजीकी तबीयत आज ज़रा ठीक नहीं है—कुछ-कुछ ज्वरका अंश मालूम होता है। मगर तुम इसकी कोई चिन्ता मत करना केवल हरारतका फसाद है। तुम पत्र पाते ही यहाँके लिए चल दो। साथमें अपने दुलरुआ देवरजीको लाना, भूल मत जाना। उन्हें मेरी याद दिला देना और मेरी ओरसे मिन्नतें करना कि दो घड़ी-के लिए यहाँ आकर अपने भैयाको देख जायँ। तुम्हारी प्रतीक्षामें—

तुम्हारी छोटी बहिन,

—लक्खो

[२]

वासुदेवपुर (मुँगेर)
गुरुवारकी आधी रात

मेरी लक्खो रानी !

भौजीके नाम तुम्हारा जो पत्र आज शामको आया, वही अगर कल आया होता...! मै इस समय खाटपर पड़ा हुआ हूँ—आज सबेरे ही ज्वर हो आया है। इस समय जरा होशमे हूँ। बड़ी मुश्किलसे तुम्हें यह पत्र लिख रहा हूँ। मगर लिखूँ क्या ? तुम्हारे पत्रका जवाब क्या दूँ ? इस पत्रका तो एक ही जवाब था, और वह यही कि मैं भौजीको साथ लेकर जल्दी-से-जल्दी तुम्हारे पास आ जाता। मगर क़िस्मतकी लड़ाईसे फ़ुरसत मिले तब तो ! यहाँ तो जबसे होश सँभाला, बराबर उसीके खेल देखता आ रहा हूँ। देखते-देखते आँखे उलट गईं-मगर पेटका रोग एक न-एक नया रूप बदलता ही रहता है। क्या करूँ ? बद-नसीबीके हर एक पहलूमे मेरी तबाहीकी ऐसी-ऐसी भयङ्कर तस्वीरें खींची हुई हैं कि उन्हे यदि एक बार भी यह अन्धी दुनिया देख ले, तो उसे मेरे ऊपर रहम करनेका मौक़ा मिल जाय ! लेकिन यह देखे ही क्यों ? इसे कौन-सी गरज पड़ी है ? सच कहता हूँ लक्खो ! इस बीस ही बरसकी अवस्थामे मुझे अपने जीवनसे अरुचि हो गई—मेरा जीवन, जीवन नहीं रह गया, यह अब कुछ ऐसा पदार्थ हो गया है, जो मुझे फूटी आँखो नहीं सुहाता ! पर कुछ कर नहीं सकता। पिछले जन्ममे मुझसे कोई बड़ी भारी चूक हो गई होगी, उसीका यह दण्ड भोग रहा हूँ !

इस समय मेरे ऊपर क्या बीत रही है, तुम्हें, कैसे बताऊँ ? अपने दर्दका सन्देशा तुम्हारे पासतक पहुँचाया चाहता हूँ, मगर

कोई उपाय नजर नहीं आता। सुनता था, कागजपर भी कलेजा निकालकर रख दिया जाता है। मुझे तो यह बिलकुल झूठ-सा जँचता है। कोशिश करते-करते तबाह हो गया, फिर भी इस कागजके टुकड़ेपर कलेजा निकालकर रखनेकी बात तो क्या, कलेजेकी कोई तस्वीर भी नहीं खींच सका!

मेरी ये बातें सुनकर न-जाने तुम्हारा मन कैसा हो रहा होगा! तुम समझती होगी, इन्हें अपना ही रोना रोनेसे फुरसत नहीं मिलती। यह भी सच है। सचमुच इस जीवनमें मेरा और कोई काम ही नहीं रह गया है। आँसुओंकी बाढ़मे अपनी सूनी दुनियाको डुबोकर एक बार कयामतका वह नज़ारा देख लेना चाहता हूँ, जिसके बाद कुछ और देखनेका अरमान न रह जाय। मगर हाय री मेरी किस्मत! सर्वनाशका लीला-मन्दिर भी तो मेरे लिए बन्द ही रहता है। मैं लाख प्रयत्न करनेपर भी उसके किवाड़ नहीं खोल पाता। हाथ काँप उठते हे, पैर डगमगा जाते हैं आँखें पथरा जाती हैं, और मैं अचेत होकर अपनी निराशाके अनन्त आँगनमे गिर पड़ता हूँ। यही मेरा रोजका काम है।

न-जानें क्या लिखता जा रहा हूं! यह निर्बल हृदयके साथ सबल भावनाओंका अत्याचार है। मेरा इसमें कोई कसूर नहीं। बेहोशीकी पागल लहरोंमें बहता जा रहा हूं। कह नहीं सकता, कहाँ जाकर किनारे लगूँगा!

अच्छा, अब तुम अपना कलेजा थाम लो। देखना, भावनाओं की वह कोमल सृष्टि—बात-बातपर मचल जानेवाला तुम्हारा वह अबोध हृदय—इस आकस्मिक आघातसे फूट न पड़े। उसपर तुम्हारा कोई अधिकार नहीं। वह मेरी चीज है, उसे लुटा न देना। बचाना मेरी रानी! उसे जिस तरह हो, बचाए रखना। जानता हूँ,

यह चोट ऐसी-वैसी नहीं—बड़ी ही मार्मिक और कठोर है। मगर तुम्हे अपना कलेजा पत्थर बनाना पड़ेगा; उसे समझाओ-बुझाओ, मनाओ और ऐसा उपाय करो, जिससे वह फटने न पाये।

जानती हो, इसके बाद तुम्हें क्या सुनानेवाला हूँ? यही कि तुम्हारी प्यारी बहिन—मेरी दुलारी भौजी—भैयाकी अभागिनी दासी, अब इस घरमे—प्यार, आदर और सुखसे विहीन इस पाप-मन्दिरमे—नहीं हैं। मेरी सौतेली माँ के द्वारा अपमानित, लांछित और तिरस्कृत होकर वह बेचारी कल रात ही न-जाने कहाँ भाग गईं! तुम्हारे पास तो वह गई नहीं होंगी, इसे मैं खूब अच्छी तरह जानता हूँ। वह जीवित भी हैं या नहीं कुछ कहा नहीं जा सकता। इस जीवनमे फिर उनका प्यार पा सकूँगा या नहीं, इसका मुझे कोई भरोसा नहीं रह गया। आह! मेरे ही कारण उस सतीको आज यह विपत भी गले लगानी पड़ी! विमाताके राजमे रहकर भी मुझे अपनी माँका अभाव नहीं खटकता था, सिर्फ इसीलिए कि भौजी मुझे बेटे से भी बढ़कर मानती थीं! कौन जानता था कि उनका वही प्यार साँप बनकर हम दोनों को एक ही साथ डँस लेगा! किसे मालूम था कि उसी सुखके परदेमे छिपकर हमारी किस्मत हमारे संहारका आयोजन कर रही है।

जबसे भैया इस घरको छोड़कर भाग गए, तभीसे भौजी के और मेरे भाग्य भी नष्ट हो गए। वह बेचारी तपस्विनी की तरह अपने सुहागकी सूनी घड़ियां बिताने लगी, और मैं उसी तपस्या की ज्योतिमें बैठकर उसका मीठा-मीठा बरदान पीने लगा। लौंडी की तरह दिन-रात काममे जुती रहकर भी, जब वह अम्माजीको खुश नहीं रख सकती थी, तब मेरे-जैसे निकम्मेकी क्या बात? मुझे तो शायद डरके मारे—मेरी भुजाओंके बलका अनुमान

करके—वे कुछ ऐसी-वैसी बाते नही बोलतीं, मगर भौजीका तो नाकों दम था। यह सब कुछ तो होता ही रहता था, इसकी न मुझे ही कुछ परवाह थी, न भौजीही को। दोनो चुपचाप अपना-अपना काम किए जाते थे। मगर कल रातमें अम्माजीने बुरी तरह बदला लिया—ऐसा बदला कोई अपने शत्रुसे भी न लेगा।

सुनोगी क्या हुआ? आह! स्मृति-मात्रसे हृदयमें आग जल उठी—उसकी जीवित ज्वालाएँ अपने पञ्जोंको विकराल रूपसे बढ़ाये आ रही है। ग्लानि, धिक्कार और क्रोधकी मिली हुई इन दारुण चोटो से इतना निर्बल हो रहा हूँ कि तड़पनेकी हविस रखकर भी एक बार तड़प नहीं सकता। क्या बताऊँ लक्खो, कहते नहीं बनता! मगर चाहे जिस तरह हो कहना ही पड़ेगा। दूसरा कोई उपाय नहीं है।

बात यों हुई कि कल शामहीसे मेरे सिरमे बड़ी तेज पीड़ा शुरू हो गई—मालूम होता था, सिर फट जायगा! उस समय मुझे तुम्हारी याद हो आई। जानती हो क्यों? तुम शायद भूल गई हो; मगर मै भूलना भी चाहूं तो कभी नहीं भूल सकता। आजसे दो बरस पहले की बात है। मै तुम्हारे घर गया हुआ था। इसी तरह मेरे सिरमें पीड़ा उठ आयी। उस समय तुमने घण्टों बैठकर मेरे सिर मे तेल लगया था। मैं कहता—जाने दो अब।

तुम कहतीं—अभी कैसे जाने दूँ? पीड़ा दूर हुए बिना नहीं छोड़ूँगी।

लाख बार कहा, मगर तुम बराबर इसी तरहके जवाबोंसे मुँह बन्द करती गई। आखिर न-जानें मैं कब सो गया। वह दिन क्या कभी भुलनेका है?

ठीक उसी तरह भौजी भी मेरे माथेमे तेलकी मालिश कर रही थीं। लालटेनका प्रकाश बहुत तेज था। मैंने कहा—उसे खूब कम करदो।

वही हुआ—प्रकाश बहुत धीमा हो गया। वे उसी तरह धीरे-धीरे मेरे सिरको सहला रही थी। मै आँखें बन्द किए चुप-चाप पड़ा पड़ा ही मन-ही मन उस प्यारकी—उस सेवाकी पूजा कर रहा था। कमरे मे नीरवता छाई हुई थी। इसी समय उनकी छाती से लगाकर एक कर्कश अवाज टकराई 'न-जाने' कल-मुँही कहाँजाकर बैठी है। सरा दूध उबलकर चूल्हेमे जा गिरा।

यह मेरी अम्माजीकी अवाज थी। भौजी कुछ बोली नहीं। मिनटभर भी नही बीता होगा कि वह चुड़ैल मेरे सिरपर खड़ी होकर चिल्ला उठी—हायरे बाप! मै नहीं जानती थी कि अँधेरे में लेटकर यहाँ यह करम किया जा रहा है! आओ, देखो रे लोगो! आँखे खोलकर देख जाओ! पीछे कहोगे कि मै झूठ-मूठ इन दोनो की बदनामी करती हूं!' यह कहकर वह छाती पीट-पीट-कर, कपार धुन-धुनकर चिल्लाने लगी। बहुतसे लोग वहां आ जुटे। भौजी अपराधिनी की तरह चुपचाप एक कोनेमे खड़ी होकर रोने लगी। मै पीड़ाके मारे उसी तरह आँखे बन्द किए पड़ा रहा—मुझमे कुछ बोलनेकी शक्ति नही रह गई थी। धीरे-धीरे सभी लोग चले गये। भौजी फिर आकर मेरे पास बैठ गई और उसी तरह मेरे सिरपर हाथ फेरने लगीं। न-जाने मैं कब सो गया। सबेरे ८ बजे नींद खुली तो देखा भौजी नही थीं। चारो ओर हो-हल्ला मचा हुआ था। मुझे ज्वर चढ़ आया। मै मुँह ढाँपकर जोर-जोरसे रोने लगा; मगर मेरे आँसू पोछनेवाला कोई नही था! अपनी मांके मरने पर भी इस तरह नही रोया। कलङ्ककी झूठी बातोंसे विद्ध होकर भौजी न जाने कहां चली गईं। अगर वे मर न गई होगी तो मैं उन्हे पातालसे भी खोज लाऊँगा। आज ही भारको, चाहे ज्वर उतरे या नही, मैं यहां से चल दूँगा।

योगी बनकर सारा देश छान डालूँगा, और यदि वे जीती होंगी तो चाहे जैसे हो, उन्हे लाकर तुम्हारे सामने—भैयाके चरणोंपर लिटा दूँगा। अगर मैं ही मरगया तब तो लाचारी है। आह इस समय फिर बड़े जोरसे सिरमे दर्द होने लगा। प्यास के मारे बेचैन हूँ, पर एक गिलास पानी देने वाला नही! ऐसे घरमे रहने से क्या लाभ? अच्छा, बचूँगा तो फिर कभी! इस समय इतना ही। अपनी मां और मेरे भैयासे प्रणाम कहना। मुझे भूलना नहीं।

तुम्हारा ही,

—नन्नू

---

[३]

काशी-अनाथ-नारी-सदन
रविवारका रोता हुआ प्रातःकाल

मेरे नन्नू!

देखती हूँ, अभी बहुत दिनोतक दुख भोगना बाकी है। जिसे मौतके लिए भी हाथ पसारकर भीख माँगनी पड़ती है और फिर भी नही मिलती, वह और कौनसे सुखकी आशा करे? मैं अभागिनी घरसे तुम्हे उस दर्द-भरी सेजपर बेहोश छोड़कर, इसलिए निकल पड़ी कि सीधे गंगा-मैयाके पेटमे समा जाऊँगी और अपने सूने जीवनकी इन सारी यातनाओंका अन्त कर दूँगी। यही सोचकर उस काली रातके परदेमे, अपने कालिमा-भरे मुँहको छिपाए मैं गङ्गाके तीर पर पहुँच गई। मगर उस समय वहाँ डूब मरनेकी सुविधा न पाकर मै घूमती हुई स्टेशनपर पहुच गई। जीमे आया, अगर मरना ही है तो काशी चलकर क्यो न मरूँ? सुना था, काशीमे मरनेमें सीधे बैकुण्ठ मिलता है। नरकमें रहते

रहते ऊब उठी थी, इसलिए मरते समय भी स्वर्ग और पुण्यका प्रलोभन न छूट सका। मगर प्रलोभन चाहे जिस वस्तुका भी हो, बुरा ही होता है; इसे मैं जानती थी, लेकिन उस समय भूल गई। चुपकेसे गाड़ीमें बैठ गई। खिड़कीसे ठण्ढो-ठण्ढी हवा आ रही थी, मेरी आँखें बन्द हो गईं। जब खुलीं तो देखा मुग़लसराय पहुँच गई हूँ। रातभर मैं गाड़ीपर अचेत पड़ी रही। हड़बड़ाकर उतरी तो सामने ही एक आदमी आ पड़ा। वह था तो असलमें राक्षस, मगर उसकी खाल आदमीहीकी थी। वह बड़े आदरसे बोला—आपको काशी चलना है माताजी?

उसने कहते समय कुछ ऐसी अदा इख्तियार की कि मैं उस समय किसी तरह भी उसकी आदमियतपर शक नहीं कर सकी। सीधे-सादे भावसे बोल उठी—हाँ, चलूँगी तो वहीं, बड़ी दया हो, अगर वहाँकी गाड़ी बतला दीजिए!

वह और भी नम्रतासे बोला—चलिए न, मैं भी तो वहीं चलूँगा। मैं बाबा विश्वनाथजीका पण्डा हूँ।

उस समयतक तीर्थ-पण्डोंपर मेरी पूरी निष्ठा थी। मैं उन्हें धर्मके ठेकेदार समझती थी। उसकी जो वह नम्रता देखी, तो श्रद्धा और भी बढ़ गई। उसे मन-ही-मन धन्यवाद देकर उसके साथ चल पड़ी। गाड़ीमें उसका व्यवहार और भी सुन्दर हो गया। मगर काशी-स्टेशनपर ज्यों ही उतरी, त्यों ही एकाएक तीन-चार लठ्ठधर उसके साथ मिल गए। वे लोग बनारसी! बोलीमें कुछ ऐसी-ऐसी बातें करने लगे, जिससे मैं सहम उठी! देखा, वह भला आदमी भी उसी तरहकी बातें करते हुए बराबर मेरी ओर नजर दौड़ा-दौड़ाकर गन्दे इशारे करने लगा।

मेरी तो नस-नसमें आग भरी हुई थी—मैं बिना पल-भर विलम्ब

किए गङ्गाकी ओर दौड़ पड़ी। जबतक वे लोग दौड़े, मैं गंगाके गर्भमें समा चुकी थी। अपने जानते अपनी सारी जलन मिटा चुकी थी!

मगर यह क्या? जब आँखे खुली तो देखा, मैं एक ऐसे कमरेमें बन्द हूँ, जिसमें न किसी दरवाजे का पता चलता है, न कोई खिड़की नजर आती है। न वहाँसे बाहरके कोई शब्द ही सुनाई पड़ते हैं। कमरेमें एक लालटेन जल रही थी। इसीके प्रकाशमें देखा, समूचा कमरा खूब सुन्दरतासे सजाया हुआ है। मैं एक गुलगुले गलीचेपर लेटी हुई थी। ये सारी बातें जो मैंने देखी, तो प्राण काँप उठे—वे ही प्राण, जिनका मुझे कोई मोह नहीं रह गया था। मैं माथा ठोंककर रह गई—मेरी आँखोंसे दुर्बल आँसुओंकी धारा उमड़ चली।

इसी समय धीरे-धीरे एक ओरका दरवाजा खुला और तुरंत बन्द हो गया। मैंने देखा, मेरे आगे वही भला आदमी खड़ा है।

इस समय मैंने और कोई भाव नहीं दिखाए। बहुत ही स्वाभाविकताके साथ कहा—आप ही विश्वनाथजीके खास पण्डा हैं?

"नहीं, मैं खास पण्डा तो नहीं—खास पण्डा इस तरह कहीं जाते-आते थोड़े ही हैं—हाँ, मुझे भी उनके सेवकोंमें ही समझो। किसी तरह रुपए मिल ही जाते है।"

"आपने तो कहा था कि मैं विश्वनाथजीका पण्डा हूँ!"

"हाँ, सो तो हूँ; वहाँ एक पण्डा तो है नहीं—अनेक है, उनमेंसे एक मैं भी हूँ।"

मैंने एक बार क्रोध-भरी आँखोंसे उसकी ओर देखा और चुप हो रही।

अब उसने अपनी शैतानी शुरू की। धीरेसे आकर मेरे गलीचेपर बैठ गया और बोला—तुम डूब क्यों गई थी प्यारी मेरी?

उसके इस सम्बोधनसे मै और भी जल उठी और डपटकर बोली—होशमे आकर बाते करो !

वह पैशाचिक हँसी हँसकर बोला—वाह् रे तेरे नखरे ! मगर बीबीजी ! अब तो इसी महलकी रानी बनकर रहना होगा। यहाँसे तुम किसी तरह निकल न सकोगी और अगर नहीमानोगी तो कसाईके हाथ बेच डालूँगा, जनम-भर रोते ही बीतेगा। ये सब नखरे छोड़कर चुपचाप मेरी गोदमे आ जाओ—देखो कितना सुख मिलता है !

इतना कहकर ज्यो ही वह मेरी ओर बढ़ा, मै शेरनीकी तरह झपटकर उसपर टूट पड़ी ! दनादन उसकी छातीपर लात जमाना शुरू कर दिया। बीच कलेजेहीपर पहली लात ऐसी सरपट पड़ी कि बच्चूके मुँहसे खून बलबला पड़ा—मै लगातार लात और घूँसे जमाती गई। जब वह कराहने लायक भी नही रह गया, तब मैने धीरेसे उसको तालियोका गुच्छा ले लिया और बडी सावधानीसे दरवाजा खोलकर मै बाहर आई। तब पता चला कि मै तहखानेमें बन्द थी। मगर अब कोई दिक्कत नही थी—धीरे-धीरे एकके बाद दूसरे कमरेका दरवाजा खोलते-खोलते मै गलीमे आ खड़ी हुई ! अब मेरा साहस और भी बढ़ गया, मगर काशीकी गलियोसे इतनी जल्दी निकल भागना आसान नही है। खैर मै किसी तरह निकलकर सदर सड़कपर आई। आते ही लाल पगड़ीवालेका सामाना हुआ। उसने डपटकर पूछा—कौन औरत है ? कहाँ जा रही है रे ?

मै उसकी डपट सुनकर इतनी डरी, जितनी आजतक कभी डरी ही नही। उस समय मालूम हुआ कि पुलिसके आदमी और यमराजमे थोड़ा ही अन्तर होता है। मगर वह बेचारा बड़ा ही नेक निकला। किसी भले बापका बेटा रहा होगा। डरके मारे मैं सकबकाकर रोने लगी। मुझे मालूम हुआ, जैसे संसारकी सारी

विपदाएँ भगवान्‌ने मेरे ही लिए बनाई हैं ? मै उसे कुछ जवाब न देकर रोने लगी। उसे मेरे ऊपर बड़ी दया आई। नम्रतापूर्वक वह मेरे नजदीक आ खड़ा हुआ और लगा प्यारसे सारी बातें पूछने। उसे और-और बाते तो मैं नही बता सकी, सिर्फ यही बता दिया कि मै एक अनाथिनी अबला हूं और पण्डोंके फेरमें पड़कर मेरी यह दशा हुई है। वह बेचारा भी मेरे साथ रोने लगा। उसके बाद वह मुझे इसी 'नारी-सदन' मे छोड़ गया!

मगर मैं तो दुनियांमें ऊब उठी हूँ, यहां तो मेरा मन और भी न-जाने कैसा हो रहा है। यहाँके कर्मचारी भी बड़े सज्जन है—मेरे आराम की कोई बात उठा नहीं रखते; दीन दुखियोंका बड़ा आदर है। सब कुछ है, फिर भी मैं शान्त नही हो सकी हूँ—तड़प-तड़पकर दिन बिताती हूँ और रो-रोकर राते। अभी तुमसे बिछुड़े शायद दस ही दिन हुए हैं, इसी बीचमे मैं क्या से क्या हो गई! यदि मुझमे क्षत्रिय-वंश का रक्त नहीं होता तो उस पापीके हाथो मेरी क्या दुर्दशा होती ? यह कौन जानता है, उस बेहोशीमे उसने मेरे साथ क्या सलूक किए ?

नन्नू! मैं पापिनी हूँ। पर-पुरुषने मेरा स्पर्श किया है। जान-बूझकर न सही, किसी भी अवस्था में हो, मैंने अपने जीवन-की सारी साधना, सारी तपस्या नष्ट कर दी! अब मैं इस लायक नही कि किसी भी जन्म मे तुम्हारे भैया की दासी हो सकूँ! मुझ पापिनी का सुहाग सदाके लिए—जन्म-जन्मान्तरके लिए—सो गया। किसी हालत मे भी अब तुम लोगोंको अपनी यह पाप-प्रतिमा, अपना यह काला मुख न दिखा सकूँगी। यहां मत आना! मै आज ही किसी-न-किसी तरह इस दुनिया से कूच कर दूँगी।

तुम्हारी
—अभागिनी 'भौजी'

---

[४]

दुनियाका एक अँधेरा कोना
मङ्गलवारकी तड़पती हुई सन्ध्या

मेरी दुलारी लक्खो !

उस रात तुम लोगोंको बिना जनाए ही इसलिए चल पड़ा कि कहने-सुननेपर तुम किसी तरह भी मुझे आने नहीं देती। और अगर मैं वैसा नहीं करता तो जीवनकी सबसे बड़ी साध मेरी लाशके साथ ही चिता की गोदमें समा जाती। जिसे आज पाँच बरसोंके बीच भूलकर भी एक बार यादतक नहीं किया; जिसे कुत्तोंके जुठारे हुए पत्तल की तरह निर्मोही होकर नरक की नाली में सदैव आग ही लगता आया, अपनी उसी अभागिनी बीबीकी यादमें उस रात मैं इतना पागल हो गया कि मुझसे उसके सिवा दुनियामें और कोई चीज ही नजर नहीं आने लगी! जिधर देखता, उसीका जलवा नजर आता—उसी की सौन्दर्य-ज्योति हँसती हुई मिलती। वही मुस्कराहट, वही बाँकपन वही अदा वही लुभावनी चितवन—सबकुछ वही; मगर मैं ही वही नहीं कहां वह स्वर्गकी देवी और कहां मैं नाबदानका कृमि! की तुलना नहीं—कोई मुकाबिला नहीं। फिर भी दिल तड़पड़ा उठा, बेचैनीकी लहर नाच उठी! तय कर लिया कि चाहे जाँ भी गई होगी, जाकर एक बार उसके पैरोंपर लोटे बिना न रहूँगी। और कुछ नहीं बोलूँगा, अपने पश्चात्तापके आँसुओंसे उसके पावन पैर पखारकर उसीका थोड़ा-सा चरणामृत ले लूँगा। वही मेरा सबसे बड़ा प्रसाद होगा! वही मेरी पाप-मुक्तिका सबसे बड़ा साधन होगा!

मगर वह मुराद भी पूरी न हो सकी। जि[illegible] हुआ, चरणोंपर मेरा शीश गिरा, उस समय मेरी [illegible] आँसू

भी पानी नहीं रह गया था। हृदय तो श्मशान हो चुका था, उस, मे न रस था, न प्यास थी। प्यास बुझ चुकी थी, रस सूख गया था! भीतर हाहाकार! मचा हुआ था, बाहर आँखोंकी राहपर राख उड़ रही थी! लाख चाहा कि एक बार भी जी भर रो लूँ, मगर रो नहीं सका। उस समय अगर कोई मुझसे जन्म-जन्मांतर की गुलामी लिखवा लेता और इसके बदले किसी तरह मेरी आँखोंकी राहसे दो बूँद पानी गिरवा देता तो मैं समझता, मुझे स्वर्गका सिंहासन मिल गया! पर जो हो ही नहीं सकता था, वह होता कैसे? आखिर जी मसोसकर रह जाना पड़ा!

खैर, यह तो जो हुआ सो हुआ ही। इसके आगे भी सुनना चाहती हो? सुनो, हाँ, खूब अच्छी तरह सुन लो! आखिर मैं अबतक जी किस लिए रहा हूँ? इसीलिए न कि हृदयको पत्थर बनाकर तुमलोगोंको जनमभर रुलाऊँ? बस, जीवनभर मेरा यही काम रहा—आज भी यही कर रहा हूँ।

कई जगहोंसे होता हुआ मैं उसी रविवारके दोपहरमे काशी पहुँचा। ज्योंही गाड़ीसे उतरा, सुना कि मुसलमानोंने अनाथ-नारी सदनके सामने दङ्गा भी मचा रक्खा है। न-जानें आप-ही-आप मेरा दिल क्यों धड़कने लगा। मैंने एक आदमीसे पूछा—बात क्या है भाई?

"अरे साहब! बात क्या होगी? ये सब इसी तरह शैतानी करनेपर तुले रहते है। जबतक एक बार खूब अच्छी तरह सीखेंगे नहीं, इन्हे होश नहीं होगा।"

"आखिर कुछ तो हुआ होगा?"

"होगा क्या? नारी-सदन के भीतर घुसकर एक मुसलमान लौंडा बिना किसीसे पूछे गुलाबके फूल तोड़ने लगा। इतने मे प्रधान जी आए तो बोले कि क्यों वह इस तरह फूल तोड़ रहा था। बस,

फिर क्या था, तन गया वह छोकरा, और लगा अनाप-शनाप बकने। प्रधानजीने कान पकड़कर उसे तीन चपते रशीद कीं और गरदनियाँ देकर हातेसे बाहर निकाल दिया। इसीपर हो हल्ला मच गया। घन्टेभरमे सैकड़ो मुसलमान जुट गए और लगे नारी-सदन पर ईंट-पत्थर फेकने। अभी-अभी घण्टेभर की तो बात है।"

शरारतकी यह नङ्गी तस्वीर देखकर मेरा राजपूती खून खौल उठा। मगर जबतक वहाँ पहुँचा, मामला बहुत-कुछ शान्त हो चुका था। दो-चार हिन्दू और पाँच-छः मुसलमान वहाँ घायल पड़े हुए थे। नारी-सदन की एक स्त्री भी बुरी तरह घायल हुई की जब मुसलमान लोग फाटक तोड़कर जबरदस्ती 'सदन' मे घुसे जा रहे थे, उस समय जिनलोगोने बीरताके साथ उनका मुकाबिला किया, उनमे यह स्त्री भी थी। सुनते ही मेरा हृदय गौरव और आह्लादसे उमड़ उठा। मै श्रद्धाकी आँखे लेकर उस देवीके पास पहुँचा। नजदिक जाकर जरा गौरसे देखा तो काँप उठा! वह तुम्हारी ही बहिन थी! मुझे यकीन हो गया कि वह वही थी। उसकी तड़प देखकर मै स्थिर न रह सका—उसके पैरोपर गिर पड़ा!

उसने अकचका कर देखा और बोली—ना-ना, मुझे मत छुओ। मै दूसरेसे छू गई हूँ—अब तुम्हारे लायक नही हूँ। इसके बाद वह तड़प-तड़पकर रोने लगी। मै कह नहीं सकता, कबतक उसी तरह पड़ा रहा। जब आखे खुलीं तो देखा, मेरे कमरेसे एक लाश निकल रही थी। वह अस्पतालका कमरा था। मैं वेगसे उठाकर बाहर निकल पड़ा और चिल्ला उठा—इसे कहाँ लिए जाते हो?

मेरा चिल्लाना व्यर्थ था दो-तीन आदमियोंने पकड़कर मुझे जबरदस्ती खाटपर लिटा दिया। उनमेसे एकने आसू-भरी आखो

से मेरी ओर देखकर कहा—अब जो होना था, हो गया। धैर्य रखिए। देखिए, आपकी खोपड़ी फट गई है—बड़ा भारी घाव है। आरामसे लेटे रहिए।

उसके बाद मैं बेहोश हो गया। कह नहीं सकता, बीचमे कितनी बार बेहोशी आई और गई। मगर पूरे सप्ताहभर मैं वहीं रहा। उसके बाद मुझे आज्ञा मिली कि अब यदि मैं चाहूँ तो अस्पताल छोड़ सकता हूँ। न भी मिलती तो भी छोड़ देता। बस, उसी दम मैं वहाँसे निकल पड़ा।

इस समय कहाँ हूँ, यह न बताऊंगा। तुम्हारा क्या ठिकाना, किसी-न-किसी तरह पहुँच जाओ तो? बस, यही समझ लो कि इसके बाद तुमको न तो मेरा कोई पत्र मिलेगा न कभी मैं ही तुमलोगोंको अपना मुँह दिखाऊँगा। यह पत्र जिस समय तुम्हे मिलेगा, उस समयतक मैं तुम्हारी बहिनके चरणो-तले लेटता रहूँगा। जहाँ वह गई है, वहाँ जानेकि मेरी तैयारी हो चुकी। बस, अब बिदा मागता हूँ। यदि भाग्यमें होगा तो फिर किसी दूसरे जन्ममे...! पता नहीं तुम्हारा 'नन्नू' कहाँ है! इस समय उसकी बड़ी याद आ रही है। मिले तो मेरा लाख-लाख प्यार कह देना। बस—

तुम्हारा,
—जन्मका दुखिया 'जीजा'

[५]

एक अज्ञातप्रदेश
दिनका दोपहर

मा !

इस अभागिनी बेटीको माफ करना। इस बुढ़ापेमे तुम्हे जो कुछ दुःख मिल चुका था, उससे शायद भगवान् सन्तुष्ट नहीं हो सके। उन्हें कुछ मंजूर था। तुम्हारे बचे-खुचे सुखको मेरे ही हाथोंसे मिटवाने मे उन्हे बड़ा आनन्द आया होगा। मैं क्या करती? मेरा क्या वश?

बहिन और जीजा के साथ-साथ मेरी दुनीया भी खाकमें मिल गई—मेरे लिए भी संसारमे कुछ रह नहीं गया। जो चीज इतने दिनोंसे मै कलेजेके भीतर छिपाए बैठी थी, वह भी न-जाने किस राहसे उड़ गई। हाय! मेरे मनमे कितनी बड़ी-बड़ी आशाएँ थीं; कितने सुन्दर-सुन्दर अरमान थे; कितने खूबसूरत हौसले थे! सबके सब ध्वस्त हो गए! बिखर गए! मिट्टी में मिल गए!! आज उसी हौसलेकी समाधिपर बैठी-बैठी अपने दर्दकी तस्वीरें खींच रही हूँ, तरह-तरहकी किस्मतोंके रङ्ग-रूप का मिलान कर रही हूँ। आह! प्रत्येकमें कितनी गहरी भिन्नता है!

माँ! मेरी अभागिनी माँ! तुम्हारी यह बेटी योगिनी बन गई! अपने प्रियतमकी अलख जगाते जगाते जीवनका अवसान कर देगी। कह नहीं सकती, कभी रूप-रसका पान कर सकूँगी या नहीं। हाँ इतना जानती हूँ कि यहाँ नहीं तो किसी-नकिसी लोकमें वेमुझे मिलेगे अवश्य। आजतक उन्हे छोड़कर मैंने हृदयमें किसीका ध्यान नहीं किया, सोते-जागते, खाते-पीते, गाते-हँसते, सदैव उन्हींकी सूरत मेरी आँखों में फिरा करती है। ठहरो, देख लूँ वह लम्बे-लम्बे कदम बढ़ाए कौन आ रहा है? हां, वही तो हैं मां अच्छा, फिर लिखूँगी......!

मां मेरी दुखिया मां ! लो, अब मेरा अन्तिम प्रणाम स्वीकार कर लो। उस समय पत्र अधूरा रह गया था, अब इसे पूरा किए देती हूं। हां, उस समय 'वही' थे। कई दिनोंसे शायद उनके पेट-मे एक दाना भी नहीं पड़ा था। न-जानें इस जङ्गली राहसे किधर को जा रहे थे! मुझे दूरहीसे कुछ ऐसा जँचा कि वही हैं। मैं कलम पटककर उनके पास दौड़ गई मुझे देखते ही वे रुक गए और चकित होकर बोले—तुम हो लक्खो?

आह! उनकी वाणीमे कितनी कातर चीख थी! वे कितने दुर्बल और कमजोर हो गए थे। मेरी आँखोसे आँसू झरझरा गए! रुधे हुए स्वरमे बोली—प्राणेश!

"हाय! लक्खो! तुम्हारी भी यह दशा हो गई?"—कहकर वे उसी समय गिरपड़े और माँ, उन्होने फिर उठनेकी चेष्टा नहीं की!

मै रो नही सकी। रोती क्या करने? मेरे रोनेका मूल्य ही क्या रह गया? मैं तो अपने भाग्यको सराहने लगी, अब भी सराहती हूं कि वे मरे तो मेरी ही गोदीमे सिर रखकर। मुझसे बढ़कर और कौन सुहागिन होगी, जिसके सुहागकी सेजपर विच्छेदका कभी पैर ही नहीं पड़ सकता? अब इनसे मुझे कौन अलग कर सकता है?

सुनो, तुम इस समय रोना मत। मुझे आशीर्वाद देना। उस जन्मसे फिर हम दोनों तुम्हारे ही चरणों की सीमामे पलेंगे और तुम्हारा यह ऋण चुकाने का यत्न करेंगे। इस समय अब माफ करें! इन्हीं के साथ जा रही हूँ।

तुम्हारी सर्वस्वहीना बेटी,

—लक्खो

कृषक वधूके पत्र
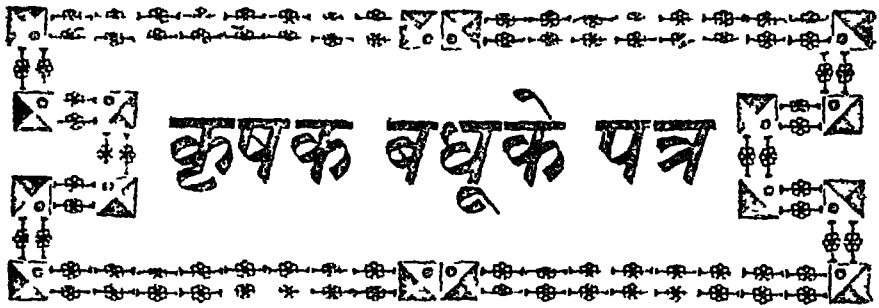
[लेखक—सीताराम वर्मा]

स्वामी,

मुझे तुम्हारे घर आये अभी कुछ ही दिन हुए। मै क्या जानती थी कि मेरा दुर्भाग्य नैहरसे ही मेरा पीछा कर रहा है। मेरे हाथोंमे मेंहदीकी लाली अभी ज्यों-की त्यों बनी हुई है। मेरी चूनरीके दाग अभी ज्यो-के त्यों वर्तमान हैं। घूँघट उठाकर अभी मैंने सासके चरणोंके सिवा किसीका मुँह भी नहीं देखा, परन्तु आज एक विरहिणीकी तरह मुझे तुम्हें खत लिखना पड रहा है।

मैं क्या जानती थी कि मेरे आते ही आते महाजनोंका इतना तकाजा शुरू हो जायगा और तुम्हें मेरी अभिलाषा पूरी किये बिना ही कलकत्ता भाग जाना पड़ेगा। यहाँकी हालत क्या लिखूँ, जबसे तुम गये 'मैनी' गायने दूध देना बन्द कर दिया है। वह तुम्हारे ही हाथ लगती थी, अब उसे दुहे कौन? पिताजी वृद्ध ही ठहरे। दूसरेको देखते ही वह झल्ला उठती है। माताजी कहती थीं, मैनीका दूध ही नमक और तेलका सहारा था; वह भी बन्द हो गया। खेती भी सूख रही है। मजदूर कहाँ मिलें, जब पिताजीके पास पैसे ही नही हैं; और बदलेपर कौन आवे, जब उनका बदला चुकानेवाला घरपर कोई हई नही है।

कल पड़ोसकी चाची आई थी, मेरा मुँह देखने। बडी हँसोड़ हैं। वह तुम्हारा नाम लेकर कहने लगीं, कैसे बाहर रहेगा ऐसी सुन्दर बहूको छोड़कर;

मैं तो लाजके मारे मर गई। मेरा वह सारा दिन तुम्हारे ही चिन्तनमें बीता। उस दिन, जब दिनभरकी रोई हुई अनजान जगहमें उदास और सुस्त पड़ी थी, तब तुम अचानक घरमें आये और अपने साथ न जानें कैसा जादू लाये, कितनी मदिरा लाये, यद्यपि इस तरहकी कोई भी चीज तुम्हारे साथ न थी, पर वह सब चीजें थी जिसे पाकर मैं आत्मविभोर हो उठी। अपना सर्वस्व अनायास तुम्हारे हाथो लुटा बैठी। बन गई बेदामकी गुलाम।

मैं क्या कहूँ। मेरी बुद्धि ठिकाने नहीं है। तुम्हारा प्रेम, मेरा अपने हृदयका उमङ्ग, चाहता है कि लिख दूँ, खत देखते ही वहाँसे चल दो। भोजन यदि वहाँ करना तो हाथ मैं यहाँ धुला दूँगी, पर जब यह ख्याल आता है कि निष्ठुर महाजन और जमीदार तुम्हें देखते ही तुम्हारे ऊपर पागल कुत्तेकी तरह टूट पड़ेंगे तो मनको ढाढ़स देती हूँ और कलेजेको थामकर कहती हूँ, अच्छा हुआ जो तुम घर छोड़कर चले गये।

सबसे अच्छा तो यह होता, हमलोग यह गाँव छोड़ देते और कलकत्ता या काशी कहीं चलकर मजदूरी करके पेट पालते। क्या हम-तुम मजदूरी करके माताजी और पिताजीके खाने-भरको भी न कमा सकते ?

अपना देश परित्याग करनेसे जो कष्ट होता है उसे मैं जानती हूँ; पर उस नगरमें रहकर क्या होगा जहाँ आये दिन हम गरीब पीटे जायें। हमें अपने घरमें एक साथ रोटी खाना तो दूर किनार उपवास भी न करने पायें।

मैं अपनी बात कहूँ। मुझे तो जंगलोंमें कॉटोपर चलना पड़े, उपवासपर उपवास करके यह प्राण गँवा देना पड़े, चाहे पेड़की खाल और पत्तोसे ही शरीर ढकना पड़े, पर हमे तुम्हारे साथ रहना पड़े और तुम्हारे चरणोंकी धूल झाड़नी पड़े।

तुम्हारी दासी

सुशीला

— — —

मेरे हृदयकी रानी, मेरे जीवनकी सहचरी,

तुम्हारी चिट्ठी मिली। सहसा तुम्हारा चन्द्रमासे भी अधिक सुन्दर मुख सामने प्रत्यक्ष दिखाई पड़ने लगा। उस दिन जब खाली खाटपर सोनेके कारण तुम्हारे वदनपर निशान पड़ आये थे और मैंने उन्हें गिन-गिनकर मिटाया था, तब तुमने कहा था, मेरे बदनमें इस तरहके अगणित निशान होते और तुम उन्हें इसी तरह सदा मिटाते रहते।

मैं जानता हूँ, मेरे घरमें एक जूनका खाना भी नहीं है। मेरे सरपर महाजनोंका भूत सदा सवार रहता है, जिसके कारण माता-पिता तथा प्राणों से भी अधिक प्यारी तुम्हें छोड़कर इस दूर देशमें निस्सहाय मारा-मारा फिर रहा हूं। पर मेरे घरमें है एक अनमोल रत्न, जिसके बदले सारी दुनियाकी दौलत भी मैं ठुकरा दूँगा। मेरे घरमें है एक देदीप्यमान निर्मल ज्योति जिससे मेरा हृदय और मेरा अन्धेरा घर सदा प्रकाशमान रहता है। वह और कोई नहीं, वह हो तुम! मेरे हृदयकी रानी।

मैंनी गाय अब तुम दूहो। तुम्हें देखकर जब देवता भी निहाल हो जाते हैं तब मैंनी तुम्हारा पुचकार पाकर गदगद हो उठेगी और दूधकी नदी बहा देगी।

तुम्हारी चिट्ठीपर मैं विचार कर रहा हूं। तुम्हारी राय सब माननेको तैयार हूँ। जहाँ मेरा कहीं ठीक-ठेकाना हुआ तुरत महाजनोंका रुपया भेजूंगा।

खेती खराब न हो, ऐसा कोई उपाय करना! अपना हाल मैं तुम्हें दूसरी बार लिखूँगा।

तुम्हारा पवित्र स्नेह हमारा और तुम्हारा सदा कल्याण करेगा।

तुम्हारा पति

कलकत्ता

प्रेमिकाकी चिट्ठीका उत्तर

[लेखक—कविवर 'चंचरीक']

(यह प्रेम-पत्र कपोल-कल्पित नहीं, बिल्कुल सच्चा है। इसकी लाइन २ मे कितनी सौम्यता और सरलता है। दोनों ओर से प्रेम-विभोर होने की मस्ती में तारीख लिखने की भूल हुई हैं। ऐसी भूलें तो प्रेमियों के लिए अनिवार्य हैं।—सं०)

काशी-कैलास

.. . . .. ३७

श्रीमान्,

प्रेम—

मै कुशल-क्षेमसे हूँ, आपकी कुशलता चाहती हूँ। आपका कृपा-पत्र भट्ट-जीके द्वारा उपलब्ध हुआ। और आज एक सुन्दर कविता भी श्री पाण्डेयजीके सुन्दर हाथो से मिली। क्षमा कीजियेगा, मैंने आपके पहले पत्र का उत्तर नहीं दिया। कुछ ऐसे ही कारणवश। इससे आप यह न समझियेगा कि मैं आपको भूल गई हूँ। भला आप कभी भूलनेवाले है? आपने तो मेरे हृदयमें साहित्यका सरोवर बहा दिया है। राष्ट्रीयताका शंख फूँक दिया है। इसके लिए सप्रेम मेरा धन्यवाद स्वीकार कीजिये।

आपके दर्शनोंकी इच्छा है। देखें, उसे ईश्वर कब पूरा करता है।

आपकी वही—

शैल।

———

गोरखपुर

... ..२७

स्नेहमयी श्रीमतीजी,

प्रेम—

[१]

प्रिय प्रेम-पत्र प्रेमीके हाथोंसे मैंने पाया ।
पाते ही हर्षित होकर छातीसे उसे लगाया ॥
पढते ही पढते पढते आनन्द लहर लहराई ।
मानो सहसा खोई निधि जिसने अपनी हो पाई ॥

[२]

है प्रेम पत्र वा किम्वा ? जादू है ! उच्चाटन है !
है यन्त्र अनोखा कोई ? वा तन्त्र-मन्त्र मारन है ?
पहचाना इन आँखोंने—कर-कमलोंका वह लिखना !
जागृत मे उसको पाकर, मैं देख रहा हू सपना !!

[३]

वह भूली नहीं हमें है नित प्रतिकी सारी बातें !
आशाकी आशामें ही कितनी बीती हैं रातें !!
संगीत-काव्य धारामें था गोता निसि-दिन लगना !
भागती अमा की रजनी, 'पूर्णिमा' हमेशा रहना ||

[४]

प्रेयसि ! मेरी लम्बी है जीवनकी करुण-कहानी ।
कुछ छिपी नहीं है तुमसे, जो ठान इधर है ठानी ॥
जपता रहता हूं निशि-दिन तेरे नामोंकी माला ।
पीनेको सदा तरसता, मस्तोंका मनहर प्याला ॥

[५]

इस जीवन-युगमें मैंने कितने धक्के हैं खाये।
अपने दिलकी भट्टीमें रहता हूँ आग छिपाये॥
मुझको विश्वास नहीं है मेरा संसार बसेगा।
मेरे सूखे आँगनमें क्या कभी मेह बरसेगा॥

[६]

जगमग वह ज्योति तुम्हारी आँखोंमें नित रहती है।
वेदना, कसक ले करके, अन्तरतरमें उठती है॥
जीमें आता है केवल, बस साथ तुम्हारे डोलूँ।
हो बन्द हृदय के भीतर रसकी वह टंकी खोलूँ॥

[७]

मैं रस-लोभी भौरा हूँ तुम मजु कमलिनी-रानी।
बस मुझे क्षमा दे देना, यदि कर बैठूँ नादानी॥
मेरी भी तो इच्छा है, दर्शन की प्रेम-मिलनकी।
चातक बन सदा तड़पता, है होश नही तनमनकी॥

[८]

प्रेयसि! बड़भागी है वह चिट्ठी का लानेवाला।
झूमता सदा मस्तीमे रसका बरसाने वाला।
कितना सुन्दर मनहर है वह प्यारा काकुलवाला।
उसने तो खूब निबाहा, बन करके 'दूत' निराला॥

[९]

अपनी यह जीवन नइया दी मैंने छोड़ लहरमे।
तेजीसे उछल रही है, पड़करके कठिन भँवर मे॥
बस केवल हाथोंमे है इसका पतवार तुम्हारे।
मझधार डुबा दो चाहे वा करदो इसे किनारे॥

[१०]

प्रेयसि, तुम सुखसे रहना, ईश्वर से यही विनय है !
है ध्येय हमारा पक्का तेरे ही लयमें लय है !!
अब अधिक नही लिख सकता, हूँ बन्द लेखनी करता
मतवाला पागल होकर पीड़ासे पीड़ित रहता !!

आपका भूला हुआ —
'चचरीक'

स्त्रीकी दर्द भरी चिट्ठियाँ

[लेखिका—श्रीमती सुभद्रा कुमारी चौहान]

शहरमे प्लेग था। लोग धड़ाधड़ मर रहे थे। बीमारी भी ऐसी थी—बीमार पड़ते ही लाश निकलते देरी न लगती। सबलोग शहर छोड़ छोड़कर बाहर बँगलोंमें या झोपड़े बनाकर रहनेके लिए भागने लगे। न चाहते हुए मुझे शहर छोड़ना पड़ा। मुझे यहाँसे वहाँ भागना अच्छा न लगता था। घरमे मैंने सबको प्लेगका टीका लगवा दिया था और शामको ५-४ बूँद प्लेगक्योर भी पिला दिया करता था। इच्छा थी कि शहरमें बना रहूँ। कौन यहाँसे भागनेकी झंझट करे। वैसे ही खर्चके मारे हैरान था। फिर और

लोगोंकी तरह मैं झोपड़ा बनाकर भी तो न रह सकता था। वकालतकी शानमें फरक न पड़ जाता ? रहना तो मुझे बँगलेपर ही पड़ेगा, और इन दिनों बँगलेपर ही पड़ेगा, और इन दिनों बँगलेके मालिकोंका दिमाग तो सातवें आसमानपर ही रहता है—१००), ७५) और ५०) से नीचे तो वह बात ही नही करते फिर आज-कलकी आमदनीमें किरायेका कम-से-कम ५०) माहवारी ही रख लो तो ४ महीनेमें २००) हो जाते हैं। मुश्किल ही समझो, पर करता क्या ? अपने प्रयत्नभर तो मैंने शहरमें ही रहे आनेकी कोशिश की, पर मेरी स्त्री न मानी। उसने, जबतक मैं मकान बदलकर बँगलेपर रहने न चला गया, मेरा खाना-पीना और सोना हराम कर दिया। उसकी एक जरा-सी बच्ची थी, जिसके लिए वह इतनी व्याकुल रहती—जैसे सारे शहर-भरका प्लेग उसीपर फट पड़ेगा।

× × × ×

कचहरीकी छुट्टी थी। मैं अपने आफिसवाले कमरेमें एक नौकरकी सहायतासे अपनी कानूनकी किताबें जमा रहा था। कमरेमें कई आलमारियाँ थी। मैं उन्हें साफ करवाके वहाँ अपनी पुस्तकें और अन्य वस्तुएँ तरतीबवार रखवा रहा था। उन आलमारियोंसे रद्दी कागजोंके साथ एक लिफाफा भी वजनमें जरा भारी होनेके कारण खटसे नीचे गिर पड़ा। मैंने उसे गिरते देखा, किन्तु उदासीन भावसे फिर अपने काममे लग गया। मैं कमरेसे बाहर जाने लगा—लिफाफा फिर मेरे पैरोंसे टकराया, इस बार मैंने उसे उठा लिया, उठाकर देखा तो ऊपर किसीका भी पता तो न था, पर वह मजबूत डोरेसे कसके बाँधा गया था और गाँठके ऊपर चपडेसे सील लगी हुई थी। लिफाफेको उठाकर मैंने जेबमें रख लिया। दिनभर कार्यकी अधिकताके कारण मुझे उसकी याद ही न रही।

[२]

शामको जब मैं भोजन करके लेटा तो क्रम-क्रमसे दिन-भरकी घटनाओंपर विचार करने लगा। एकाएक मुझे उस लिफाफेकी याद आ गई। मैंने बिस्तर-

से उठकर जेबसे लिफाफा निकाला और कैंचीसे धागेको काटकर सवधानीसे खोला, देखा तो उसमें किसी स्त्रीके लिखे हुए कुछ पत्र थे। उत्सुकता और बढी। मैंने पत्रोंको तारीखवार पढ़ना आरम्भ किया। पहला पत्र इस प्रकार था।

शान्ति-सरोवर
१।६।३१

मेरे देवता !

मुझे मालूम है कि आप मुझसे नाराज हैं। थोड़ा भी नहीं वहुत अधिक। यहाँतक कि आप दो अक्षर लिखकर अपना कुशल-समाचार देना भी उचित नहीं समझते। आपकी इस नाराजीका कारण भो मुझसे छिपा नहीं है।

मैं ही जानती हूँ कि किन परिस्थितियोंमें पड़कर मैं आपकी आज्ञाका उल्लंघन कर रही हूँ। यदि आप मेरे स्थानपर होते तो आप भी वही करते जो मैं करती हूँ।

अन्तमें आपसे यही निवेदन करती हूँ कि आप मुझसे नाराज न हो। अपने कुशल समाचारका पत्र भेजकर अनुगृहीत करें।

आपकी ही —
प्रमीला

पत्र २

शान्ति-सरोवर
१०।६।३१

मेरे सर्वस्व !

उसदिन पत्र भेजकर कई दिनो तक उत्तरकी प्रतिक्षा करती रही, किन्तु आज तक आपका एक भी पत्र नहीं मिला। उत्सुक नेत्रों से रोज पोस्टमैनकी राह देखती हूं। वह आता है और मेरे दरवाजे की तरफ बिना ही मुड़े हुए चला जाता है। सबके पास चिट्ठियाँ आती हैं परन्तु मेरे पत्थरके देवता !

आप न पसीजे। आपके पत्र एक भी न आये, न-जानें कितने तरह के विचार आपके दिमॉगमें आते और जाते होंगे, और आप न-जानें क्या क्या सोच सोच रहे होंगे। कदाचित् आप सोचते हो कि मैं बड़ी अकृतज्ञ, मूर्खा और अभिमाननिनी हूँ; जिन लोगोने मेरे साथ इतनी भलाई की, मुझे सर आँखों पर रक्खा, इन्हींके साथ मैं कृतघ्नता कर रही हूँ। यही न? किन्तु मैं क्या करूँ? मै परवश हूँ। पत्रमें कुछ लिख नहीं सकती। यदि आप कभी मुझसे मिलने का कष्ट करेंगे, अपने चरणों के दर्शन का सौभाग्य देंगे, तब मैं आपके चरणों पर सर रखकर आपको समझा दूँगी—आपको बतला दूँगी कि मैं अपराधिनी नही हूँ; तब आप जान सकेंगे कि मैं कितनी विवश और कितनी निरुपाय हूँ। नाराज तो उसीसे हुआ जाता है जो नाराजी सह सके। समय पाकर चरणों पर सर रखकर अपने अपराधोको क्षमा करवा सके। किन्तु आप नाराज हैं? मुझसे! जो न-जानें कितने मील की दूरीपर है। जो हर प्रकारसे विवश है, जिसे आपको छूनेतकका अधिकार नहीं, जो केवल आपकी कृपादृष्टि को भिखारिणी है। आह! यदि आप मेरी विवशताका कुछ भी अनुभव करते .

आप मुझसे हँसकर बात करते है। मैं हँस देती हूँ, अपनेको धन्य समझती हूँ। कलसे आप मुझसे बात ही न करना चाहे तो मै आपका क्या कर सकती हूँ? मुझे क्या अधिकार है सिवा इसके कि कलेजेपर पत्थर पर रखकर, सब चुपचाप सह लूँ। मैं खुलकर रो भी तो नही सकती। मुझे इतना भी तो अधिकार नहीं है। आपने नाराज होकर पत्र लिखना बन्द कर दिया है, कल यदि आपको मेरी शक्लसे भी नफरत हो जाय तो भला सिवा रोनेके मेरे पास और क्या बच रहेगा। मुझ सरीखी तो आपके घर चार दासियाँ होंगी। किंतु मेरा दुनिया मे कौन है? मैं तो घर-बाहरकी ठुकराई अभागिनी अबला हूँ। आपने दया करके मुझे सम्मान, आदर और अपने हृदयमें आश्रय दिया है। उसे इस निर्दयतासे न छीनिये। एक बार मुझसे मिल लीजिए। इसके

बाद जैसी आपकी धारणा हो वैसा कीजिए। आप मुझे जिस दंडकी अधिकारिणी समझेंगे मैं उसे सहनने के लिए तैयार हूँ। यदि आप मुझे अपने चरणों से दूर कर देंगे तब भी मैं आपकी ही रहूँगी। समाजकी आँखोंमे नहीं, किन्तु अपनी और परमात्माकी आँखोंमें! आप मुझे भले ही अपनी न समझें, परन्तु मैं तो आ जीवन आपको देवताकी तरह पूजती रहूँगी। मेरा अटल विश्वास है कि आप सबके होनेके बाद थोड़ेसे मेरे भी हैं कभी साल छः महीनेमें मिनट-दो-मिनटके लिए ही सही, मुझे भी आपके चरणोंकी सेवा करनेका अधिकार है।

उत्तरकी प्रतीक्षामें
अभागिनो प्रमीला

पत्र ३

शान्ति सरोवर
३०।६।३१

मेरे स्वामी?

यह तो हो ही नही सकता कि मेरे पत्र आपको मिलते ही न हों। क्षण-भरके लिए यह मान भी लिया कि मेरे पत्र आपको मिले ही नही। फिर भी क्या एक कार्डपर दो शब्द लिखकर आप मेरे पत्र न भेजनेका कारण न पूछ सकते थे? खैर, आप अपनी मनमानी कर लीजिये। मैं हूँ भी इसीके योग्य, कहा भी गया है— जैसा देव वैसी पूजा। आपने मुझे ठुकराकर, मेरी अवहेलना करके उचित ही किया है। इसमें मैं आपको दोष कैसे दूँ? जिसका जन्म ही अपमान, अवहेलना और अनादर सहनेके लिये हुआ हो, वह उससे अधिक अच्छी वस्तुकी आशा ही क्यों करे? मैं अपने आपको भूल गई थी। आज मेरी आँखे खुल गईं! मुझे अपनी थाह मिल गई। मेरी समझमें आ गया कि मैं कहाँ हूँ।

परमात्माने स्त्री-जातिके हृदयमे इतना विश्वास, इतनी कोमलता और इतना प्रेम शायद इसीलिये भरदिया है कि वह पग-पगपर ठुकराई जावें।

जिम देवताके चरणोंपर हम अपना सर्वस्व चढ़ाकर, केवल उसकी कृपा-दृष्टिकी भिखारिणी बनती हैं वही हमारी तरफ आँख उठाकर देखनेमें भी अपना अपमान समझता है। माना कि मैं समाजकी आँखोंमें आपकी कोई नही। किन्तु एक बार अपना हृदय तो टटोलिये, और सच बतलाइये, क्या मै आपकी कोई नही हूँ। समाजके सामने अग्निको साक्षी देकर हम विवाह-सूत्रमें अवश्य नहीं बँधे, किन्तु शिवजीकी मूर्तिके सामने भगवान शंकरको साक्षी बताकर क्या आपने मुझे नही अपनाया था? यह बात गलत तो नही? मैं जानती हूँ कि आप यदि मुझसे बिलकुल न बोलना चाहे, किसी तरहका भी सम्बन्ध न रखना चाहें तब भी मैं आपका कुछ नही कर सकती। यदि किसीसे कुछ कहने भी जाऊँ तो सिबा अपमान और तिरस्कारके मुझे क्या मिलेगा? आपको तो कोई कुछ भी न कहेगा, आप फिर भी समाजमे सिर ऊँचा करके बैठ सकेंगे। किन्तु मेरे लिये कौन-सा स्थान रहेगा? अभी एक रूखा-सूखा टुकड़ा खाकर जहाँ रातको सो रहती हूँ, फिर वहाँसे भी ठोकर मारकर निकाल दी जाऊँगी, और उसके बाद गली-गलीकी भिखारिन बन जानेके अतिरिक्त मेरे पास दूसरा क्या साधन बच रहेगा? सम्भव है आप आज मुझे दुराचारिणी या पापिनी समझते हो, और इसीलिए बहुत सोच-विचारके बाद आपने मुझसे सम्बन्ध-त्यागमें ही कुशलता समझी हो, और पत्र लिखना बन्द कर दिया हो।

खैर, आप मुझे कुछ भी समझें, किन्तु ऊपरसे परमात्मा देखता है कि मैं क्या हूँ? दुराचारिणी हूँ, या नही पापिनी हूँ या क्या? इसका साक्षी तो ईश्वर ही है, मैं अपने मुँहसे अपनी सफ़ाई क्या दूँ? अब केवल यही प्रार्थना है कि मुझे क्षमा करना, मेरी त्रुटियोंपर ध्यान न देना; और कृपाकर मेरे पत्रका उत्तर भी न देना। क्योंकि अब आपका पत्र पढनेके लिये, शायद मैं संसार मे भी न रहूँ।

अभागिनी —
प्रमिला

———

[३]

पत्र पढ़कर मैने एक ठंडी साँस ली और करवट बदली। देखा—न-जानें कबसे मेरी स्त्री सुशीला मेरे सिरहाने खड़ी है। मुझे देखते ही वह भागी, मैंने दौड़कर उसकी धोती पकड़ ली और उसे पलँगतक खींच लाया। उसे जबरन पलगपर बैठालकर मैने पूछा कि—'तुम भागी क्यों जा रही थीं?'

'तुम बडे कठोर हो' उसने मुँह फेरे-ही-फेरे उत्तर दिया—

'क्यों?' मैंने उसका मुँह अपनी तरफ करते हुए पूछा—

'मैं कठोर कैसे हूँ?'

अपनी आँखांके आँसू पोंछती हुई वह बोली—

'यदि तुम निभा नहीं सकते थे, तो उस बेचारीको इस रास्तेपर घसीटा ही क्यो?'

मुझे हँसी आ गई, हालाँ कि प्रमीलाके पत्रोंको पढ़नेके बाद मेरे हृदयमें भी एक प्रकारका दर्द-सा हो रहा था। मुझे स्त्रियोंकी असहायता, उनकी विवशता और उनके कष्टोंसे बड़ी तीव्र, मार्मिक पीड़ा हो रही थी। मैंने किंचित मुस्कराकर कहा—

'पगली! यह पत्र मेरे लिये नही लिखे गये।'

उसकी भवें तन गईं, बोली—

'तो भला छिपाते क्यो हो? क्या मैं बुरा मानती हूं? बुरा मानती हूँ! जरूर यदि मैं प्रमीलाके पत्र न पढ चुकी होती। पत्र पढनेके बाद तो मुझे उसपर क्रोधके बदले दया ही आती है। तुम यदि मुझे उसका पता बता दो तो मैं स्वयं उसे यहाँ लिवा लाऊँ। बेचारीका जीवन कितना दुखी है।'

मैंने कहा—'भला मैंने कभी तुमसे झूठ भी बोला है। यह पत्र मुझे आज इसी कोठरीमे रद्दी कागजोंमे मिले हैं। जिस लिफाफेमें ये बन्द थे वह भी यह है—देखो।' यह कहते हुए मैंने लिफाफा उठाकर सुशीलाके सामने रख दिया। सुशीलाने एक बार लिफाफेकी ओर, और फिर। मेरी ओर देखते हुए कहा—

'तुम्ही क्या, पुरुष मात्र ही कठोर होते है।'

संकुचित और विकसित प्रेम

[लेखक—छबीलेलाल गोस्वामि]

निम्नलिखित दोनो पत्रोंके पात्र—पति-पत्नी—अभी वर्तमान है और बीस वर्षसे उन्हीं उलझनोंमें दोनो हैं, जिनका जिक्र उभय पत्रोंमें है। हृदयके सच्चे उद्गार उपस्थित किये गये है।

प्रणाम,

विचार था कि तुम्हे कुछ न लिखूँ, पर जी नही माना; इसलिये टूटी-फूटी बातें लिख रही हूं। तुम जब यहाँ रहते हो, तब मुझे बड़ी ही झूँझल आती है। तुम कितनी ही सीधी बात कहो, पर मुझे उसमें उलझन और बुराई ही नजर आती है। मै बहुत प्रयत्न करती हूँ, किन्तु तुमसे मनका मेल नहीं ही बैठता। ऐसा क्यो होता है, यह कुछ भी समझमें नही आता। मै पहले दिनोकी याद करती हूँ, जब मैं एक छिन भी तुम्हें देखे बिना नहीं रह सकती थी और अब महीनो—बरसों—हो जाते हैं, पर कभी तुम्हारे लिये मन बेचैन नहीं होता। हाँ, यह सच है कि चाहती हूँ कि पहलेकी भाँति मैं तुम्हारे लिये तड़पूँ और जैसे पहले दिन-भरको भी कहीं तुम्हे नहीं जाने देती थी, वैसे ही अब भी अपनेसे दूर न होने दूँ, पर यह भाव कभी-कभी तभी उठता है, जब तुम दूर रहते हो। जब तुम्हारे आनेकी सूचना मिलती है, तब मनमें उठता है कि तुम क्यों आ रहे हो और वह इतनी जल्दी! भले ही तुम मुद्दत बाद आ रहे हो और आनेपर स्वागत करना तो दूर रहा, मै एक दो दिन सामने आनेमें हिचकती हूँ। ऐसा क्या है, समझमे नही आता।

मेरी बहन-भावज और सखियाँ मुझे बहुत-बहुत समझाती और तुम्हे निर्दोष बताती हैं। मैं उनकी बातोंसे हार जाती हूँ, पर मुझे उनपर बड़ी ही झूँझल आती है कि वे निगोडियाँ मुझसे अधिक तुम्हे क्यों चाहती हैं? वे सभी तुम्हारे गुन-गान करती और तुम्हे देवता कहती हैं। बस, इसीसे मैं जल उठती हूँ। उन्हें उचित था कि तुम्हें भला बुरा कहती और जो दोष तुममे मैं निकालती, उनका समर्थन करतीं, पर ऐसा न करके जिन बातोंके लिये मैं नाराज होती हूँ, उन्हींको वे अच्छा बताती हैं। यह भी कोई बात है! साथ ही, जब मैं उन लोगोंके दोष-गुणकी चर्चा करती हूँ, तब तुम उन्हीका पक्ष लेते हो। तुम्हे तो संसारमे कोई भी नारी बुरी नहीं दिखाई देती। सभीमें तुम लक्ष्मी, सरस्वती और दुर्गाका दर्शन पाते हो! यह भी कोई अच्छी बात है!! पहले तुम मुझमे ही संसारका दर्शन पाते थे, अब वह इतना फैल क्यों गया? यह मेरी समझहीमें नही आता!!!

हाँ एक बात और भी बड़ी ही उलझनकी है, वह यह कि तुम जिस बच्चेको पाते हो, उसीको प्यार करने लगते हो! चाहे वह किसीकी सन्तान हो। जान-पहचान हो या न हो। इसमें न तो तुम्हें नीच-ऊँचका ध्यान रहता है और न गरीब-अमीरका। सफरमें गाड़ीके डब्बेमे जो भी बच्चा मिल गया, वह तुम्हारे लिए हो गया। यह सब मुझे तो अच्छा नही लगता। मेरी पड़ोसनोंके बच्चे बीमार हों और तुम उन्हे लाद लादकर दवा कराने ले जाओ। जितना अपने बच्चोंका ध्यान नहीं, उससे अधिक परायोंके लिये तुम करने लगते हो, यह कैसे सहा जाय! पहले घरमें दिया बालकर, फिर मन्दिरमे जगाना चाहिये।

अपने बच्चे भूखे हैं, नगे हैं, बीमार हैं, कुछ परवा नहीं! किसीको सकटमें देखा, और उसके साथ हो लिये। कर्जा लेकर दूसरोंका भला करना और फिर उसके लिये मारे-मारे फिरना कहाँतक सहा जाय। कभी-कभी जीमे आता है कि इन लड़के-लड़कियोंकी गर्दन मरोड़ दूँ और आप भी कुछ

खा लूँ, तो तुम्हे फिर पूरी स्वतन्त्रता मिल जाय और जीभरके अपने मनकी कर लो ।

हाँ, तो तुम्हे कुछ थोड़ा-सा लिख दिया है ; बुरा तो लगेगा, पर बात भी तो सच है, क्यों न लिखती । हो सके तो उत्तर देना इसमें तो तुम्हारा कुछ खर्च न होगा ।

बच्चोंके बारेमें क्या लिखूँ ? उनसे तो तुम्हें प्रेम है नही । वह भी मनमें सोचते होगे कि कैसी जगह उनका जन्म हुआ ! आना तो कुछ उन सभोंके लिये लेते आना । मेरे लिये तो इस जन्ममें तुम कभी कुछ ला ही न सके ! मुझसे जो बन पड़ता है, मै इन सभोके लिये कर रही हूँ ।

दासी—

आशीर्वाद ।

पत्र मिला । तुमने जो कुछ लिखा, उसमें कोई भी बात ऐसी नही, जिसके लिए विरोध किया जाय अथवा तुम्हें उलाहना दिया जाय । सभी बातें सच थीं और उनके लिए मै प्रयत्न करके भी सफल नही हो सकता । जब पत्ता पेड़ से गिर जाता है, तब उसे, हवा के सहारे उड़ते ही रहना पड़ता है । मै भी पतझड़का पत्ता हूँ और उड़ानेवाले की इच्छासे उड़ता रहता हूँ । हृदय जिसके अधीन है या आत्मा जिसका अंश है, उसकी इच्छाके आगे मेरा कोई वश नहीं है ।

यह सच है कि तुम हृदयसे मेरे साथ प्रेम करती थी और अब भी करती हो । तुम चाहे स्वीकार न करो, यह मुझे विश्वास है कि तुम इच्छा न रहनेपर भी मुझसे उतना ही प्रेम करती हो जितना पहले करती थीं । हाँ, तुम्हारा प्रेम केन्द्रित है, इसीसे तुम्हें उलझन होती है । जो वस्तु सीमा-बद्ध होती है, उसे बिशाल होनेमें झंझट-ही-झंझट प्रतीत होता है ।

मेरा हृदय भी किसी समय केन्द्रित था, और उसकी सीमा तुम थी, पर तुम्हारे ही कारण वह विस्तृत हो गया। मैं चाहता हूँ कि तुम्हें भी अपने साथ ही बहा दूँ, पर तुम अपने केन्द्रपर स्थिर हो और यही उलझन है, जो तुम्हें परीशान कर रही है।

तुम चाहती हो कि मै केवल तुम्हे ही देखूँ और किसीको न देखूँ। इसमें मेरा कोई दोष नही। मैं तो तुम्हीको सबमें देखता हूँ। और सबमें तुम्हारी ही छटा पाता हूँ। तुम प्रकृति हो और तुम्हारी ही झलक मुझे सबमें दीख पडती हैं। मेरा दृष्टिकोण जब सीमित था, तब जो आनन्द एक केन्द्रपर स्थिर था, वह अब बन्धन रहित हो गया है। हाँ, पहले अपने-पराये-का भेद था, पर अब वह मिट गया है और अपने साथ ही वासनाको भी मिटाता गया है। तुम्हारे स्नेहमें मुझे वासना थी, पर वह जब केन्द्र तोड़कर प्राकृतिक हो गया, तब उसमे वासना भी बह गई। जो भी प्रकृतिने निर्माण किया है, वह आदरणीय और स्मरणीय होनेके साथ ही पूजनीय भी है।

बच्चे तो राष्ट्रकी विभूति होते हैं इनमें अपना-पराया कैसा! मै तो इन्हीं छोटे-छोटे शरीरवाले अबोध बच्चोमे विशाल आत्माका दर्शन पाता हूँ। मेरा वश चले तो मै तो ऐसा कर दूँ कि इस सृष्टिमे सभी बच्चे ही रहें। कोई भी बड़ा न हो। ऐसी स्थितिमें अपने-परायेका प्रश्न ही नहीं उठता और सच तो यह है कि जैसे समुद्रसे लहर अलग नहीं, वैसे ही ये बच्चे भी अलग-अलग नहीं। देखनेमे ये पृथक प्रतीत होते हों पर वास्तवमे ये सब हैं तो उसी एक हीके अंश। इन सभीके भीतरसे वही तो झाँक रहा है। जल जैसे पात्रमें रक्खा जाता है, वैसी ही सूरतका बन जाता है; पर सच तो यह है कि पानी-की कोई शक्ल ही नहीं होती। इसी तरह ये बच्चे भी देखनेमे भिन्न पर यथार्थमे एक ही हैं। अब तुम्हीं न्याय करो कि इसमे मेरा कितना अपराध है।

कोई किसीकी सहायता या सेवा कैसे कर सकता है, जब कोईका प्रश्न ही नहीं रहता। जब अपना बिरानाका सवाल हो, तब तो परमार्थकी बात उठे; पर

जहाँ, सभी अपना हो, वहाँ तो जो कुछ किया जाय, सब कर्तव्य ही हो जाता है

आशा है, तुम इन बातोंके साथ सहमत होनेका प्रयत्न करोगी।

आत्माको केन्द्रित करनेकी आवश्यकता होती है, पर जब वह केन्द्रपर स्थिर हो जाय, तब वह स्वतः विशालता को प्राप्त हो जाता है। मैं चाहता हूँ कि तु इसे समझो और विकसित रूपसे इस विश्वमें अपनेको मिला दो। दूर रहने पर भी मेरा आत्मा तो तुमसे पृथक है नहीं। मैं अपने आत्माको पूर्ण समझता हूँ, क्योंकि वह तुम्हारे आत्मासे मिलकर पूर्णताको पहुँचा है। और इसी पूर्णतामें अपने साथ ही तुम्हें भी पूर्णत्वकी ओर ले चलना चाहता हूँ।

बच्चोंको प्यार।

तुम्हारा ही—
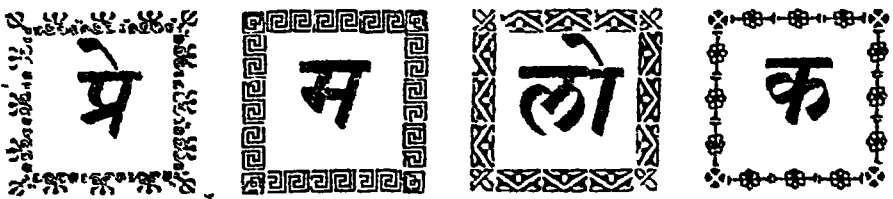
[लेखक—सूर्यबली सिंह]

(काल्पनिक पत्र)

गुदौलिया,
बनारस।

प्यारे

पत्र मिला प्रसन्नता हुई। प्रेमसे प्रेरित होकर आपका यह लिखना कि मैं आपको भूल-सी गई हूँ, इसका उत्तर हृदयपर हाथ रखकर पहले अपने मनसे पूछिये और फिर हृदयसे हृदय, और आँखोंसे [illegible] मिल कर [illegible] उनमें घुसकर देखिये कि मैं आपको भूली हूँ [illegible] प्रेमकी

वेदी पर सजाकर रखा है। अस्तु, हम दोनोंमें भेद केवल इतना है कि आप एम० ए० पास करके निश्चिन्त होकर रिसर्चमें लगे हैं और मैं बी० ए० पास करनेकी चिन्तामें उलझी हुई हूँ। इसपर भी अगर आप यह खयाल करें कि मैं आपको भूली हुई हूँ तो मुझे किसी कवि का नीचे लिखकर सन्तोष कर लेना होगा।

तुझमें मैं और मुझमें तू आँखें मिलाकर देख ले।
और गर देखे न तू तो मुझ पै है इल्ज़ाम क्या॥

इस बार एक बहुत मज़ेकी बात आपने लिखी है। वह यह कि मुझे रोनी सूरत बनाने का निष्फल प्रयत्न आपने किया है। ज्ञात होता है कि आपको किसी प्रकार यह मालूम हो गया है कि मैं आज-कल रोनी शक्लोंका एक अल्बम् तैयार कर रही हूँ। इसलिए यह फिकरा मुझपर कैसा है! ध्यान रहे कि रोतेको हँसानेवाली रोनी सूरतें मैंने आपके हँसानेके लिए ही एकत्रित की हैं, जिन्हे गर्मियों की छुट्टी में आपके आनेपर दिखाकर हँसाऊँगी। सच मानिये, आप अपनी शक्ल देखकर, हँसी के मारे लोट-पोट हो जायेंगे। इस पत्रमें मुझे अधिक लिखना था, अतः आपकी मीठी चुटकियोंका कहाँ तकउत्तर दूँ, यह बात पत्र लिखते समय मैं सोच रही थी। इतनेमें एक पुराना शेर मुझे याद आ गया, जिसे लिखे देती हूँ। इसीमें आप मेरा उत्तर कृपया समझ लें।

यूँ तो ऐ सय्याद आज़ादीमें हैं लाखों मज़े।
दामके नीचे फड़कनेका तमाशा और है॥

ये तो हुई आपके पत्रकी बातें, अब मतलबकी बात सुनिये। आप जानते ही हैं कि आजकल नवशिक्षितोंमें प्रेमके सम्बन्धमें काफी दिलचस्पी है। कालेज डिबेटिंग सोसाइटीमें इसी विषय पर अगले मास वादानुवाद होगा। कम्बख्ती

की मार, प्रेमपर निबन्ध लिखनेके लिए आग्रह-पूर्वक मुझसे भी कहा गया है। घबड़ा रही हूं कि प्रेम ऐसे गहन विषयपर मैं क्या लिख सकूँगी। जो भी हो, लिखना तो पड़ेगा ही। यह संतोपकी बात है कि आपके पत्रोंमें प्रेमके सम्बन्धमें कुछ-न-कुछ चर्चा रहनेसे उनसे मुझे इस अवसरपर मदद मिल जायगी, फिर भी मुझे अपने निबन्धके लिये आपकी सहायताकी आवश्यकता है।

किसी पत्रमें आपने लिखा था कि प्रेमकी खोज करनेवालोंने प्रकृति (Matter) मे लगाये गये प्रेमको पार्थिव (इश्केमजाज़ी) और पुरुष (Force) में लगाये गये प्रेमको पारमार्थिक (इश्के-हकीकी) माना है। और जिस प्रकार कि विद्यार्थी को आरम्भमें स्थूल और बादमें सूक्ष्म बातों का ज्ञान कराया जाता है, उसी प्रकार पारमार्थिक प्रेमको समझनेके लिये पहले पार्थिव प्रेमको समझ लेना ज़रूरी है! मै चाहती हूँ कि इस सम्बन्धमें आप कुछ और अधिक प्रकाश डालनेके साथ-साथ नीचे लिखी मेरी शकाओ को भी कृपया दूर करें, ताकि मुझे अपने निबन्धमे सहायता मिल सके।

कहा जाता है कि विषयोमें जो सुख है वह इन्द्रियोंका है, प्रेमका नहीं। इस इन्द्रिय-सुखमें मनुष्य क्या, पशु-पक्षी तक सभी लिप्त हैं। भोग वास्तवमे पशुओ का धर्म है, इसीलिये उन्हें भोग-योनि माना गया है, किन्तु मनुष्य भोग में गति रखनेके अतिरिक्त कर्ममें भी गति रखता है और इसके द्वारा वह अपने को पशुसे मनुष्य बना सकता है। इसीलिए मनुष्यको कर्मयोनि माना गया है। भोगमें लीन मनुष्य आकृतिमें तो मनुष्य है, पर स्वभावमें पशु। किसी कवि ने कहा है—

क्या हँसी आती है मुझको हज़रते इन्सान पर।
काम बद तो ख़ुद करें लानत करें शैतानपर॥

पशु-स्वभाव रखनेवाला मनुष्य भोगको ही प्रेम समझता है। उन्नत-हृदय मनुष्य प्रकृति-निर्मित सुन्दर एवं सुकुमार शरीरोंका स्पर्श उनके आलिङ्गन

और चुम्बनको प्रेम मानकर भोग मे प्रेमको अलग करता है। ध्यान रहे कि जिस प्रकार भोग मूत्र-इन्द्रियका विषय है उसी प्रकार स्पर्श, आलिङ्गन, चुम्बन आदि भी अन्य इन्द्रियोंके विषय हैं। तो फिर बताइये कि प्रेम आप किसे कहते हैं और उसका आनन्द क्या है?

विस्तार-भयसे अधिक नहीं लिखती। आशा है, आप मेरे अभिप्रायको अच्छी तरह समझ गये होंगे। किसी कविके नीचे लिखे शेरको ध्यानमे रख इस पत्रका उत्तर अति शीघ्र देने की कृपा करें।

उडा पतङ्ग मुहब्बतका चर्खमें भी दूर।
*खिरदकी डोरको अब छोड दीजिये तो सही॥

आशा है, आप प्रसन्न हैं।

आपकी प्यारी,
स्नेहलता।

अमीनाबाद,

प्रिये,

प्रेममे सराबोर तुम्हारा पत्र मिला जिसे पढ़कर मन प्रफुल्लित हुआ। कहना न होगा कि तुम्हारे पत्रोंमे कुछ ऐसी छेड़छाड़ रहती है जो इतनी दूर होनेपर भी मुझे गुदगुदाने लगती है, जिससे मैं कभी-कभी तंग-सा आ जाता हू। किन्तु इस गुदगुदीमे तुम्हारे प्रेमकी झलक मेरे हृदयमें प्रतिबिम्बित होकर तुम्हारे सुन्दर रूपको आँखोंके सामने खड़ा कर देती है। इस प्रकार हम दोनों मानसिक संसारमें मिल लेते हैं और इस मिलनमे प्रवाहित मधुर रसपान करके, मन, मतवाला होकर उस प्रेम-स्रोतको ढूँढने लगता है, जिसके रसपानसे प्रेमके पुजारी अमर हुए और प्रेम-देवता बनकर प्रेम-मार्गमें भटकने वाले यात्रियोंको ज्योति प्रदान करते हुए उनके हृदयाकाशमें अमृत बर्साते रहते हैं।

* खरद=बुद्धि।

यह मानी हुई बात है कि प्रेम मतवाला होता है और उसकी मादकताको सँभालना मुझ ऐसे मरीज़े लाइलाजके लिये बहुत कठिन है। अस्तु, तुम्हारा पत्र मिलनेके थोड़ी देर बाद तुम्हारे प्रेमपाशमे बँधा हुआ बिस्तरपर जा लेटा। मस्तीमें तो था ही, आँख लगनेपर देखता क्या हूँ कि मैं तेजीसे मस्ती के नशेमे हवाके घोड़ेपर उड़ रहा हूँ और उड़ते-उड़ते प्रेम-लोककी ओर जा रहा हूँ। मार्गमें मनको लुभानेवाली सुन्दर-सुन्दर आकृतियाँ मिलने लगीं। पहले तो स्कूलोंके सुन्दर और सुकुमार लड़के सिगरेटके धुएँसे कोमल कलेजे को छलनी बनाते हुए प्रेम-लोकका रास्ता दर्याफ्त करते दिखाई दिये, इसके बाद नाविल हाथमें लिये और ज़नानी शक्ल बनाये कालेजके कुछ विद्यार्थी सिराज़ कविको नज़्मका नीचे लिखा टुकड़ा गाते हुए मिले।

वह अजब घड़ी थी कि जिस घडी, लिया दर्स नुसख़ाये इश्कका।
कि किताबे अक्लकी ताक पै, जो धरी थी यूँ ही धरी रही॥

आगे बढ़नेपर कुछ कालेज-गर्ल्स अपने-अपने प्रेमियोंकी फोटो लिये मिलीं। नीचे लिखा नज़ीर की नज़्मका टुकड़ा मधुर स्वरसे कोरसमे गा रही थी।

काँटा किसीके मत लगा, गो मिस्ले-गुल फूला है तू।
वह तेरे हक़मे तीर है, किस बातपर भूला है तू॥

इतनेमें देखा कि किसी सिनेमा कम्पनी ओरसे तीरे नज़र, तर्ज़े अदा, हुस्नका नज़ारा, दर्दे-दिल ज़ख़्मी जिगर, चमनकी चिड़िया, नख़रोंमें गरम मसाला तथा तथा बेवफ़ा माशूक़ नामके ट्रैक्ट बाँटे जा रहे थे।

इसके बाद एक रिटायर्ड स्काउट मास्टर भी दिखाई दिये जो "सौन्दर्यो-पासक" नामक पुस्तककी प्रतियाँ बेच रहे थे। साथमें स्काउटों तथा गर्ल्स गाइडके कुछ फोटो भी बिक्रीके लिये थे। एक दो मिनटका अन्तर देकर स्काउट मास्टर साहेब प्रेमके आवेशमें आकर नीचे लिखा चलतू शेर गा उठते थे।

हम आह भी करते, तो हो जाते हैं बदनाम फिर नज़र आने
वो क़त्ल भी करते हैं, तो चर्चा नही होता ॥

कहना न होगा कि पासहीमें एक साहित्य-सेवी भी बाल बढाये खद्दरके कुरता और फतुई पहने, जिसकी जेबमें फाउन्टेन पेन खुशी थी, हाथमें डंडा लिये अकड़ रहे थे। इनकी हुलियामे विशेषता यह थी कि उनकी चिम्धी आँखोंकी सरपरस्त भौहोंके बीच छोटी काली बिन्दी थी। एक आँखका चश्मा, जो काले डोरेमें बँधा हुआ गलेमें पडा था, हाथसे अपनी बाँई आँखके सामने लगाकर बातें करते थे। साहित्य-सेवी महाशयके पीछे असली और नकली कोकशास्त्रके मन चले सोल एजेन्ट भी मौजूद थे, जो प्रेम-मार्ग यात्रियोंको बनारसीके ख़यालका टुकड़ा सुनाकर उत्साहित करते थे।

इश्क़में जी जाना हमने, समझा यही जी जाना है।
जाना जानाके दरपर, जान वेचकर जाना है ॥

यह देख साहित्य-सेवी महाशय 'सत्यं शिवं सुन्दरं' की आवाज़ लगाते हुए सोल एजेन्ट साहेबके पास पहुँचकर ऊँचे स्वर मे कहने लगे—महाशय, 'ब्यूटी कम्पिटीशन' नामक एक पुस्तक मैंने हालमें लिखी है, जिसपर मुझे पुरस्कार भी मिला है। स्कूल कालेजके होस्टलोंमें धड़ा-धड बिक रही है। इसकी एजेन्सी ले लेनेसे आपको बहुत लाभ होगा। ध्यान रहे, इसका प्रचार बढानेके लिये 'चना जोर गरम' की तर्ज़" जिसे साधारण लोग बहुत पसन्द करते है, अपने विज्ञापनमें मैंने नकल करली है जिसे ध्यान देकर सुनिये।

पुस्तक लिखी मैंने अर्जेन्ट, इसको पढ़ते स्टयूडेण्ट।
पीते सिगरेट एलीफेण्ट, पाते नम्बर सेण्ट परसेण्ट ॥

इस विज्ञापनके सुननेके बाद नशेने ज़ियादा जोर किया और मैं आगे बढ़ा। देखा कि चन्दा समेट एक लीडर महोदय भी एक हाथमें झोली, दूसरे हाथमें रसीद बही लिये हुए प्रेमियोंसे उनके प्यारे-प्यारियोंके सदक़ेमें दानके रूपमें धन वसूल कर रहे थे। प्रेमीगण अपने माशूक़ोंकी सलामतीके

लिए खुशीसे कुछ-न-कुछ रकम झोलीमें डाल देते। साथमें एक उपदेशकजी भी थे जो शुद्ध सात्विक प्रेमकी मीमांसा करके उसका महत्व प्रेमियोंको समझाते थे और जमानेकी रफतारके सम्बन्धमे उपदेशकी जोशमें आकर वेढबजीका नीचे लिखा शेर उगल पड़ते थे।

नयी तालीमसे यारो यही निकला नतीजा है।
चचाके सामने लेडी लिये लेटा भतीजा है॥

थोडा आगे बढ़नेपर मालूम हुआ कि जिन्दा दिल दो बूढे प्रोफेसर भी जा रहे हैं, जो बारी-बारी पारमार्थिक प्रेम-सम्बन्धी प्रसिद्ध कवियोंकी नीचे लिखी रचना बडे प्रेमसे गाते थे!

जिसका देखना ही मुहाल था,
न था जिसका नामोनिशा कही।
सो हर एक जर्रेमें इश्कने,
मुझे उसका जलवा दिखा दिया॥

गुलजारमें है गुलमें है, जंगलमें, बहरमे॥
सीनेमे, सरमें, दिलमें, जिगरमे खटक रहा॥

कुछ आगे और बढनेपर निर्मल प्रेमके पुजारियोंके कुछ मज़ार मिले। प्रेमके अवतार लैला-मजनू तथा शीरी-फ़रहादके मजारोंपर लोग-फूल-मालाएँ चढा रहे थे। इन मज़ारोंके पास एक सुन्दर संगमरमरके चबूतरेपर बहुत कीमती शामियानेके नीचे अपने प्यारेपर क़ुर्बान एक कमसिन नाज़नीकी क़ब्र थी। चबूतरेके ऊपरकी ओर जड़ी तख़्तीपर सोनेके अक्षरोंमें ज़हरे इश्कके ये शब्द लिखे हुए थे।

तमाशा देख लो लोगों, ये इश्के-बाज़ोकी हकीकतका।
शहीदे नाज़ है, पढते चलो कलमा सआदतका॥

इस नाज़नीकी क़ब्रपर उसके बलिदानके लिये प्रेमके आँसू बहानेकी रस्म

अदा करके जब मैं आगे बढा तो तरह-तरहके हुस्नके नज़ारे फिर नज़र आने लगे जिनके सौन्दर्यको देख मैने अपनेको धन्य माना ।

मनोहर रूप-रंगवाली हावभावपूर्ण एवं कटाक्षयुक्त सुकुमारियाँ मिलने लगीं । इन चन्द्रवदनी चचलांगियोकी आकृतियाँ अत्यन्त सुन्दर, सुहावनी, शीतल और सुखद थी । इनके मुख-मण्डलसे निकली सुन्दरताकी किरणें ज्योतिके समान प्रतिविम्बित होकर उनके मुख-मण्डलको और भी अधिक सुन्दर बनाती थी । उनकी मधुर मुस्कानके समय सौन्दर्यका देवता एक क्षणके लिये अपना करश्मा दिखाकर ग़ायब हो जाता था ।

यद्यपि अबतक कोई रोकटोक न थी , किन्तु और आगे बढनेमें मैने समझा कि मै अनधिकार चेष्टा कर रहा हूं । इतनेहीमे पिछली सुन्दरियोंसे भी अधिक सुन्दर एक रमणीपर मेरी नजर पडी । मनको बहुत भाई । दिलमें आया कि इससे कुछ छेड-छाड करूँ परन्तुवह तुरन्त मेरे भावको समझ गई । ज्यो ही मैं बातचीतके लिये उसकी ओर बढा तो उसने डॉटकर कहा— सुन, गदी वासनाओका पुतला यहाँ किसी भी सुन्दरीको स्पर्श नहीं कर सकता । इन्द्रियोपासककी यहाॅ गुजर नही । सौन्दर्यके सुन्दर स्वरूपोको अपवित्र करनेवाला इन्द्रियलोलुप अब आगे प्रेमलोकमे प्रवेश नही कर सकता । अत वापस लौट । ध्यान रख, आगे बढा तो जहन्नुम रसीद होगा । यह सुन मैं बहुत डरा । मेरे पैर कॉपने लगे । शरीर भारी होने लगा । यहॉतक भारी हुआ कि फिर मैं उडनेके बदले नीचेकी ओर उतरने लगा और देखते-देखते धडामसे पृथ्वीपर आ गिरा और सारा नशा हिरन हो गया । भयकी घबडाहटसे ऑख खुल गई ।

ऑख खुलनेपर, प्रिये देखता क्या हूँ कि तुम्हारी फोटो लिये बिस्तरपर लेटा हूँ । इस स्वप्नका अनुसन्धान करनेपर ज्ञात हुआ कि तुम्हारे प्रेम की बरकतने मुझे प्रेम-लोकका रास्ता दिखाया , किन्तु मनकी मलिनताके कारण

प्रेमलोकके उस भागमें जहाँ प्रेमके देवता निवास करते हैं प्रवेश न कर पाया और इस प्रकार तुम्हारा प्रेम पानेके लिये वापस आ गया।

प्रिये, जिस प्रकार प्रकृति (Matter) और उसकी सुन्दर, सुकुमार और सुखद आकृतियो एवं उसके विचित्र चमत्कारोंमें लगाये गये प्रेमको पार्थिव प्रेम अर्थात् इश्के-मजाज़ी माना गया है, उसी प्रकार पुरुष (Force) जो प्रकृतिका आदि कारण और उसे सौन्दर्य प्रदान करनेवाला है और जिसमें कार्य उसीका आत्मरूप होकर छिपा रहता है और जो सुन्दरसे भी सुन्दर और प्रेम-स्वरूप है, उसमें लगाये गये प्रेमको पारमार्थिक प्रेम अर्थात् इश्के-हकीकी कहते है।

पारमार्थिक प्रेमका विषय इतना गम्भीर है कि इसका विशेष अध्ययन और मनन करनेपर भी बुद्धि वहाँतक पहुँचने नही पाती। मन पवित्र हो जानेपर ही बुद्धि इस विषयको यत्किंचित् समझनेमें समर्थ होती है। प्रेमका आदि अन्त नहीं। अत वह पूर्णरूपेण बुद्धिमें, जो समय, स्थान और परिस्थितियोंसे सीमित है, नही आ सकता।

पार्थिव प्रेमका पुजारी प्रकृतिमें और पारमार्थिक प्रेमका पुजारी पुरुषमें मनको लगाता है, जो प्रकृतिसे भी बढकर कही सुन्दर है। पुरुषके प्रेममें लीन मन निर्वाणपदको प्राप्त होता हुआ सौन्दर्य-जगत् और उसके प्रेमका स्वामी बनता है। यह प्रेमकी महिमा है देखो, एक कवि इस सम्बन्धमें क्या कहता है—

ढूँढा है उसको जिसने, उसे आनकर मिला।
अटका जो उसकी राहमें, उससे अटक रहा॥

प्रेम परमात्माकी अनन्त शक्ति है, जो तारोंकी जगमगाहट एवं सूर्यकी किरणोंके समान उससे भिन्न नहीं किन्तु उसीका रूप है। जिस प्रकार अग्निमें उष्णता, जलमें शीतलता है, उसी प्रकार परमात्मामे प्रेम है। और जिस तरह ज्वालामे अग्नि और कार्यमे कारण मौजूद है, उसी तरह प्रेममें परमात्मा है जिसे रसखान कवि इस प्रकार व्यक्त करते हैं—

प्रेम हरीको रूप है, वे हरि प्रेम स्वरूप।
एक होय दोमे लखे, ज्यों सूरजमे धूप ॥

परमात्मा प्रेम है। प्रेमसे भिन्न पदार्थ नहीं। वह प्रेममय और प्रेम-स्वरूप है। इसीलिये, वह प्रेमसे ही प्राप्त हो सकता है। इस प्रेम-स्वरूप प्यारेके प्रेमको प्राप्त करने और उसके अद्वितीय सौन्दर्यको देखनेके लिये; जो बुरकेमें छिपा हुआ है, स्वामी रामतीर्थ बतलाते हैं—

निगाहें ग़ौर रख कायम ज़रा बुरकाको ताके जा।
यह बुरका साफ उड़ता है, वह प्यारा नज़र आता है ॥

जिस प्रकार सूर्यकी किरणें समुद्रके जलको आकाशमे ले जाकर बादलका रूप देकर पृथ्वी पर बर्साती हैं, उसी प्रकार पारमार्थिक प्रेमसे पागल मन अपनी हृदयतंत्रीके तारों पर उनके अनहद नादके उन्मादमें नाचता, गाता, थिरकता और तरह-तरहके आह्लादोंके आनन्द का अनुभव करता हुआ उन्हीं तारों द्वारा जो प्रेम-लोकतक बराबर चले गये है और अन्त में अनन्तकी किरणोंके तारोमें जा मिले है, पहुँच कर उस प्यारसे मेल पाता है, जो प्रेम-मय और सुन्दरसे भी सुन्दर है। यही पारमार्थिक प्रेमके प्रेमीका परम पद है जिसे प्राप्त कर लेने पर उसके हृदयाकाशमें आनन्दरूपी-अमृत बरसता है, जिससे वह अमरताको प्राप्त होता है।

ये तो हुई किताबी कीड़ोकी बातें जिन्हें सासारिक प्रेमके परमाणु कीटाणुओंके रूपमें खाते रहते हैं किन्तु अपने राम तो मस्तोंके मज़हबके क़ायल है। कवि कहता है —

झगड़ा भी तह करो तुम, ऐ शेखेरिन्द अपना।
बेदीन है तो हम है, दीनदार हैं तो हम है ॥

तुम्हारा प्यारा,
प्रेम-स्वरूप।

[उत्तरार्द्ध]

गुदौलिया,

प्यारे, बनारस।

लम्बा चौड़ा आपका लिफ़ाफ़ा देखकर मैं समझती थी कि प्रेम के सभी अंगोंपर आपने पर्याप्त प्रकाश डाला होगा। पर उसे खोलनेपर मालूम हुआ कि प्रेमके अत्यन्त आवश्यकीय अंग—त्याग और बलिदान—को आपने प्रेमके प्रमादमे भुला दिया। आपके विस्तृत पत्रमे यद्यपि अनेक बातें मेरे मतलबकी हैं और प्रेम विषयक मेरे निबन्धको सुन्दर बनानेवाली है जिनके लिये मैं आपकी अत्यन्त आभारी हूँ, फिर भी अपने निबन्धको सर्वांगसुन्दर बनानेके लिये मैं त्याग और बलिदानके रहस्यको समझना चाहती हूँ। इसके तत्वको, आशा है, आप अपनी व्याख्या द्वारा समझानेकी कृपा करेंगे। किसी शायर-का यह कलाम याद रहे—

वही एक शोलह[१] है, तुरबत[२] भी है, और शमाएँ-तुरबत[३] भी।
मज़ा मरने का कुछ परवानहे—आतश[४] बजातक है।[५]

साथ ही स्वामी रामतीर्थजी महाराजका नीचे लिखा शेर भी ध्यानमें रहे।

---

१ ज्योति। २ कबर, मजार। ३ मज़ारका चिराग़। ४ अग्निकी ज्वाला पर जान देनेवाला पतंग। ५ मतलब यह है कि अग्निकी इस ज्योति पर मरनेका मज़ा उसीको मिल सकता है जिसका मन प्रेममे पतंग बन जाय।

बात यह है कि जब मैं प्रेम लोककी अपनी स्वप्नयात्रा में वहाँ की अनुपम सुन्दरी द्वारा इन्द्रियोपासक, गंदी वासनाओं का पुतला एवं सौन्दर्यके सुन्दर स्वरूपोंको अपवित्र करनेवाला सम्बोधित किया गया तथा प्रेमलोकके मार्गमें सीमोल्लंघन कर आगे बढनेके कारण डाँटा गया, तब मैं अत्यन्त भयभीत हो गया था और उक्त सुन्दरी की आँख से ओझल होनेपर उसी घबड़ाहटमें शरीर भारी हो जाने से, ऊपर की ओर उड़नेके बदले नीचे उतरने लगा तो कम्बख्तीकी मार हजरत इश्क एक हाथमें तसबीह, दूसरे में जहर का प्याला, गलेमें सेली और सरमे कफन बाँधे हुए मेरे रास्ते में आ खडे हुए और जहरका प्याला पीकर अमर होनेके लिये मुझमे आग्रह करने लगे मैंने कहा कि इस तरह मुझे न फुसलाइये। आपका सब हाल मैं जानता हूँ और पुस्तकोंमें भी पढ चुका हूँ। इसपर हजरत कडककर बोले कि दिल में कुफ्र और प्राणोंको प्यार करने वाला एवं चमड़ेके चमत्कारोंसे चकित होकर उसे चूमनेवाला मुझे नही जान सकता। इसके अलावा, अगर तू जहरके प्यालेमे अपनी प्यारी स्नेहलतासे अपने अटूट सम्बन्धमे एक दिल नहीं हो सकता और प्राणोंकी बलि देने से भागता है तो तेरे दिलमें मुहब्बतके बदले कुफ्र है। विचार करके देख ले और किसी हकीकी शायर के इस कलामको याद रख —

ग़ैर हक दिलमे जहाँ आया खयाल।
बुत खुदाके घरमें पैदा हो गया॥

अपनी कायरतापर विचार करनेपर मन ही मन मैं हयाके बोझसे इतना घबड़ाया कि धरती पैरोंसे निकलने लगी। दिलमें आया, जमीन फट जाय, मैं समा जाऊँ। किन्तु मेरी हयाने बेहयाईका जामा पहिनकर अपनी झेंप मिटा ली। मैदाने जंगमें मौतसे डरकर भगे हुए कायर सिपाहीकी भाँति मुर्दा होकर मैंने जिन्दा रहना चाहा। यह मानी हुई बात है कि [illegible] प्राण अधिक प्यारे होते है। अतः मनकी मलिनताने [illegible] [illegible]

उत्सर्ग न कर सका। अपने प्राणोंको मैं प्यार करता ही था, अतः उन्होंने भी मुझे न छोड़ा।

कहना न होगा कि मेरा आध्यात्मिक जीवन उसी क्षण समाप्त हो गया जब कि अपने प्राणोंकी कुर्बानीसे मैं भाग निकला, किन्तु अब अपनी इन्द्रियोंको जीवित रखनेके लिये इस संसारमें मुर्दा होकर भी जिन्दा हूँ। मेरी कमजोरीने मुझे प्रेममार्गसे भ्रष्ट तो ज़रूर किया किन्तु उसपर किये गये विचारने बलिदानके सिद्धान्तकी अनेक गुत्थियोंको सुलझा दिया। वेदमें वर्णित बलिदानका सिद्धान्त, जिसका समयके प्रभावसे कुछका कुछ रूपान्तर हो जाना सम्भव है, न समझ सकनेके कारण मैं उसपर हँसता था किन्तु अब उसीके लिये रोता हूँ। मनुष्यके कर्तव्यको निर्धारित करनेवाली संसार-प्रसिद्ध पुस्तक गीतामें भी इसी सिद्धान्त पर जोर दिया गया है, जिसे स्वामी रामतीर्थजी महाराज अपने शब्दोंमें इस प्रकार बतलाते है—

*लहूका दरया जो चीरते हैं, है तख़्त पाते वही हकीकी।
जला भी दो तुम तअल्लुकोंको, खड़े हैं रोम और गला रुके हैं॥
है मौत दुनियाँ में बस ग़नीमत, ख़रीदो इसको राहतके१ भाओ।
न करना चूँ तक यही है मज़हब, खड़े हैं रोम और गला रुके हैं॥
ठगोंको कपडे उतार दे दो, लुटा दो, असबाव मालोजर सब।
खुशीसे गर्दन२ पै तेग़ धर तब, खड़े हैं रोम और गला रुके है॥

ध्यान रहे कि त्याग और बलिदानका विचार ही मनुष्यको सन्मार्गपर लानेवाला है। वह चोरी इसलिये करता है कि धनके अभावमें लोप होनेवाले सुखोंका वह बलिदान नहीं कर सकता। झूठ इसलिये बोलता है कि सत्य बोलनेमें जिन सुखोंके दूर हो जानेकी सम्भावना है, उन्हें बलिदानकी वेदीपर नहीं चढा सकता। श्वान-समान आचरणसे इसलिये अपनेको गिराता है कि

* अर्जुनको दिया गया उपदेश। १ आराम। २ अहङ्कार अथवा ख़ुदीकी गर्दन।

इन्द्रियजनित सुखको वह बलि नही दे सकता। इसी प्रकार अन्य बातोंको भी समझ लीजिये। कहनेका तात्पर्य यह है कि जीवनको श्रेष्ठ और सफल बनानेके लिये त्याग और बलिदानकी पग-पग पर आवश्यकता है और उसके अभावमें खाना, पीना, मैथुनादि कर्म ही केवल रहते है, जो पशु-धर्म है। अत यह मानना होगा कि त्याग और बलिदानका अभाव ही मनुष्यको पशुत्व की ओर ले जानेवाला है।

यह बात लोग जानते ही है कि सबको एक समान दिल नहीं मिलता और उन दिलोमे भी किसी किसीमे प्रेम अपना घर करके चमकता है। प्रेमसे पूर्ण मन तो मस्तोंको ही मिलता है और उनमें भी विरले ही प्रेम केलिये बलिदान होते है।

लैलीको इश्के-दिलसे काम था, इसीलिये उसने कपडे नही रँगे और अपनी सत्तामें मजनूँको और मजनूँकी सत्तामें अपनेको देखा। कहा जाता है कि एक बार लैलीके पैरसे खून निकला देख उसकी सहेलियोंने लैलीसे खूनका कारण दर्याफ्त किया। लैलीने कहा, मालूम होता है, मजनूँके पैरमें चोट लगी है।

हीर अपने प्यारे रांझेकी तलाशमे आँसू बहाती हुई कूक-कूक कर पुकारती फिरी। शीरी अपने प्यारे फरहादके लिये शहीद हो गई। बुलबुल अपने प्यारे फूलके प्रेममें सर पटक पटककर मरता है। और पतंग दीपकमें जलकर जान देता है। सर पटक पटककर मरनेका मज़ा बुलबुल और दीपकमें जलकर जान देनेका मज़ा पतंग ही जानता है। सब नहीं जान सकते। जिस प्रकार कि विषयी ब्रह्मानन्दके सुखको नही अनुभव कर सकता, उसी प्रकार कि विषयी ब्रह्मानन्दके सुखको नही अनुभव कर सकता, उसी प्रकार मरनेके मज़ेको क़ुर्बान होनेवाला आशिक ही समझता है। इन्द्रियोंकी तृप्तिमे तृप्त एवं अपवित्र वासनाओंमे लिप्त मनुष्य इस मज़ेको नहीं जान सकता और जिसके सम्बन्धमे स्वामी रामतीर्थजी महाराज इस प्रकार कहते हैं, जिसे ध्यान देकर सुनिये।

मसूरसे पूछी किसीने, कूँचये-जानाँ १ की राह।
चुभ साफ दिलमें, राह बतलाती जुबाने दार२ है ॥*

गन्दी वासनायें निकालने के बाद हृदय पवित्र हो जानेपर जबतक उसमें त्यागके भाव उदय न हों, तब तक मनुष्य बलिदानके रहस्यको समझनेमें असमर्थ ठहरता है। इन्द्रिय-लोलुपता मनुष्यको स्वार्थकी ओर खींचती है और उसका अभाव मनुष्यको त्यागकी ओर ले जाना चाहता है। ध्यान रहे कि त्यागके बिना हृदयमें पवित्र या सच्चा प्रेम उदय नहीं हो सकता। देखिये, सच्चे प्रेमकी लगन को सफ़ंदर कवि इस प्रकार समझाते हैं।—

तुम्हारे आशिक, तुम्हीसे उल्फ़त,
तुम्हींको जानें तुम्हींको समझें।
सिवा तुम्हारे नहीं है मतलब,
जहानो—अहले जहाँसे हमको ॥

यह बात छिपी नहीं है कि भूतपूर्व राजराजेश्वर अष्टम एडवर्ड ने, थोड़ा ही समय हुआ, प्रेमके लिए संसारके सबसे बड़े राज्यको त्याग दिया। उनका यह अपूर्व त्याग प्रेमके इतिहास में उनकी कीर्तिको चिरस्थायी रक्खेगा और प्रेम-मार्गके यात्रियोंके हृदयमें ज्योति प्रदान करता हुआ उनको त्यागके लिए सर्वदा उत्साहित करता रहेगा।

यह मानी हुई बात है कि प्रेमके लिए, चाहे वह पवित्र हो या अपवित्र, बड़ेसे बड़ा त्याग मनुष्य कर डालता है। पार्थिव प्रेमका पुजारी जानता है कि जितना मजा अपने माशूक़को मेवा, अंगूर और रसगुल्ला आदि खिलानेमें उसे आता है, उतना स्वयं खानेमे नहीं आता। कचरकूट करने वाला पेटू

---

१ प्यारेकी गली का रास्ता। २ सूलीकी नोक।

* साफ दिलमें सूलीकी नोक चुभकर प्यारेकी गलीका रास्ता बतलाती है।

आशिक अपने खानेमें मजा लेता है। अपने माशूकको खिलाने में नहीं। अत त्याग न होनेसे इसे प्यारमें उतना मजा भी नहीं आ सकता, जितना कि खिला देनेवालेको आता है। कारण मजा तो त्यागमें। गलतीसे चमड़ेके चमत्कारों में मान लिगा गया है। अगर चमड़ेके चमत्कार में होता तो फिर प्रेममें त्याग और बलिदानकी आवश्यकता ही न रहती और उसके बिना ही लोग मजा लूटते और मंज़िले मकसूद तक पहुँच जाते और फिर कोई किसीपर कभी कुर्बान न हुआ होता। विषयी भी भले प्रकार जानता है कि बीर्यपात अर्थात् वीर्यके त्यागमें ही वह आनन्द का अनुभव करता है।

इश्के-मजाज़ी अर्थात् पार्थिव प्रेममें भी, देखा जाता है, लाशें फड़कती हैं और खूनसे रँगा जनज़ा निकलता है। अनेक फाँसीपर लटकते और जहर खाते हैं। और कुछ अपने माशूकके दर-पर पहुँचकर अपेने ही हाथ से अपने कलेजे में छूरा भोंककर मरते हैं। इश्के-हकीकी अर्थात् पारमार्थिक प्रेममें भी पागलपन फाका, तकलीफ और मौत देखी जाती है। ऐसी दशामें यह सिद्ध है कि मजा, त्याग और बलिदानही में है और अगर न होता तो फिर कोई किसीपर कुर्बान होकर कभी अपनी जान न देता। इसपर भी कोई कोई व्यक्ति कहेंगे कि उन्हे तो चमडेके चमत्कारोंमें ही मजा मालूम होता है। ऐसी दशामें अपने रामकी रायमें इस प्रवृत्तिको प्रेम न कहकर श्वान-प्रवृत्ति कहा जाना चाहिए और जिसके सम्बन्धमें फक्कड़ कवि इस प्रकार कहते हैं:—

कुत्ता-पंथी हैं जितने जहाँमें, मस्त हैं कामकी वेदनामें।
सुन्दर स्वरूपोंको करते हैं गन्दा, प्रेमकी आढमें पूरे शैतानी-बन्दा॥

अब रही कुछ भावुक हृदय रखने वालोंकी बात। जो दो बिछड़े हुए हृदयोंके प्रेमालिङ्गन में उसी प्रकार मजा लेते हैं, जिस प्रकार कि एक लोफर चित्रपट पर किये गये चुम्बन में। यह बतलाया जा चुका है

कि जिस प्रकार भोग जननेन्द्रियका विषय है उसी प्रकार स्पर्श, आलिङ्गन और चुम्बन आदि भी अन्य इन्द्रियोंके विषय हैं, अतः विषयकी वासना उनके हृदयस्थ होनेसे वे जिम्मेदारी से नहीं बच सकते। कारण मनुष्यके मनकी तरंगें ही उसके मनको चलानेवाली होती हैं। सुनिये, एक ज़िन्दादिल कवि इस सम्बन्धमें कितने अच्छे शब्दोंमें अपने विचार प्रकट करता है —

जन्नत परस्त जाहिर कब हक परस्त है।
हूरोंपर मर रहा है, शहवत परस्त है॥

कहना न होगा कि यह बहुत मजे की बात है कि हमारे कुछ मनचले लेखक और कवि भी कभी-कभी बिछड़े हुए प्रेमियोंका आलिंगन कराकर अपनी हवस मिटालिया करते हैं। फ़िसाना आज़ादमें ज़िक्र है कि मियाँ आजादने जब मखतबखानेका मुआइना किया और नुक्स निकाले तो उनमें एक नुक्स यह भी था कि हिलहिलकर पढना ऐब है, मगर कहे किससे ? मौलवी साहेब तो खुद झूमते है।

खैर, इस पचडेको जाने दीजिए, मतलबकी बात यह है कि त्याग बिना प्रेम नहीं, और प्रेम बिना बलिदान नही। बलिदान बिना यज्ञ नहीं। यज्ञके अभाव में मैथुनादि कर्म केवल पशुधर्म है। इसी पशुकी प्रेमयज्ञमें कुर्बानीकी आवश्यकता है और पूर्णाहुतिमें अपने आत्म-समर्पण की।

स्वामी विवेकानन्दजी महाराजने भी एक स्थलपर कहा है कि अपने आपको यज्ञका पशु समझो और तुम्हारा जन्म ही इसलिए हुआ है कि तुम अपनी माताके लिये कुर्बान किये जाओ। 'खाओ, पिओ, बच्चे पैदा करो'के सिद्धान्तका माननेवाला यज्ञके इस विधानको नहीं समझ सकता। इस विधानके रहस्यको प्रेममें लीन प्रेमयोगी ही समझ सकता है।

जिस प्रकार आत्माके दर्शन होनेमें मल, विक्षेप और आवरण बाधक होते हैं, उसी प्रकार इन्द्रिय एवं मनोविकार आध्यात्मिक जीवनकी सफलतामें प्रति-

बंधक हैं। इस बातको स्वामी रामतीर्थजी महाराजने अच्छे ढङ्गसे समझाया है जिसे उनके ही शब्दोंमें सुनिये :—

थीं मनके मन्दिरमें रक्स१ करती,
तरह तरहकी सी ख्वाहिशें मिल।
चिरागे-खाना२से जल गयीं सब,
खड़े हैं रोम और गला रुके है॥
गुलोंके बिस्तर पै ख्वाब ऐसा,
कि दिलमें दीदोंमें खार भर दे।
है सीना क्यों हाथसे गया दब,
खडे हैं रोम और गला रुके है॥

इन पंक्तियोंका अभिप्राय यह है कि मनरूपी मन्दिरमें जो तरह तरहकी ख्वाहिशें मिलकर नाच रही थीं, वे घरके दीपकसे ही आग लग जानेसे सब जल गईं। गुलोंके बिस्तरपर ऐसा खौफनाक ख्वाब आ रहा है कि दिलमें और आँखोंमें काँटे भर दे। अपने हाथसे, ऐ गुल, तेरा सीना क्यों दब गया कि जसके कारण ऐसा भयङ्कर स्वप्न आरहा है और रोमाच होता और गला रुकता है। मतलब यह है कि माशूकके बिस्तरपर लेटकर भी हमे अपने अध्यात्मिक जीवनकी पवित्रता बनाये रहनेके लिये इन्द्रिय-लोलुपता एवं उसकी वासनाका त्याग कर देना होगा, अगर वास्तवमें हम अपने माशूकको चाहते हैं और इन्द्रियोंकी तृप्ति नही चाहते। ध्यान रहे कि पवित्र प्रेममें सौन्दर्य बलिदानकी वेदी है, वासनाको तृप्ति करने की वेदी नहीं। इसीलिये उसका स्पर्शतक शुद्ध सात्विक प्रेमके लिये प्रेमयोगमें निंद्य समझा गया है। किसी तत्ववेत्ताने कहा भी है :—

Beauty is to be admired and not to be touched.

वेदमें तीन प्रकरण हैं, कर्म, उपासना और ज्ञानकाण्ड। यज्ञादिक कर्म-

१ नाचती। २ घरका चिराग, आत्माका प्रकाश।

काण्डमें सम्मिलित है। इन्द्रिय-लोलुपता एवं उसकी वासनाका प्रेममें बलिदान प्रेमयज्ञ कहलाता है। अज्ञानके परदेमे छिपे हुए हृदयाकाशस्थित सुन्दरसे भी सुन्दर प्रेमस्वरूप अपने प्यारेके प्रेमको प्राप्त करने और उसके अद्वितीय सौन्दर्यको देखनेके प्रयत्नको उपासना या प्रेमयोग कहते है। गुरु नानक महाराज इसके सम्बन्धमें यों समझाते हे :—

पुष्प मध्य जो बास बसत है, दर्पण माहि ज्यों छाई।
तैसे ही हर बसत निरन्तर, घटहीमें खोजो भाई॥

कर्मकाण्डके अनुष्ठानसे मल अर्थात् पाप दूर होते हैं और उपासनासे चित्तकी चंचलता अर्थात् विक्षेप मिटता है। इन दोनोंके दूर होनेपर अज्ञानका परदा जिसे आवरण कहते हैं, उठता है। तव यह प्रेमाभिलाषी जीव अपने प्यारेको पाता और उससे एक हृदय होकर अमर होता है। इसे निर्वाणपदको प्राप्त होना या प्रेमके प्रसाद (फ़ज़्ल) में प्रविष्ट होना कहते हैं, ज्ञानयोग भी कहते है। इस प्रकार प्रेमके इस प्रसादमें प्रविष्ट हो जानेपर वह सौन्दर्य ससार एव उसके प्रेमका स्वामी बनता है और तव हुस्नके कुल नज़ारे उसके इशारेपर नाचते हैं। ऐसी प्रेमकी महिमा है। यह मानी हुई बात है कि नदी-नाले समुद्रसे मिलकर समुद्र बनते है और जुज कुलसे मिलकर कुल बनती है। अत इस सम्बन्धमें अधिक तर्क-वितर्ककी आवश्यकता नही मालूम होती और इस बातको एक कवि इस प्रकार समझाता है—

मिटती है लहर जिस दम वह ही तो बहर[1] है।
हर चार सू[2] है शोला[3] मत देख तूर[4] में॥

और भी—

अपना हजाब[5] आप है, ए तू मियाँ नियाज़।
उठने से तेरे होता है, उठना हज़ाबका॥

---

१ समुद्र। २ तरफ। ३ अग्निकी ज्वाला। ४ अग्निका पहाड़ जहाँ हज़रत मूसाने अग्निकी ज्वाला देखी थी। ५ परदा।

इस स्थलपर यह बात भी ध्यान देने योग्य है कि प्रकृतिका सहारा लेकर भी मनुष्य प्रेमस्वरूप प्यारे तक पहुँच सकता है। क्योंकि प्रकृतिके सौन्दर्यमें भी तो वही उतरा है। जिनकी आँखें प्रकृति (Matter) के सौन्दर्यमें पुरुष (Force) को देखनेकी अभ्यासी है और जो हसीनोंके हुस्न और नाज़ोअदा-में ही नही किन्तु सर्वत्र उस कारणरूप अव्यक्त पुरुषको ही सदैव देखती हैं ऐसे प्रेमी जिनका मन सौन्दर्यके चमत्कारोंसे विचलित नहीं होता और जो जितेन्द्रिय हैं, प्रकृतिके द्वारा ही प्यारेको प्राप्त कर सकते हैं। इस प्रकारसे प्राप्त करनेके उपायको भक्तियोग कहा जा सकता है। देखिये, एक भक्त कवि प्रेमके आवेशमे अपने प्यारेको सम्बोधित कर कितने अच्छे शब्दोंमें प्रेमसे सराबोर अपने भावोंको व्यक्त करता है :—

तुझे देखें तो फिर औरोंको किन आँखोंसे हम देखें।
यह आँखें फूट जायें गर्चे इन आँखोंसे हम देखें॥

(५४) कवि इस प्रकार कहता है :—

हर एक गुल मे बू होके तूही बसा है,
सदाहाये-बुल-बुलमें तेरी नवा[१] है॥
चमन फ़ेज़े-कुदरत से तेरे हरा है,
बहारे-गुलिस्तां[२] में जल्वा तेरा है॥
मकाँ तेरा हर एक ऐ लामकां है।
निशां हर जगह तेरा ऐ बेनिशां॥
न खाली ज़िमीं है न खाली ज़मा[३] है,
कही तू निहा[४] है, कहीं तू अया[५] है॥

पवित्र और स्वच्छ मनमें उसकी वृत्तियाँ दर्पणके समान होती हैं, जिनके स्थिर होनेमें प्रेममय प्यारेसे मेल पा जानेपर अपना आनंद टपकता है, जिसे

१ गीत। २ बाग़की बहारमें। ३ काल। ४ छिपा हुआ। ५ ज़ाहिर।

विषय बाहरसे आया हुआ समझता है। जिस प्रकार स्थिर और निर्मल जलमें सूर्य अपने आप चमकता है, उसी प्रकार प्रेमयोगी अपनी लगन अर्थात् समाधिमें विषयोंके बिना ही अपने तपते हुए आनन्दका मजा लेता है।

अगर प्यास न होतो जल अच्छा नहीं लगता और भूख न होतो भोजनमें रुचि नहीं होती। विषयकी इच्छा या वासना न हो तो स्त्रीसे आनन्द नहीं मिलता। अगर आनन्द इन सबका सहज और स्वाभाविक गुण होता तो हर समय उनसे मिलता रहता। आनन्द तो अपने आश्रयमें है जो मन की वृत्तियोंके शान्त होनेमें प्रेमस्वरूप प्यारेसे मेल हो जाने पर मिलता है देखिए, स्वप्नमे मनुष्य स्त्री-सहवाससे उसी प्रकार तृप्त हो जाता है। वहाँ अपना ही खयाल होता है, स्त्री नहीं होती। अत. यह कैसे माना जाय कि 'बिना स्त्रीके अनन्द नहो मिल सकता।

स्त्री-द्वारा मिले हुए इस अनन्दको स्वामी रामतीर्थजी महाराज . . नका वर्णन करते हैं:—

अज़म[1] चुभती थी मुँहमें जब सगको,
खून लगता लजीज़ था सग[2] को।
मजा अपने लहू का आता था,
पर वह समझा मजा है हड्डी का॥
स्वर्गकी नेमते हों, दुन्यांकी,
हैं तो यह हड्डियाँ ही मुरदों की।
इनमें लज्जत जो तुमको आती है,
दर असल एक आत्माकी है॥

ध्यान रहे कि जितना अधिक मन का निग्रह होता है उतना अधिक आनन्द मिलता है। प्रेमयोगमें तो पूर्ण निरोध होकर प्रेमस्वरूप प्यारेसे

---

१ हड्डी। २ कुत्ता।

मिलाप होनेसे पूर्ण आनन्द मिलता है जिसका मजा प्रेमयोगी लेकर अमरत्व को प्राप्त होता है। यही प्रेमका आनन्द है। प्रेम और उसके आनन्द को एक प्रेमी कविने इस प्रकार अपने शब्दोंमें ढाला है —

जो दिलको तुमपर मिटा चुके हैं, मज़ाके-उल्फत उठा चुके है।
वह अपनी हस्ती मिटा चुके हैं, खुदाको खुदहीमे पा चुके हैं॥
न हमसे, प्यारे छुड़ाओ दामन, न देखो जागे-बहारो-रिज़वाँ१ ।
कब उनको प्यारे हैं हूरो-गिलमा,२ जो तुमको प्यारा बनाचुके है॥

इस सम्बन्ध में यह बात ध्यान देने योग्य है कि निर्मल हृदयमें ही निर्मल प्रेम अपना घर करके चमकता है और हृदय की पवित्रता ब्रह्मचर्य के पालनके बिना हो नहीं सकती। ऐसी दशामें यह मानना होगा कि ब्रह्मचर्य के अनुष्ठानके बिना मनुष्य प्रेमयोगका अधिकारी नहीं बन सकता। कहनेका तात्पर्य यह है कि पारमार्थिक प्रेमके लिए ब्रह्मचर्यका पालन अवश्य ही नहीं अपितु अनिवार्य है। जबतक कि अन्त करण से इन्द्रिय एवं मनोविकार की जड़ उखाड़कर न फेंक दी जाय, तबतक शुद्ध सात्विक प्रेम हृदय मे चमक नहीं सकता। कारण, मनमें प्रेम या विषयवासना ही रह सकती है, दोनों एक साथ नहीं रह सकते। अन्त करणकी पवित्रता को जरूरी बतलाते हुए आजाद कवि कहते हैं !

दिल साफ कर लिया है, दुनियाके मलसे जिसने।
वह देखता है दिलमें, दर्शन मुदाम३ तेरा॥
आज़ादको सिखा दो, प्रीतीकी राह अपनी।
जिससे अमर हो पीके अमृतका जाम तेरा॥

---

१ स्वर्ग, बिहिश्त। २ अप्सरायें और सुन्दर तथा सुकुमार दास। ३ हमेशा।

दूसरी बात यह भी ध्यान देने योग्य है कि इन्द्रिय, मन और प्राणसे अपने अहभावको हटाकर जबतक मनुष्य प्रेममें अपना अहंभाव नही रखता, उस समयतक अपने प्रेमस्वरूप प्यारेसे, जो प्रकृतिको सुन्दरता प्रदान करनेवाला और स्वयं सौन्दर्यस्वरूप है, मिलाप नहीं पा सकता। अहंभावको हटानेके सम्बन्धमें जफ़र कवि इस प्रकार कहते हैं —

दिया अपनी ख़ुदीको जो हमने उठा,
वह जो परदा सा बीचमें था न रहा।
रहे परदेमें अब न वह परदानिशीं,
कोई दूसरा उनके सिवा न रहा॥

दूसरा कवि व्यक्तित्वको मिटाकर प्रेममें लीन होनेके लिये इस प्रकार बतलाता है :—

तू को इतना मिटा कि तू न रहे। और तुझमें हुई की बू न रहे॥

जबतक प्रेमी प्रेममें अपनी खुदी अर्थात् अहंभाव नही रखता तबतक एकता नही होती और जबतक अभेदता न मिटे प्रेमस्वरूप प्यारेसे एक कैसे हो ? एक हो जानेपर यह प्रेमका पुजारी अनन्त प्रेममें लीन होकर उसके आनन्दका अनुभव करता हुआ अपने प्यारेसे कह उठता है, जिसे स्वामी रामतीर्थजी महाराजने अपने शब्दोंमे इस प्रकार बतलाया है :—

तारे कब रोशनी से न्यारे हैं। तुम हमारे हो, हम तुम्हारे हैं।

इस प्रकार यह प्रेमका पुजारी अनन्त प्रेममें लीन होकर अमर बनता है। और स्वयं प्रेमका रूप होकर अपने स्वरूपमें सर्वदा स्वतः स्थित रहता है। ऐसा प्रेमका महत्व प्रेमशास्त्रमे प्रवीण पंडित बतलाते हैं। प्रेम पवित्र है और पारमार्थिक उन्नतिका मूल कारण है। इन्द्रियोंके विषय और उनकी वासनामें प्रेमकी कल्पना कर उसकी पवित्रताको कलंकित करना है। देखिये, प्रेमके सम्बन्धमें एक प्रेमी कविके हृदयोद्गार याद रखने योग्य हैं :—

जिन प्रेम रस चाख्या नहीं, अमृत पिया तो क्या हुआ।
जिन इश्कमें सर ना दिया, जुग जुग जिया तो क्या हुआ॥
औरो नसीहत है करे, और खुद अमल करता नहीं!
दिलका कुफ़र टूटा नही, हाजी हुआ तो क्या हुआ॥ जिन०

देखी गुलिस्तां बोस्तां, मतलब न पाया शेख़ का।
सारी किताबां याद कर, हाफ़िज हुआ तो क्या हुआ॥ जिन०

जब तक पियाला प्रेमका पीकर मगन होता नहीं।
तार मंडल बाजते ज़ाहिर सुना तो क्या हुआ॥ जिन०

जब प्रेमके दरियावमें ग़रकाब यह होता नहीं।
गंगा-यमुन गोदावरीं नहाना फिरा तो क्या हुआ॥ जिन०

प्रीतमसे किंचित प्रेम नहीं, प्रीतम पुकारत दिन गया॥
मतलूब हासिल ना हुआ, रो रो मुआ तो क्या हुजा॥ जिन०

प्रिये, यह बतलाया जा चुका है कि परमात्मा प्रेमस्वरूप होने से प्रेमसे ही प्राप्त होता है और प्रेम उसकी अनन्त शक्ति है, जो नित्य और सर्व्वव्यापी होनेपर भी अपने मुख्य स्थान हृदयमें उसकी पवित्रता एवं सतोगुणकी प्रधानता होनेपर उसी तरह चमकती है, जैसे मुख स्वच्छ दर्पणमें और सूर्य तथा चन्द्र निर्मल जलमें। समस्त ब्रह्माण्डमें जहाँ कही जो कुछ भी वजूद या ख़यालमें सत् या असत् मौजूद है अथवा हो सकता है उसी प्रेमके भेद और रूपांतर हैं। सबका वही आधार है और समस्त चेष्टाएँ उसीकी सत्तामे होती हैं। इसीलिए सबकी जान अर्थात् आत्मा प्रेमको कहा गया है। जो कुछ भिन्नता दिखाई देती है, वह केवल नाम और रूपमें है।

बहारे गुलशन और हसीनोंके ही नहीं किन्तु सर्वत्र हुस्नमें उसी प्रेम स्वरूप प्यारे का जल्वा है। प्रेमसे पूर्ण प्रेमियों के हृदयमे छलककर वही उनके दिलोको बरकत देता हुआ आनन्दसे उन्हे सराबोर करता है। कहना

न होगा कि प्रेम ही सबमें सबकुछ है और आदि-अन्त न होने से इसका पूर्णरूपेण निरूपण नहीं हो सकता। जितना पत्रमें लिखा जा सका है, उससे प्रेम-निबन्ध तैयार करनेमें, प्रिये तुम्हें कुछ सहायता अवश्य मिलेगी और जो कुछ कमी होगी, उसे तुम प्रेम-जिज्ञासु होने से, स्वयं पूर्ण कर लोगी, ऐसी आशा है। पत्रका मजमून बहुत बढ गया है, अतः अब प्रेमकी अनन्त शक्तिके सम्बन्धमें प्रसिद्ध कवि पं० श्रीधर पाठककी रचना की कुछ पंक्तियां लिखकर लेखनीको विश्राम देना उचित है।

प्रेम वार है प्रेम पार है, प्रेमहि है मँझधार।
बेड़ा पड़ा प्रेम-सागरमें, प्रेमसे होगा पार॥

होजा निडर, छोड़ दे गड़बड़ पकड़ प्रेमकी धार।
प्रेमके बलसे केवल होगा, निबल तेरा निस्तार॥

अन्तमें स्वामी रामतीर्थ जी महाराजकी लेखनीसे निकली हुई प्रेमस्वरूप प्यारेकी उसी अनन्त शक्तिके सम्बन्धमें उपयुक्त पंक्तियाँ उद्धृत कर पत्रक समाप्त करता हूँ

यह राम सुनियेगा क्या कहानी, शुरू न इसका, खतम न हो यह।
जो सत्य पूछो, है राम हो राम है महेज धोखा यह सारी दुनिया॥

तुम्हारा प्यारा,
प्रेमस्वरूप

सुकुमार भावनाओंके प्रेम-पत्र

'प्रभाकर'—सम्पादक

[लेखक—कपिलदेव नारायण सिंह 'सुहृद'

आनन्द-भवन

छपरा

१४-८-३७

मेरे ब्रह्मदेव,

वह समय मै नही भूलती। आप सामने बैठे हैं, आपके मुखसे कोमल शव्दोंकी झड़ी लगी है, मैं मन्त्र-मुग्ध-सी बैठी हूँ। हृदय-सागर लहरियोंपर हिलोरें ले रहा है। सुन पाया कि आप आये है, फिर मेघका गर्जन हो, वर्षा-की झड़ी लगी हो, ग्रीष्मकी झुलसानेवाली तपन हो, या शिशिरको सिहार देनेवाला पाला हो, भला हृदय आपका दर्शन किये बिना कब माननेवाला है। फिर उसमें आपने कविका जो हृदय पाया है वह तो और भी मेरे दिलको बेचैन कर देता है। एक-एक पंक्ति आपकी रचनाको सुनकर कुछ ऐसी मीठी बोली हो जाती है, जिसमें कहूं क्या! 'दो प्रेमी' वाली कविता तो बार-बार गुनगुनाती हूँ, संसारको भूल जाती हूँ।

मेरे आप ही—आपने मुझे कविता-रस-पान कराया, इस कंटकाकीर्ण पथमें प्रवेश करा दिया, अब जो स्रोत-फूट पड़ा है, वह रुक ही नहीं सकता।

आपकी रचनाएँ पढती हूं, अपनी टूटी-फूटी कुछ पंक्तियाँ बनाती हूं, बस इन्हीं कार्योंमें जीवनकी राह काट रही हूं। यद्यपि मैं छोटी हूं, फिर भी दिल नहीं रुकता। लेखनी कुछ लिखनेको अग्रसर हो ही जाती है, टूटी फूटी भाषामें कुछ लिख ही लेती हूं। मैंने एक रचना आपकी सेवामें जो भेजी है, उसे किसी पत्रिकामें सुधा या नवशक्तिमें भेज देनेकी कृपा कीजियेगा। यह आपहीका प्रसाद है, भूलियेगा नहीं। पत्र तो बराबर भेजते रहियेगा। वह इसे सूखे हृदयको सींचनेका काम करेगा। मैं उत्तर दूं या न दूँ, आपकी यादमें उत्तर देनेकी भी सुधि संभव है न रहे, पर आप सदैव लिखते रहियेगा मालूम नहीं क्यों आपकी प्रतीक्षामें हृदय सदा विह्वल रहता है। पत्र अवश्य, अवश्य लिखियेगा, अवश्य, अवश्य और क्या लिखूँ—

आपकी वही

किरण

पत्रोत्तर

'आनन्द बाग' मुँगेर

१८-८-३७

प्यारी किरण !

स्नेह अभिवादन, पत्र तुम्हारा पाया।
मेरा बिछुड़ा हृदय दर्पसे, बार-बार भर आया॥
चूमा, फिर चूमा, फिर चूमा, मन न भरा चूमता रहा।
उन बीती बातोंकी स्मृतिमे, बेसुध हो झूमता रहा॥
बहुत दिनोंपर इस सेवककी, भूली याद तुम्हें आई।
मेरा भाग्य ! आज पतझड़में, ऋतु बसन्त मैंने पाई॥

जो आज है छोटी कली
कल फूल बन कर आयगी।
उसकी सुगन्ध प्रकीर्ण हो
वनमें चतुर्दिक छायगी॥

हँसकर उसीसे मोद पाकर
खिल उठेंगी क्यारियाँ।
कलियाँ बनेंगी फूल औ
हँस जायँगी फुलवारियाँ॥

तुम मौन कैसे रह सकोगी
जब हृदयकी बात है।
मनमे अगर है बेकली
दृगमें अगर-बरसात है॥

छोटी कली भी है चटखती
तब न क्यों तुम भी खिलो।
भावनाकी वायुमें किसलय
न क्यों तुम भी हिलो॥

चिनगारियाँ ज्वाला बनेंगी
यह नहीं क्या ज्ञात है।
तुम मौन कैसे रह सकोगी
जब हृदहमें बात है।

तुम्हारा—

ब्रह्मदेव

चन्द्रावलीका प्रेम-पत्र

[लेखक—भारतेन्दु हरिश्चन्द्र]

सन्ध्यावली—राम-राम ! मैं तो दौरत-दौरत हार गई, या ब्रजकी गऊ का हैं सॉड हैं , कैसी एक साथ पूँछ उठायकै मेरे संग दौरी हैं, तापै वा निपूते सुवलको बुरी होय और हू तूमड़ी बजायकै मेरी ओर उन सबनै लहकाय दीनी, अरे जो मैं एक सग प्रान छोड़िकै न भाजती तौ उनके रपट्टा मैं कबकी आय जाती। देखि आज वा सुवलकी कौन गति कराऊँ, बड़ो ढीठ भयो है प्राननकी हाँसी कौन कामकी। देखौ तौ आज सोमवार है नन्दगाँवमें हाट लगी होयगी वहीं जाती, इन सबनने बीच ही आय धरी, मैं चन्द्रावलीकी पाती वाके यारैं सौंप देती तो इतनो खुटकोऊ न रहतो (घबड़ाकर) अरे आईं ये गौवें तो फेर इतैहो कूँ अरराईं। (दौड़कर जाती है और चोलीमेंसे पत्र गिर पड़ता है) ।

(चम्पकलता आती है)

चंमपकलता—(पत्र गिरा हुआ देखकर) अरे ! यह चिट्ठी किसकी पड़ी है, किसीकी हो, देखूँ तो इसमें क्या लिखा है। (उठाकर देखती है) राम-राम ! न जानै किस दुखियाकी लिखी है कि आँसुओंसे भीजकर ऐसी चिपट गई है कि पढ़ी ही नहीं जाती और खोलनेमें फटी जाती है (बड़ी कठि-नाईसे खोलकर पढ़ती है) ।

'प्यारे !

क्या लिखूँ ! तुम बड़े दुष्ट हौ-चलौ-भला सब अपनी बीरता हमीपर दिखानी थी। हाँ! भला मैने तो लोक वेद अपनाबिराना सब छोड़कर तुम्हे पाया, तुमने हमै छोड़के क्या पाया ? और जो धर्म्म उपदेश -करो-तो धर्म्मसे फल होता है, फलसे धर्म्म नहीं होता, निर्लज्ज लाज भी नही आती, मुँह ढको ! फिर भी बोलने बिना डूबे जाते हो, चलो वाह ! अच्छी प्रीति निवाही. जो हो तुम जानते ही हौ, हाय कभी न करूँगी यों ही सही अन्त 'मरना है मैंने अपनी ओरसे खबर दे दी, अब मेरा दोष नहीं, बस।

केवल तुम्हारी'

(लम्बी साँस लेकर) हा ! बुरा रोग है न करै कि किसीके सिर बैठे बिठाये यह चक्र घहराय, इस चिट्ठी के देखनेसे कलेजा काँपा जाता है, बुरा ! तिसमें स्त्रियोंकी बडी बुरी दशा है, क्योकि कपोतव्रत बुरा होता है कि गला घोट डालो, मुँहसे बात न निकले प्रेम भी इसीका नाम है,राम-राम उस मुँह से जीभ खींच ली जाय जिससे हाय निकलै। इस ब्यथाको मैं जानती हूँ और कोई क्या जानेगा, क्योकि 'जाके पाव न भई बिवाई, सो क्या जाने पीर पराई।' यह तो हुआ, पर यह चिट्ठी है किसकी ? यह न जान पड़ी (कुछ सोचकर) अहा जानी ! निश्चय यह चन्द्रावलीहीकी चिट्ठी है, क्योंकि अक्षर भी उसीके से है और इसपर चन्द्रावलीका चिन्ह भी बनाया है। हा ! मेरी सखी बुरी फँसी, मैं तो पहिले ही उसके लच्छनोंसे जान गई थी, पर इतना नहीं जानती थी; अहा गुप्त प्रीति भी विलक्षण होती है। देखो इस प्रीतिमे संसारकी रीति से कुछ भी लाभ नहीं, मनुष्य न इधरका होता, न उधर का, संसारके सुख छोड़कर अपने हाथ आप मूर्ख बन जाता है। जो हो, यह पत्र तो मैं आप उन्हें जाकर दे आऊँगी और मिलनेकी भी बिनती करूँगी !

चितेराकी चिट्ठी

[प्रेषक—प्रसिद्ध चित्रकार केदारनाथ शर्मा]

पुर

६–२–११

प्रिये ,
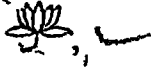
टेढ़ी मुझे अ छोड़ जिस से तुमने

सें रे चल दीं, १ भी न ।

था, जरा सी बात को से बना

। हृदय की , तुम मेरी की हो। मै

० हूँ, तुम ६ हो। तुम्हारी सी की अनिष्ट कल्पना से मेरा

ठनकता है, =, ८ बहाती है। जाते हैं। १

भी नही लगती। पड़ा दिन-दहाड़े गिना

ता हूँ। लोग तले दबाते हैं मेरा देख ।

तुम्हारी की का भन सुनने जो तुम्हारी

और की लगी धुना ते हैं।

मेरा तो ४ में दम है कलेजा को आ लगा है। ख़ैर, अब तो

मे पड़ ही गया है। मैं तुम्हारे रगड़ता हूँ।

अब दया निज से शीघ्र समा ४ २। तुम्हारे

१२ पड़े। २, ३ नों में ही का भाव जान गया। मुझे १६

विश्वास है कि मुझे ना न पड़ेगा। तुम ४

मे ला दोगी। जमा दोगी—

'चहे रूठके झूठ ही दोष ल के, क्रोध से रे फुलाया करो।

भले ००००० सरापो हमें, भर सदा गरियाया करो।

इतने हू पै जो नहीं भरै, कवि तो लगाया करो।

इतने हमपै तुम दाया करो, निज ने को जिन जाया करो॥'

तुम्हारा—

चितेरा की चिट्ठी

[प्रेषक—प्रसिद्ध चित्रकार केदारनाथ शर्मा]

कानपूर

नव-दो-ग्यारह

प्रिये सरोज,

आँख भौं टेढ़ी कर मुझे अकेला छोड़ जिस घड़ी से तुमने डेरा डंडा सँभाला, आगरे चलदी एक भी पत्र न दिया। सिर-पर भूत सवार था, जरासी बातको तिल से ताड़ बना डाला। हृदय मन्दिर की देवी, तुम मेरी आँखों की पुतली हो। मैं शून्य हूँ तुम नव हो। तुम्हारी चांद सी तस्वीर की अनिष्ट कल्पनासे मेरा माथा ठनकता है, आखें आठ-आठ आँसू बहाती है। हाथ पाँव फूल जाते हैं। एक घड़ी भी आँख नही लगती। पलंगपर पड़ा दिन दहाड़े तारे गिना करता हूँ। लोग दाँतो तले उँगली दबाते हैं। मेरा आधा शरीर देख कर तुम्हारे हाथ की चूड़ियो का झनकार सुनने को तुम्हारी बिल्ली, तोता और घर की मेज बकस किताबें सभी सिर धुना करते हैं।

मेरा तो नाक में दम है, कलेजा मुँह को आ लगा है। खैर, अब तो ओखली में सिर पड़ ही गया है। मैं तुम्हारे चरणों पर सिर रगड़ता हूँ। अब दया क निज कर कमलों से

शीघ्र समाचार दो। तुम्हारे पत्र बारह पड़े। दो तीन महीनोंमे ही आँटा दालका भाव जान गया। मुझे सोलह आना विश्वास है मुझे कि धूनी रमाना न पड़ेगा। तुम आँखे चार कर आँखो में तरी ला दोगी। पत्थर पर दूब जमा दोगी—

चहे रूठके झूठ ही दोष लगाय के,
क्रोधसे गाल फुलाया करौ।
भले बार हजार सरापो हमे,
भर पेट सदा गरियाया करौ।
इतने हू पै जो नही पेट भरे,
कवि 'चोंच' तो लात लगाया करौ।
इतनी हम पैं तुम दाया करौ,
निज नैहर को जिन जाया करो।

तुम्हारा—शशी

नोट—इस पत्रमें चित्रवाले शब्द सीधे तथा कुछ काले अक्षरों में दिये गये हैं और शेष मजमून उससे महीन तिरछे टाइपमें। केदारनाथ शर्मा काशीके प्रसिद्ध चित्रकारोंमेंसे हैं। काशी ही क्यों संयुक्त प्रान्त-भरमें भी आप एक अच्छे चित्रकार समझे जाते हैं। आपकी कृपासे यह चित्र हमें प्राप्त हुआ है। पाठकोंके मनोरंजनार्थ हमने इसे यहाँ प्रकाशित किया है। उधर दिये हुए चित्रसे यदि मतलब अच्छी तरह हल न हो तो ऊपर दिये हुए संकेतसे लाभ उठावें। केदार बाबूको हम इसके लिए प्रेमी पाठकोंकी ओरसे धन्यवाद देते हैं।—सं०

प्रेमकी राहपर

[लेखक—पण्डित लक्ष्मणनारायण गर्दे]

(ये पत्र काल्पनिक नहीं, अक्षरशः सत्य हैं। पत्र बडे ही मार्मिक और हृदयमें घर कर लेनेवाले है। इनका एक-एक शब्द बिलकुल नपा-तुला और उच्चकोटिकी भावनाओंसे ओत-प्रोत है। हम प्रेमी पाठकोंसे आग्रह करते हैं कि वे ऐसे पत्र एकाग्र चित्तसे पढ़कर लाभ उठावें।—सं०)

[१]

प्राणनाथ,

अबतक हम-तुम साथ-साथ, हाथमें-हाथ डाले और हृदयसे-हृदय मिलाये, प्रेम और आनन्दमें विभोर हुए चले आये, और अब तुम अकस्मात् कहाँ छिप गये ? मुझे अकेली सबके बीच छोड़कर कहाँ चले गये ? नाथ, मैं सुन्दरी नहीं हूँ, इसलिये तो मुझे छोड़कर नहीं चले गये ? मैं शृङ्गार करना नहीं जानती, तुम्हे रिझाना नहीं जानती, इसलिये तो नहीं चले गये ? या मुझसे तुम्हारा बस इतना ही मतलब था कि दो-चार सन्तान तुम्हारे नामको जगमें उँजियारा करनेवाले हो जायँ और फिर तुम मुझे इसी तरह रोती-बिलखती छोड़कर कहीं छिप जाओ, कहीं चल दो ? ये श्याम और गौर तुम्हारे हैं, ये निर्मला और विमला तुम्हारी हैं। इन्हे तो अपने संग ले जाना

था। इन्हें मेरे पास क्यों छोड़ गये ? मुझे इसी तरह छोड़ देना था तो मेरे साथ सम्बन्ध जोड़नेकी ही क्या जरूरत थी ? मैं क्वाँरी ही बनी रहती! तुमने मेरा क्वाँरापन ले लिया और अब क्यों दुराते हो ? मेरा क्या अपराध है ? क्या मेरी दृष्टि कभी पापी तो नहीं हुई जो तुम्हारी दृष्टि-मुझसे खिंच गयी ? मेरे मनमें, स्वप्नमें या जागतेमें, कोई पाप तो नहीं घुस बैठा जो तुम्हारा मन मुझे छोड़ गया ? तुम्हारे सिवाय क्या और किसीका भी मैंने कभी चिन्तन किया है ? यदि किया हो तो मुझे यह दण्ड दो, मैं उसे तब सह लूँगी, उसीमें जल मरूँगी। और नहीं तो, मुझे इस अग्निमें क्यों तपा रहे हो ? मैं तुमसे और कुछ तो नहीं चाहती। पर अपने दोनों पुत्रों और पुत्रियोंकी सम्भाल तो करो और मुझे अपने हृदयकी लक्ष्मी न सही, चरणों-की दासी तो बनी रहने दो। मैं रूप सुन्दरी न सही, पर हूँ तो तुम्हारी ही। फिर तुमने मुझे इस तरह क्यों छोड़ा—क्यों मुझसे जुदा हो गये ? क्या तुम समझते हो कि मैं इस हालतमें जीती रह सकती हूं ? नाथ, मैं एक क्षण भी यह वियोग नहीं सह सकती। तुम जहाँ हो, वहीं यह पत्र तुम्हें मिले और तुम शीघ्र चले आओ।

तुम्हारी परित्यक्ता (?)

———

[२]

प्राणेश्वरी,

तुम अपने आपको परित्यक्ता समझकर दुःख क्यों करती हो ? तुम्हारा यह दुःख मुझसे नहीं सहा जाता। पर हाँ, तुम्हारे दुःखका कारण तो मैं ही हो सकता हूँ! जरूर मेरा कोई दोष है, जिससे तुम जैसी सती प्रेमिकाको इतनी पीड़ा पहुँची है ? पर वह दोष क्या है, यह तुम बतला सकती हो ? नहीं बतला सकतीं, क्योंकि तुम्हारी आँखोंपर सदासे वह पट्टी बँधी है जो मेरे गुण ही देखनेके लिये खुला करती है, मेरे दोषोंके सामने तो ऐसी बँधी रहती है जैसे कृपणकी थैलीका मुँह। सारी दुनिया मुझमें दोष देखे तो भी तुम नहीं

देख सकती। इस बातको मैं इतनी अच्छी तरहसे जानता हूँ कि जितना कोई अपने दिलका हाल भी नही जानता। इसीसे मैं लाचार हूँ और तुमसे ऐसे बँधा रहता हूँ जैसे साहुकारसे उसका कर्जदार आसामी। मेरा हृदय तुमसे जुदा कब हुआ, कहाँ हुआ? तुम कहती हो, मैं सुन्दरी नहीं हूँ, शृङ्गार करना और रिझाना नहीं जानती, इसलिये तुम्हे नहीं भाती और इसीलिये तुम मुझे छोड़ गये होंगे। पर मेरे हृदयकी स्वामिनी, इनमेंसे एक भी बात यदि सच होती तो मैं कठोर-से-कठोर दण्डका पात्र होता। तुम्हीं बताओ, तुम्हारा सौन्दर्य मेरे लिये है या तुम्हारे अपने लिये? तुम कहोगी, तुम्हारे लिये। जब यही बात है तब उस सौन्दर्यको तो अपनी आँखोंमें देख सकती हो, और कहीं भी नहीं। सच-सच तुम्हे बतला दूँ? मैं तुम्हारे सौन्दर्यपर मुग्ध हूँ। और तुम्हारा शृंगार तो सहज है, बाहरी शृंगार तो उन स्त्रियोंको करना पड़ता है जिनमें सहज सौन्दर्य, सहज शृंगार नही होता। बाहरी शृंगार दूसरोंको और अपने आपको धोखा देनेका एक स्वाग है। जिनके मन तन प्राण निष्कलंक और प्रेमानन्दमें विभोर हैं उनके मुखकी शुभ्र कान्ति शरच्चन्द्रको भी मात करती है। पर तुम्हारा यह सौन्दर्य और शृंगार देखनेवाली आँख तो मेरी ही है, क्योंकि तुम्हारे प्राण तो उछल पड़ते हैं मेरी ही आँख-पर, अपनी या किसी दूसरेकी आँखपर नहीं। तुम्हारा मेरी ओर सरल-सरल प्रेमदृष्टिसे निहारना, इससे बढ़कर मुझे रिझाना और हो ही क्या सकता है? हर यह ख्याल तुम्हारे अन्दर कहाँसे समाया कि मै तुम्हे रोती-बिलखती छोड़कर चला गया! मैं तो कही नही गया हूँ। मेरा मन तुम्हारे पास है, अपने मनसे पूछो। और अपने श्याम और गौरकी आँखोसे पूछो, निर्मला और विमलाके निर्मल-विमल दर्शनमे देख लो कि तुम्हे मैंने किस तरह अपने साथ रखा है। तुम जुदाई जिसे कहती हो, उसमे भी मै तुम्हारेपास हूँ।

तत्व प्रेम कर मम अरु तोरा।
जानत प्रिया एक मन मोरा॥

सो सुनु सदा रहत तोहिं पाही।
जानु प्रीति रस इतने हि माहीं॥

तुम्हारा चिरसंगी

---

[३]

प्राणनाथ,

तुम्हारा तुम्हारे-जैसा ही प्रेम-रस भरा पत्र मिला। मैं नही जानती कि प्रेम क्या होता है, पर मुझसे कोई पूछे तो मैं यही उत्तर दूँगी कि प्रेम कोई चीज है जो मेरे प्राण-पतिके पत्रमें बन्द रहती है। पर प्राणनाथ, प्रेमका यह तत्व मैं नहीं समझ सकती। तुम्हे जब मैं अपनी आँखोंके सामने नहीं देखती हूँ तब इतनेसे मेरा संतोष नहीं हो सकता कि तुम्हारा मन तो मेरे ही पास है। मनके पास मन होगा। पर प्राणोंके पास प्राण—मेरे प्राणोंके प्राणनाथ कहाँ हैं? मनके पास तुम्हारा मन, इस शरीरका स्वामी कहाँ है? क्या मेरे हृदयका हाल तुम नहीं जानते? क्या यह मैं सह सकती हूँ और फिर भी इसी विरहको मिलन समझूँ? मार भी सहूं और कुछ बोलूँ नहीं? प्राणनाथ, तुम ऐसे निर्दय क्यों हो गये? मुझे छोड़कर क्यों चले गये? हाँ, श्याम और गौरकी आँखोंसे पूछती हूँ, निर्मला और विमलाके विमल नील दर्पणमें देखती हूँ, तुम्हीं तुम हो। अपने मनसे पूछती हूं, तुम्हीं जवाब देते हो। पर यह सब देखना-ढूँढना क्या है? तुम तो नहीं हो! ये सब तुम्हारे हैं, पर तुम नहीं! ये तुम्हारे हैं, इसलिये मैं इनके बीच रहकर जो रही हूँ, पर तुम्हारे बिना जीना भार है। जहाँ तुमने रख छोड़ा है वहीं रहती हूँ. पर यह रहना नही, तुम्हें ढूँढते हुए फिरकी की तरह फिरा करना है। प्राणनाथ, कमसे-कम मुझे यही बता दो कि मुझसे कौन-सा ऐसा अपराध बना जिसके लिये तुमने मुझे यह दण्ड दिया और इस दण्ड-भोगकी अवधि कितनी है? मुझसी हत-

भागिन और कोई न होगी जो ऐसे पतिको पाकर भी उसके विरहकी आगमें जल रही है। प्राणनाथ, अब मुझसे नहीं सहा जाता, ये प्राण निकलकर तुम्हारे लिए चरणोंमें पहुँचें और शरीर राख हो जाय। और अधिक क्या लिखूँ ?

तुम्हारी अधीरा

---

[४]

प्राणेश्वरी,

तुम्हारा पत्र मुझे मिला जैसे तुम मिलती। तुम्हारे प्रेम-भरे हृदयकी व्याकुलता मेरे प्रेमको लज्जित करती है। ऐसा मालूम होता है जैसे तुम बड़े वेगसे मेरी ओर दौड़ी चली आ रही हो और मैं तुमसे कह रहा हूँ कि अभी ठहरो। तुम सच कहती हो कि मैं निर्दय हूँ; पर यह भी तुम जानती हो कि मैं निर्दय नहीं हूँ। इसलिये तुम्हारा मुझे निर्दय कहना मुझे बड़ा प्यारा लगता है। तुम पूछती हो, तुमसे कौनसा ऐसा अपराध हुआ जिससे मैं तुम्हें छोड़कर चला गया। पर प्राणेश्वरी, तुम अपराधिनी नहीं हो, तुमसे अपराध बन ही नहीं सकता; क्योंकि तुम मेरे सिवाय और किसीका चिन्तन नहीं करती और जब मेरा ही चिन्तन करती हो तब जो कुछ तुम करती हो वह मैं करता हूँ। तुमसी निष्कलंक प्रेमकी प्रतिमा अपनी स्त्रीके रूपमें पाकर मैं धन्य हूँ। तुमने सब कुछ तो मुझे दे डाला है, अपना कुल, अपना नाम, अपना तन मन प्राण सब तो दे चुकीं और मैं ले चुका। अब तुम जो कुछ हो, सच जानो, मैं ही हूँ। और प्राणप्रिये, मेरी भी तो तुम्ही हो। तुम जी रही हो मेरे लिये, मैं भी जी रहा हूँ तुम्हारे लिये। मैं हूँ मनमे तुम्हारे पास और तन से भी आना चाहता हूं तुम्हारे पास, जिसमें तुम्हारी सब इच्छाएँ पूर्ण हों, कोई अभाव न रह जाय। मैं तुम्हें परिपूर्ण देखना चाहता हूँ।

मेरे लिये सच पूछो तो, तुम जैसी हो, लक्ष्मी हो , तुम्हारा स्मितवदन और प्रेम-भरी दृष्टि मेरी सारी सम्पदा है—सब सम्पदाओंकी अटूट खान है , पर मैं तुम्हें बैरागिनका भेस नहीं पहनाना चाहता। तुम्हारा मन जैसा निर्मल और सब शुभ गुणोंका आकर है वैसा ही तुम्हारा बाह्य वेश भी परम रमणीय और महान् अधिकार से पूर्ण होना चाहिये। तुम अधीर हो मुझसे मिलनेके लिये। और मेरी स्थिरतामें भी उसी अधीरताकासा वेग भरा हुआ है। तुम जिस ओर देख रही हो उसी ओरसे मैं आ रहा हूँ। तुम्हारे प्राण मेरे हैं न ? फिर तुम उनके निकल आने की बात कैसे सोच सकती हो ? तुम कौन होती हो ? मैं उन प्राणोंसे प्राणालिंगन चाहता हूँ और बस शरीर को सजाना चाहता हूं। इसलिये इन्हे जरा भी कष्ट न दो, वे मेरे है।

तुम्हारा ही

---

[५]

प्राणनाथ,

तुम्हारा, फिर तुन्हारे जैसा ही अथाह, पत्र मिला। इस बार तुमने मुझे अपने जान ऐसा लोभ दिखाया है कि मैं उसमें पड़कर अपने-आपको खो बैठूँ और तुमसे जुदा रहना स्वीकार करूँ ! क्या इस लोभ से तुम मुझे अपने पास आने से रोक सकते हो ? नहीं, अब तो मैं नहीं रुकूँगी। नदीके किनारे-किनारे चाहे जितने सुन्दर-से-सुन्दर पुष्पोद्यान और फलोंसे लदे वृक्षोंके कानन हों, वे यदि नदीके वेगको समुद्रसे लौटा नहीं सकते तो मेरा वेग भी ये लोभ तुमसे जुदा नहीं कर सकते। तुम मुझे परिपूर्ण देखना चाहते हो ? पर कैसे ? अपनेसे जुदा करके ? मैं स्वयं जो तुम्हारे कारण पूर्ण हूँ उसे आनेसे हटाकर अपूर्ण करके ? क्या तुम मुझे इतनी भोली-भाली और नादान समझते हो कि तुम्हारे पास आना छोड़ कर तुम जिस ऐश्वर्य की बात कहते हो उसे लेनेके लिये हाथ पसारे बैठी रहूँ ? तुम्हारी सारी सम्पदा तो मैं ही हूँ न ?

फिर मुझे तुम और कौन सी सम्पदा देना चाहते हो ? मैं तो तुम्हें चाहती हूँ, तुम्हारी सम्पदाको नही । मेरी परिपूर्णता तो तुम हो; और कौनसी परिपूर्णता है जो मेरे तुमसे भिन्न हो? तुम बैरागिनका भेस मुझे नही पहनाना चाहते; तो क्या तुम बैरागी हो गये हो ? तब तो बैरागिन का भेस ही अबसे मेरा शृंगार है । अब बैरागिन ही सजूँगी । तुम मुझे इस भेसमें देखना क्यो नही चाहते ? क्या तुम मुझे ऐसे भेसमें देखना चाहते हो जो तुम्हारा भेस नहीं ? मैं क्या तुमसे तुम्हारे बदले तुम्हारा नही बल्कि किसी गैरका भेस चाहती हूँ ? प्राणनाथ, ये सब बातें मुझे न सुनाओ । मैं तो तुम्हारे पास आनेके लिये निकल पड़ी हूँ । मेरी साँस चल रही है यह तुम्हारे पास ही जा रही है । ये प्राण तुम्हारे बिना रह नही सकते क्योंकि तुम्हारे है , जहाँ तुम होगे वहीं ये भी होंगे । जहाँ तुम न होगे वहाँ ये क्यो रहेंगे ? ये मेरे नहीं, तुम्हारे है ।

तुम्हारी अनन्य

---

[६]

प्राणेश्वरी,

मैं भी तुम्हारा हूँ । तुममें मुझमें कोई भेद नहीं, कोई अलगाव नहीं, कोई परदा नहीं ! मैं जो कुछ हूँ सो ही तुम हो और तुम जो कुछ हो सो ही मैं हूँ । तुम्हारा सब कुछ जैसे मेरा है वैसे ही मेरा सब कुछ तुम्हारा है । संयोगमै हम तुम एक हैं, वियोगमें दो . पर दो तन एक प्राण । मैने तुम्हें लोभ नही दिलाया है, तुम्हें भला कौन लुभा सकता है ? तुम प्राणेश्वरी हो, तो क्या प्राणोंके राजसिंहासनपर तुम्हें न बैठाऊँ, अपनी सारी सम्पत्ति और शक्तिकी स्वामिनी तुम्हे न बनाऊँ ? तुम जब मेरी हो तब तुम्हें मैं कैसे छोड़ सकता

हूं—अपने सारे प्रेमका सौन्दर्य देकर मै तुम्हें सिगारना चाहता हूँ। यह मेरी इच्छा है। मै विरागी नहीं हो गया हूँ। मेरा स्वभाव तो तुम जानती हो कि मैं तुमसे प्रेम करता हूँ, तुम्हारी हर बातसे प्रेम करता हूँ, तुम्हारी हर इच्छासे प्रेम करता हूँ। जो तुम चाहती हो वही मैं चाहता हूँ। यही मेरा स्वभाव है। पर जब तुम मेरी होते-होते सर्वथा मेरी हो गयी तब तुम्हारी कोई इच्छा ही न रही, तब तुम मेरी इच्छाके लिये खाली हो गयीं। अब मेरी इच्छा है, तुम्हारी नही। मुझे अपने हाथों अब तुम्हारा शृंगार करने दो, यह इच्छा मेरी, यह तन मन प्राण मेरा और यह सौन्दर्य और शृंगार भी मेरा ही है। तुम कहाँ हो? मैं ही तो हूँ।

संवाद

'प्राणनाथ! यह आवाज तो तुम्हारी है पर तुम कहाँ हो?'

'प्रिये, क्या तुम स्वप्न देख रही हो? क्यों बार-बार इस तरह चौंक पड़ती हो और प्राणनाथ, प्राणनाथ कहकर चिल्लाती हो! मैं तो तुम्हारे पास बैठा हूँ।'

प्राणनाथ, फिर मुझे ऐसे कभी न छोड़ जाना। मैं तुम्हारे बिना रह नहीं सकती। इन चरणोंमें ये आखें लगी रहने दो।'

प्रिये, तुमको यह क्या हो गया है? कोई स्वप्न तो नहीं देखा?'

'एं? हाँ 'स्वप्न ही तो था, पर स्वप्नमें प्राणनाथ, मैं तुम्हारा वियोग नही सह सकती।'

'पर वियोगमें भी मैं तुमसे अलग नहीं हुआ, यह बात तो जँच गयी न?'

इति

प्रेम पत्रिका, लव लेटर नहीं

[लेखक—व्रजरत्नदास बी० ए० एल-एल० बी०]

काशी

१८-३-३२

प्रिय,

आपका प्रेम-पत्र मिला। हृदयको कुछ ऐसा अनुभव हुआ मानों सुधा-सिंचनने उसकी समग्र ज्वालाको शांत कर दिया है। मैंने आपको उलाहना नहीं दिया है और न देना चाहती हूँ क्योंकि मैं अच्छी तरह जानती हूँ कि आप स्वयम् परवश हैं और आपको भी इस विच्छेदसे कष्ट ही है, पर हृदय नहीं मानता था, इससे कुछ लिख गयी था। क्या कहूँ। हँसियेगा मत! जिस दिन मैंने आपको पत्र लिखा था, उसी रात्रिको स्वप्नमें मैंने देखा कि आप गृह आए हैं और आतुरताके कारण स्वागत करनेके लिए जो मैं उठी तो निद्रा तथा स्वप्न दोनों दूर हो गए। अपने दुर्भाग्यको कोसती थी कि स्वप्नका सुख भी कुछ देरतक न उठा सकी। कहते लज्जा आती है, पर मैं उस रात्रि सो न सकी। आँखें कुछ लाल हो आई थीं। दूसरे दिन कुछ सहेलियाँ मिलने आईं और बहुत देरतक चित्त बहलानेके इस साधनसे मुझे शान्ति मिली पर वे सब मेरी आखें लाल देखकर हँसी करती रहीं। मैं चुप थी, क्या उत्तर

लव-लेटर्सके सम्बन्धमें चेतावनी

[ले०—मिर्जा इस्माइल 'बेग' एम० ए०]

भारतीय युवकोंमें कामुकताके भाव बढ रहे हैं। सौंदर्य प्रियता बुरी नहीं, पर कला और सौंदर्योपासनाके नामपर कामवासनाको स्थान देना सर्वथा निन्दनीय है। पर आज हम देखते है, कि अधिकांश स्कूल और कालेजोंके छात्रोंकी मृत्यु के बाद यदि उनके मकानोंकी तलाशी ली जाय तो किसी शायरका यह कथन सत्य निकलेगा—

चन्द तस्वीरे बुतां, चंद हसीनोंके खुतूत।
बाद मरनेके मेरे घरसे सामा ये निकला ॥

समाचारपत्रोंमें बहुधा इस तरहके समाचार पढ़नेको मिलते हैं कि अमुक लड़कीका अमुक लड़केसे प्रेमसम्बन्ध स्थापित हो गया था। दोनोंमें खूब पत्र व्यवहार होता था। एक दिन लड़कीके पिताके हाथ उसका एक पत्र लग गया। पिताने लड़कीको बहुत भला-बुरा कहा और उसके प्रेमी युवकको विषयमें पत्र न लिखनेका आदेश दिया। इसके पश्चात् युवक या युवतीकी आत्महत्याका समाचार पढ़नेको मिलता है या दोनोंके किसी अज्ञात स्थानपर

भाग जानेकी खबर मिलती है। इस प्रकारकी अनेक घटनाएँ आये दिन होती ही रहती हैं।

हम जानते हैं कि किशोरावस्था और युवावस्थाके सन्धिकालमें हृदयमें कुछ नवीन भाव उठते हैं। सौंदर्योपासनाकी भावना बलवती हो उठती है। आधुनिक युगमें बायरन और शेक्सपियरकी रचनाओंका निरन्तर अध्ययन करनेवाले कालेजके युवक शीघ्र ही किसी कल्पना-जगतमें विचरण करनेवाली कामिनीकी कल्पना कर डालते हैं। उनकी यह कल्पना इतनी बलवती होती है कि वे स्वप्नमें भी नहीं सोच पाते कि कविके कल्पना-जगतकी सुन्दरी इस धराधामपर अवतरित नहीं हो सकती। मैं ऐसे कई अभागे युवकोंको जानता हूँ जो सौन्दर्य-पिपासाके पीछे पागल हो गये हैं। जिनके जीवनका आधेसे भी अधिक भाग सुन्दरियोंकी प्रशंसा और उन्हे प्रेम-पत्र लिखनेमें व्यतीत हो गया है। वे आज इस युवतीको प्रेम-पत्र लिखेंगे तो कल किसी और को। आज मिस परवानाकी तारीफ करेंगे तो कल मिस लूसीकी प्रशंसाके पुल बाधेंगे।

पाश्चात्य शिक्षाके कीटाणुओंने हमारे देशके युवकोंके मस्तिष्कोंको इतना विकृत बना डाला है कि वे प्रेम-प्रेम चिल्लाते तो हैं, पर प्रेम क्या है यह समझनेका कभी प्रयत्न नहीं करते। प्रेम एक पवित्र बन्धन है उसमें वासना-के लिये कोई स्थान न होना चाहिये। अभी थोड़े ही दिन पहलेकी बात है कि लन्दनमें एक युवती आत्महत्या कर मर गयी। उसकी छातीसे चिपके हुए कुछ प्रेम-पत्र मिले थे। उन पत्रोंको पढने से पता चला कि युवती एक युवक को चाहती थी। युवकने समय समय पर उसे जो प्रेमपत्र लिखे थे उनसे पता चला कि वह युवतीकी ओर आकृष्ट हो गया था उसने उससे विवाह करनेको भी वादा किया था; किन्तु कुछ ही दिनों बाद उस युवककी धारणा बदल गयी। वह दूसरी युवतीसे प्रेम करने लगा। जिस दिन उसका वह धोखेबाज प्रेमी अपनी नयी प्रेमिकाके साथ विवाह करनेके लिये गिरजा घरकी

ओर गया उसकी हताश प्रेमिकाने अपने प्रेमी के पुराने सब पत्र निकाले। उसके प्रेम-पत्रोंकी एक-एक लाइन को फिरसे पढ़ा। उसका हृदय भर आया। वह सोचने लगी कि पुरुष का हृदय इतना कठोर होता है ? पुरुषकी निष्ठुरताके कारण उसके धैर्यका बाँध टूट गया। उसने अपने दगाबाज प्रेमी का नाम ले लेकर अपना प्राणांत कर लिया। उक्त युवती मर गयी है पर लन्दनके कोरोनर के दफ्तरमें उसके वे प्रेमपत्र अभीतक रखे हुए हैं। क्या इससे यह बात प्रमाणित नहा हो जाती कि आजकल प्रेमी युवक और युवतियोंकी हत्याओंको प्रोत्साहन देनेमें प्रेमपत्र घीका काम करते हैं।

मेरे एक हिन्दू मित्र हैं। अभी नये नये वकालत पास करके आये हैं। इस जमाने में वकालतकी आमदनीका क्या कहना ? यही गनीमत है कि घर की साइकिल पर घर का बिना कुछ खर्च किये घर लौट आते हैं यह अच्छा है कि अभी आपके पिताजी जीवित हैं। एक स्कूलमें अध्यापकी करके किसी तरह अपने कुटुम्बका भरण-पोषण करते हैं। उनके सुपुत्र वकील साहबकी कमाईका तो ईश्वर ही मालिक है। ऐसा होनेपर भी आप पत्र लिखनेमें बड़े पटु हैं। ऐसा बिरला ही कोई दिन जाता होगा जिसमें आप चार पाँच लिफाफे और चार पाँच कार्ड न लिखिते हो। पत्र लिखते हैं फिर किसी वियोगिनी से भी अधिक उत्कंठित होकर उनके उत्तरकी प्रतीक्षा करते हैं। कचहरी जा रहे हैं, अगर रास्तेमें पोस्टमैन, मिल गया तो सायकिल रोक दी। पोस्टमैन को पुकारा 'ये ! सुनो, हमारी कोई चिट्ठी है ?' अगर पोस्टमैन ने कोई पत्र दिया तो पहले उसे वहीं खोलकर पढ लिया तब आगे बढ़े। यदि आपको उस दिन कहींका कोई पत्र न मिला तो आप यह कहकर गाड़ीपर सवार हो जाते हैं, 'भई, डाकखाने वाले भी अजीब जीव हैं। न जाने सुबहकी डाक शामको देनेमें इन्हें क्या मजा आता है।'

उक्त वकील साहबसे मेरी काफी घनिष्ठता है। बेचारे मुझसे खूब हिल-मिलकर बात करते हैं। कोई बात मुझसे छिपाते नहीं हैं। जिन दिनों आप

पढते थे उन दिनों आपकी जान-पहचान एक लड़कीसे हो गयी। पहले साधारण बोल-चाल आरम्भ हुई, फिर घनिष्ठता बढ़ गयी। पत्र व्यवहार आरम्भ हो गया। पढाईके बाद जब हजरत घर आये तब भी प्रेम-पत्रोंका आना जाना 'जारी रहा। पहले कुछ संकोचके साथ, पर बादमें खुलकर ? आप मुझसे उस लड़कीकी प्रशंसा करने लगे। उसके पत्रोंका कुछ अंश भी कभी कभी सुना दिया करते थे। एक दिन आप घबराये हुए मेरे पास आये और कहने लगे कि "भाई गजब हो गया। उसके पिताके हाथ मेरे कई पत्र लग गये हैं। उन्होंने मुझे डाँटकर एक पत्र लिखा है कि भविष्यमें मै उसे कभी पत्र न लिखूँ। उन्होंने साथ ही साथ मुझे यह भी लिखा है कि यदि भविष्यमें मेरा उन्हें कोई भी पत्र मिलेगा तो मेरे विरुद्ध वे कानूनी कार्यवाही भी करेंगे।" मैने वकील साहबको समझाया कि जो कुछ हुआ सो हुआ, भविष्यमें वे सचेत हो जायँ और इस तरह किसीकी अविवाहिता कन्याको पत्र लिखनेका कष्ट न करें।

उस दिन तो वे मान गये, पर भला प्रेमी हृदयको चैन कहाँ ? चार दिन बाद ही उनकी डाककी रफ्तार फिर बढी। एक दिन उनके पास जब कानूनी नोटिस आ गयी तब जाकर उनका प्रेमपत्र लिखनेका भूत कुछ कम हुआ। यह हालत है हमारे शिक्षितोंकी। प्रेम-पत्रोंकी बहुधा ऐसी भरमार हो जाती है कि आसपासके लोग कहने लगते हैं कि क्या इन लोगोंको पत्र लिखनेके सिवाय और कोई काम नहीं है ?

नव विवाहित दम्पतियोंमें भी प्रेम-पत्र लिखनेका रिवाज आजकल बढता जा रहा है। यदि पति और पत्नी काफी पढे हुए मिल गये तो क्या कहना ? पतिजी यदि बायरनकी दो पंक्तियाँ अपने प्रेम पत्रमें लिखते हैं तो पत्नी महो-दया देवके 'आँखिन राख गये ऋतु पावस' और सेनापतिके 'डग भई बावनकी सावनकी रतियाँ' आदि छन्दोंके द्वारा अपनी विरह-व्यथाका वर्णन किये बिना नहीं रहती।

हालाबाद और प्यालाबादके इसयुगमें प्रेम-पत्रोंकी भरमार हमारे समाजके युवक और युवतियोंको पतनके गह्वर गर्तकी ओर ले जा रहा है। इसके कारण समाजके युवकोंमें सदाचार और सहिष्णुताके स्थानपर उच्छृङ्खलताका आधिपत्य हो रहा है। वे पत्र जिनमें कामुकताकी गंध आती हो, जिनकी एक एक पंक्तिमें विरह-वेदना टपक रही हो; भला इस प्रकारके पत्रोसे देश और समाजका क्या हित हो सकता है? ऐसे युवकोंकी अपनी प्रियतमाको प्रेमपत्र लिखने और उसके प्रेम-पत्रके उत्तरकी प्रतीक्षा करनेके अतिरिक्त और किसी कामके लिए समय ही कहाँसे मिल सकता है।

बहुधा देखा जाता है कि हमारे होनहार युवक ऐसी वस्तुकी चाहना करते है जिसका मिलना असम्भव नहीं तो कठिन अवश्य होता है। यदि प्रयत्न करनेपर भी उन्हे सफलता न मिली तो उनके आन्तरिक क्लेशकी सीमा नहीं रहती। मैं अपने एक मित्रके पुत्रको जानता हूँ जो मध्यम श्रेणीके व्यक्ति हैं। खाने-पीने आदिकी उनके यहाँ समुचित व्यवस्था है पर आप ८० हजार वार्षिककी आयवाले एक जमींदारकी कन्यासे विवाह करनेके लिये उत्सुक हैं। प्रेम-पत्र लिखते हैं पर उसके पासतक पहुँचे कैसे। अस्तु, 'उनकी तरफसे खत लिखे खुद ही जवाबमें' की कहावत चरितार्थ कर रहे हैं। इसका परिणाम यह हुआ है कि आपका स्वास्थ्य धीरे-धीरे गिरता जा रहा है।

कहनेका तात्पर्य यह है कि भारतमें प्रेम-पत्रोंका यह नया रोग आरम्भ हुआ है। यदि शीघ्र ही युवक और युवतियोंको इसकी भयंकरता भलीभाँति समझायी न गयी तो इसका परिणाम बहुत बुरा होगा। हो सकता है हमारे ये शब्द कुछ युवकोंको बुरे मालूम हों पर महाकवि अकबरके शब्दोंमें—

ये बड़ा ऐब है तुझमें अकबर।
जो दिलमें आये कह गुजरता है॥

मार्शल स्टालिनको बधाई

लन्दन,

ता० २२ फरवरी

इप्सविच सफाकनिवासिनी अठारह वर्षीया श्रीमती कैथलीन वाल्टर्सने; जिनका पतिविवाहके एक महीने बाद ही गतजुलाई मासमें स्टुटगार्डमें विमानसे धराशायी किया गया था और अब रूसियों द्वारा मुक्त किया गया है, मार्शल स्टालिनको एक पत्र लिखा है। पत्रमें वह लिखती हैं—

'प्रिय मार्शल स्टालिन'

मैं यह नही चाहती कि आप मेरे पत्रका सारांश अपनी घोषणाओंमें दें। परन्तु मैं आशा करती हूं कि आप अपने वीर सैनिकोको जिन्होंने मेरे पतिको मुक्त किया है, धन्यवादका सन्देश भेज देंगे।

प्रति रात मैं प्रार्थना किया करती थी कि रूसी अपने आश्चर्यजनक बढ़ाव द्वारा मेरे पतिको बन्धनमुक्त करें। मेरी प्रार्थनाएं सुन ली गयी। अब मैं अधिक क्या लिखूं। मार्शल स्टालिन को धन्यवाद! आपको तथा रूसी सैनिकोंको धन्यवाद जिन्होंने एक अंग्रेज वधूको सुख सम्वाद दिया।

मेरा विचार है कि मैं जो कुछ कह रही हूं यह उन हजारों पत्नियों, माताओं और प्रियतमाओंकी वाणी है जिन्हें अभी ऐसे सुख-सम्वाद सुनने हैं परन्तु वे सुनेंगी शीघ्र ही।

आपकी—

कैथलीन वाल्टर्स।

पत्र 'जोसेफ स्टालिन महाशल, क्रेमलिन, मास्को, के पतेपर भेजा गया था।

—"ग्लोब'

युद्ध-भूमिसे पतिका पत्र

फ्रांस और जर्मनी के मध्यमें
ता० २—५—४५
रात्रिमें ४ बजे

प्रिय मानिनी !

शुभाशीर्वाद !

मैं अर्धरात्रिमें तुझे अकेली सोती हुई छोड़कर चला आया। बंबईमें आकर महीनों रहा और इधर-उधर बे काम-काज घूमता-फिरता रहा ? फिर लाचार होकर फौजमें भरती हो गया। यहाँ सैनिक कतारमें युद्धकी महीनों शिक्षा-दीक्षा प्राप्त कर एक जहाज द्वारा वहाँसे दूर देशमें भेज दिया गया।

यह तू जान ले कि मैं अपनी प्रसन्नता और इच्छासे सैनिकोंमें भरती होकर इस लड़ाईके मैदानमें नहीं आया। लेकिन गाँव-देशमें मेरी मान प्रतिष्ठा उसी तरह हो रही थी—जिस प्रकार किसी अकर्मण्य पुरुष की। वास्तवमें धोबीका कुत्ता न तो घरका न घाटका यही कहावत चरितार्थ हो रही थी।

मेरे माता-पिता तो तुम्हारे साथ विवाह कराकर निश्चिन्त हो गये। घर-गृहस्थीके प्रबन्धका सारा भार मेरे ऊपर आ पड़ा। वे मेरे उद्योग-धन्धेकी कोई उचित व्यवस्था न कर सके। आखिरकार मैं पैसे-पैसेको मोहताज हो गया। एक दिन यहाँ तक कि मैं अपनी आत्महत्या करनेके लिये तैयार हो गया। लेकिन कुछ-सोच-विचारकर कि यह तो बहुत निकृष्ट मार्ग है—इसका अनुसरण करना महा पाप है—मैं रुक गया और फिर युद्धभूमिमें जाकर शूर-वीरोंकी भाँति लड़कर वीरगति पानेको ही सर्वश्रेष्ठ समझा।

आज डेढ वर्षका दिन, हजारों ही बार प्राणान्त होते-होते बीता। मेरी मानिनी! तेरा दर्शन अवश्य होगा। इस युद्धभूमिमें भी रात-दिन सोते-जागते तेरा चिन्तवन करता रहता हूँ। तेरी सौम्य मूर्ति मेरे मन-मन्दिरमें सदैव तहलका मचाया करती है।

अब तक १०००) तेरे पास भेज चुका हूं। उनमेंसे ८००) तो माता पिता और २००) तेरे हाथ-खर्चके लिये जानना। तू किसी प्रकार चिन्तित न होना। ईश्वरकी कृपा हुई तो तेरा स्वामी इस युद्धभूमिमें यश प्राप्तकर पुनः लौटेगा। वह दिन तेरे सुन्दर सौभाग्यका द्योतक प्रमाणित होगा।

यहाँ मेरे जैसे हजारों ही भाई, जिनके हृदयमें अपने देशके प्रति अटूट श्रद्धा-भक्ति है, महात्मा गान्धीजी, पं० जवाहरलालजी नेहरू आदिके कारावास-में रहते हुए कठिनाइयोंसे लाचार होकर सैकड़ों फ्रंटपर विराजमान हैं। मेरी ही जैसी इनकी भी आत्मकहानी है। यह भी विपत्तिके मारे इसी मार्गका अनु-सरण कर रहे हैं। इनके भी अपने देशके प्रति बड़े ऊँचे विचार हैं। ये कहते हैं कि युद्धमें हम लोग अपना सारा बल और पराक्रम दिखावेंगे। हमारी सरकार हम लोगोंको सान्त्वना दे चुकी है कि हम जीत जायँगे तो तुम्हारे हिन्दुस्तानको स्वतंत्र कर देंगे।

सच पूछो तो यही एक लालसा हम जैसोंको जीवित रख रही है।

प्यारी मानिनी! अभी तेरी जैसी हजारों बहिनोंका सोहाग-सिन्दूर कुछ कालके लिये, शून्य सा है—अतः इसका स्मरण करते हुए तू अपने मनको शान्त रख—ऐसे समयमें धैर्य ही सतीका एकमात्र जीवन और आत्मबल है। विशेष क्या।

मेरे माता-पितासे मेरा सविनय प्रणाम कहना और सभी स्नेही जनोंको नमस्कार व बच्चोंको प्यार। अन्तमें यही कहना है कि मेरे माता-पिताकी शुद्ध हृदयसे सेवा-शुश्रूषा करनेमें भूल न करना।

तुम्हारा—वही बाबूजी

सैनिककी स्त्रीकी चिट्ठी

भीलवाड़ा—
ता० १०-७-४५
रात्रिमे १२ बजे

खत का मजमूँ भाँप जाते हैं लिफाफा देख कर।
खाक ऐसी जिन्दगी कि तुम कहीं औ हम कहीं ॥

प्रियतम !

सप्रेम प्रणाम ! वर्षोंके बाद तुम्हारा एक कुशल-पत्र मिला। उसे पढ़कर मैं स्तब्ध रह गई। अब तक तो मैं अपनेको विधवाओंकी 'श्रेणीमें समझ रही थी। लेकिन तुम्हारे इस प्रेम भरे पत्रके पानेसे मै पुन: अपनेको सौभग्यवती समझने लगी।

अब तक मैं तुम्हारे स्वरूपके चिन्तवन और गुणोके मनन तथा आराधन में अपना समय व्यतीतकर रही थी। आपके चित्रको नित्यप्रति पूजा और अर्चना करना ही मेरे जीवन का एकमात्र ध्येय था। घरके प्राणी तुम्हारे माता-पिता नित्य प्रति यह कहकर मुझे कोसा करते थे कि मेरे घरमें यह

कहाँको चाण्डालिनी बहू बनकर आई कि हमारा एक ही लाडला बेटा एका एक लापता हो गया !

मैं तुमसे सच कहती हूँ कि मैं अपने जीवनसे दिनोदिन निराश होती जा-रही थी। मैं एकान्तमें स्वयं अपनेको धिक्कारती थी कि मेरी जैसीका संसारमे जीना ही कलंककी बात है। परन्तु सबसे बड़ा बल और सन्तोष ईश्वरके चिन्त-वन व तुम्हारे आकार-प्रकारके ध्यानमें मिलता रहा, जिससे कि मैं जीती रह सकी। सभी विघ्न-बाधाओंको आपकी छविका सुन्दर स्मरण करते ही भूल जाती थी, बहुत ही तप और त्यागके पश्चात् युद्धभूमिके काले कोसोंसे यह आकस्मिक पत्र प्राप्त हुआ जिससे तुम्हारे जीवित होनेका शुभ समाचार प्राप्त हो सका। इसके कारण मेरे अशान्त मनको एक प्रकारका धैर्य और उत्साह मिल गया।

यह पत्र क्या ! मेरे लिये तो साक्षात् आपही उसके एक-एक शब्दोंमें विराजमान जान पड़ते हैं। मैं तो नित्य प्रति समाचारपत्रोंमें यह पढ़ती थी कि आज अमुक फ्रॉंटपर इस प्रकार बवार्डमेंट हुआ कि बिलकुल सफाया ह गया। और अमुक स्थान से नर-नारी बच्चे भागकर अन्यत्र रहे थे लेकिन बम गिरा और लोग बिलकुल नष्ट हो गये। कहीं तो हजारों बन्दी बना लिये गये और दुश्मन उन्हे तरह-तरहके कष्ट दे रहे हैं।

इस राक्षसी युद्धने न मालूम कितने नर व नारियोका आनन-फाननमें सदैवके लिये वारा-न्यारा कर दिया।

यह स्मरण करके आपके नामकी माला आज डेढ वर्षोंसे जपती रही थी। क्या वे न आवेंगे—क्या अब उनसे भेंट न होगी ! आज वर्षाकी रातमें बादल गरज-गरजकर उस युद्धभूमिमें बमवर्षाका ही स्मरण दिला रहे हैं। मैं डर रही हूँ। हा नाथ ! हा नाथ ! के सिवाय किसे पुकारूँ ! मेरे तो सर्वस्व देवी देवता तुम्हीं हो। तुम हो तो युद्धभूमिमें पर मैं समझती हूँ कि मेरे पास हो।

अभी गतवर्ष अपने मात-पिताके साथ मैं कलकत्ते गई थी, जब वहाँ बम गिरे थे—उसमें सैकड़ो ही नर-नारी, बूढे बच्चे उसकी आवाज से सिहर गये थे। उसमें मैं भी विरहिणी ब्रजाँगना—मेवाड़की रहने वाली बीररमणीका सा साहसकर दरवाजे पर पड़े हुये ३-४ घायलोंकी कराहना सुनकर उनकी सेवा-शुश्रुषाके लिये बाहर निकल आई। यह कर्तव्य करते हुए हमारे माता-पिता बड़े आश्चर्य में पड़ गये और उनलोगों ने मुझे खींच कर एक ऐसे स्थान में बन्दकर दिया जहाँसे कि कराहने वालो की आवाज मेरे कानों तक न पहुँच सके। अब क्या करूँ।

दूसरे दिन कलकत्ते से भगदड़ मची और मेरे माता-पिता ने हजारों रुपया अतिरिक्त खर्चकर वहाँ से भाग आये। आते समय रेल में वह दुर्गति हुई कि जिस तरह बोरे लाद दिये जाते है—उसी तरह हमलोग भी एक पर-एक लदकर किसी प्रकार सिकुड़े हुए बैठे आये।

कलकत्ते से जब आगे गाड़ी चली-तब एक गर्भवती बहिन जिसके पति भी लड़ाई पर छे महीने से चले गये थे, अपनी सब आत्मकहानी मुझे सुनाने लगी। कलकत्तेके इस हवाई हमले का दृश्य उसकी आँखोंके सामने नाच रहा था। वह घबरा रही थी। गया के पास जिस समय गाड़ी पहुँची, वह बेहोश हो गई कि अपना पराया कुछ भी उसे नही सूझता था। मुगलसराय आते-आते एक बच्चा उसे पैदा हो गया। अन्तमें वही उस स्टेशनपर उतार कर वह वहीके अस्पताल में ले जाई गई और हमलोग कानपुर, दिल्ली, अजमेर होते हुए अपने प्रधान स्थान भीलवाड़े (उदयपुर) पुन. आ पहुँचे।

नाथ! इसी तरह से आज प्राय. दो वर्षके दिन व्यतीत हो गये और मेरी भी अवस्था १७ वर्ष की हो गई। युद्ध! तेरा सत्यानाश हो। तेरे ही कारण मेरी जैसी कितनी ललनाओं के सौभाग्य सिन्दूर सदाके लिये धुल गये। कितनी ही मौतकी घड़ियां गिनने लगीं तथा कितनी ही कटु कर्तव्य के लिये तत्पर होने लगी। तेरे ही कारण देशमें भारी अन्न और वस्त्र का संकट

आ गया। कितनी ही बहनें व भाई भूखके मारे बङ्गाल मे तडप कर मर गये। कितने ही वस्त्र के कष्टसे पीड़ित हो रहे हैं। तूने ही मेरे प्राणनाथ को भी मुझसे दूर लेजाकर फेंका। आन्तरिक क्लेशके कारण अब और कुछ लिखा नहीं जा रहा है।

स्वामी! मेरे पक्षी जैसे पर न हुए, नहीं तो मैं भी उड़कर युद्धभूमिमें आपके पास पहुँचती और कन्धेसे कन्धा लगाकर दोनो ही एक साथ के आत्मोत्सर्ग द्वारा स्वर्ग को जाते।

[एक शुभ संवाद तुम्हें और तुम्हारे सरीखे सभी भाइयोंको भेज रही हूँ]

हमारे हिन्दुस्तान का दिन भी लौट रहा है। हमारी बहिन विजयलक्ष्मी पण्डिता अमेरिकामें अपने देशको किस तरह ऊँचा उठा रही हैं यह तो विदित होगा। उन्हीके ही प्रयत्न से उनके भाई जवाहरलालजी नेहरू, महात्मागान्धी आदि नेता जेलकी चहार दिवारोंसे मुक्त कर दिये गये हैं। श्रीमान् वायसराय आदि बडे-बड़े अधिकारी वर्ग इन नेताओंसे हाथ मिला रहे हैं और स्वराज्य अर्पण करनेको तैयार हैं। अभी कल जो बन्दी थे, आज वही राज्याधिकारी बनाये जा रहे हैं। पं० जवाहरलालजी नेहरू, सरदार बल्लभभाई पटेल, राजगोपालाचार्य, मौलाना अबुल कलाम आजाद, सरोजिनी नायडू, गोविन्द वल्लभ पन्त, अमृतकौर आदि आदि नेता पूर्ण स्वतन्त्रताके लिए कोलाहल मचा रहे हैं। तुम्हारे आते समय तक यह देश शीघ्र ही स्वतन्त्र होगा—ऐसी आशा है। युद्धभूमिसे पीठ दिखाकर न आना नाथ! यही मेरी अभिलाषा है। तुम्हारे माता-पिता और गाँवदेशके लोग आशीर्वाद के पश्चात् तुम्हारे चिरायु होनेके लिये ईश्वरसे प्रार्थना कर रहे हैं।

ॐ शान्तिः ३

दर्शनाभिलाषिणी—
तुम्हारी—मानिनी

नव वधूसे दो बातें

[लेखक—श्री कृष्णदत्त भट्ट संपादक-आज]

(२)

वधूसे दो बातें

देवि,

देख रही हो यह मंगल समारोह। आज तुम्हारे हाथ पीले करके तुम्हारी मां, तुम्हारे भाई बहिन, तुम्हारे अन्य परिजन कितने प्रसन्न हैं। सभीको लगता है कि आज हम बहुत भारीभारसे मुक्त हो गये। सचमुच कन्यादानसे मुक्त होना उतना ही आनन्ददायक है जितना मरुभूमिके निवासीके लिए त्रिवेणी स्नान।

विदाकी वेला

किन्तु यह क्या? दरवाजे पर यह भीड़ कैसी है? वह देखो कोई कह रहा है—जल्दी करो, विदाकी वेला निकली जा रही है! सच तो, इसीकी तो तैयारी हो रही है। यह लो, इस मंगल आयोजनका सबसे करुण पर्व उपस्थित हुआ! विश्वमें बेटीकी विदासे करुण दृश्य शायद ही कोई हो। सभीकी आँखें इस समय गंगाजमुना हो रही हैं।

प्रत्येक बेटी बहूके जीवनमें यह करुण प्रसंग आता है। उस समय दर्शक तककी आँखें गीली हो आती हैं फिर जिनके हृदयकी ज्योति, आत्माका अंश विलग होता है उनकी वेदनाका तो कहना ही क्या! किन्तु, विवशता है।

इसके बिना काम भी तो नहीं चलता। आदिकालसे यही प्रथा चलती आ रही है। इससे छुटकारा कैसा?

आज तुम्हारे सम्मुख भी वही विदाकी वेला उपस्थित है। वेदनाके मारे सभीका हृदय फटा जा रहा है। तुम्हें भी आज कम दुःख नहीं है पर चिन्ता न करो। इसी दिनके लिए तो माता-पिता और भाई बहिन कन्याको पाल-पोसकर इतना बड़ा करते हैं। अब उसे विलग किये बिना उपाय नही है।

तुम जा रही हो। आजसे तुम्हारा इस घरसे नाता टूट रहा है। ये सगे सम्बन्धी, जिन्होंने तुम्हारे लिए जन्मसे आज तक इतना कष्ट उठाया है अब परायेसे हो जायँगे और जिनका कभी तुमने नाम नहीं सुना, जिनके कभी दर्शन नहीं किये, वे ही आजसे तुम्हारे अपने बन जायँगे। कैसा विचित्र विधान है।

पाणिग्रहणकी पुण्यवेलामें जिस सुन्दर युवकने तुम्हें अपनी जीवनसंगिनी-के रूपमें स्वीकार किया है, जिसने तुम्हारे साथ इस पवित्र मण्डप की अग्निकी सात बार परिक्रमाकी है उसके साथ अब तुम्हारी जीवन-रज्जु बंध गया। यह गठबन्धन आजीवन और आजीवन ही क्यों, जन्म जन्मान्तर तक चिरस्थायी रहे, यही हम सबकी मंगल कामना है।

जानती हो, विवाह के इस पवित्र बन्धनने तुम्हारे ऊपर कितना भारी उत्तरदायित्व लाद दिया है। अवश्य ही तुम्हारी अम्मा और भाभीने, बहिनों और सखी सहेलियोंने तुम्हें इसकी गुरुता और गम्भीरतासे अवगत करा दिया है किन्तु उसे तुम भलीभाँति समझ लो। यही हमारी कामना है।

तुम्हारा उत्तरदायित्व

तुमने बाल्यावस्थाके उद्यानसे निकलकर किशोरावस्थामें पदार्पण किया है। अभी तक तुमपर कोई उत्तरदायित्व न था। खाना-पीना, खेलना-कूदना और मौजमस्ती। किन्तु अब वह बात नही रही! अब तुमने कौमरावस्थाका त्याग

कर गृहस्थाश्रममें प्रवेश किया है। इस आश्रमका उत्तरदायित्व अत्यधिक महान् है। उसे भला-भाँति समझना और निभाना तुम्हारा अनिवार्य कर्तव्य है। आज तक तुमने कन्याके रूपमें एक परिवारकी शोभा बढ़ायी है, अब तुम एक दूसरे परिवारमें वधूके रूपमें प्रविष्ट होने जा रही हो। अब केवल एक ही कुलकी लाज नहीं, प्रत्युत दो कुलोंकी लाज तुम्हारे हाथ है। उसकी रक्षा करना, उसकी गौरववृद्धि करना तुहारा परम पवित्र कर्तव्य है और इस कर्तव्य-के पालनमें तुम जितनी सफल होगी तुम्हारा जीवन उतना ही सफल माना जायगा।

नया घर

तुम एक नये घरमें प्रविष्ट होने जा रही हो। अबसे यही तुम्हारा असली घर है। इसे ही अब तुम्हें एकान्त मन और प्राणसे अपना वास्तविक घर सम-झना चाहिये। तुम्हारे नारीजीवनका सर्वोत्तम विकास होगा। तुम इसी घरकी लक्ष्मी, इसी घरकी सीता, इसी घरकी सती और इसी घरकी सावित्री हो। इस घरको पाकर तुम और तुम्हें पाकर यह घर कृतकृत्य हो उठा है। इसकी शोभा और सौन्दर्य, इसकी महत्ता और गौरव, इसकी लज्जा और मधुरिमा—सब कुछ तुमपर अवलम्बित है। इस सूखेसे वृक्षमें जीवनदान करने, इसकी मुरझायी शाखाओंमें अमृतवारिका सिंचन करके इसके सिकुड़े पत्तोंमें नवरसका संचार करनेके लिए ही तुमने यहाँ पदार्पण किया है। इसको सँभालना, इसको सजाना इसकी श्री-वृद्धि करना इसमें नित नूतन किसलयोंको जन्म देना ही तो तुम्हारा कर्तव्य है। इस पुष्पवाटिकाको गुलाब और केसर, चम्पा और चमेली, बेला और जुहीके सुन्दर और मनोरम पुष्पोंसे पुष्पित करने और इनकी मनोमोहक सुगन्धसे दिग्दिगन्तको व्याप्त करनेका अनुपम, मनोमुग्धकर और पवित्र उत्तरदायित्व तुम्हारा ही है। इसे समझो और इसके अनुकूल कार्य कर अपना जीवन सफल बनाओ।

नये परिजन

तुम देखती हो कि अपने घर तुमजैसी स्नेहमयी मां, बहिन, भाभी, सखी-सहेली छोड़ आयी हो–इस घरमें तुम्हें वे ही सब नये आकारमें, नये रूपमें मिल गयी हैं। माता और पिता, भाई और बहिन, चाचा और चाची, सभी तो यहाँ उपस्थित हैं। एकसे एक स्नेहशील और कर्तव्यपरायण। तुम्हारे सगे सम्बन्धियोंने तुम्हारे मायकेमें जिस भाँति तुमपर आज तक अनन्रत स्नेहवर्षाकी है उसी भाँति इन नये परिजनोंने तुम्हारे पतिपर उनके जन्मसे आजतक स्नेह बिखेरा है और उन्हें पाल-पोसकर इतना बड़ा किया है। बात एक ही है। समझने भरकी देर है। तुम देखोगी कि पलभरमे ही साराका सारा बातावरण तुम्हारे मनोनुकूल हो गया है। घरकी बेटीपर जिस भाँति सभी लोग स्नेहकी असीम वर्षा करते हैं उसी भाँति तुमपर—अपनी बहूपर। सास और ससुर, जेठ और जेठानी, ननद और देवर सभी तो तुमसे परिचित होनेको उत्सुक हैं। जिस भाँति तुम्हारी अम्माने लड़की देकर लड़का पाया है, उसी भाँति यहाँपर भी तो लड़का देकर लड़की मिली है। विवाहके पवित्र सूत्रने इस परिवारके जीवनमे नवरसकी सृष्टिकी है, आनन्द और सुखकी मन्दाकिनी प्रवाहित की है। बहूका मुख देखनेके लिए वर्षोंसे तरसनेवाले इस परिवारकी कामना आज कहीं जाकर सफल हुई है। अतः सभी प्रसन्नतासे ओतप्रोत हैं। तुम्हारा मुख देखनेके लिए जो यह आगन भरा है उसमें तो सभी तुमपर आशीर्वादकी वर्षा कर रहे हैं। तुम जैसे ही किसीका चरणस्पर्श करती हो वैसे ही उसका रोम-रोम पुकारता है—'दूधों नहाओ, पूतों फलो।'

सेवा और सत्कार

अम्मा तथा घरकी तुम्हारी बहिनों और भाभियो आदिने तुम्हें भली भाति समझा दिया है कि ससुरालमें तुम्हारा कर्तव्य क्या है। यहाँ तुम्हें कैसे

रहना है कैसा व्यवहार करना है। फिर मैं और क्या बताऊँ ? तुम स्वयं समझती हो अपने महान उत्तरदायित्व को। ऐसा करो कि तुम्हारे मधुमय और कुशल व्यवहार से सभी घरवाले प्रसन्न हो जायं। सेवा और सत्कार उसका मूलमन्त्र है। जिस मनोहर युवकने तुम्हे अर्द्धांगिनीके रूपमें स्वीकार किया है उसके परिवार वाले उससे और तुमसे यही आशा और अकांक्षा रखते हैं कि तुम दोनों उनकी भरपूर सेवा करोगे जिससे उनका जीवन सर्वदा सुख और आनंदसे बीतेगा। इस घरमें अपना जीवन सार्थक करनेका एकमात्र उपाय यही है कि तुम सेवा और सत्कारको अपने जीवनका अग बनालो। बड़े बूढ़ोंकी सेवा, उनका आदर, उनकी प्रत्येक अवश्यकताका ध्यान—छोटोंसे स्नेह और दुलार—तुम्हे सिखाने की आवश्यकता नहीं। वह तो तुम्हारी नसनस में समाया है। अभी तक वह परिचितोंमें बिखरा था अब उसे इन अपरिचितोंपर बिखेरना है। दो एक दिनको ही तो ये लोग तुम्हारे लिए अपरचित हैं, फिरतो सभी तुमसे उसी भाति हिल मिल जायँगे जिस भाँति घरके अन्य प्रणियोसे हिले मिले हुये हैं।

मीठी बोली

कोयलकी 'कूऊ' तुमने सुनी है। बचपनमें उसे बोलते देख तुम शायद उसे 'कूऊ' 'कूऊ' कहकर चिढ़ाती भी रही हो। आज उस 'कूऊ' की तुम्हें व्यावहारिक शिक्षा लेनी है। उसकी बोलीमें जो अमृत घुला है वही अमृत तुम्हें इस घरमें, इस परिवारमें इस गांव या नगरमें चारों ओर बिखेर देना है। इस अमृत द्वारा, इस अनुपम अस्त्रद्वारा संसारका कोई भी व्यक्ति चुटकी बजाते वशमें किया जा सकता है। इस बातको तुम कभी न भूलो। स्मरण रखो कि तुम इस घरकी रानी हो, इस परिवारकी लक्ष्मी हो। इस पद और गौरवकी रक्षाके लिए जिस वस्तुकी सबसे अधिक आवश्यकता है वह है यही—मीठी बोली। जिस व्यक्तिके भी सम्पर्कमें आनेका तुम्हें अवसर मिले उससे तुम

मीठी बोली बोलो। कोई दो कड़वी बातें भी कह जाय तो तुम उसका उत्तर मीठे शब्दोंमें दो। कोई चार गालियां भी सुना दे तो हँसकर उन्हें भुला दो और जब कभी किसीसे मिलने अथवा बात करनेका अवसर मिले तो मीठे से मीठे शब्दोंमें ही हृदयका भाव प्रकट करो। छोटे और बड़े, बालक और वृद्ध सभी मीठी बोलीका लोहा मानते है। अत तुम आरम्भसे ही इस विषयमें सावधान रहो और इस अनुपम अस्त्रका प्रयोग करो। तुम देखोगी कि इसमें जादू कासा असर है। कहा ही है कि —

कागा काको धन हरै कोयल काको देय।
मींठो बचन सुनायके जग अपनो करि लेय॥

सद्व्यवहार

घर-बाहर चाहे जो स्थान हो जिस किसी व्यक्तिसे काम पड़े उसके प्रति यदि सद्व्यवहार किया जाय तो लाभ ही लाभ है। इसमें खर्च कुछ नहीं होता और मिलता बहुत कुछ है। गृहस्थजीवनमें सफलता-प्राप्तिके लिये प्रेम पूर्ण सद्व्यवहार परम आवश्यक वस्तु है। अत· सद्व्यवहारका मूल्य नही आका जा सकता। तुम्हें अपनी ससुरालमें सद्व्यवहारकी जीवित जागृत प्रतिमाके रूपमें निवास करना है। कोई तुमसे दुर्व्यवहार भी करे तो तुम उसके प्रति सद्व्यवहार ही करो, तात्पर्य यह कि जो कोई भी व्यक्ति तुम्हारे सम्पर्कमें आये वह तुम्हारे सद्व्यवहारसे ऊपरसे-नीचे तक शराबोर हो जाय। इसीमें तुम्हारे जीवनकी सार्थकता है।

पाक शास्त्रमें निपुणता

यद्यपि तुम्हारे मायकेवालोंने तुम्हें पाकशास्त्रकी पर्याप्त शिक्षा दी है तथापि वहां तुम्हें अपनी कलाका विकास करनेका अवसर नहीं मिला है। यहाँ, ससुरालमे तुम्हें उसके लिए पूरा-पूरा अवसर है। यदि तुममें अबतक इस कलाका भली भांति विकास नहीं हो पाया तो तुम बिना झिझकके अपनी नय

मां, चाची, जेठानी अथवा बड़ी ननदसे उसका समुचित ज्ञान प्राप्त कर लो। इसमें लेशमात्र भी ढिलाई करना बुरा है। पाकशास्त्रकी कलामें तुम्हें इतना पारंगत हो जाना है कि जो व्यक्ति एक बार तुम्हारे हाथकी रसोई खा जाय वह बार बार इस बातके लिए इच्छुक रहे कि एक बार और उसे तुम्हारी बनायी रसोई जीमनेको मिले। घरमें तुम पता लगा कर देख लो कि घरके किस सदस्यको कौन वस्तु विशेष रूपसे प्रिय है। उसके लिए वही वस्तु तैयार करो। सबको समयसे उत्तम, स्वादिष्ट और रुचिकर भोजन कराओ। बच्चों और वृद्धोंका सबसे पहले ध्यान रखो। घरमें यदि कोई अस्वस्थ पड़ जाय तो उसके लिए सब काम छोड़कर पथ्य तैयार रखो। सबको प्रेमपूर्वक परसते हुये तृप्तिदायक भोजन कराओ। स्मरण रखो कि इस भांति प्रस्तुत किया हुआ भोजन अमृतमय होता है और उसे ग्रहण करनेवाले सभी व्यक्ति स्वास्थ्य और आनन्द की अनुभूति करते हैं। घरमे यदि कोई अतिथि अथवा कोई भिक्षुक आ जाय तो उसको भी पहले ही प्रेमपूर्वक भोजन कराना तुम्हारा ही कर्तव्य है। पाकशास्त्रमें तुम जितनी निपुणता प्राप्त करलोगी घरमें तुम्हारा आदर और सम्मान उतना ही अधिक बढ़ जायगा।

परिश्रम

एक कहावत है कि 'आदमीका काम प्यारा होता है, चाम नहीं।' तुम्हें इसे गाँठ बाँध लेना चाहिये। घरमें काम कम करनेवाले चाहे जितने व्यक्ति हों, चाहे जितने नौकर हों किन्तु तुम्हारा कर्तव्य यह है कितुम एक क्षणके लिये भी आलस्य न करो। तुम्हे १५ वर्षपूर्वकी एक घटना सुनादूँ। पूज्य पिताजीके देहान्तका समाचार पाकर उनकी वृद्धा बहिन मेरी बड़ी बुआ हमारे शोकमें हिस्सा बटाने घर आयी। उनके चीत्कारसे घरकी दीवालें दहल उठीं। पर आने की देर नहीं कि उन्होने आँसू पोंछ डाले और जुट

गयीं घरका सारा अस्तव्यतस्त सामान उठाकर एक क्रमसे सजाने। मैं तो देखकर दंग रह गया। ऐसी होती हैं कुशल गृहिणी! हृदय दुःखसे जर्जर है। पर कठोर कर्तव्य सम्मुख है। उसकी अवहेलना नहीं की जा सकती। इस आदर्शसे शिक्षा लो। पलभरके लिए कभी बेकार न बैठो। रातदिन परिश्रममें लगी रहो कोई न कोई काम करती रहो। घरमें असंख्य कार्य हैं तुम्हारे जिम्मे। उनमें अपनेको इतना खपा दो कि बेकार रहनेका अवसर ही न आये। यह परिश्रम आगे चलकर तुम्हारे बड़ा काम आयेगा। इससे तुम्हारा उदाहरण घर, परिवार, आस-पास-पड़ोस, और मुहल्ले भरमें आदर्शका काम करेगा। तुम्हारे घरकी परम्परामें, तुम्हारे घरकी संस्कृतिमें, तुम्हारे परिवारकी ख्यातिमें उससे चार चांद लग जायँगे। यह गौरव तुम्हारा, तुम्हारे परिवारवालोंका रोम-रोम प्रसन्नतासे भर देगा। इसमें लेशमात्र भी सन्देह नहीं।

प्रसन्नता

तुमने हँसते हुए पुष्प देखे हैं, हँसते बालक देखे हैं। तारोंसे हँसती हुई रजनी देखकर अनिर्वचनीय आनन्द प्राप्त किया है। अत. प्रसन्नताकी महत्तासे तुम भलीभाँति परिचित हो। स्मरण रखो कि जीवनमें प्रसन्नताकी अनिवार्य आवश्यकता है। एक मुसकराहट असंख्य मुसकराहटोंको जन्म देती है। प्रसन्न-वदन देखकर दूसरोंकी तबीयत भी प्रसन्न हो उठती है। जिनके चेहरों पर सदा ही मुहर्रमीपन या मनहूसियत टपका करती है, वे जीवनके किसी क्षेत्रमें सफल नहीं होते। हँसना मुसकराना और प्रसन्न होना जीवनमें सफलता पानेके लिए जितना आवश्यक है, स्वास्थ्य-सुधारके लिए भी उसकी उतनी ही आवश्यकता है। अतः तुम जहाँ तक बने सर्वदा प्रसन्न रहनेकी आदत डालो। कष्ट और मुसीबतोंमें भी हँसती-मुसकराती रहो। तुम देखोगी कि इससे तुम्हारे कष्टका भार देखते-देखते मिनटोंमें हलका हो जाता है जब कि रोनेधोनेसे उसका भार असंख्य गुना बढ़ता-चला जाता है। घर-बाहर जब जहाँ जिस किसीसे मिलो, जिस किसीसे बात करो मुसकराते हुए करो। देखोगी कि इससे

तुम्हारे और तम्हारे परिवारके जीवनमें कितना अधिक मधु घुल जाता है। प्रसन्नताकी प्राप्तिके लिऐ, जी खोलकर हँसने और प्रसन्न होनेके लिए तुम्हें अपना हृदय उज्ज्वल बनाना होगा। ओछी मनोवृत्तियोंको अपने समीप भी न फटकने देना होगा। व्यंग, ताना, निन्दा, तिरस्कार, क्रोध, ईर्ष्या, आदि दुर्गुणोंको दूरसे ही नमस्कार करना होगा। मन ही मन कुढने और हृदयमें दूषित वृत्तियोंको स्थान देनेकी बात कभी भी न सोचो। तभी और केवल तभी तुम स्वयं भी प्रसन्न रह सकोगी और दूसरोंको भी [illegible] [illegible]नेमें समर्थ हो सकोगी।

सफाई और सुरुचि

घर-गृहस्थीमें सफाई और सुरुचिकी परम आवश्यकता है। तुम्हारे घरका कोना-कोना साफ हो, प्रत्येक वस्तु करीनेसे, ढंगसे सजी सजायी हो, तुम्हारे अंग प्रत्यंग साफ हों, स्वच्छ हों, तुम्हारे वस्त्र साफ हो, सुरुचिपूर्ण ढंगसे तुम उन्हें पहने हो, घरके बच्चोको तुमने साफ रहनेकी शिक्षा दी हो, मन, वचन और कर्मसे तुम निर्मल और निष्कलंक हो—यह जीवनकी सबसे बड़ी सार्थकता है। सफाईके असंख्य लाभ हैं। सफाईके असंख्य गुण हैं। उनका अनुभव सफाईकी ओर सर्वदा ध्यान रखनेसे ही तुम्हें होगा। सफाईकी ओर समुचित ध्यान दिये विना तुम यदि चाहो कि सफल गृहिणी बन सको तो यह सर्वथा असम्भव है। सफाई और सुरुचिके अभावसे फूहडपनका कलंक लगता है जो किसी भी स्त्रीके लिए परम लज्जाजनक है। इसकी ओरसे सदैव सावधान रहनेकी आवश्यकता है। घर-बाहर, भोजन, वस्त्र, गहना, कपड़ा, बर्तन, भांडे, सबमें सफाई रहनी चाहिये। तभी सब लोगोंका चित्त प्रसन्न रह सकता है, स्वास्थ्य उत्तम रह सकता है और घरमें सद्गृहिणी होनेकी अनुभूति हो सकती है।

कला-कौशल

प्रत्येक सुगृहिणीको कलाकौशलमें पारंगत होना चाहिये। सीना-पिरोना, कसीदा, कताई, रंगाई, संगीत, वाद्य आदि नाना भाँतिकी कलाओंमें जो नारी

जितनी ही कुशल होती है घर परिवार, पास, पड़ोस, टोले, मुहल्लेमें उसका उतना ही अधिक आदर किया जाता है। अपने यहाँ पुरातनकालसे ६४ कलाओंमे नारीके निपुण होनेपर जोर दिया जाता रहा है पर आज तो इन ६४ मे से १०, १५ कलाओंमें भी प्रत्येक नारी कुशल नहीं होती। तुम्हें भाँति-भाँतिकी कलाओंमें दिन-दिन निपुणता प्राप्त करनी चाहिये। इससे केवल तुम्हारा ही नहीं तुम्हारे सम्पर्कमे आनेवाले प्रत्येक व्यक्तिका लाभ है।

दया और उदारता

नारी तो जन्मजात दया और उदारताकी मूर्ति है। किसीका कष्ट उससे देखा नहीं जाता। उसका कोमल हृदय साधारणसे साधारण घटनाओंको देखकर द्रवित हो उठता है और वह कष्ट पीड़ितकी सहायता करनेके लिए, उसे सुख पहुंचानेके लिए कातर और उत्सुक हो पड़ती है। उसकी यह मनोवृत्ति परम श्लाघनीय है। इसीलिए तो पुरुष चिरकालसे उसकी पूजा करता आया है। दया और उदारताकी यह देवी आज पुरुषके ही अधःपात तथा कुसंस्कारके कारण स्वार्थमें लिप्त होकर अपना कर्तव्य भूलसी बैठी है। यह उसके लिए परम लज्जाकी बात है। तुम अपनी इस परम पवित्र मनोवृत्तिको सदा ही विकसित और पल्लवित करती रहना। कभी भूलकर भी क्षुद्रभावनाको, स्वार्थपूर्ण मनोवृत्तिको हृदयमें स्थान न देना। स्वयं कष्ट सहकर भी दूसरोंको सुखी करना, उनकी सेवा करना; यही तुम्हारा परम. पवित्र कर्तव्य है। ईश्वरचन्द्र विद्यासागरका नाम तुमने सुना होगा। एकबार जाड़ेसे बुरी भाँति ठिठुरती, फटे चीथड़े लपेटे और एक नंगे बालकको गोदीमे दबाये एक दरिद्र स्त्रीने आकर उनकी मासे प्रार्थनाकी —'माँ' मुझे कोई वस्त्र दो, अन्यथा मैं इस भीषण सर्दीमें मर जाऊँगी और मेरे साथ ही मेरा यह बच्चा भी मरे बिना न रहेगा।' माँका परदुःखकातर हृदय विचलित हो गया। भीतरसे वे एक नयी रजाई उठा लायी और वह उसे दे डाली। सोचनेकी बात है कि उनके पास केवल वही एक रजाई थी। उसके अभावमे वे स्वयं जाड़े भर कष्ट

भोगती रहीं परन्तु उन्हें सन्तोष था कि उनकी रजाईसे एक दरिद्र स्त्री और उसके बच्चेकी शीतसे रक्षा तो हुई। आशा है कि तुम इस उदाहरणको सदा स्मरण रखोगी। और स्वयं कष्ट झेलना स्वीकार करके भी दूसरोंका कष्ट मिटाने से कभी पीछे न हटोगी।

घरका प्रबन्ध

कुशल गृहीणी बननेके लिए, गार्हस्थ-धर्मका पूरा-पूरा उत्तर दायित्व निभाने के लिए तुम्हें जिस बात की ओर मुख्यतः अपना सारा ध्यान केन्द्रित कर देना होगा वह है—घरका प्रबन्ध। घर की सुव्यवस्था करना, परिवारके प्रत्येक प्राणीकी आवश्यकताओंका पूरा ध्यान रखना, बच्चोंसे लेकर वृद्धों तक प्रत्येक को प्रसन्न और सन्तुष्ट रखना, किसीको किसी भी वस्तु का अभाव न खलने देना, सबकी समुचित सेवा करना, आयव्ययका सन्तुलन रखना, भोजन वस्त्र तथा अन्य आवश्यक खर्चोंमें मितव्ययिता का पूरा ध्यान रखना, हाथ रोककर व्यय करना तथा अनावश्यक वस्तुओं पर पैसा खर्च न होने देना, समय से फसलपर किफायत से अनाज लेकर रखना, कोई भी वस्तु नष्ट न होने देना, दान, धर्म, अतिथि-सत्कारमें अपनी हैसियतका ध्यान रखते हुए खर्च करना, यात्रा, तीर्थ, विवाह-शादी, यज्ञोपवीत, रोग-बीमारी, मृत्यु, तथा-अन्य आकस्मिक अवसरो के लिए सदा कुछ न कुछ बचाकर रखना परम आवश्यक है। किन्तु इसका अर्थ यह भी नहीं कि कंजूसीकी बान डाली जाय। करना केवल यह है कि व्यर्थकी वस्तुओंपर अपव्यय न किया जाय। जिस वस्तु के बिना काम चल सकता हो उसे न खरीदा जाय। जहाँ एक पैसे से काम चल सकता हो वहाँ व्यर्थकी वाहवाहीके लिए चार पैसे न खर्च किये जायँ। परन्तु रोग-बीमारी, सफाई, स्वास्थ्य आदि के लिए आवश्यक खर्चमें कमी करना-अधिक खर्चको निमन्त्रण देना है। घर गृस्थीके प्रबन्धमें ये सभी बातें आ जाती हैं। मकानकी मरम्मत, नया मकान बनवाना, सगे सम्बन्धियों और हित-मित्रोंके यहाँ उपयुक्त उपहार भेजना, अतिथियों की समुचित सेवा

करना, नौकरोंके कार्यकी ओर समुचित ध्यान देना, बाल-बच्चोंकी देखभाल करना, उनकी पढ़ाई लिखाई, शिक्षा दीक्षाकी उपयुक्त व्यवस्था करना घरके सभी प्राणियोंमें पारस्परिक प्रेमकी वृद्धि करना आदि असंख्य बातें हैं जो इस परिधि में आती हैं। तुम्हें सबकी ओर पूरा ध्यान देना होगा। तभी तुम अपने गृहिणी पदको सार्थक कर सकती हो। मनु महाराजके इस उपदेशको तुम्हें गाँठ बाँध लेना चाहिए—

सदा प्रहृष्टया भाव्यं, गृहकार्येषु दक्षया।
सुसस्कृतोपस्करया, व्यये चामुक्तहस्तया॥

अर्थात् 'गृहिणी सदैव प्रसन्नचित्त और गृहस्थीके कार्योंमें दक्ष रहे। घर का सारा सामान ठीक रखे तथा खर्च करने में अपना हाथ दबाये रहे।'

आकांक्षाओंका दमन

गृहिणीका उत्तरदायित्व अत्यन्त महान है। और जो महान् है उसे त्याग करना ही पड़ता है। त्याग और बलिदान ही तो महत्ताका मूलमन्त्र है। तुम्हें अपने इस कर्तव्यको भली भाँति समझ लेना होगा। घरके सभी प्राणी तुमपर आश्रित है। उनकी देखभाल, उनका हितचिन्तन करनेके लिए तुम्हें अपने व्यक्तिगत स्वार्थोंको अहर्निश बलि देनी पड़ेगी, अपनी आकांक्षाओंका दमन करना पड़ेगा। तुम्हें देखना होगा कि घरके और व्यक्ति तुमसे पहले सभी सुख-सुविधाओंका उपभोग करलें उसके बाद तुम्हारा नम्बर रहे। रानी हो न तुम। सबको खिलाकर खाना, सबको पहनाकर पहनना, सबको प्रसन्न रखकर प्रसन्न होना ही तो तुम्हारा आदर्श है। गृहस्थ धर्मकी नाव तो तुम्हींपर है। इस लिए तुम्हें पृथ्वीकी भाँति सहनशील, आकाशकी भाँति व्यापक और समुद्रकी भाति गम्भीर बनना पड़ेगा। अपनी आशाओं और आकांक्षाओंको परिवारके अन्य सदस्योंके निमित्त बलि चढ़ा देना होगा। ऐसा करनेपर तुम्हें जो आत्मसन्तोष

प्राप्त होगा, जिस महान सुखकी अनुभूति होगी उसकी तुलना नहीं की जा सकती। उस अनिर्वचनीय आनन्दको पाकर ही तो गृहिणी का जीवन सार्थक और सफल होता है। त्यागके इस पवित्र मार्ग द्वारा ही तुम्हारा भावी जीवन सुखरित होगा और उससे तुम्हारे सम्पर्कमे आनेवाला प्रत्येक व्यक्ति तुम्हे पाकर कृतकृत्य हो उठेगा।

पतिसे एकाकार

दो बातें और। ये सब बातें तो हुईं घर गृस्थीके बारेमें, अब कुछ बातें उसके सम्बन्धमें भी समझ लो जिसके जीवन को उससे उच्चतर और उच्चतरसे उच्चतम उठाने के लिए यह सारा विराट आयोजन हुआ है। तुमने पाणिग्रहण की पुण्यवेलामें जिस युवक के साथ अपना जीवनहार गूंथा है उसके प्रति भी तो तुम्हारा कुछ कर्तव्य है। उस युवकने अपने सुख-दु.ख की संगिनी के रूप में ईश्वर, अग्नि और वेदमन्त्रोको साक्षी देकर तुम्हें ग्रहण किया है। तुम्हारा कर्तव्य है कि तुम उसे हृदयके निगूढतम प्रदेशमें 'अपना' बना लो और स्वयं 'उसकी' बन जाओ। उसके स्वरूप में एकाकार होना, उसके अस्तित्वमें अपना अस्तित्व डुबो देना, उसे छोड़कर संसारके किसी भी पदार्थ की आकांक्षा न करना, उसके सुख-दुःखको अपना सुख दु ख समझना, उसके माता-पिताको अपना माता-पिता समझना, उसकी रुचिमें अपनी रुचि विलीन कर देना, उसके आदर्शों में अपना आदर्श लयकर देना, तुम्हारा अनिवार्य कर्तव्य है। उसके हृदयका रोम-रोम तुमसे प्रेम करनेके लिए व्याकुल है, इसका प्रत्युत्तर तुम्हें देना है। तुम आत्मसमर्पण और एकान्त हृदयसे उसे स्वीकार करके ही अपना जीवन सार्थक कर सकती हो। सती पार्वती, सीता, सावित्री आदि पुण्यश्लोका नारियों का आदर्श तुम्हारे सम्मुख है। तुम भी उन्ही महादेवियों की श्रेणीमे पहुँच सकती हो। अभी कुछ ही दिन पूर्व माता कस्तूरबाका देहावसान हुआ है। वे सर्वथा अशिक्षित महिला थीं परन्तु उनके आदर्श जीवन से गाँधी जी संसार के सर्वश्रेष्ट महापुरुष बनसके। उनको

इतना ऊंचा उठाने में 'महात्मा' और जनता का सर्वप्रिय नेता बनानेमें जितना अधिक हाथ कस्तूरबा का था उतना और किसी का नहीं! इस युगका यह उज्ज्वल उदाहरण तुम्हारे सम्मुख है। तुम भी इसी भांति अपने पतिमें अपने को लय कर दो, उनकी रुचिमें अपनी रुचि विलीन कर दो, उन्हें सदा सर्वदा सत्पथपर आरूढ रखो, कुपथपर जाने से उन्हें बलपूर्वक रोको, उनकी प्रत्येक आवश्यकताको पूरा ध्यान रखो, उनकी सेवा और शुश्रूषामें अपना अहोभाग्य समझो, वे यदि कभी भूल करें तो उन्हें प्रेमसे समझाओ, क्रोध करें नम्रतासे शान्त करो, अन्याय करें तो उन्हें कुशलतासे रोको, हताश हों तो ढाढस बंधाओ। उन्हें आगे बढ़ाना और उनके साथ-साथ स्वयं आगे बढाना, उनका और अपना जीवन उत्तरोत्तर उन्नतकरना और मानव जीवनके चरम लक्ष्यकी ओर अग्रसर होना तुम्हारा अनिवार्य कर्तव्य है। अपनी शिकायतें उनके सामने रखना, कोई भी बात उनसे न छिपाना तथा हृदयका सारा प्रेम उनके चरणोंपर उड़ेल देना, तुम्हारे जीवनकी सार्थकता का रहस्य है। तुम यदि अपने कर्तव्य के पालनमें सदा जागरूक रहोगी, प्रेम, नम्रता, सद्व्यवहार सदाचार आदि गुणोंको विकसित करती चलोगी तो तुम्हरा दाम्पत्य जीवन दिन दिन सुखमय होता चलेगा, इसमें लेशमात्र भी सन्देह नहीं। और जहाँ सुखमय दाम्पत्य जीवन है वहा स्वर्ग भी फीका लगता है। कहा ही है—

सतुष्टो भार्यया भर्ता, भर्त्रा भार्या तथैव च।
यस्मिन्नेव कुले नित्यं, कल्याण तत्र वै ध्रुवम्॥*

—मनुस्मृति

मंगलमय प्रभु तुम्हारा कल्याण करें।
'अचल होइ अहिवात तुम्हारा। जब लगि गंग जमुन जल धारा॥'

—:०:—

*जिस कुलमें पत्नी और पति दोनों एक दूसरेसे सन्तुष्ट रहते हैं, उसी कुलका कल्याण होता है।

साहित्य में प्रेम-संदेश

[लेखक—श्री महावीरसिंह गहलोत एम० ए०, जोधपुर]

प्रेमीगण अपने संदेश समय पड़नेपर केवल संकेतों द्वारा भी व्यक्त करते हैं। इन संकेतों में उनके लिए माधुर्य भरा होता है पर अजान, व्यक्तियोंके लिए, वे बहुधा निरर्थक ही होते हैं। प्राचीन भारतके कला विलासमें पोटली-संकेत, ताम्बूल-संकेत आदिका व्यवहार होता था। प्रेमीगण अपना संदेश भेजते तो अदृश्य स्याही और संकेत-लिपि का सहारा लेते। अक्षरमुष्टिका (अक्षर-मुद्रा) और म्लेच्छितविकल्प (गूढ-लेखन) के विकास तथा प्रयोग का श्रेय हमारे भारतको ही है। पर धीरे-धीरे ये सब कलाएँ विदेशियोंके निरन्तर आक्रमणोंके कारण लुप्त हो गईं और इनका वर्णन ही हमारे साहित्यमे बच गया है।

विप्रलम्भ शृंगारमें हिन्दी कवियों ने संसारके सभी कवियोको पीछे छोड़ दिया है। उन्होने इसे इतना सवाँरा कि वह अद्भुत होते-होते कुछ रहस्य-मय होकर साधारण समझसे परेकी वस्तु बन गया है। जन सामान्यमें इस कूट काव्यकी अवहेलना होती रही पर राजदरबार तथा शासकोंके यहाँ इसका पूरा सम्मान रहा। आज भी साहित्य का मर्मज्ञ और काव्यकलाका कोविद इस कूट काव्यमें वर्णित संदेशोंका अर्थ लगा सकता है।

प्रेम संदेश केवल पत्रों द्वारा ही नहीं भेजे जाते हैं। कभी-कभी वे शारीरिक संकेतों द्वारा भी प्रकट किए जाते हैं। महाकवि विहारीकी नायिका, गुरु-जनोंसे भरे भवनमें भी, अपने प्रियसे प्रेम-वार्त्ता बड़ी चतुराईसे नेत्रों द्वारा कर लेती है—

कहत नटन, रीझत, खिझत, मिलत, खिलत, लजियात।
भरे भौन में करत हैं नैननु ही सब् बात॥

भावार्थ—नायकके प्रेम प्रस्तावको जानकर,वह नायिका नटने (मना करने) लगी। इस मुद्राको देखकर नायक रीझ गया। नायकको प्रसन्न हुआ देखकर नायिका खीज गई। दोनोंके नेत्र मिलकर प्रफुल्लित हो गये,और नायिका शर्मा गई। इस प्रकार गुरुजनोंके मध्यमें नेत्रों द्वारा ही सब प्रेम-व्यापार घट गया।

अवसरकी पूर्ण अनूकूलता न देखकर प्रेमीगण अपना संदेश अन्य प्रकार-से भी व्यक्तकर सकते हैं। बिहारी की पटु नायिका मान तजकर, सूर्यास्तके समय मिलनेका संदेश किस विचित्रतासे प्रकट करती है—

लखि गुरुजन बिच कमल सौं सीसु छुवायौं स्याम।
हरि-सन्मुख करि आरसी हियैं लगाई बाम॥

भावार्थ—श्यामने मानिनी राधाको मनानेके लिए; एक कमलके पुष्पसे अपना मस्तक छुवाया (अर्थात्—हे! राधा तुम्हारे चरण कमलों पर मस्तक नवाता हूँ) यह देखकर राधा पसीज गई और प्रत्युत्तरमें उसने आरसी (दर्पण) को सूर्य की ओर करके अपने कुचोंसे लगाली (अर्थात्—हे! श्याम जब सूर्य पर्वतोंमें छिप जायगा (सूर्यास्त होगा) तब आऊँगी।

यह प्रत्यक्ष प्रेम-चर्चा तो तब होती है जब कि नेत्रोन्मिलनका अवसर हो अन्यथा प्रेमीगण अपना संदेश पत्रों द्वारा भेजते हैं। पत्रों पर शब्द न लिखकर केवल चित्र मात्र बना देते हैं, जिनका कि अर्थ बहुत ही गोपनीय होता है। हिन्दी साहित्यमें चित्र-लिपिका प्रयोग बहुत स्थानों पर विभिन्न प्रसंगों में हुआ है। उनकी ओर बहुत ही कम जिज्ञासुओंका ध्यान गया है। काशी नरेशके आश्रित प्रताप कवि ने सूक्ष्म अलंकारमें इस चित्र-लिपिका प्रयोग किया है—

भानु सामुन्हें कुमुदिनी लिख भेजी वह नारि।
हरि मुसकाय जु भानु पै दियौ सबिंदु बिचारि॥

भावार्थ—एक पत्रमें राधा सूरज और उसके सामने कुमुदिनीका चित्र बनाकर भेजती है। कृष्ण पत्रको देखकर मुस्काते हैं और सूरज पर एक बिंदु बनाकर उत्तर भेज देते है।

गूढार्थ—राधाने सूरजके सामने कुमुदिनी बनाकर, अपनी इच्छा मिलनेकी प्रकटकी, तो कृष्ण ने सूरज पर बिंदू लगाकर, अर्थात् अंधकार (रात्री) मे मिलनेको कहा।

कूट दोहाकार जमालुद्दीनकी नायिका भी अपमे पत्रमें चित्र लिपिका प्रयोग करती है—

चम्पा हनुँमत रूप अलि, ला अच्चर लिखि वाँम।
प्रेमी प्रति पतिया दियो, कह जमाल किहिकाम॥

जमाल रसिकोंसे पूछता है कि प्रेमीको पत्रिकामें इस स्त्रीने चम्पा, हनुमान और भौरेकी आकृति बनाकर, 'ला' अच्चर लिखकर क्यों दिया ?

गूढार्थ—परिस्थितिवश नायक और नायिकाकी दशा चंपा और भौंरेकी सो हो गयी है। उन दोनोंका संयोग नहीं हो पाता है। इसपर आकृति लेखन द्वारा वह चपा (स्त्री) हनुमान (दूतके रूपमें सन्देशा ले जानेवाला जानकर) भौरे (प्रेमीके पास सन्देश भेजती है कि मुझे मिलनेको लालसा) है।

'ला'का अर्थ यहाँ लानेका भी हो सकता है। मानो दूतमे कहती है कि तू जाकर मेरे प्रेमी (भौंर) को ला।

चित्रलिपिका प्रयोग संदेश व्यक्त करनेके अतिरिक्त नायिका अपने भाव प्रकट करनेमें भी लाती है। पाठकोंके मनोरञ्जनार्थ हम जमालुद्दीन के दो दोहे देते है, जिनमें कि नायिका सूर और जायसी की विरहिणी नायिकाओंकी भाँति चित्र बनाकर अपना दुख दूर करना चाहती है—

वायस, राहु, भुजङ्ग, हर लिखित बाल तत्काल।
फिरि मेटति, फिरि फिरि लिखित, कारण कवन जमाल॥

वह नायिका कौए, राहु, सर्प और शङ्करका चित्र बनाती और मिटा देती है, और फिर न मालूम क्यों बनाती है।

गूढार्थ—विरहिणी कोयलको डरानेके हेतु कौआ, चाँदनीसे दुःखित होकर चन्द्रके हेतु राहु, मलय-समीरका भक्षण करनेके लिपे और कामदहनके

हेतु शङ्करका चित्र बनाती है। कुछ फल न पाकर उनको मिटा देती है, पर आशा बलवती होनेके कारण फिर लिखती है। किसीने जमालके नामसे दोहा बनाकर इसका उत्तर दोहेमें दिया है—

ससि पिक मैण समीर डर, खीण भई अति बाल।
ता पिव दुखके करणे, भेंटत लिखत जमाल॥
मारुतसुत, अलि, हंस अरु, लिख मन्दिर रँग स्वेत।
चौरँग पौढ़ी चतुर तिय, कह जमाल किहि हेत॥

वह स्त्री अपने महल (धवल गृह) में हनुमान, भौरे और हंसकी आकृतियाँ बनाकर शय्यापर क्यों लेट रही?

व्याख्या—वह विरहिणी प्रमादवश उन्मत्त हो गयी है। वह हनुमान, भौंरे और हंसको प्रेमीका दूत मानकर, उनसे कुछ सुनने और सुनानेकी आशा रख रही है। विरहकी चरम सीमापर पहुँचकर पात्र पागलसा व्यापार करता है।

समयपर प्रेमीगण अपना मन्तव्य साधारण वस्तुओंको भेजकर भी कहते हैं। कामशास्त्रके अद्वितीय ग्रंथ "नागर सर्वस्व" मे हम तांबूल पोटली आदि द्वारा प्रेम संदेशोंको भेजनेकी विधि पाते हैं, पर हिन्दीमें साधारण वस्तुओं द्वारा संदेश व्यक्त करनेकी प्रणाली, संभव है साहित्य तक ही सीमित रही होगी। निम्नलिखित जमालकृत दोहोंमें इस प्रणाली और चित्र-लिपि द्वारा बहुत गुप्त रीतिसे प्रेम संदेश भेजे गये हैं—

जंबू लहसुन दीन तिहि, मिर्च लोन करि मेल।
मटकत आई श्याम पहँ, कह जमाल का खेल॥

वह कृष्ण के पास जंबू, लहसुन, मिर्च और नमक को मिलाकर, इठलाती हुई लेकर आई। इसमें क्या रहस्य है?

गूढार्थ—उपर्युक्त बस्तुओं के मिलाने से पेट दर्द की दवा बन जाती है। पर इस संमिश्रण का यहाँ कोई अर्थ नहीं है। यहाँ अर्थ बहिर्लापिका द्वारा लगेगा। आगे वाले दोहों के पठन से स्पष्ट होगा।

कस्तूरी, हाँथी, मिरग, लूँमड़ि लिख नँद लाल।
प्यारी प्रति पतिया दियो, कारण कवन जमाल॥

कृष्ण ने अपनी प्यारी को प्रेम-पत्र में कस्तूरी से हाथी, मृग और लोमड़ी का चित्र बनाकर क्यों भेजा?

गूढ़ार्थ—अर्थ बहिर्लापिका द्वारा लगेगा—आगे देखें?

कुँदरू जल मेवा सजी, भजी कृष्ण चित लाय।
गाय रागनी भैरवी, कह जमाल समुझाय॥

वह चित्त लगाकर, भैरवी गाकर कृष्ण का ध्यान करने लगी। कुंदरू, जल और मेवा उसने क्यों एकत्र किया है?

गूढार्थ—अर्थ बाहिर्लापिका द्वारा लगेगा आगे देखें।

मिट्टी लूँदा गादिके, मूरति रच्यो, अनेक।
पठयो जहँ वृषभानु के, कह जमाल का टेक॥

मिट्टी की कई मूर्तियाँ बनाकर राधा के पास भिजवा दीं। यह सब किस हेतु हुआ?

गूढार्थ—अर्थ बाहिर्लापिका द्वारा लगेगा, नीचे देखें।

बाहिर्लापिका द्वारा अर्थ—

उपर्युक्त चार दोहों का अर्थ एकही प्रकार से लगेगा।

सर्व प्रथम तो गोपी कृष्णके पास आती है। दूसरे स्थानपर प्रिया अपनी प्यारी के लिए पत्र देते हैं। इसके पश्चात् कुछ सजा कर राधा एकत्र करती है और कृष्णका ध्यान करती है। अन्तिम दोहेमें राधा के पास कुछ भेजा जाता है।

उपर्युक्त व्यापार में प्रेम-सन्देश भेजे गये और उनके उत्तर भी प्राप्त हुए हैं। प्रत्येक दोहे के प्रत्येक शब्द के प्रथम अक्षर का मिलाकर पढ़ें—अर्थ स्पष्ट हो जावेगा।

यथा—सन्देश आता है—

" जल्दी मिलो।

नन्दलाल पूछते हैं—"कहाँ मिलूँ ?"

उत्तर मिलता है—"कुंज में"

वृषभानुके यहा सन्देश जाता है—"मिलूँगा!"

इन सन्देशो का आधार संकेत है, जो कि साधारण मनुष्य के लिए एक पहेली मात्र होगे। कूट-शैली मे वर्णित सदेश भले ही प्रहेलिका कहकर तज दिए जायें, पर परकीया प्रेम की भांति यह संदेश भी अपनी दुरूहता मे एक आकर्षण, एक सरलता और एक मधुरता रखते हैं, जिसको पाने का सौभाग्य बिरलों को ही होता है।

लव-लेटर आया

(ले०—जे० डी० शर्माजी 'कविपुष्कर' सम्पादक 'राम'-
'महाविद्या' आदि)

सवैया—

वारह मास व्यतीत हुए
परदेश से कोई सँदेश न लाया ।
कौन-कहां-किस भांति सुने,
नहि एक उपाय मुझे समझाया ॥
क्या करके प्रिय-दर्शन हो,
इस हेतु बड़ा मन था घवराया ।
ऐ 'कविपुष्कर' देख सखी,
इस डाक से है लव-लेटर आया ॥ १ ॥

धीर धरो, सब भाँति प्रिये,
जगदीश्वर की मुझ पै बहु दाया ।
भूल हुई, सच मे मुझमे,
कुछ भी न लिखा इससे सकुचाया ॥
मै तुमसे कुछ दूर नही,
अब देर नही, सुख है दरसाया ।
ऐ 'कविपुष्कर' प्यार भरा,
उनके करका लव-लेटर आया ॥ २ ॥

भुवाली-सेनीटोरियम—ब्लाक नं० ५

प्रियतम ! ता० १५-६-४५

सप्रेम प्रणाम ।

आपकी कृपासे अब यहाँ मेरा बिगड़ा स्वास्थ्य सुधर रहा है । कोई चिन्ता करनेकी बात नहीं । जिस क्षयके भयसे आपने मुझे यहाँ भेजा—वह निर्मूल निकला । ईश्वरको धन्यवाद है !

यह तो आप जानते है कि विश्वविद्यालयमें उच्चशिक्षा प्राप्त करनेमें कितना परिश्रम करना पड़ता है । मैं बी० ए० में उत्तीर्ण तो हो गई, पर मेरा स्वास्थ्य अत्यन्त निर्बल हो गया । उधर वह बहुत चाहनेपर भी नहीं सुधर सका । अन्तमें वैद्य, हकीम और डाक्टर लोगोंको थाइसिस होनेका सन्देह हो गया और आपको बाहर आनेकी व्यवस्था करनी पड़ी । दूसरा कोई उपाय न था ।

यहाँ उत्तम जलवायु और उचित विश्रामके कारण मुझे यथेष्ट लाभ पहुँच रहा है । पार्वतीय दृश्योंके देखने से मन बड़ा आनन्दित रहता है । अभी कुछ समय और इधर रहनेका विचार है ।

मन बहलानेके लिये मैं अपने साथ कुछ पुस्तकें भी लाई हूँ । आप पढ़ने लिखनेसे बहुत ही मुझे रोका करते थे, पर क्या करूँ ! मुझसे रहा नहीं जाता । जब तक कुछ पढ-लिख न लूँ, मेरे मनको शान्ति भी तो नहीं होती । अब मेरे हृदयमें ऐसा भाव उत्पन्न हुआ है कि मैं आपको समयानुसार प्रेमपत्र लिखा करूँ और उसमें महात्माओं, सत्कवियों और भक्त-प्रेमियोंके कहे हुए प्रेम सम्बन्धी सदुपदेशों, सुन्दर पद्यों और सरस सिद्धान्तोंको समयानुसार उद्धृत करती रहूँ । अतः आप काशी जैसी महानगरीके अनेक पुस्तकालयोंमें पुस्तकें देख-देखकर मेरे लिये एक संग्रह तैयार कर भेज दें । उससे मेरा बड़ा हित

दम्पति-प्रेम प्रभो! कहिये आपने मेरा इतना आदर किस प्रकार हुई?

लव-लेटर्स
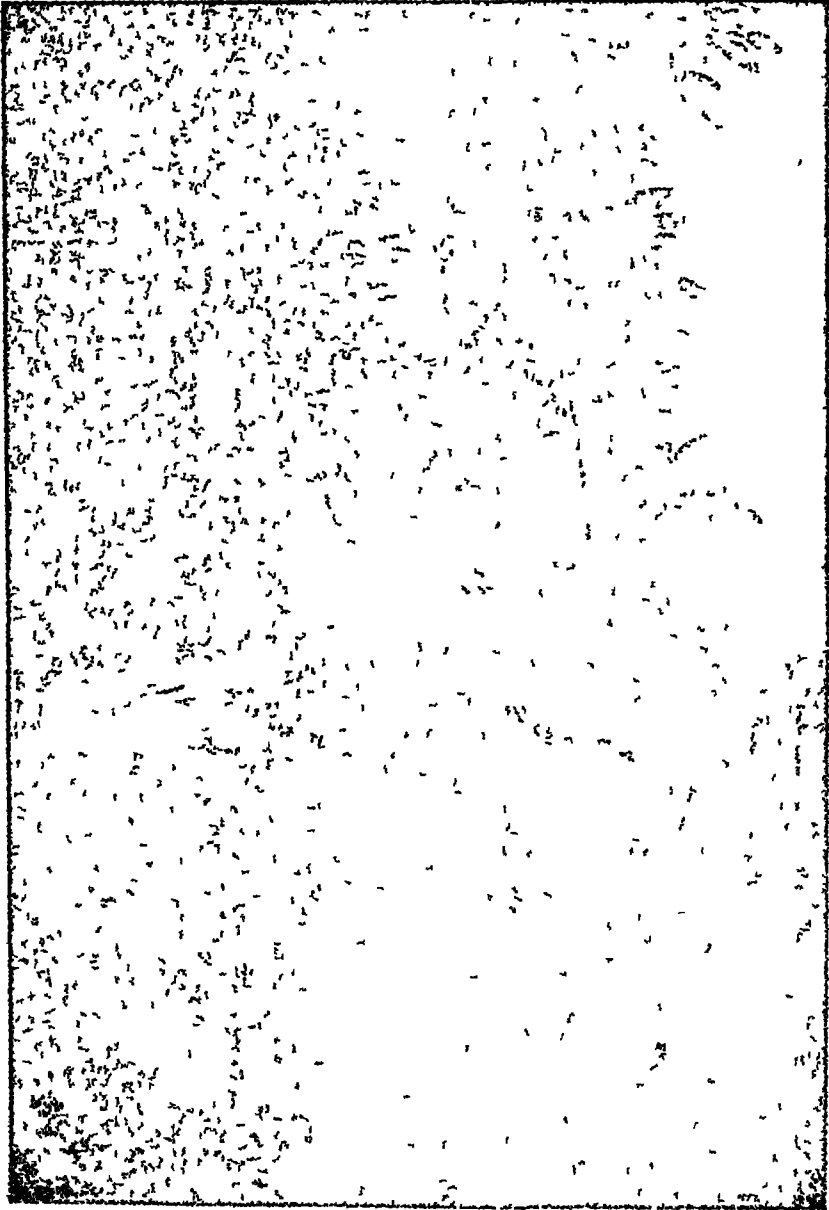
यदि पत्ता भी खड़के कहीं, चकित मृगी सी चौंकती।
अनुराग सागर-मग्न को, प्रिय मिलाप आशावती॥

पत्र-की प्रतीक्षा में चिन्तित पति वियोगिनी न [illegible]—

होगा। एक पन्थ दो काज वाली कहावत चरितार्थ होगी। एक तो उन्हें पढ़कर मुझे बड़ा आनन्द होगा, दूसरे पत्र लिखने में मेरी बड़ी भारी सहायता होगी। आशा है, आप प्रसन्न होंगे।

आशा है, आप मेरी इस प्रार्थनापर अवश्य ध्यान देंगे। अच्छी होते ही मैं आपको यहाँ आकर ले चलनेकी चिट्ठी दूँगी। भूल-चूक क्षमा करेंगे।

आपकी—

विमला।

पतिका उत्तर

बड़ा गणेश

काशी— ता० ३०-६-४५

प्रिये सुभगे!

सप्रेम शुभाशीर्वाद!

तुम्हारा प्रेमभरा एवं विचारणीय पत्र मुझे यथासमय मिल गया। उसमें तुमने मुझको एक अत्यन्त आवश्यक कार्य सौंपा था—जो पूरा हो गया। मैंने तुम्हारे लिये समय लगाकर बड़े परिश्रमसे अनेक पुस्तकोंको पढ़ा और उनमेंसे अनेक महात्माओं, सत्कवियों और भक्त प्रेमियोंके सद्वचनों, प्रवीण पद्यों और हार्दिक भावोंको चुनकर यह छोटा सा संग्रह तैयारकर भेजा है। तुम इसमें अनेक प्रकारके प्रेमोद्गार पाओगी। पत्र लिखते समय ये इच्छा-नुकूल चुनकर काममें लाये जा सकते है। मुझे आशा है कि यह प्रेम संग्रह

तुम्हे अवश्य पसन्द आयेगा ! इसके अंतमें 'हृदय की झनकार' शीर्षक से संगीतमय गीत दिये गये हैं, जिन्हे तंबूरे के सहारे गाकर तुम अपना मन बहला सकती हो।

ईश्वरको धन्यवाद है कि हम लोगोंकी क्षयवाली धारणा निर्मूल निकली और वहाँ तुम्हारा स्वास्थ्य बराबर सुधर रहा है। घबराने की कोई बात नही। एक तन्दुरूस्ती हजार न्यामत है। जब तुम खूब अच्छी हो जाओ, तभी मुझे ले आनेके लिये बुलाओ ! अधिक क्या !

तुम्हारा ....

प्रेम के उद्गार

जब इतनी बे वफाई पर उसे दिल प्यार करता है।
तो गर वह बावफा होती तो या रब और क्या होता ॥ —उर्दू कवि

मूये पीछे मत मिलो, कहै कबीरा राम।
लोहा माटी मिल गया, तब पारस केहि काम ॥
प्रेम न बारी ऊपजै, प्रेम न हाट विकाय।
राजा-परजा जेहि रुचै, शीश देहि लै जाय ॥ —कबीर

कठिन पियाला प्रेमका, पिये जो प्रेमी हाथ।
जीवन भर माता फिरै, उतरै जियके साथ ॥ —मलूकदास

इशरते कतरा है, दरिया मे फना हो जाना।
दर्द का हद से गुजरना है दवा हो जाना॥ —गालिब

Who are you to seek him like a beggar from door to door ?
Come to my heart and see His face in the tears of my eyes – R N Tagore

बिन देखे दुखके चलहि, देखे सुख के नाहि।
कहो लाल इन दृगन के, अँसुवा किमि ठहराहि ॥—मतिराम

पिय से कहेउ सँदेसवा, हे भौरा हे काग।
सो धनि बिरहै जरि मरी, जेहिक धुवा हम लाग ॥
सूखि बेलि पुनि पलुहई, जो पिउ सींचे आय।—जायसी

प्रियतम नही बजार में, वहै बजार उजार।
प्रियतम मिलै उजार में, वहै उजार बजार ॥—अहमद

राम बुलावा भेजिया, कबिरा दीन्हा रोय।
जो सुख प्रेमी सग में, सो बैकुण्ठ न होय ॥—कबीर

All that we know of Heaven above,
Is that they live and that they love – Scott

रात-दिवस बस यह जिउ मोरे।
लगों निहोर कन्त अब तोरे॥ —जायसी

सुनौ दिल जानी, मेरे दिल की कहानी तुम
इस्म ही बिकानी बदनामी भी सहूँगी मैं।
देव पूजा ठानो मैं निमाज हूँ भुलानी
तजे कलमा कुरान सारे गुन न गहूँगी मैं।
श्यामला सलोना शिरताज सिर कुल्लेदार,
थारे नेह दाग में निदाघ ह्वै दहूँगी मैं।
नन्द को कुमार कुरबाण ताणी सूरत पै,
ताण लाल प्यारे हिन्दुवानी ह्वै रहूँगी मैं।—ताज

कागा सब तन खाइयो, चुनि-चुनि खैयो माँस।
द्वै नैना मत खाइयो, पिय दर्शन की आश॥—मीरा

दिल के आईने में है तस्वीरे यार।
जब जरा गर्दन झुकाई देख ली॥—उर्दूशायर

कबिरा या जग आइकै, कीया बहुतक मिन्त।
जिन दिल बाँधा एकते, ते सोवै निहचिन्त॥
छनहि चढै छन ऊतरै; सोतो प्रेम न होय।
अघट प्रेम-पिंजर बसै, प्रेम कहावै सोय॥—कबीर

लगतो नहीं पलक से पलक वस्लमें भी आह।
आँखों को पड़ गया है मजा, इन्तजार का॥ —जुरअत

तुम बिन एती को करै, कृपा जु मेरे नाथ!
मोहि अकेली जानि कै, दुख राख्यो है साथ॥ — कश्चित्

माँस गया पिंजर रहा, ताकन लागे काग।
साहब अबहुँ न आइयाँ, मन्द हमारे भाग॥
विरहिन ओदी लाकड़ी, सपचै औ धुधुवाय।
छूट परै या विरह से, जो सगरा जरिजाय॥ —कबीर

जिन या वेदन निरमयी, भला करैगा सोय। —मीरा

लागी लगन छुटै नहीं, जीभ चोंच जरि जाय।
मीठी कहाँ अंगार में, जाहि चोकोर चबाय॥ —कबीर

बिरहा मोंसे यों कहै, गाढा पकड़ो मोंहि।
प्रेमी केरी गोद में, मैं पहुँचाओं तोहि॥ —कबीर

इश्क से तबीयत ने, जीश्त का मज़ा पाया।
दर्द की दवा पाई, दर्द बे दवा पाया॥ —गालिब

वही समझेगा मेरे जख्मे दिल को।
जिगर पर जिसके एक नासूर होगा॥ —नजीर

मुहब्बत में नहीं है फर्क जीने और मरने का।
उसीको देख जीते हैं कि जिस पर दम निकलता है॥ —गालिब

कहा भयो जो बीछुरे, तो मन मोहन साथ।
उड़ी जात किनहूँ गुडी, तऊ उड़ायक हाथ॥ —विहारी

मेरो मन मोहन ते लागत है बार—बार—
मोहन को मन मोसों, लागिहै बिचारो तो। —रामसेवक

जा थल कीन्हें विहार अनेकन, वा थल काँकरि बैठि चुन्यो करैं।
जा रसना सों करी बहु बातन, वा रसना सों चरित्र गुन्यो करैं॥
'आलम' जौन से कुंजन में, करी केलि तहाँ अब सीस धुन्यो करैं।
नैनन में जो सदा रहते, तिनकी अब कान कहानी सुन्यो करै॥ —आलम

साँझ भई दिन अथवा, चकई दीन्हीं रोय।
चल चकवा वा देश को, जहाँ रैन ना होय॥ —जायसी

मनि बिन फनि जलहीन मीन तनु त्यागहीं।
सो कि दोष—गुन गनहिं, जो जेहि अनुरागहीं॥—तुलसी

फूट जायं वे आंखें जिनमें, बँधा अश्क का तार न हो।
बावरि ! वे अँखियाँ जरि जायँ, जो सावरो छाँड़ि निहारत औरहिं ।।
—भारतेन्दु हरिश्चन्द्र

विरह कमण्डल कर लिये, बैरागी दो नैन।
मांग दरस मधूकरी, छके रहैं दिन रैन ।। —कबीर

कागा नैन निकाल दू, पिया पास लै जाय।
पहले दरस दिखाय कै, पीछे लीजै खाय ।। —मीरा

रामको रूप निहारति जानकी कंकन के नग की परिछाहीं।
ताते सबै सुधि भूलि गई, कर टेकि रही पल टारति नाहीं ।।
—तुलसी

प्रेम छिपाये ना छिपै, जो घट परघट होय।
जो पै मुख बोले नही, नैन देत है रोय ।। —कबीर

खिन मन्दिर खिन आँगने रे खिन खिन ठाढ़ी होय।
घायल ज्यो भूमूँ खड़ी म्हारी बिथा न पूछै कोय ।।
काढि करेजो मैं धरूँ रे कौवा तू ले जाय।
जा देशाँ म्हारो पिउ बसै, वे देखत तू खाय ।। —मीरा बाई

(प्रेम विह्वल सुतीक्ष्ण)

दिशि अरु विदिश पंथ नहिं सूझा।
को मैं कहा चलेउँ नहिं बूझा ।।
कबहुंक फिरि पाछे पुनि जाई।
कबहुंक नृत्य करै गुन गाई ।।
मुनि मग माहि अचल है वैसा।
पुलक शरीर पनस फल जैसा ।।

मुनिहिं राम बहु भाँति जगावा ।
जाग न ध्यान जनित सुख पावा ।। —तुलसी

जो मै ऐसा जानती, प्रेम करे दुख होय ।
नगर ढिढोरा पीटती प्रेम करै जनि कोय ॥ — मीरा

यह तन, वह तन एक है, एक प्रान हुइ जात ।
अपने जियसे जानिये, मेरे जिय कै बात ॥ —कबीर

धरनी पलक परै नहीं, पियकी झलक सोहाय ।
पुनि-पुनि पीवत परम रस, तबहूँ प्यास न जाय ॥ — धरनीदास

आव बगूला प्रेमका, तिनका उड़ा अकास,
तिनका तिनका सों मिला, तिनका तिनके पास ॥
विरह तेज मन में तपै, अग सबै अकुलाय ।
घर सूना जिव पीव में, मौत ढूंढि फिर जाय ॥
नैनों की कर कोठरी, पुतली-पलंग बिछाय ।
पलकों की चिक डारिके, पिय को लिया रिझाय ॥ —कबीर

प्रीति अकेलि बेलि चढि छावा ।
दूसरि वेलि न सँचरै पीवा ॥ —जायसी

अगिन आँच सहना सुगम, सुगम खड्ग को धार ।
नेह निबाहन एक रस, महा कठिन व्यवपार ॥ —दूलनदास

कजरारी अँखियान मैं, बसो रहै दिन रात ।
प्रीतम प्यारो हे सखी ! ताते साँवरु गात ॥—नागरीदास

नैना माहीं तू वसै, नींद को ठौर न होय ।— सहजो बाई

'कबिर' रेख सिंदूर अरु, काजर दिया न जाय ।
नैनन प्रीतम बसि रह्यो, दूजो कहाँ समाय ॥

नैनों अन्तर आव तू, नैन झाँपि तोहि लेउँ।
ना मैं देखो और को, ना तोहि देखन देउँ॥ —कबीर

नाहं वसामि वैकुण्ठे, योगिना हृदये न च।
यत्र गायन्ति मद्भक्ता स्तत्र तिष्ठामि नारद॥ —विष्णु०

प्रियतम को पतिया लिखूँ, जो कहुँ होय विदेश।
तन में, मन में नैन में, ताको कहाँ सँदेश॥ —दरियासाहब

हेरत-हेरत हे सखी रहा कबीर हेराय।
समुद समाया बुंद में, सो कत हेरा जाय॥
बुन्द समानों समुद में, यह जानै सब कोय।
समुद समानों बुन्द में बिरला बूझै कोय॥
अंक भरी भर भेंटिये, मन नहिं बाँधै धीर।
कह कबीर ते क्या मिले, जब लग दोय शरीर॥ —कबीर

प्रेम बराबर जोग नहि, प्रेम बराबर ज्ञान॥ —चरणदास
प्रेमी से, नेमी कहै, तू नहि साधे नेम।
शंभू' सो नेमी नहीं, जाके नेम न प्रेम॥ —शंभू कवि

प्रेम दिवाने जो भये, नेम धरम भये खोय।
सहजो नर बौरा कहे, वा मन आनँद होय॥ —सहजोबाई

जहाँ प्रेम तहँ नेम नहिं, तहाँ न जग-व्यवहार।
प्रेम मगन सब जग भया, कौन गने तिथि बार॥
जब मैं था तब गुरु नहीं, अब गुरु हैं हम नाहिं।
प्रेम-गली अति साँकरी जामें दुइ न समाहिं॥—कबीरदास

वे अपनी हस्ती मिटा चुके हैं, खुदाको खुद ही में पा चुके हैं॥

आसक मासुक ह्वै गया, इसक कहावै सोय। —दादू

कबिरा घोड़ा प्रेम का, चेतन चढ़ असवार।
ज्ञान-खड्ग लै काल सिर, भली मचाई रार॥ —कबीर

हमहूँ सब जानति लोक की चालनि क्यों इतनो बतरावति हौ।
हित जामें हमारो सधै सो करौ सखियाँ सब मेरी कहावति हौ॥
'हरिचन्द' जू यामैं न वादि कछू हमैं बातनि का बहरावति हौ।
सजनी मन हाथ हमारे नहीं, तुम कौन को का समझावति हौ॥
—भारतेन्दु

मैं इश्क की गली में, घायल पड़ा था तिस पर-
जोबन का माता आकर, मुझको खँदल गया है।
तुझ इश्क की अगिन से, शोला हो जल उठा जिउ-
दिल मोम के नमूना, गलगल पिघल गया है॥—लुत्फी

जिन प्रेम रस चाखा नहीं, अमृत पिया तो क्या पिया।
जिन इश्क में सर ना दिया, जुग-जुग जिया तो क्या जिया॥
—रामतीर्थ

गुलिस्ताँ में जाकर, हरेक गुल को देखा।
न तेरी सी रंगत न तेरी सी बू है॥
मुझे तो प्यार ऐसा है कि मैं कुछ कह नहीं सकता।
वह बुत बेज़ार ऐसा है कि मैं कुछ कह नहीं सकता॥—अज्ञात
सखी! पिया को जो मैं न देखूँ, तो कैसे काटूँ अँधेरी रतियाँ।
—खुसरो

आँखों से आँख लगी, लोगों ने बदनाम किया।
लोगों को बकने दिया, हमने अपना काम किया॥
किसी के चाहनेवाले बड़ी मुश्किल से मिलते हैं।
मगर आसान है समझो, जहाँ दिल-दिल से मिलते हैं॥—उर्दू कवि

रे प्रचण्ड वैरी पवन, तू कत करत निराश !
दीपक आंचर ओट करि, जैहैा प्रीतम पास ॥

कब तक छिपे रहोगे तुम पत्ते के आड़ में-
आखिर को एक दिन कैरी बन कर बिकोगे बाजार में

फंसा के दामे उल्फत में हमें बरबाद करते हो ।
यहॉ है जान जाती-दिल वहाँ तुम शाद करते हो ॥

समाई है नजरो मे जब से तू प्यारी !
जिधर देखता हूँ उधर तू ही तू है ।

बीती बहारे गुलशन, हर ओर रंजोगम है।
खुश खत सबाब का भी, अब हो चुका खतम है ॥
शाखों पै बैठ बुलबुल, होती थी मस्त गाकर ।
चलती बनी किधर को या रब ! किधर से आकर ॥

देवै-लेवै नहिं शरमाय । खाय-खियावै, आवै-जाय ॥
प्रेम--प्रीति की रीति कहाय । दीन्हो शास्त्रन शोध बताय ॥

इस तरु तले कहीं खाने को, रोटी का टुकड़ा हो एक।
पीने को मधु पात्र पूर्ण हो, करने को हो काव्य विवेक।
तिस पर इस सन्नाटे में तुम बैठ बगल में गाती हो ।
तो मेरे हित इसी विजन में स्वर्गराज्य का हो अभिषेक ॥

—उमरखय्याम

पढ़-पढ़ के सब जग मुवा, पंडित भया न कोय ।
ढाई अच्छर प्रेम के, पढ़ै सो पंडित होय ॥ —कबीर

इब्तदाये-इश्क है रोता है क्या ! आगे आगे देखना होता है क्या ?

गुलजार जहाँ में कोई भी रहे दिल शाद रहे फरहाद रहे ।
गुलशन भी रहे, गुलचीं भी रहे, बुलबुल भी रहे सैयाद रहे ॥

दिल लेके चले जाओगे, कैसे जियेंगे हम।
जब याद आवे, आपकी रो-रो मरेंगे हम॥
जोशे जनूँ ने कबतक दिल की छिपी रहेगी।
यह आग इश्क़ की है कबतक बुझी रहेगी॥

दिपत मधुर मुख-माधुरी मन महँ विमल अनन्द।
चन्द्र-मुखी पिय-आयु हित पूजत पावन चन्द॥

ध्यान लगा है उधर पत्र पर, पढ़ने में अक्षर-अक्षर।
लिख न आपही आप इधर दे, कहीं लेखनी भी उत्तर॥

ख़त कबूतर किस तरह ले जाये बामे-यार पर।
पर कतरने को लगी हैं कैंचियाँ दीवार पर॥
दिल का चिराग बुझ गया जो करता उजाला।
लाचार पड़ी आपने मुझको न सँभाला॥

न खुदा ही मिला न वसाले सनम, न इधर के हुए न उधर के हुए।
साफ था जब तक कि ख़त, तब तक जवाबे साफ था।
अब तो ख़त आने लगा, शायद कि ख़त आने लगा॥ —उस्ताद

ख़त नमूदार हुआ, वस्ल की रातें आईं।
जिनका अन्देशा था, मुँह पर वही बातें आईं॥
जो होते इश्क के बन्दे, नहीं फरयाद करते हैं।
लबों पर मुहर खामोशी, दिलों में याद करते हैं॥ (अज्ञात)

चार दिन के हुस्न पर इतना गरूर। चाँदनी होती है कै दिन के लिये॥

—कवी

जवानी की दुआ लड़कों को नाहक लोग देते हैं।
यही लड़के मिटाते हैं जवानी को जवाँ होकर॥—अकबर

इश्क का जोश है जब तक कि जवानी के हैं दिन।
यह मर्ज करता है शिद्दत इन्हीं एय्याम में खास ॥ —ज़ौक

मुहब्बत कौड़ियों के हो अगर मोल।
कभी आदम न ले यह दर्दे-सर मोल ॥ —अज्ञात

जवानी आदमी की मायले इलजाम होती है।
निगाहे-नेक भी इस उम्र में बदनाम होती है ॥
इस इश्को आशकी के मज़े हमसे पूछिये।
दौलत मिटाई, रंज सहे, खो दिया शबाब ॥ —बेखुद

बात का जख्म है तलवार के जख्मों से सिवा।
कीजिये कत्ल मगर मुँह से कुछ इरशाद न हो ॥ —दाग

ऐश के यार तो अगियार भी बन जाते हैं।
दोस्त वो हैं जो बुरे वक्त में काम आते हैं ॥ —अज्ञात

ख़ुदा मिले तो मिले, आशना नहीं मिलता।
किसीका कोई नहीं दोस्त सब कहानी है ॥ —आतिश

निगाहें कामिलों पर, पड़ ही जाती हैं ज़माने की।
नहीं छिपता है 'अकबर' फूल पत्तों में निहा होकर ॥ —अकबर

मोहब्बत से बना लेते हैं, अपना दोस्त दुश्मन को।
झुकाती है हमारी आजिजी सरकश को गर्दन को ॥
—चकबस्त

कुछ करलो नौ जवानों, उठती जवानियाँ हैं।
खेतों को देलो पानी, अब बह रही हैं गंगा ॥ —हाली

गर हुस्न नहीं इश्क भी पैदा नहीं होता।
बुलबुल गुले तस्वीर पै, शैदा नहीं होता ॥ —शैदा

यों तो मुँह देखे की, होती है मुहब्बत सबको।
मैं तो तब जानूँ, मेरे बाद मेरा ध्यान रहे॥
जो ख़ुद नही सरगर्म करेगा, वह बशर क्या।
जब दिल मे नही दर्द, ज़बां में हो असर क्या॥
काम इन्सान का इन्सान से पड़ता है ज़रूर।
बात रह जाती है, पर वक़्त गुज़र जाता है॥
नहीं मोहताज जेवर का, जिसे खूबी खुदा ने दी।
कि आखिर बदनुमा लगता है, देखो, चाँद को गहना॥
दोस्त रखते हैं जवाँ मर्द, अहले जौहर यार को।
तौलकर ज़र से सिपाही, लेते हैं तलवार को॥ —कोई

मेहर बानी की एक राह तो हो। गर सताने के हैं हजारों तरीक़॥ —दाग़

बशर को चाहिये मिलता रहे हर से ज़माने में।
किसी दिन काम ये साहब-सलामत आही जाती है॥
माशूक़ वे वफा हैं अब के ज़माने वाले।
दिल देके क्या करेंगे आशिक कहाने वाले॥ —अज्ञात

कुछ रंज है दुनिया मे तो कुछ हमको खुशी है।
आंखों में जो आँसू है तो होठों पै हँसी है॥—बीनाई

ख़ुदा-ख़ुदा न सही राम-रामकर लेंगे।
मिलेगा राह में काबा सलाम कर लेंगे॥
हमने माना हो फरिश्ते शेखजी।
आदमी होना बहुत दुश्वार है॥

—उर्दू के उस्ताद

बशर ने खाक पाया, लाल पाया, या गोहर पाया।
मिजाज अच्छा अगर पाया, तो सब कुछ उसने भर पाया॥ —दाग़

इन्सान, खोके वक्त को पाता नहीं कभी।
जो दम गुज़र गया है वो आता नहीं कभी॥
—मीर अनीस

तुम मेरे पास होते हो गोया। जब कोई दूसरा नहीं होता॥
—मोमिन

उनके आजाने से आ जाती है मुँह पै रौनक।
तो समझते हैं कि बीमार का हाल अच्छा है॥
—ग़ालिब

शाम से कुछ बुझा सा रहता है। दिल हुआ है चिराग मुफलिस का॥
—मीर

उम्र सारी तो कटी इश्के बुताँ में मोमिन!
आखिरी वक्त में क्या खा़क मुसलमाँ होंगे॥ —मोमिन

दी मुअज़्ज़नने शबे वस्ल अज़ाँ पिछली रात।
हाय! कम्बख्त को किस वक्त ख़ुदा याद आया॥ —दाग़

रंग लाती है हिना, पत्थर पै पिस जाने के बाद।
सुरखुरू होता है इनसाँ, ठोकरें खाने के बाद॥
प्रकृति मिले मन मिलत है, अन मिलते न मिलाय
दूध दही ते जमत है, काजी ते फट जाय॥

(आशिक की दिली उड़ान)

माशूक नई रोज़ जो बेदाद करेंगे।
शिकवा न शिकायत न हम फरियाद करेंगे॥
दिल में है लगी है आग इसे कैसे बुझाएँ।
तीर नजर को तेरे सनम! याद करेंगे॥

परदेश मे ये दिलका लगाना नहीं अच्छा ।
गैरों को अपने घरमें बुलाना नही अच्छा ॥

हो जाओगे बदनाम ज़माने की नज़र में ।
कम जर्फ हो हमराज बनाना नही अच्छा ॥
हो जाओगे बरबाद मुहब्बत में बुतों की—
खुद आपको जिल्लत में फँसाना नही अच्छा ।
हो जाय अगर इश्क कसौटी पै परख लो !
दिल हरकसो नाकस से लगाना नहीं अच्छा —गुलाम हुसेन

टूटे दिल सामने लेकर तेरे शैदा आये ।
रहम कर रहम जो ऐ ग़ैरते लैला आये ॥
हिचकियाँ आती हैं, दम रुकता है, फँसता है गला ।
फिर भी उम्मीद है, शायद वो मसीहा आये ॥
हाय ! किस वक्त मे उस गुल की सवारी पहुँची ।
लोग बीमार को जब, कब्र मे दफना आये ॥
पूरा हम दिल का ये अरमान करेंगे ।
माशूक के कदमों पै फ़िदा जान करेंगे ॥
वह शोख अगर आये तो सीने से लगाएँ ।
औ हाल दिले जार उसे अपना सुनाएँ ॥ —बदरुद्दीन

(दिल्ली की शाही शायरी)

न लेता, कोई सौदा मोल, बाज़ारे मुहब्बत का ।
मगर कुल जान अपनी बेंचकर, लेते तो हम लेते ॥
लगाया जाम ओठों से, जो उसने, मुझको रश्क आया ।
कि बोसा इन लबों का ऐ ज़फ़र ! लेते तो हम लेते ॥

× × ×

मर गया हूँ मैं किसी की हसरते-दीदार मे—
कब्र तक लाशा हमारा राह तक्ता जायगा ॥

X X X

दिलो-जॉ, दीनो-ईमॉ है, जो लेना है सनम लेलो!
करूँगा उज्र देने में न मैं, मुझसे कसम लेलो!!

गले में तौक, बेड़ी पावँ में लड़के लिये पत्थर!
अजब इक शान से ऐ बुत! तेरा दीवाना आता है ॥

—बहादुरशाह 'जफर'

(लखनऊकी नवाबी शायरी)

जहाँ तेग उसको अलम देखते हैं—
वहाँ अपना सर हम कलम देखते हैं ॥
जो जलवा सनम! तुझमें हम देखते हैं।
ख़ुदा की खुदाई में कम देखते हैं ॥
गुज़रते हैं सौ-सौ ख़याल अपने दिलमे।
किसी का जो नक्शे-कदम देखते है ॥
बुतो की गली में शबो-रोज आसफ़!
तमाशा ख़ुदाई का हम देखते हैं!!

—नवाब आसफ़ुद्दौला

नहीं चाहिये कस्रे फिरदौस जाहिद!
मुझे हैं फ़कत कूये जाना से मतलब ॥

X X X

फ़ाख़्ता हूँ गुल सी सूरत का—
सर्वे आज़ाद हूँ मोहब्बत का ॥

—वाज़िदअलीशाह 'अख़्तर'

उन्हें आता है प्यार पै गुस्सा। मुझे गुस्से पै प्यार आता है॥

वर्गे हिना पै लिक्खेंगे, अपने जिगर की बात।
शायद किसी कदर वो लगे गुलबदन के हाथ॥

X X X

जो दिल दिया है तो कीमत दिलाइये न मुझे।

X X X

सोने में दिल है दिल में तमन्ना छिपी हुई।
नन्हासा एक मज़ार बना है मज़ार मे॥

(पति कों चिट्ठी लिखती है)

जोबन की सरिता गहरी दृग नैनन बीच नदी उमड़ी है।
कामको जोर महा झकझोर को प्रेमके डोर से लागि रही है॥
प्रीतम प्यारे को पाती लखूं बिन केवट नाव कहा निबही है।
यार मलाह मिले तो मिले नहीं बोरहुं नाव सलाह यही है॥

(कागा से)

पैंजनी गढ़ावों चोंच सोने में मढाय देहों कर पर लाइ पर रुचि सो सुधरि हों।
कहे कवि तोप छिन अटक न लैहों क्यों, कंचन कटोरे मे सराबोर भरिधरिहों॥
ऐरे कारे काग तेरे सगुन संजोग आए मेरे पति आवें तो बचनते न टरिहों।
करति करार, तिन पहिले करोंगी सब, अपने पिया को फिर पीछे अंक भरिहों॥

कयामत प्यार का करना अरे ऐसे जमाने मे,
कजा का सामना करना हुआ है दिल लगाने में।
यही आलम रहे बस मौसिमे गुल के जमाने में,
रहे आबाद बुलबुल अपने अपने आशियाने में॥

—.०.—

मुहब्बत इसलिये हम ऐ बुते बेपीर कम कर दी।
कि तू गैरों से मिलकर मेरी है तौकीर कम कर दी॥

खैंचिये, तेग अगर आप हैं हिम्मतवाले।
इश्क को जख्म कहा करते मुहब्बतवाले॥

बरस चौदह या पन्द्रह का हो सीन, जवानी की रातें मुरादों के दिन।

चन्दा चकोर चादनी बादल पे तार है।
तेरे हुस्न को देखकर बन्दा फ़कीर है॥
कमसिनी खेल रही है, अभी क्या रक्खा है।
आसरा आसरे वालों ने लगा रक्खा है॥

फलक देता है जिनको ऐश, उनको ग़म भी होता है।
जहाँ बजते हैं नक्कारे, वहाँ मातम भी होता है॥ —सफर

वक्त पर कतरा है काफ़ी, आवे-जोश अजाम का।
जबकि खेती जल गई, बरसा तो फिर किस काम का॥

खुदा मिले तो मिले आशना नहीं मिलता।
किसी का कोई नहीं दोस्त, सब कहानी है॥

होना नहीं कोई है बुरे वक्त मे शरीक,
पत्ते भी भागते हैं खिज़ाँमें शजर से दूर।

जुल्म की टहनी कभी फलती नहीं।
नाव कागज की कभी चलती नहीं॥

है ज़हर हक में तेरे, दौलत का यह ज़खीरा।
जरदार ही तो अक्सर मरता है, खाके हीरा॥
जर की जो मोहब्बत तुझे पड़ जायगी बाबा।
दुख इसमें बहुत रूह तेरी पायगी बाबा॥ —

हर खाने को हर पीने को तरसायेगी बाबा।
दौलत जो तेरे याही न काम आयेगी बाबा॥
फिर क्या तुझे अल्लाह ने मिलवायेगी बाबा। —नजीर

बुरी है ऐ दाग-राहे उल्फत। खुदा न ले जाय ऐसे रस्ते॥
अगर तुम अपनी खैर चाहते हो। तो भूलकर दिल्लगी न करना॥

यह दर्दे सर ऐसा है कि मर जाय तो जाये।
उल्फत का नशा जब कोई मर जाय तो जाये॥ —जौक

यह इश्क वो है कि पत्थर को दम में आब करे।
लगाये दिल वही, जिसको ख़ुदा ख़राब करे॥
दुनिया के जो मजे है, हरगिज वो, कम न होंगे।
चर्चे यही रहेंगे अफसोस हम न होंगे।

जला करो तो जला करोगे—ये दस्ते हसरत मला करोगे।
जो आशिकों का भला करोगे—तो तुम भी फूला-फला करोगे॥
हुजूमे-बुलबुल हुआ चमन मे, किया जो गुलने जमाल पैदा।
कमी नहीं कद्रदाँ की अकबर! करो तो कोई 'कमाल पैदा॥

—अकबर

लोग कहते है बदलता है ज़माना लेकिन।
मर्द वो हैं जो ज़माने को बदल देते है॥
दोस्त ही जब दुश्मने-जॉ हो तो क्या मालूम हो!
आदमी को किस तरह अपनी कजा मालूम हो॥
रगों में दौड़ने फिरने के हम नही कायल।
जो आँख से ही न टपका, तो फिर लहू क्या है॥
भागती फिरती थी दुनियाँ, जब तलब करते थे हम।
अब कि जब नफरत हुई वह, बेकरार आने को है॥ —रामतीर्थ

किसीके दिल की हकीकत किसीको क्या मालूम।
उठाई हमने मुसीबत किसीको क्या मालूम॥

(प्रिय-मिलन की खोज में)

प्राणाधार! करूँगी तुमपर आज मिलन अभिसार।
रोता व्योम हताश, नही है, इन आँखों में नींद।
वर्षाकी यह रात सलोनी, सखे, रही है भीग॥
द्वार खोलकर देख रही हूँ प्रियतम बारम्बार।
प्राणाधार करूँगी तुम पर आज मिलन अभिसार॥
बाहर कुछ न देखती साथी, पथ तेरा अनजान।
दूर नदीके पार सोचती हूँ, हे पावन प्राण॥
अन्धकारमय किस वनमें रहते हो प्रिय उसपार।
प्राणाधार, करूँगी तुम पर, आज मिलन अभिसार॥

—रवीन्द्रनाथ ठाकुर गीताञ्जली

(प्रेम-याचना विह्वल)

उत्तर देती हुई कामिनी बोली अंग शिथिल करके—
हे नर! यह क्या पूछ रहे हो, अब तुम हाय हृदय हरके?
अपना ही कुल-शील प्रेम मे, पड़कर नही देखती हम।
प्रेम-पात्र का क्या देखेंगी, प्रिय है जिसे लेखती हम॥
रात बीतने पर है अब तो मीठे बोल बोल दो तुम।
प्रेमातिथि है खड़ा द्वार पर, हृदय-कपाट खोल दो तुम॥

× × ×

हा नारी! किस भ्रम में है तू, प्रेम नहीं यह तो है मोह।
आत्मा का विश्वास नहीं यह, है तेरे मन का विद्रोह॥

विष से भरी वासना है यह, सुधापूर्ण वह प्रीति नहीं।
रीति नहीं, अनरीति और यह, अति अनीति है नीति नहीं॥
—मैथिलीशरण गुप्त की पञ्चवटीसे

(मधु स्मृति)

उडता है जब प्राण! तुम्हारी सारी का सित छोर।
सौ वसन्त, सौ मलय, हृदय को करते गन्ध विभोर॥
उडता उरसे कभी तुम्हारी सारी का जब छोर।
ग्रीवा मोड़ कभी विलोकती, जब तुम बंकिम कोर।
खिल-खिल पडते श्वेत कमल, नाचती विलोल हिलोर॥
ग्रीवा मोड हंसिनीसी देखती फेर जब कोर।
जब-जब प्राण तुम्हारी मधु-स्मृति, देती मुझको बोर॥
जीवन के घन अन्धकार मे, हो उठता नव भोर।
मधुर प्रेम की उज्वल स्मृति जब, देती मन को बोर॥
—सुमित्रानन्दन पन्त

(तुम और मैं)

तुम तुङ्ग-हिमालय-शृङ्ग, और मैं चञ्चल-गति सुर-सरिता।
तुम विमल हृदय-उच्छ्वास, और मैं कान्त-कामिनी-कविता॥
तुम प्रेम और मैं शान्ति, तुम सुरा-पान घन अन्धकार।
मैं हूँ मतवाली भ्रान्ति।

तुम दिनकर के खर किरण जाल, मैं सरसिज की मुसकान।
तुम वर्षों के बीते वियोग, मैं हूँ पिछली पहचान॥
तुम योग और मैं सिद्धि, तुम हो रागानुग निश्छल तप,
मैं शुचिता सरल समृद्धि।

तुम मृदु मानस के भाव, और मैं मनोरञ्जिनी भाषा।
तुम नन्दन-वन-घन-विटप, और मैं सुख शीतल तरु शाखा॥
तुम प्राण और मैं काया, तुम शुद्ध सच्चिदानन्द ब्रह्म।
मैं मनोमोहिनी माया।
तुम प्रेममयी के कण्ठहार, मैं वेणी काल नागिनी।
तुम कर-पल्लव-झङ्कृत सितार, मैं व्याकुल विरह-रागिनी॥
तुम पथ हो, मैं हूँ रेणु, तुम हो राधा के मनमोहन
मैं उन अधरों की वेणु।
तुम पथिक दूर के श्रान्त, और मैं बाट-जोहती आशा।
तुम भवसागर दुस्तर, पार जाने की मैं अभिलाषा॥
तुम नभ हो, मैं नीलिमा, तुम शरत-काल के बाल इन्दु,
मैं हूं निशीथ-माधुरिमा।
तुम गन्ध-कुसुम-कोमल-पराग, मैं मृदुगति मलय-समीर।
तुम स्वेच्छाचारी मुक्त पुरुष, मैं प्रकृति, प्रेम-जञ्जीर॥
तुम शिव हो, मैं हूं शक्ति, तुम रघुकुल-गौरव रामचन्द्र
मैं सीता अचला भक्ति।
तुम आशा के मधुमास, और मैं पिक कल-कूजन तान।
तुम मदन पञ्च-शर-हस्त, और मैं हूँ मुग्धा अनजान॥
तुम अम्बर, मैं दिग्वसना तुम चित्रकार, घन-पटल श्याम।
मैं तड़ित तूलिका रचना।
तुम रण-ताण्डव-उन्माद नृत्य मैं मुखर मधुर नूपुर-ध्वनि॥
तुम नाद वेद ओंकार-सार, मैं कवि-शृङ्गार-शिरोमणि।
तुम यश हो मैं हूँ प्राप्ति, तुम कुन्द-इन्दु-अरविन्द-शुभ्र,
तो मैं हूं निर्मल व्याप्ति।

— सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला'

(प्रेयसी-प्रियतम)

तुम मुझमें प्रिय ! फिर परिचय क्या ! तारक में छवि प्राणों में स्मृति !

पलकों में नीरव पद की गति लघु उरमें पुलकों की संसृति
भर लाई हूँ तेरी चंचल और करूँ जग में संचय क्या !

तेरा मुख सहास अरुणोदय परछाई रजनी विषादमय
यह जागृति वह नींद स्वप्नमय खेल खेल थक थक सोने दो !

मैं समझूँगी सृष्टि प्रलय क्या !

तेरा अधर-विचुम्बित प्याला तेरी ही स्मित मिश्रित हाला
तेरा ही मानस मधुशाला फिर पूछूँ क्यों मेरे साकी !

देते हो मधुमय विषमय क्या !

रोम रोम में नन्दन पुलकित साँस साँस में जीवन शत शत
स्वप्न स्वप्न में विश्व अपरिचित मुझमे नित बनते मिटते प्रिय !

स्वर्ग मुझे, क्या निष्क्रिय लय क्या ?

हारूँ तो खोऊँ अपना पन, पाऊँ प्रियतम में निर्वासन
जीत बनूँ तेरा ही बन्धन भर लाऊँ सीपी में सागर !

प्रिय मेरी अब हार विजय क्या ?

चित्रित तू मैं हूँ रेखाक्रम मधुर राग तू मैं स्वर संगम
तू असीम मैं सीमा का भ्रम, काया छाया में रहस्यमय !

प्रेयसि प्रियतम का अभिनय क्या ?

—महादेवी वर्मा

— — —

(एक पहेली)

प्रिय ! मै हूं एक पहेली भी !

जितना मधु जितना मधुर हास, जितना मद तेरी चितवन में।
जितना क्रन्दन जितना विषाद , जितना विष जग के स्पन्दन में ॥
पी पी मैं चिर दुख प्यास बनी, सुख सरिता की रँग रेली भी।
मेरे प्रति रोमों से अविरत, झरते हैं निर्झर और आग ॥
करती विरक्ति आसक्ति प्यार, मेरे श्वासो में जाग जाग ।
प्रिय मैं सीमा की गोद पली, पर हूँ असीम से खेली भी ॥

—महादेवी वर्मा ।

(स्मृति)

कितनी निर्जन रजनी में, तारों के दीप जलाये,
स्वर्गङ्गा की धारा में मिलने की भेंट चढाये।
शशि-मुख पर घूंघट डाले अञ्चल मे दीप छिपाये,
जीवन की गोधूली में कौतूहल से तुम आये ॥

× × ×

मै अपलक इन नयनों से निरखा करता उस छवि को,
प्रतिभा डाली भर लाता कर देता दान सुकवि को।
घन में सुन्दर बिजली-सी बिजली में चपल चमक-सी,
आँखो में काली पुतली, पुतली में श्याम झलक सी ॥
प्रतिमा में सजीवता-सी, बस गई सुछबि आँखों में,
थी एक लकीर हृदय में जो अलग रही लाखो में ॥

× × ×

तुम रूप-रूप थे केवल, या हृदय रहा भी तुमको,
जड़ता की सब माया थी चैतन्य समझ कर हमको ॥

× × ×

विष प्याली जो मैं पी लूँ, वह मदिरा हो जीवन में,
सौंदर्य पलक प्याले का, क्यों प्रेम बना है मन में।
छलना थी फिर भी मेरा, उसमें विश्वास घना था,
उस माया की छाया मे कुछ सच्चा स्वयं बना था॥
कामना-सिन्धु लहराता, छवि पूरनिमा थी छाई,
रत्नाकर बनी चमकती, मेरे शशि की परछाई।
लहरों मे प्यास भरी थी थे भँवर-पात्र भी खाली,
मानस का सब रस पीकर लुढका दी तुमने प्याली॥
सोएगी कभी न वैसी फिर मिलन कुञ्ज मे मेरे,
चाँदनी शिथिल अलसाई सम्भोग सुखों से तेरे॥
सुख आहत-शान्त उमङ्गे बेगार साँस ढोने में
यह हृदय समाधि बना है रोती करुणा कोने में,
अभिलाषाओं की करवट, फिर सुप्त व्यथा का जगना,
सुख का सपना हो जाना भीगी पलकों का लगना॥

× × ×

इस विकल वेदना को ले किसने सुख को ललकारा
वह एक अबोध अकिञ्चन वेसुध चैतन्य हमारा।
उस पार! कहाँ? फिर जाऊँ, तम से मलीन अञ्चल में,
जीवन का लोभ न है वह वेदना छद्म के छल में॥
वेदना विकल फिर आई मेरी चौदहों भुवन में,
सुख कहीं न दिया दिखाई, विश्राम कहाँ जीवन में?॥
उच्छ्वास और आँसू मे, विश्राम थका सोता है।
रोई आँखों में निद्रा-बनकर, सपना होता है॥ —जयशंकर 'प्रसाद'

(प्रेयसि !)

आज सजीव बनालो, प्रेयसि ! अपने अधरों का प्याला !
भरलो, भरलो.. भरलो, इसमें, यौवन मधुरस की हाला !
और लगा मेरे अधरों में, भूल हटाना तुम जाओ !
अथक बनूँ मैं पीने वाला, खुले प्रणय की मधुशाला !
सुमुखि ! तुम्हारा सुन्दर मुखही, माणिक मदिरा का प्याला !
छलक रही है जिसमें छलछल-रूप मधुर मादक हाला !
मैं ही साकी बनता मैं ही, पीने वाला बनता हूँ !
जहाँ कहीं मिल बैठे हम-तुम वहीं गई हो मधुशाला ! —बच्चन

(निवेदन)

प्रभु ! मैं कैसे तुमको पाऊँ

तू महान मैं लघु रजकण हूँ, कैसे प्रेम दिखाऊँ ?
कैसे करूँ प्रार्थना तेरी, नहीं रुचेगी बिनती मेरी,
जग में अंधकार छाया है, कहाँ खोजने जाऊँ ?
कभी सोचती हूँ मैं मन में, क्यों हूँ बँधी हुई बन्धन में ?
मुझमें ही तो मुक्ति विहित है, चाहूँ तो खुल जाऊँ !
तेरे नियम वृथा करने को, केवल क्षणिक स्वार्थ रखने को।
कर्महीन बनकर, सुख के हित-क्यों तेरे गुण गाऊँ ?
मुझे रुला, मैं हँसती जाऊँ औरों के हित जलती जाऊँ।
अन्तिम दे वरदान मुझे, अपने में तुझको पाऊँ !

—तारा पांडेय।

———

हृदयकी झनकार

(प्रेम-राग आसावरी)

रमैया मैं तो थारे रंग राती ।

श्रौरांके पिया परदेश बसत है, लिख लिख भेजें पाती ।
मेरा पिया मेरे हृदय बसत है, गेल करूँ दिन राती ॥१॥
चूवा चोला पहिर सखीरी, मैं झुरमुट रमवा जाती ।
झुरमुटमें मोहि मोहन मिलिया, घाल मिली गलबाँथी ॥२॥
और सखी मद पी पी माती, मैं बिन पीयाँ ही माती ।
प्रेम भठी को मैं मद पीया, छकी फिरूँ दिन राती ॥३॥
सुरत निरतको दिवलो जोया, मनसा पूरन बाती ।
अगम घाणिको तेल सिचायो बाल रहा दिन राती ॥४॥
जाऊँनी पीहरिये जाऊँनी सासरिये, हरिसूँ सैन लगाती ।
मीराके प्रभु गिरिवर नागर, हरि-चरना चित जाती ॥५॥

(विरह)

हे री मैं तो प्रेम दिवानी, (मेरो) दरद न जाने काय ॥ टेक ॥

सूली ऊपर सेज हमारी, सोणो किस विध होय ।
गगन मँडल पर सेज पियाकी, किस विध मिलणो होय ॥१॥
घायलकी गति घायल जानै, जो कोई घायल होय ।
जौहरिकी गति जौहरि जानै, दूजा न जानै कोय ॥२॥
दरदकी मारी बन बन डोलूं, बैद मिल्यो नहि कोय ।
मीराकी प्रभु पीर मिटै जब, बैद साँवलियो होय ॥३॥

(राग आसावरी)

दरस बिनु दूखन लागै नैन ॥

जबसे तुम बिछुरे मेरे प्रभुजी, कबहु न पायो चैन ॥१॥
शब्द सुनत मेरी छतियाँ कम्पै, मीठे लागै बैन ।
एकटकटकी पंथ निहारूँ भई छमासी रैन ॥२॥
बिरह बिथा कासूँ कहूँ सजनी, बह गई करवत नैन ।
मीराके प्रभु कब रे मिलोगे, दुख मेटन सुख दैन ॥३॥

(राग तोड़ी-ताल तेवरा)

मेरे तो गिरधर गोपाल दूसरा न कोई ।
दूसरा न कोई, साधो, सकल लोक जोई ।
भाई छोड्या बंधु छोड्या, छोड्या सगा सोई ।
साधु संग बैठ बैठ लोक लाज खोई ॥
भगत देख राजी हुई, जगत देख रोई ।
अँसुवन जल सींच-सींच प्रेम-बेलि बोई ॥
दधिमथ घृत काढि लियो, डार दई छोई ।
राणा विष को प्याला भेज्यो पीय मगन होई ॥
अब तो बात फैल पडी जाणे, सब कोई ।
मीरा एम लगण लागी —होनी होय सो होई ॥

(विरहिणी के उद्गार)
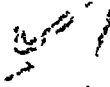
कागा नैन निकास दूँ, पिया पास ले जाय।
पहिले दरस दिखाय कै, पीछे लीजो खाय ॥

कागा सब तन खाइयो, चुन चुन खइयो माँस।
दो नैना मत खाइयो, पिया मिलनकी आस ॥

सजन सकारे जायँगे, नैन मरेंगे रोय।
विधना ऐसी रैन कर, भोर कभी ना होय ॥

साजन हम तुम एक हैं, कहन सुननके दोय।
मनसे मनको तौलिये, दो मन कभी न होय ॥

लगा भादों मुझे दुख देने भारी, घटा चहुँ ओर झुक आई है सारी।

(विरहिन की चिन्ता)

भरी जलथल चढी नदियों की धारें, सखी अब तक न आये पी हमारे।
घटा कारी अँधेरी नित डरावै, पिया बिन नींद विरहिन को न आवै ॥

अरे कागा तू उड़के जा विदेसा, सलोने श्यामको लेकर सँदेसा।
ये सब हालत वहाँ तकरीर कीजो, मेरा साबित गुनह तकसीर कीजो ॥

कि उस जोगिनको तुम क्यों छोड़ बैठे ? तरफ उसकीसे मुँह क्यों मोड़ बैठे।
मुझे गम दिन ब-दिन खाने लगा है, अजल का दिन नजर आने लगा है ॥

न जानूँ दरस पीका कब मिलेगा, कमल इस मेरे जी का कब खिलेगा।
सखी, यह मास भादों भी सिधारा, न आया आह वह प्रीतम पियारा।
दिवानी पीकी मैं मेरा पिया है, पिया का नाम सुमरन मैं किया है।

(कामना)

कह रहा हूँ जो मुझे है आज भगवन् माँगना।
पर नहीं प्यारे मुझे धन-धाम-कंचन माँगना॥
लोक-आदर-मान की भी कुछ मुझे इच्छा नहीं।
और क्या ? मुझको नहीं है राज-आसन माँगना॥
सिद्धाता वैराग्य-जप-तप-नियम साधन आदि की।
यह नहीं कुछ भी मुझे है पतित-पावन माँगना॥
प्रेम इतना दो कि देखूँ प्रेममय संसारको।
कामना है एक केवल प्रेम-जीवन माँगना॥

(गजल)

जिन प्रेम रस चाख्या नहीं, अमृत पिया तो क्या हुआ।
जिन इश्क मे सर ना दिया, जुग-जुग जिया तो क्या हुआ॥
मशहूर हुआ पंथ में, साबित न किया आपको।
आलिम औ फ़ाजिल होय के, दाना हुआ तो क्या हुआ॥
औरों नसीहत है करे, और। खुद अमल करता नहीं।
दिलका कुफ़र टूटा नहीं, हाज़ी हुआ तो क्या हुआ॥
देखी गुलिस्ताँ बोस्ताँ, मतलब न पाया शेख का।
सारी किताबों याद कर, हाफिज़ हुआ तो क्या हुआ॥
जब तक पियाला प्रेम का, पीकर मगन होता नहीं।
तारमंडल बाजते ज़ाहिर सुना तो क्या हुआ॥
जब प्रेम के दरियाव में, 'ग़रकाब गर होता नहीं।
गंगा यमुन गोदावरी, नहाता फिरा तो क्या हुआ॥

प्रीतम मे किंचित् प्रेम नही, प्रीतम पुकारत दिन गया ॥
मतलब हासिल ना हुआ, रो रो मुआ तो क्या हुआ ॥

(प्रेम-नगर)

प्रेम-नगर मे बनाऊँगी घर मैं तजके सब ससार ।
प्रेम का आँगन प्रेम की छत और प्रेम के होंगे दुआर ॥
प्रेम सखा हो प्रेम पड़ोसी प्रेम ही सुख का सार ।
प्रेम के सग बितायेंगे जीवन प्रेम ही प्राणाधार ॥
प्रेम-सुधा मे स्नान करूँगी प्रेम से होगा शृङ्गार ।
प्रेम ही धर्म है प्रेम ही कर्म है प्रेम ही सत्य-विचार ॥

(प्रेममय संसार)

प्रेममय है सारा ससार ।

प्रेमहि का सारा प्रसार है, मत कह इसे असार ।
प्रेम वार है, प्रेम पार है, प्रेमहि है मँझधार ॥
बेडा पड़ा प्रेम-सागर में, प्रेम से होगा पार ।
प्रेम विलग है जो तेरे मन, वह है प्रेमविकार ॥
होजा निडर छोड़ दे गडबड, पकड प्रेम की धार ।
प्रेम के बल से केवल होगा, निर्वल तेरा निस्तार ॥

(गोवर्धन गिरधारी)

तुम बिन हमरी कौन खबर ले गोवर्धन गिरधारी ।
भगत मीरा की विपता में बस, काम तुम्ही तो आये थे ।
शंकरजी की मुश्किल में तुम, किरपा बनके छाये थे ॥

मोरी की तो आके सुन लो ओ जग के रखवारी ।
तुम बिन हमरी कौन खबर ले गोवर्धन गिरधारी ॥
उलझ गये थे जाके तुमही दुर्योधन के पापों से ।
द्रौपदी की जा लाज बचाई लम्पट काले हाथों से ॥
मुझ पर भी किरपा हो जाये अब है मोरी बारी ।
तुम बिन हमरी कौन खबर ले गोवर्धन गिरधारी ॥

(कृष्ण कन्हैया)

अब तेरे सिवा कौन मेरा कृष्ण कन्हैया । भगवान् किनारेसे लगा दे मेरी नैया ॥

× × ×

मेरी खुशी की दुनिया, बाबुल ने छीन ली ।
मेरे सुखों की कलियाँ, किस्मत ने बीन ली ॥
अब तू ही बचा लाज मेरी वंशी बजैया ॥ भगवान किनारे० ॥
पूजा नहीं है पूरी, अधूरी है आरती ।
ओ, श्याम सलोने तुझे मीराँ पुकारती ॥
कहती है बार-बार वो लेले के बलैया ॥ भगवान किनारे० ॥

(सखी से)

प्रीति का दुख है अपार, सखीरी । प्रीति का दुख है अपार ।
चाहे जितने भी दुख सहियो, मन की बात कभी ना कहियो,
बैरी है संसार । सखीरी० ॥
गहरी नदिया नाव पुरानी, मैं विरहिन औ चढ़ी जवानी,
करो विधाता पार । सखीरी० ॥
प्रेम-सिन्धुमें भँवर विरह के, नाव दुराई घाट से बहके,
कौन धरे पतवार । सखीरी० ॥

(राग भीमपलासी)

सबसों ऊँची प्रेम सगाई ।

दुर्योधनके मेवा त्यागे, साग बिदुर घर खाई ॥
जूठे फल सबरीके खाये, बहु बिधि स्वाद बताई ।
प्रेमके बस नृप सेवा कीन्हीं, आप बने हरि नाई ॥
राजसु-यज्ञ युधिष्ठिर कीन्हों, तामें जूठ उठाई ।
प्रेमके बस पारथ-रथ हाँक्यो, भूलि गये ठकुराई ॥
ऐसी प्रीति बढ़ी बृन्दावन, गोपिन नाच नचाई ।
सूर कूर इहि लायक नाहीं, कहँ लगि करौं बड़ाई ॥

(गायन)

जागु पियारी, अब का सोवै । रैन गई दिन काहेको खोवै ॥
जिन जागा तिन मानिक पाया । तैं बौरी सब सोय गँवाया ॥
पिय तेरे चतुर तू मूरख नारी । कबहुं न पियकी सेज सँवारी ॥
तैं बौरी बौरापन कीन्हों । भर जोवन पिय अपन न चीन्हों ॥
जागु देख पिय सेज न तेरे । तोहि छाँड़ि उठि गये सवेरे ॥
कह कबीर सोई धुन जागे । शब्द बान उर अन्तर लागे ॥

(राग काफी)

नैहरवा हमका न भावै ॥ टेक ॥

साईंकी नगरी परम अति सुन्दर, जहँ कोई जाय न आवै ।
चाँद सुरज जहँ पवन न पानी, को सँदेस पहुँचावै ॥
दरद यह साईंको सुनावै ॥ १ ॥

आगे चलौं पन्थ नहिं सूझै, पीछे दोष लगावै।
केहि बिधि ससुरे जाऊँ मोरी सजनी, बिरहा जोर जनावै॥
विषैरस नाच नचावै ॥ २ ॥
बिन सतगुरु अपनो नहिं कोई, जो यह राह बतावै।
कहत कबीर सुनो भाई साधो, सुपने न पीतम पावै॥
तपन यह जियकी बुझावै ॥ ३ ॥

(राग काफी)

कौन मिलावै मोहि जोगिया हो,
जोगिया बिन रह्यो न जाय ॥ टेक ॥
हौं हिरनी पिय पारधी हो, मारे सबद के बान।
जाहि लगी सरे जान ही हो, और दरद नहिं जान॥
मैं प्यासी हौं पीवकी हो, रटत सदा पिय पीव।
पिया मिले तो जीव है, नातो सहजै त्यागों जीव॥
पिय कारन पियरी भई हो, लोग कहैं तन रोग।
छइ छह लाँघन मैं किया रे, पिया मिलनके जोग॥
कह कबीर, सुनु जोगिनी हो, तन में मन हिं मिलाय।
तुम्हरी प्रीतिके कारने हो, बहुरि मिलहिंगे आय॥

(गायन)

पिया घर नाही अकेली मोहें डर लागे।
घर सूना, यह दुनिया सूनी, बेदम नारि अकेली,
जिन सखियों के साजन घर है, उनका साँझ-सवेरा। अकेली०
मेरा साजन दूर बसा है। मोरा घर है, अँधेरा—
अँधेरा ॥अकेली०॥

(गायन)

एक बात बताओ हमें गोरी !
कहो किसने सिखाई तुम्हें चोरी ॥

X X

एक चोर से मेरा नाता-वह मेरी गली में आता-जाता।
उसने ही सिखाई मुझे चोरी !

देखो कह दूँगी तुम्हारे मन की बतियाँ,
तुमने चोरी-चोरी भेजी है पतियाँ ! देखो० !

चोरी पै सीना जोरी हमसे न करो गोरी,
लाओ, देदो हमारी हमको पतियाँ ! देखो० !

बातें बनाना छोड़ो, चोरी छिपाना छोड़ो,
हमरी गली में देखो, तुम कल से आना छोड़ो।

वरना हँसेंगी हमारी सखियाँ-देखो०

मीठी २ बातों में हमको लुभाया तुमने।
भोला सा मन हमारा चचल बनाया तुमने,
बड़ी रसीली हैं तुम्हारी अँखियाँ। देखो०।

छोड़ो यह बातें गोरी, आओ आओ किशोरी०

X

कैसे कटेंगी रतियाँ, हाँ-हाँ राम।

जब से गये मोरी सुधहून लीन्हीं,
और न भेजी पतियाँ हाँ-हाँ राम। कैसे० ॥

रात-दिवस मोहिं तड़पत बीतै,
धड़कत मोरी छतियाँ हाँ-हाँ राम। कैसे० ॥

पियरवा मत कर इतनो देर।
बहुत दिवस हेरत तोहि बीते, तू न सका मोहिं हेर।
'हरी चन्द' अब दया निवाजै, सुन निजजन की टेर॥

(कहरवा)

मोरे सैयाँ गये परदेश, ननदी बोली न बोलो!
जब से गये मोरी सुधहू न लीन्हीं,
कबहूँ न भेजे संदेश! ननदी बोली न०।
प्रीतम बसे पहाड़ पै, हम जमुना के तीर,
अबका मिलना कठिन है, पाँवन परी जँजीर॥
ननदी बोली न०।
जो मैं ऐसा जानती, प्रीत किये दुख होय,
नगर ढिंढोरा पीटती, प्रीत करै ना कोय।
ननदी बोली न०।—

(गायन)

बालम! आय बसो मोरे मन में!
सावन आया, तुम ना आये, तुम बिन रसिया कुछ न भाये।
मन में मेरे हूक उठत जब, कोयल कूकत बन में॥ बालम आय०॥
सुरतिया जाकी मतवारी, पतरी कमरिया उमरिया बारी,
एक नया संसार बसा है, जिनके दो नयनन में। बालम आय०॥—सैगल

(दादरा)

अगिया लागी सुन्दर बन जरि गये।
लकड़ी जरि कोयला भई, कोयला जरि भै राख!
हौं बौरी ऐसी जरी, न कोयला भई न राख!
अगिया लागी०॥

(राग पीलू—ताल कहरवा)

राम मिलन के काज सखी,
मेरे आरति उर में जागी री।
तड़पत—तड़पत कलन परत है,
बिरह बाण उर लागी री।
निसि—दिन पथ निहारूं पिउ को,
पलक न पल भरि लागी री।
पीव—पीव मैं रटूँ रात—दिन,
दूजी सुध—बुध भागी री।
बिरह भुजँग मेरो डस्यो है कलेजो,
लहर हलाहल जागी री।
मेरी आरति मेरी गुसाईं,
आन मिल्यो मोहिं सागी री।
'मीरा' व्याकुल अति अकुलाणी!
पिया की उमँग अति पागी री।

(राग सोरठा—ताल चर्चरी)

हरि कित गये नेह लगाय।
हरि लियो, रस भरि टेर सुनाय।
मन में ऐसो आवै, मरूँ जहर विष खाय॥
', नेह की नाव चढ़ाय।
कबरे मिलोगे, रहे मधुपुरी छाय॥

(राग कोसीकान्हरा—ताल तिताला)

(मध्य लय)

कोई कहियो रे प्रभु आवन की,

आवन की मन-भावन की ॥ टेक ॥

आप न आवै लिख ना भेजै,

बाण पड़ी ललचावन की ।

ये दोउ नैन कह्यो नहिं मानै,

नदियाँ बहै जैसे सावन की ।

कहा करौ कछु बस नहिं मेरो,

पाँख नहीं उड़ जावन की ।

'मीराँ' कहै प्रभु कबरे मिलोगे,

चेरी भइहौं तेरे दाँवन की ।

(राग मीराँ की मलार—ताल तिताला)

(मध्य लय)

बरसै बदरिया सावन की ।

सावन की मन भावन की ॥ टेक ॥

सावन में उमग्यो मेरे मनवा,

भनक सुनी हरि आवन की ।

उमड़—घुमड़ चहुँ दिसिसे आवो ।

दामण दमके झर लावन की ।

नान्ही—नाही बूँदन मेहा बरसै,

शीतल पवन सुहावन की ।

'मीरा' के प्रभु गिरिधर नागर,

आनन्द—मंगल गावन की ।

(राग पीलू—ताल कहरवा)

राम मिलन के काज सखी,
मेरे आरति उर में जागी री।
तड़पत—तड़पत कलन परत है,
बिरह बाण उर लागी री।
निसि—दिन पंथ निहारूँ पिउ को,
पलक न पल भरि लागी री।
पीव—पीव मैं रटूँ रात—दिन,
दूजी सुध—बुध भागी री।
बिरह भुजँग मेरो डस्यो है कलेजो,
लहर हलाहल जागी री।
मेरी आरति मेटी गुसाईं,
आन मिल्यो मोंहि सागी री।
'मीरा' व्याकुल अति अकुलाणी!
पिया की उमँग अति पागी री।

(राग सोरठा—ताल चर्चरी)

होजी, हरि कित गये नेह लगाय।
नेह लगाय मेरो मन हरि लियो, रस भरि टेर सुनाय।
मेरे मन में ऐसो आवै, मरूँ जहर विष खाय॥
छोड़ गये बिसवासघात करि, नेह की नाव चढ़ाय।
'मीरा' के प्रभु कबरे मिलोगे, रहे मधुपुरी छाय॥

(राग दुर्गा--ताल तिताला)

हो गये स्याम दूज के चन्दा ।

मधुवन जाय रहे मधुबनियाँ, हम पर डारो प्रेम को फंदा ।

'मीरा' के प्रभु गिरिधर नागर, अब तो नेह परो कछु मंदा ॥

(रागपील्लू--ताल कहरवा)

पग घुँघरु बाँध मीरा नाचीरे ।

मैं तो मेरे नारायण की, आपही हो गई दासीरे ।

लोक कहैं मीरा भई बावरी, न्यात कहै कुलनासी रे ।

विष का प्याला राणा जी भेज्या, पीवत मीरा हाँसीरे ।

'मीरा' के प्रभु गिरिधर नागर, सहज मिले अविनासीरे ।

(राग मांड--ताल तिताला)

माई री, मैं तो लियो गोविंदो मोल ।

कोई कहै छाने, कोई कहै छुपके, लियोरी बजन्ता ढोल ।

कोई कहै मुहँघो, कोई कहै सुहँघो, लियोरी तराजू तोल ।

कोई कहै कालो, कोई कहै गोरो, लियोरी अमोलक मोल ।

कोई कहै घर में, कोई कहै बाहर-राधा के संग किलोल ।

'मीरा' के प्रभु गिरिधर नागर, आवत प्रेम के मोल ।

(राग मालकोस—ताल तिताला)

श्री गिरिधर आगे नाचूँगी ।

नाच—नाच पिव रसिक रिझाऊँ, प्रेमी-जनकूँ जाचूँगी ।

प्रेम-प्रीति का बाँध घूँघरू, सुरत की कछनी काछूँगी ।

लोक लाज कुल की मरजादा, यामें एक न राखूँगी ।

पिव के पलँगा जा पौढूंगी, मीरा हरि रँग राचूँगी ॥

(राग काफी—ताल दीपचन्दी)

घर—आँगण न सुहावे, पिया बिन मोहिं न भावे ॥ टेक ॥
दीपक जोय कहा करूँ सजनी, पिया परदेस रहावे।
सूनी सेज जहर ज्यूँ लागे, सिसक २ जिय जावे ॥
नैन निंदरा नहिं आवे ॥ १ ॥
कद की ऊभी मैं मग जोऊँ, निसदिन बिरह सतावे।
कहा कहूँ कछु कहत न आवे, हिवड़े अति अकुलावे।
हरि कब दरस दिखावे ॥ २ ॥
ऐसो है कोई परम सनेही, तुरत सनेसो लावे।
वा वरियाँ कब होसी मुझको, हरि हँस कंठ लगावे ॥
'मीरा' मिलि होरी गावे ॥ ३ ॥

(राग बागेश्री—तिताला)

मानुष हौं तो वही रसखान, बसौं ब्रज गोकुल गावँ के ग्वारन।
जौं पसु हौं तो कहा बसु मेरो, चरौं नित नन्दकी धेनु मझारन ॥
पाहन हौं तो वही गिरि को, जो धरयो कर छत्र पुरन्दर कारन।
जो खग हौं तो बसेरो करौं, वही कालिन्दी-कूल कदंब की डारन ॥
या लकुटी अरु कामरिया पर, राज तिहूँ पुर को तजि डारौं।
आठहु सिद्धि नवों निधिको, सुख, नन्द कि गाइ चराइ बिसारौं ॥
आँखनि सों 'रसखान' कबों, ब्रज के बन-बाग तड़ाग निहारौं।
कोटिक हौं कलधौत के धाम, करील के कुंजन ऊपर वारौं ॥

(राग भैरवी—तिताला)

गावें गुनी गनिका गनधर्व औ, सारद सेष सबै गुन गावें।
नाम अनन्त गनन्त गनेस ज्यों, ब्रह्मा-त्रिलोचन पार न पावें ॥

जोगी-जती तपसी अरु सिद्ध, निरन्तर जाहि समाधि लगावैं।
ताहि अहीर की छोहरियाँ छछिया भरि छाछ,पै नाच नचावै॥

(राग विहाग—दीपचन्दी)

जाके उर उपजी नहि भाई, सो क्या जानै पीर पराई।
ब्यावर जानै पीर की सार, बाँझ नार क्या लखै विकार॥
पतिव्रता पति को व्रत जानै, बिभचारिन मिल कहा बखानै।
हीरा परिख जौहरी पावै, मूरख निरख के कहा बतावै॥
लागा घाव कराहै सोई, कौतुक हार के दर्द नसोई।
राम-नाम मेरा प्रान अधार, सोइ रामरस पीवन हार॥
जन 'दरिया' जानैगा कोई, प्रेमकी माला कलेजे पोई।

(गजल)

प्रेम हो तो श्रीहरी का प्रेम होना चाहिये।
जो बने विषयों के प्रेमी उनपै रोना चाहिये।
दिन बिताया ऐशो वो, आराम में तुमने अगर।
रात मे सुमिरन हरीका, करके सोना चाहिये।
मखमली गद्दी पै सोये, तुम यहाँ आराम मे—
बाद में लम्बी सफर को कुछ बिछौना चाहिये।
बीज बोकर बाग के फल खाये है तुमने अगर—
वास्ते परलोक के तो कुछ भी बोना चाहिये।
हरि भजन से लौ लगा, जंजाल दुनिया छोड़ दे—
राम भज आनन्द पाकर, मग्न होना चाहिये॥

(कन्हैया-कन्हैया)

लताओं में ब्रजकी पुकारा करेंगे । कन्हैया-कन्हैया पुकारा करेंगे ॥
कहीं तो मिलेंगे वे बाँके बिहारी । उन्हींके चरण-चित्त लाया करेंगे ॥
उन्हें प्रेम डोरीमें जब बाँध लेंगे । तो फिर कैसे वे भाग जाया करेंगे ॥
हृदय में बनायेंगे हम प्रेम-मन्दिर । वहीं उनको झूला झुलाया करेंगे ॥
जिन्होंने छुड़ाये थे सब फन्द गज के । वही मेरे संकट मिटाया करेंगे ॥
जो रूठेंगे हम से वे बाँके बिहारी । चरण पड़ उन्हें हम मनाया करेंगे ॥
उन्हें हम बिठायेंगे आँखों में दिलमे । उन्हींसे सदा लौ लगाया करेंगे ॥
उन्होंने तो ब्रह्माण्ड सारे नचाए । मगर अब उन्हे हम नचाया करेंगे ॥
बुलाएँगे जबही कन्हैया ! कन्हैया । वहीं पर हरी छवि दिखाया करेंगे ॥

(कूक पपीहे ! कूक !)

बादल गरजे रात अंधेरी, सूनी सूनी दुनिया मेरी ।
जीना हो गया दूभर मेरा—आँख लगे न भूक ॥ पपीहे० ! ॥
तू वनवासी सुन कर रोये—मेरा रोना मुझे डुबोये ।
चूक गई,मैं चूक ॥ पपीहे० ! ॥
मैं भी अकेली तू भी अकेला—मोह का सागर, दुख का रेला ।
मेरे मन में हूक ॥ पपीहे ! ० ॥ —वकार अम्बालवी

(पद)

बतादे, सखी ! कौन गली गये श्याम !
गोकुल ढूँढ वृन्दावन ढूढा, मथुरा में हो गई शाम ।
मथुरा ढूँढत रैन बिहानी, रात कियो विश्राम । —बतादे० ॥
भोर भये जब वन, वन ढूँढो, पायो कदमन छाहँ ।
कहा कहूँ वाके मुख की शोभा कोटि उदय भये भान ॥
चन्द्रसखी भज बालकृष्ण छवि, लजत कोटि शत काम । —चन्द्र सखी

(ग़ज़ल)

गर प्रेम की इस दिल में लगी घात न होती।
तो सच है कि मोहन से मुलाक़ात न होती॥
सरकार को नजराने में देता मैं भला क्या।
कुछ पास गुनाहों की जो सौगात न होती॥
क्यों होते मुख़ातिब वह भला मेरी तरफ को—
आहों में कशिश की जो करामात न होती॥
है दर्दे मोहब्बत का फ़कत सारा तमाशा।
यह दिल में न होता तो कोई बात न होती॥
दृग 'बिन्दु' बताते है कि घनश्याम है दिल में।
घनश्याम न होते तो यह बरसात न होती॥ —'बिन्दु' शर्मा

(धमार मात्रा १४)

भोरहिं आये मेरे आँगन, सगरी रात तुम कहाँ जागे लालन!
अधर अंजन, भाल महावर, डगमगात पग धरत धरन!!
आवन बदि मोसे अन्त सिधारेहु, कवन रस बस कर लिये ललन!
'तानसेन' के प्रभु वहीं सिधारो, जाहि के पास रहे बिन कलन!!

(ध्रुपद—गारा)

प्यारी की मूरत चित चढ़ी, निशि-दिन रहत हमारे।
कर उपचार-विचार कोटि विधि, बिसरत नाहि बिसारे॥
विरही पपीहा पिउ-पिउ बोले, ताहि विधि पीर हमारे।
'तानसेन' प्रभु तुमरो दरस को, नैन बहत जल धारे॥ —तानसेन

(गाना)

सेजिय अकेली दुख देत।
पिया गैलो परदेश, सेजिया अकेली दुख देत।
आवन कहि गये अजहु न आये, ना मोरी सुध लेत॥
सेजिया अकेली०॥

स्नेह-बन्धन की सादिच्छा

[ले०—श्री मोहनसिंहजी गहलोत एम० ए०]

महिला छात्रालय।
कमरा नं० ३३ ए
लखनऊ।

प्रिय प्रकाश बाबू, ता० २-८-१९४३

बहुत साहसकर पत्र लिखने को सोचा। सोचा कि मैं आपको जो कह नहीं सकती, वह लिखकर व्यक्त कर दूँ। यदि न लिखूँगी तो मेरा भावी जीवन एक भार हो जावेगा। सत्य लिख रही हूँ यही समझकर आप मेरे प्रति दया करेंगे। मेरी कोई बात आप पर नहीं है, आप मेरे पत्र का उत्तर केवल एक शब्द में दें। केवल एक शब्द में भेजें। मुझे धार्म्मिक उपदेश से घृणा सी है। आप और कुछ न लिख, एक मानव के नाते उत्तर दें। आपका हृदय एक सरल साहित्यिक सा है। मेरी दशा पर विचार करके निर्णय करें। बहुत लम्बी भूमिका न बाँधकर, मैं अब लिख ही दूँ तो ठीक होगा।

लज्जा और संकोच, शील और शिष्टाचार सभी मेरे हाथ रोक रहे है। पर मुझे लिखना ही पडेगा। पत्र अपने तक ही सीमित रखें, मेरी इसी में लाज है। "आपको मैंने बहुत निकट से देखा है। बहुत बार, साथ ही रहने का अवसर मिला है। आपने मेरे लिए बहुत त्याग भी किया है। थोड़ा मुझे भी अवसर दें।" मैं यदि आपकी जीवन-संगिनी बनना चाहूँ तो आपका क्या निर्णय होगा? ज्ञात करना चाहती हूँ।

प्रिय! यही मेरी कामना है। अब यही एक मात्र साध है। मूक हृदय अपनी तंत्री के सभी स्वरों से आपको मुग्ध करना चाहता है। आपके अन्त-स्तल के किसी स्तर में मेरा भी स्थान हो जावे। मैं एक नया संसार बसाऊँ—

हाँ, प्रेम का। इस नगरी में केवल आप ही राजा हो। पल पल में, मैं आपका दर्शन करती रहूँ। मेरा अस्तित्त्व ही मिट जावे। पद-रज बनकर प्रेम का प्याला पिऊँ। एक घूँट पीकर सब भूल जाऊँ। तेरा-मेरा ना रहे। मैं मैं न रहूँ। मेरी नगरी में सेवा और त्यागका व्यापार हो। मैं किसी को दुखदायी न बनूँ और न किसी का अधिकार ले बैठूँ। एक स्मित मुस्कान, एक कटाक्ष, एक मधुर बोल पर ही मेरा निर्वाह हो। मेरी नगरी के क्षितिज से प्रेम-संगीत की मधु भरी लहरें आयें, एक मीठा, अनूठा, मद भरा संदेश लिये उसी संदेश के बल पर दीप-शिखा सी मैं जलूँ, अपने प्रिय के पत्र की राह जोहती। तुम भूले भटके कभी आवो। मैं सोलह शृङ्गार सजकर पंथ निहारूँ।

सुगंध के भार से दबी वायु का संचार हो। रजनीगन्धा चन्दा की मादक चाँदनी में एक मस्ती मेरे शरीर में भर दे। उस मध्य रात्रि को जो वेला मिले, वह तुम्हे सुवासित कर अपने आपको धन्य मानूँ। जग हँसे, मै बावरी मानी जाऊँ। पर मेरी नगरी मे उसका कोई मूल्य नहीं। अथाह सागर मे मैं भले ही फेंक दी जाऊँ, पर एक बार प्रिय आप, नहीं तुम, मेरे हो जावो केवल एक क्षण के लिए। वह क्षण मेरे यौवन और मेरे देह धरने का सुवर्ण प्रभात होगा। यह मेरे पंचतत्त्व फिर अपनी स्थिति को लौट जावें। मुझे चिन्ता नही। मेरी साध तो पूरी हो जावेगी। आशा का सहारा लिए, अपनी साधना के बल पर मैं क्या तुम्हें नहीं पा सकूँगी ?

अधिक क्या लिखूँ। मैने कुछ भी नहीं लिखा है। हृदय – मंदिर के सूने कोने को बसाने के लिए उसे खोलकर रख दिया है। मैं प्रतीक्षा करूँगी, उत्तर की, एक शब्द मे। उसी पर सभी कुछ निर्भर होगा। आज मैं भी जुआ खेल रही हूँ। पासा फेंक चुकी [illegible] किस्मत क्या करता है, देखूँ ?

विनीता,

शशि

प्रेमी का उत्तर

हिन्दू होस्टल।
विश्वविद्यालय।

शशि देवी, ता० ६-८-१९४३

तुम्हारा पत्र मिला। पढ़कर दुःख अधिक हुआ या आश्चर्य, कहना कठिन है। स्त्री और पुरुष का सम्पर्क सदैव विवाह-बन्धन में ही अन्त नही होता है। तुम्हारा सारा पत्र छायावादी है, जिसमें कोमल, ललित तथा मधुर शब्दों की शब्दावली है। यहाँ तो यह सब अदूरदर्शी आतुरता है जिसमें कि अविवेकी बाल-चापल्य की प्रभुता है। इसका कारण तुम नहीं वरन् आजकल की धर्म रहित पढाई, सहशिक्षा, चलचित्र, कहानी पत्र और मानसिक पतन वाली छायावादी कविता है। तुम्हारे विचारों को मैं सत्य मानता हुआ उनका आदर करता हूँ। दुःख इसी बात का है कि तुम मेरे साथ रहकर भी मुझे पहिचान न सकी। मैं प्रथम तो विवाहित हूं। क्या तुम्हें अपनी ही एक बहिन के अधिकार पर डाका डालते लज्जा नही आती ? मैं हिन्दू हूँ। मैं दो विवाह कर सकता हूँ, पर यह अधिकार का दुरुपयोग होगा, जिसे अधर्म कहा जाता है।

तुम्हारा पत्र मैं तुम्हारी लाज के हेतु तुम्हें लौटा रहा हूँ। धर्म से तुम्हें घृणा है, इससे अधिक क्या लिखूं ? मेरे लिये अब किसी भी प्रेमिका की कल्पना करना असम्भव है। मैं मेरी पत्नी सहित अपनी दशा में प्रसन्न हूँ। हमें दुःखी बनाने का प्रयत्न नहीं होना चाहिए।

यदि तुम अपने प्रेम को इतना प्रबल और त्यागी पाती हो तो देशसेवा और स्त्री-शिक्षा के प्रचार में लग जावो। मनुष्य का जीवन तो एक यात्रा है, जो कि समाप्त होकर पुनः आरम्भ होती है। धर्म में श्रद्धा, और ईश्वर में विश्वास करके, अपने सत्कर्म के बल पर यही वरदान मांगो कि

उस आने वाली नवीन यात्रा में तुम अपने इच्छित जीवनसंगी को पा सको। यदि सभी सुख इस जीवन में न मिले तो दुःख न मानो। जीवन में मनुष्य को पूर्ण सुख से नहीं वरन् दुःख से संघर्ष लेना पड़ता है।

शुभेच्छु—प्रकाशचन्द्र

रहस्यमयी चिट्ठी

श्री ७ घरा।

मथुरा।

प्रिय १५,

को १००० बार प्यार।

(प्रेषक--श्रीमती धनी)

(१)

वि ४ होने पर २ ष हुआ कि तुमको कोई समा ४ नहीं भेजा। यहाँ पर ६ प्पर फाड़ बर ७ होने से मै ला ४ रहा। ६ न भर भी बर ७ के प्र ५ से छुट्टी नहीं मिलती। यहाँ आकर न मैं सर ५ बन गया हूँ और न मेरी १०० भाग्यवती १५ को १०० त के डर से हो डरना चाहिए। ऐसे वि ४ तो तुम्हारे दिमाग से ६-२-११ हो जाने चाहिएँ। आगमी १० मी को १० हरा है। व्रत रखो तो प्र २ ष का। ध्यान रखना।

हिन्दी प्र ४ के लिए पुस्तक ६ प रही है। ६ पाई २ ष रहित है। १०० दागरी तो करनी आती नहीं, पर पुस्तक बिक जावेगी। १००००० उप ४ किए पर ६ कर के ठीक होकर ४ पाई से उठने की ६ बत नहीं आई है। हर ३० रे दिन पत्र डालता रहूँगा।

तुम्हारा,

३ वेणी नाथ ७ वलेकर

ननद-भाभी की प्रेमभरी मनुहार

[प्रेषक—श्रीमतीधनी]

स्वामी घाट मथुरा

६-३-४५

ननद ने पुकारा	—	BB G	—	बीबी जी ।
भाभी बोली	—	G	—	जी ।
ननद ने फिर पुकारा	—	O BB	—	ओ बीबी।
भाभी वहीं से बोली	—	G GG	—	जी जीजी ।
ननद ने जोर से पुकारा	—	BB I G	—	बीबी आई जी ।
भाभी ने धीरे से कहा	—	G	—	जी ।
ननद ने झुंझला कर पुकारा	—	IO G	—	आईओ जी ।
भाभी मधुर स्वर में बोली	—	I GG G	—	आई जीजी जी ।
ननद ने भाभी के आते ही कहा	—	T PO G	—	टी पीओ जी ।
भाभी बोली	—	P I G	—	पी आई जी ।

—०:—

प्रेम-बन्धन

[लेखक—श्री लालधर त्रिपाठी 'प्रवासी']

लखनऊ

ता० ३—५—४५

प्रियेतम,

यह प्रेम का बन्धन बाँधना तो उतना दुखदायक नाथ, नहीं।
बँधते कुछ देर नही लगती मन भी रहता निज हाथ नहीं।
हम दोनों हुए इस भाँति है एक न छोड़ना चाहते हाथ कही।
पर हाथ में हाथ मिला करके हमे छोड़ न देना अनाथ कही।

काशी—

ता० ३-५-४४

प्रिये,

कैसे प्राण, तुम्हे मैं भेजू प्रेम-पत्र बतलाओ,
बँधे हुए हैं हाथ, मार्ग है कौन मुझे समझाओ!
तुमसे मिलने को इच्छा मुझको बेचैन बनाती,
किन्तु मिलन है बहुत दूर जब पाती पहुँच न पाती!
टूटे फूटे शब्दों में ये टूटी फूटी बातें,
पूरी नही अधूरी रहती, विरह कर रहा घातें!
और अधिक क्या लिखूँ बतादो मेरी है कल्याणी,
हृदय तुम्हारा ही कह देगा मेरे मन की वाणी!

—०—

लखनऊ

प्राणाधार,

अब छोटे-बड़े सब जान गए अपमान को मैं मन लाती नहीं,
जब आपके प्रेम में डूब चुकी तब मैं किसी से सकुचाती नहीं,
प्रिय, आपके प्रेम के कारण मैं लिखने-पढ़ने कुछ पाती नहीं,
पर क्या बतलाऊँ लला तुमसे बिन चन्द्र चकोरी जुड़ाती नहीं।

—·o·—

अल्मोड़ा

प्राणाधिके,

सभव है मैं अब आ न सकूँ!

जिससे मिलना था जीवन में, उससे दिल खुलकर मिल न सका,
जिसका खिलना था उपवन में वह मुकुल नियति-वश खिल न सका;
जो जन्म-जन्म का है साथी, संभव है गले लगा न सकूँ!! संभव है—!!

उस पार तुम्हारा डेरा है, पथ को लहरों ने घेरा है;
रह रह कर डाँट रहा जल-निधि—'मानव क्या साहस तेरा है?'
मैं कूद पड़ूँगा तो उसमें, संभव है तट तक जा न सकूँ!! संभव है—!!

साथी है कोई साथ नहीं, दुनिया में एक अकेला हूँ,
जिसका सिर ऊँचा कभी नहीं वह दुनियाँ की अवहेला हूँ,
कर देना क्षमा अरी करुणे, संभव है दर्शन पा न सकूँ!! संभव है—!!

—·o:—

चाह चिट्ठी

दार्जिलिग—
६—३—४४

प्रिये, प्रियतमे, प्राणेश्वरी,

प्राणप्यारी ! प्राणवल्लभे !

चिरजीवन संगिनी ! मेरी नलिनी !

मेरे हृदय-मन्दिर में सदैव रहने वाली स्नेहाशीर्वाद !

विदित्त हो कि मैं फौज का एक बड़ा आफिसर बना दिया गया हूँ, लेकिन अत्यन्त अस्वस्थ हो गया, इस कारण से दार्जिलिग पहाड़ पर आना पड़ा। अब मैं क्रमशः स्वस्थ हो चला हूँ।

मैं काव्य की पुस्तकें पढ़ रहा था, जिनमें एक दो गीत मुझे बहुत ही रुचिकर प्रतीत हुए जिन्हे मै तुम्हारे पास इसी पत्र के साथ भेज रहा हूँ। मुझे आशा है कि उन्हें तुम भी हृदय से पसन्द करोगी—

—विमलेश कुमार सिनहा

(१)

"कुञ्ज कुटीरे यमुना तीरे"

पगली तेरा ठाठ, किया है रक्ताम्बर परिधान।
अपने काबू नहीं और यह सत्याचरण विधान॥
उन्मादक मीठे सपने ये और अधिक मत ठहरें।
साक्षी न हों न्याय-मन्दिर में कालिन्दी की लहरें॥
डोर खींच मत शोर मचा, मत वहक लगा मत ज़ोर।
माझी, थाह देख कर आ तू, मानस-तट की ओर॥

* * *

कौन गा उठा ? अरे करे मत ये पुतलियाँ अधीर ।
इसी कैद पर बन्दी हैं वे श्यामल-गौर शरीर ॥
पलकों की चिक पर हृत्तल के छूट रहे फव्वारे ।
निश्वासें पखे झलती हैं, उनसे मत गुन्जारे ॥
यही व्याधि मेरी समाधि है, यही राग है त्याग ।
क्रूर तान के तीखे शर मत, छेदें मेरे भाग ॥

*　　*　　*

काले अन्तस्तल से फूटी कालिन्दी की धार ।
पुतली की नौका पर लाई मैं दिलदार उतार ॥
बादबान तानी पलकों ने—हा यह क्या चीत्कार !
कैसे ढूँढूँ ? हृदय-सिन्धु में, छूट पडी पतवार ॥
भूली जाती हूँ अपने को, प्यारे मत कर शोर ।
भाग नहीं, गह लेने दे, तेरे अम्बर हा छोर ॥

*　　*　　*

अरे, बिकी बेदाम कहाँ मैं हुई बडी तकसीर ।
धोती हूँ, जो बना चुकी हूँ पुतली में तस्वीर ॥
डरती हूँ दिखलाई पड़ती तेरी उसमें वंशी ।
'कुञ्ज-कुटीरे यमुना-तीरे' तू दिखना यदुवंशी ॥
अपराधी हूँ, मंजुल मूरत, त की हा ! क्यों ताकी ?
वनमाली ! मुझसे न मिटेगी, ऐसी बाँकी झाँकी ॥

*　　*

अरी खोद कर मत देखे, ये अभी पनप पाये हैं ।
बड़े दिनों में, खारे जल से कुछ अंकुर आए हैं ॥

पत्ती को मस्ती लाने दे, कलियाँ कढ़ जाने दे।
अन्तरतम को अन्त चीर कर अपनी पर आने दे॥
हृी–तल वेध, समस्त खेद तज, मैं दौड़ी आऊँगी।
'नील-सिन्धु-जल-धौत-चरण'पर चढ़कर खो जाऊँगी॥

उजड़ी वाटिका से

वह क्या हुए वैभव तेरे सभी, वह मंजुलता दिखलाती न क्यों?
वह शीतल सौरभ डूबी बयार अचंचल है, इठलाती न क्यों?
वह पीली पराग-सनी सरसों कुछ झूमती सी झुकजाती न क्यों?
उकसाती जो आग वियोगी की है-वह कोयल भी अब गाती न क्यों?
वह बल्लरियाँ लिये पल्लवों को निज अंक में नित्य झुलाती न क्यों?
मदमत्त हो स्वागत ऊषा के त्यों विहगावलि गान सुनाती न क्यों?
सुमनावलियाँ मुसकातीं हुई भ्रमरों को बुला बहलाती न क्यों?
मदिरा-सी पिये अलसाती हुई तितली अब चित्त चुराती न क्यों?
चरणों में महावर प्रात ही से अब ऊषा सखी है सजाती न क्यों?
रवि सोने से माँग न क्यों भरती? निशा काजल आके लगाती न क्यों?
पहिरे हरे रंग की सारी नई, सजी फूलों से तू इतराती न क्यों?
सब साज शृंगार कहाँ को गए, तू व्यथा की कथा हा! सुनाती न क्यों?
किस भाँति हुआ यह वेष अरे! कहाँ रूप की माधुरी खोई, बता!
कृशगात हुआ, उर अन्तर में अब कौन-सी अग्नि सँजोई, बता!
नव-यौवन की रंगरेलियाँ और उमंग नई कहाँ सोई, बता!
किसके लिए रात को व्याकुल हो अरी! ओस के आँसुओं रोई, बता!

बरसात ने जीवन-दान दिया बड़े यत्न से चाव से पाला तुम्हे ;
शरदेंदु ने आ के बनाया सखी, क्षण में नवयौवना बाला तुम्हें।
फिर आया वसन्त पिलाया अहा! वह मोदक प्रेमका प्याला तुम्हें ?
सुख आँखों तुम्हारा न देख सका—पतझाड़ ने क्या सुखा डाला तुम्हें ?

—रामेश्वरी देवी 'चकोरी'

प्रेम की पूछ

(ले० पं० जगन्नारायणदेव शर्मा 'कविपुष्कर' विद्या-मन्दिर
रामनगर—बनारस स्टेट)

(राग-मालकोश)

पूछो, प्रेमी—दीवानों से—मन के मौजी मस्तानों से—
मधु—मक्खी भौंरों से पूछो! मतवाले मोरों से पूछो!
दीप—दहे पर्वानों से—पूछो ० ॥
पपीहा पी—प्यारों से पूछो! चन्दा के यारों से पूछो!
चकई के मर्दानों से—पूछो ० ॥
हंसों की टोली से पूछो! कोयल की बोली से पूछो!
तोते के आख्यानों से—पूछो ० ॥
नभ में उनये घन से पूछो! हरे-भरे उपवन से पूछो!
पर्वत के मैदानों से—पूछो ० ॥

खग या मृग-बिहरों से पूछो ! सर-समुद्र-लहरों से पूछो !
या कोई हैवानों से—पूछो ० ॥
दुनियाँ की रंगत से पूछो ! सन्तों की संगत से पूछो !
बोध-मिले विद्वानों से— पूछो ० ॥
तुलसी-सूर-पदों से पूछो ! मीराँ के छन्दों से पूछो !
कबिरा के फर्मानो से—पूछो ० ॥
बालमीकि-नारद से पूछो ! शंभु-शेष-शारद से पूछो !
'कविपुष्कर सज्ञानों से—पूछो ० ॥
वीणा की मृदु झंकारों से—तबले के रव टंकारों से—
रंग-रसिया इंसानों से—पूछो ० ॥
हर आशिक की अरमानों से—माशूकों के पैमानों से-
या अपने-बेगानों से—पूछो ० ॥

वास्तविक प्रेम का निष्कर्ष

[श्री प्रेम शतक]

(प्रेमका महत्व)

प्रेम हृदयकी वस्तु है, परम गुह्य अनमोल ।
कथनीमें आवै नहीं, सकै न कोऊ तोल ॥१॥
रसमय आनँदमय विमल, दुर्लभ यह उन्माद ।
अकथनीय, पै अति मधुर, गूँगेको-सो स्वाद ॥२॥

तीन लोककी संपदा, इन्द्रभवनको राज।
प्रेमी तृन सम लखत तेहि, तजत प्रेमके काज ॥३॥
दुर्लभ झाँकी प्रेमकी, जिन झाँकी ते धन्य।
उपजत विनसत जगतमें, जड़ पसु सम सब अन्य॥४॥
धरा, धाम, धन, धाम, धी, धीरज, धरम, विवेक।
प्रेम-राज्य सब ही छुटे, रही एक ही टेक ॥५॥
प्रेम सदा बढ़िबौ करै, ज्यों ससिकला सुवेष।
पै पूनौ यामें नहीं, तातें कबहुं न सेष ॥६॥
एक नेम यह प्रेम को, नेम सबै छुटि जाहि।
पै जो छाँड़ै जानिके, तहाँ प्रेम कछु नाहिं ॥७॥
प्रेम अवसि पागल करै, हरै सकल कुलकान।
वेद धरम मेटै सकल, हिय प्रगटै भगवान ॥८॥
जगमें चार प्रसिद्ध हैं, सेव्य परम पुरुषार्थ।
पंचम हरिको प्रेम है, परम मधुर परमार्थ ॥९॥
राग, सोक, भय, कामना, मान, मोह, मद, क्रोध।
प्रेमराज्य प्रविसै नही, अरि आठो निर्बोध ॥१०॥
प्रेमदेवके दरसतें, सब बंधन कटि जाय।
ममता-मान सबै नसै, उर अति आनंद छाय ॥११॥

(प्रेमके साधन)

प्रेम-पंथ अति ही विकट, देखत भाजैं लोग।
कोउक विरले चलि सकैं, जिन त्यागे सब भोग ॥१२॥
भोग-वासना सब तजै, तजै मान-सनमान।
प्रेम-पंथपर जो चलै सहै हृदय पर बान ॥१३॥

प्रेम-पंथ सोइ चलि सकै जिन छाँड़ी सब चाह।
जल्यो करै बिरहागमें, मुख नहिं निकसे आह ॥१४॥

प्रेम-डगर सोई चलै, अगर मगर दे छोड़।
विषय-राग राखै नहीं, सब सों नातो तोड़ ॥१५॥

संत-बैद्य सेवन करै, कड़वी औषध खाय।
भोग-रोग राखे नही, तभी प्रेम प्रकटाय ॥१६॥

जो तू चाहे प्रेमधन, विषयनसों मुख मोड़।
श्रद्धा तत्परतासहित, चित्त भजनमें जोड़ ॥१७॥

जो प्यासे हरि-प्रेमके, तिनके निर्मल भाव।
तन मन धन अर्पन करै धरैं मुक्तिको दाव ॥१८॥

स्वर्ग मोक्ष चाहै नहीं, चाहै नंदकिसोर।
सुघड़ सलोनो साँवरो, मुरलीधर मन-चोर ॥१९॥

विद्या बुद्धि बिबेककौ, तजै, सभी अभिमान।
सो पावै प्रभु-प्रेमको, जेहि सम तुलै न ज्ञान ॥२०॥

सप्त स्वर्गके सुख सकल, बिष सम देवै त्याग।
नहीं चाह अपवर्गकी (सो) पावै प्रभु अनुराग ॥२१॥

जो चाहै हरि-प्रेमको राग-भोग दे त्याग।
निसदिन प्रेमी सँग करै, तब बाढ़े अनुराग ॥२२॥

प्रेम-पंथ कंटक भरयो, चाले बिरलो कोय।
बिधत छिदत हुलसै हियो, यहि मग आवत सोय ॥२३॥

कूदि पड़ै जो सूरमा, प्रेमसिन्धुके माँहि।
परम अमोलक रतन हरि, पावै संसय नाहि ॥२४॥

प्रेम-अनल कूदै वही, जो मन वे परवाह।
जियन मरन भावै नहीं, नहीं सरग की चाह ॥२५॥

प्रेमानिल के परसतें, ज्ञानानल बढ़ि जाय ।
जारै कर्म-समूह सब, हरि-ही-हरि रह जाय ॥२६॥
हरि-छवि-हबि आहुति हिये, ज्यों ज्यों लागत जात ।
प्रेम-अनल त्यों त्यों अतिहि, अधिकाधिक सुलगात ॥२७
प्रेम-अनल जेहि जिय जरत जारत, तीन्हुँ ताप ।
सुद्ध स्वर्ण आसन अमल, आइ विराजत आप ॥२८॥

(प्रेमके विघ्न)

प्रेम अमिय चाहै पियो, करै विषय सों नेह ।
बिष व्यापै जारै हियों, करै जर्जरेत देह ॥२९॥
मन विषयन में रमि रह्यो, करत प्रेम की बात ।
सो मिथ्याबादी सदा जगमें आवत जात ॥३०॥
भव बारिधि तरिबो चहै, गहै विषयकी नाव ।
डूबै सो मझधार ही, तनिक न लागै दाव ॥३१॥
प्रेम-पंथपर पग धरै, करै जगत को सोच ।
तिनको मन अति मलिन है, बुद्धि निपट ही पोच ॥३२॥
प्रेम-सिंधु कूदत डरै करै जगतकी याद ।
सो डूबै भव सिंधु में, जीवन करि बरबाद ॥३३॥
दंभी, द्रोही, स्वारथी, बादी, मानी पाँच ।
ये खल नाँहिन सहि सकैं, प्रेम-अगिनिकी आँच ॥३४॥

(प्रेमकी स्थिति)

कहि न जाय मुख सों कछू, स्याम प्रेमकी बात ।
नभ जल थल चर अचर सब, स्यामहि स्याम लखात ॥३५॥
ब्रह्म नहीं, माया नहीं, नहीं जीव, नहिं काल ।
अपनी हू सुध ना रही रह्यो एक नँदलाल ॥३६॥

को कासों, केहि बिधि, कहा, कहै हृदयकी बात।
हरि हेरत हिय हरि गयो, हरि सर्वत्र लखात ॥३७॥
प्रेम-बान बेध्यौ हियौ, घायल भयौ अचेत।
एक राममें रमि गयो, दुरयो विषयको खेत ॥३८॥
प्रेय-पयोनिधि परत ही, पवि-सम भयो शरीर।
काम-कटक भाज्यो सबै, तजि निज तरकस तीर ॥३९॥
रँग्यौ सदा जाको हियौ, विमल स्याम अनुराग।
दूजो रँग कबहुँन चढ़ै, भयो सहज बैराग ॥४०॥
मोहनकी मधुरी हँसी, बसी हृदयमें जाय।
माया ममता अघ अनल, तेहि हिय नाहि समाय ॥४१॥
जिनको हिय नित हँसि रह्यो, हेरि हेरि हरि रूप।
कबहूँ ते न पलटि परैं, सोकरूप भवकूप ॥४२॥
जिनके दृग हेरत सदा, हरि-मूरति चहुँ ओर।
तिनके चित कबहुँ न बसत, काम-मोह-मद-चोर ॥४३॥
जिनके दृग हरि-रँग रँगे, हिय हरि रहे समाय।
नभ जल अवनि अनिल अनल, सबमें स्याम दिखाय ॥४४॥
जिनके मन मोहन बस्यो, फँस्यो दृगनमें आय।
धँस्यो सकल संसारमें, तिनको वही दिखाय ॥४५॥
जिन नैननमें परि गई, हरि-निरखनकी बान।
ते नित स्याम निहारहीं, नाहि सुहावत आन ॥४६॥
जिनके हियमें रमि रह्यो, मोहन चतुर सुजान।
तिनके नयन बिलोकते, सब जग श्रीभगवान् ॥४७॥
चित नित चिंतनमें रम्यो, नैन रमे छबि माँहि।
बानी गुन बरनन रमी, राम सदा तेहिं ठाँहि ॥४८॥

जो मतवाले ह्वै रहे, प्रेम-सुरा करि पान।
तिनकों कछू न करि सकै, बेद पुरान-कुरान ॥४६॥
अमर भये जे नर सुघर, प्रेम सुधा करि पान।
तिनके हिय न तपा सकै, काम अनल बलवान ॥५०॥

ही तल सीतल ह्वै चुक्यो, प्रेम वारिसों पूरि।
जगकी सब ज्वाला रहै, तेहि सौ अतिही दूरि ॥५१॥
तेज पुंज जेहि हिय उग्यो, प्रबल प्रभाकर प्रेम।
मोह-निसा अघ तम सकल, नासो तजि निज छेम ॥५२॥

प्रेम-दिवाकर उगत ही, छायो पूर्ण प्रकाश।
विषय-नखत दीखत नहीं, भयो मोह-तम नाश ॥५३॥
प्रेम-सुधा सिंचन कियौ, अमर भयो विज्ञान।
सकल बिश्व हरि ह्वै गयो, मिट्यो ज्ञान अज्ञान ॥५४॥

प्रेम-अनल लागत जरयो, जगको जाहिर रूप।
भये तिरोहित रूप त्रै, रह्यो एक हरि-रूप ॥५५॥
भुक्ति-मुक्ति दोऊ तजी, तजे लोक-परलोक।
बूड्यो प्रेम-पयोधिमें, नहीं हर्ष, नहिं शोक ॥५६॥

जिन चाख्यो हरि-रस मधुर, अमर भये तेहि पीय।
सरबस नीरस ह्वै गये, जिन्के जीहा जीय ॥५७॥
जिन्के हिय हरिने लियौ, प्रेमरूप अवतार।
तिनके पातक जरि मरे, भये करम सब छार ॥५८॥

हरि-रस पीयत ही छक्यो, झूमत गिरत अचेत।
उठत चलत रोवत हँसत, नाचत भूलि निकेत ॥५९॥
डूब्यो प्रेम-पयोधिमे, भयो प्रेमको रूप।
रसाद्वैत यहि को कहत, रहत न भिन्न सरूप ॥६०॥

प्रेम हरी, हरि प्रेम है प्रेमी प्रेमिक आप।
जहाँ प्रेमको बास तहँ, रहै न जगको ताप ॥६१॥
जे पगले हरि-प्रेमके, तिनके हिय भगवान।
पाप-ताप कछु ना रहै नसै भरमकी खान ॥६२॥
मोहनकी मुसुकानको, जिन निरखी निज नैन।
ते प्रेमी बड़ भाग जन, छके रहे दिन-रैन ॥६३॥
प्रेम-रसायन पियत ही, बाढी शक्ति अपार।
काम, क्रोध, मद, लोभ रिपु, भागे, सीमा पार ॥६४॥
प्रेम-उदधिमें परत ही, ज्यों पहुँच्यो तल सेष।
उछरत फेरिन कबहुँ सो, जनम-मरनके देस ॥६५॥
जेहि मन मनमोहन बस्यो, सब अंग रह्यो समाय।
तेहि मन ठौर न औरको, आइ देखि फिर जाय ॥६६॥
स्याम रह्यो मम नैनमें सुन्दरताकी खान।
सबमें सो दीखत तिन्हें, व्रज-जुवतिनको प्रान ॥६७॥
सब जग मोह्यो मोहनैं, सबको रह्यो नचाय।
सो मोह्यो, है प्रेमबस, व्रजमें नाच्यो आय ॥६८॥
प्रेमांजन आँजत दृगन, बाढ़ी जोति अपार।
तम-भ्रम नास्यौ, स्याम छबि, छाई सब संसार ॥६९॥
प्रेम प्रगट जब होत है, रहत न पावत आन।
'तू' 'तू' ही रहि जाय फिर, मै को मिटै निसान ॥७०॥
प्रेम-धाम प्रीतम बसै, प्रीतममें रह प्रेम।
दोनों एक सरूप हैं, तहाँ न कोऊ नेम ॥७१॥

लोक-वेद सब ही तजै, भजै रैन-दिन स्याम।
सीस समर्पै मुदित मन, एक प्रेमके नाम ॥८३॥
तनु काटै टुकड़ा करै, खुसी खवावै काग।
जो रुचि देखै पीयकी, कौन बड़ो यह त्याग ॥८४॥
प्रेम कहै, प्रेमहि सुनै, प्रेम निहारै नैन।
प्रेम चखै प्रेमहि भखै, प्रेय लखै दिन रैन ॥८५॥
बड़भागी जिनके हिये, बिंध्यो प्रेमको बान।
तिनकौ तनिक न सुधि रही, बिसरि गये सब ज्ञान ॥८६॥
तन मन धन सबमें तुम्हीं, सभी तुम्हारे काज।
भावै ज्यो बरतौ इन्हैं, प्रेम-सिंधु ब्रजराज ॥८७॥
भोग-मोच्छ सों रति नहीं, सबसों सदा बिराग।
पै, प्रीतम छबिमें सतत, बढ़त जात अनुराग ॥८८॥
ब्रह्मलोकतकके सभी, भोग निपट निस्सार।
जानत पै, प्रिय-प्रीति-हित, करत सदा शृंगार ॥८९॥
जो रुचि देखै रामकी, बिलग होइ तत्काल।
नरक परै, दुख सहै, पै, सुखी रहै सब काल ॥९०॥
पच्यो करै नरकाग्नि, पै, पल-पल बाढ़ै प्रेम।
प्रीतमके सुख-सों सुखी, यही प्रेमको नेम ॥९१॥
प्रेम-अनल जो जरि मरै, अपनो आपो खोय।
ते ही जीये जगतमें, शेष रहे मृत होय ॥९२॥
जिहिं नितचित चातक कियो, नेम प्रेमको लीन्हि।
निरखै नित घनस्याम छबि, अन्य सबै तज दीन्हि ॥९३॥
बिपति सहै, प्यासो मरै, जरै बिरहकी आग।
दूसरि दिसि चितवै नहीं सो प्रेमी बड़भाग ॥९४॥

स्याम सुधाकरमें लग्यो, जेहिको चित्त चकोर।
सो प्रेमी दृढ़निश्चयी, तकै न दूसरि ओर ॥९५॥
मोह मिटयो संसारको, विनस्यो सब अज्ञान।
पै, प्रिय-ममता बढत नित, यही-प्रेम-पहचान ॥९६॥
अहं, देहको सब दह्यो, रह्यो न विषय ममत्व।
पै, प्रिय-सुख लगि तजत नहि, बपु यह प्रेम ममत्व ॥९७॥
दोउ दृढ़ आलिंगन करत, करत सदा सुख भोग।
एकरूप नित ह्वै रहैं तदपि न अंग संयोग ॥९८॥
सदा रहत संयोग ध्रुव, तदपि बियोग लखात।
योग बियोग सरूप धरि, नित्य जरावत गात ॥९९॥
पै, राखत यह जरनि जिय, प्रिय सम हियसौं लाय।
नहि कुछ यांह सम सातिकर, सीतल सुखद सुभाय ॥१००॥

[कल्याण]

नैन हमारे लालची, नहिं मानत हैं सीख।
जहँ जहँ देखत प्रेम रस, तहँ तहँ माँगत भीख॥

उलझन

[चन्द्रप्रकाश वर्मा 'चन्द्र']

मेरे आँगनमें भीड़ लगी—मै किसको, कितना प्यार करूँ ?
सब आते उर से प्यास भरे, अतृप्ति भरे, उच्छ्वास भरे
मुझमें असीम विश्वास भरे, है मेरा उर-मधु-कलश एक—
मै किस-किस का सत्कार करूँ ? ॥ १ ॥

कुछ जग-जीवन के रोग लिये, कुछ सुधियाँ लिये वियोग लिये,
सब दुख पाने के योग लिय—आते है एक मसीहा मैं—
मैं किस-किस का उपचार करूँ ? ॥ २ ॥

प्रति पल पर नूतन आकर्षण, प्रति पल नूतन मेरे बन्धन,
प्रति पल नूतन मेरा जीवन, मैं ऊब गया सुख से, इसको—
कैसे दुख का उद्गार करूँ ? ॥ ३ ॥

किससे मै किस-प्रकार बोलूँ ? किस उर मे कितना रस घोलूँ ?
किस गोदी में सिर रख सो लूँ ? मै हूँ प्रेमी नादान, हाय,
किससे कैसा व्यवहार करूँ ? ॥ ४ ॥

दो पल राजा की आन-बान, दो पल फ़क़ीर का करुण गान,
दो पल सबकी हलचल महान, दो पल का मेरा जीवन है—
मै कैसे, किससे, रार करूँ ? ॥ ५ ॥

कितने दृग मुझको रहे ताक, कितने दृग मुझको रहे झाँक,
मैं कीमत सब की रहा आँक, मेरे दो, पर वे अनगिन हैं—
किस किस से लोचन चार करूँ ? ॥ ६ ॥

जब कुंज कुंज कलियाँ फूलीं, जब तरु-तरु लतिकायें झूलीं,
तब पद-ध्वनियाँ भटकी भूलीं, मै सुनता हूँ, आती समीप—
किस आहट का स्वीकार करूँ ? ॥ ७ ॥

मैं किसका कितना प्यार करूँ ? कैसे न किसी का सत्कार करूँ ?
मानव हूँ फिर बोलो तो मानव की दुर्बलताओं का
मैं कैसे तो परिहार करूँ ? ॥ ८ ॥

मिलन

[कुमारी इन्दु]

आत्मा का संसार से नवीन परिचय हुआ। वह भयभीत, चकित-सी चारों ओर देख रही थी। पत्येक वस्तु में नवीनता का आभास था। वह व्याकुल होकर एक वृक्ष के तले खड़ी हो गई और एक डाल पर अपना मुख रखकर देखने लगी—सुदूर प्रतीची में अस्त होते हुए सूर्य को। उसका मुख आनन्द से खिल उठा। उसने कहा—अहा! कैसा मोहक दृश्य है। यह कितना सुन्दर प्रदेश है। आत्मा की दृष्टि जिधर जाती थी उधर ही उसका हृदय खिंच जाता था। वह मौन, ठगिता-सी खड़ी थी।

इतने में कुछ शब्द हुआ। मोह ने आकर उसकी आँखें मीच लीं। आत्मा ने हाथ हटाकर पीछे घूमकर देखा—मोह खड़ा मुस्करा रहा था। उसने कहा—प्रिये! चलो मेरे साथ। यहाँ इस निर्जन स्थान में एकाकी क्यों खड़ी हो? आत्मा मुग्ध-सी मोह का अलौकिक रूप निहार रही थी। उसने मुँह फेर लिया और बोली—नीच! हट यहाँ से। तूने मुझे स्पर्श किया! तेरा यह दुस्साहस!

मोह धीरे से चला गया।

आत्मा उसी भाँति खड़ी थी। उसकी दृष्टि पुनः पश्चिम में गड़ गई। सहसा किसी ने उसका अंचल पकड़कर खींचा। आत्मा चौंक पड़ी। बोली—कौन?

माया ने सहमी हुई वाणी में उत्तर दिया—मैं......माया...तुम्हें साथ ले चलने के लिए आई हूँ।

आत्मा ने देखा—एक कोमलांगी किशोरी उससे अत्यन्त विनीत शब्दों में आग्रह कर रही है। वह उसके भोलेपन पर रीझ गई, किन्तु दूसरे ही क्षण क्रोधित होकर बोली—छलने! तेरा मुझसे क्या प्रयोजन। अभी मेरी दृष्टि से ओझल हो जा, नहीं तो...।

माया सिर नीचा किये हुए चली गई।

संध्या का वैभव नष्ट हो चुका था। अन्धकार प्रगाढ़ हो रहा था। तारिकाएँ एक-एक करके रजनी का अभिनन्दन करने आ रही थीं।

आत्मा संसार के बाह्य रूप पर अवाक् थी।

यकायक किसी ने वृक्ष की डाल को झकझोर दिया। आत्मा फिर भी विचलित न हुई, वह अपने विचारों में तल्लीन थी। काम उधर से जा रहा था। वह आत्मा का ध्यान अपनी ओर आकर्षित करना चाहता था। उसने देखा—एक अनुपम सुन्दरी उदास-चित्त अपलक दृष्टि से नभ की ओर देख रही है। उसकी चितवन में विरह का अवसाद था। काम के हृदय में विकार उत्पन्न हुआ। उसने प्रश्न किया—'सुन्दरी! इस रात्रि की निस्तब्धता में यहाँ खड़ी रहने का क्या कारण है? तुम इतनी दुखी क्यों हो? क्या मैं यह जान सकता हूं?'

आत्मा उसी भाँति तन्मय थी। उसने कुछ भी न सुना। काम उत्तर की बाट जोहता रहा। अन्त में एक निःश्वास छोड़ता हुआ चला गया।

आत्मा मूर्तिवत् बैठी थी। न मालूम कितने पथिक उधर से आये और चले गये। पर उसे किसी की भी सुधि न थी। वह संसार में अकेली थी। वह संसार में अकेली थी। उसका किसी प्राणीसे परिचय न था।

'वह प्रियतम के वियोग में तड़प रही थी। उसका एक-एक पल दूना होकर व्यतीत हो रहा था। उसके प्राण प्रिय से मिलने के लिए आतुर हो उठे। वह वृक्ष की जड़ पर बैठ गई और उसने अपने नेत्र मूँद लिये।

× × ×

उषा का आगमन हुआ। उसका झीना, गुलाबी चीर वायु की शिथिल तरङ्गों में लहरा रहा था। उसका बड़ा भोला सौन्दर्य था। ऊषा का पदचाप सुनकर आत्मा ने नेत्र खोल दिये। उसे भ्रान्ति हुई। प्रियतम के स्थान मे ऊषा थी। वह उद्भ्रान्त होकर इधर-उधर घूमने लगी। प्रभात का दृश्य मनोहर था। वृक्ष ऊषा की लालिमा मे लाल हो रहे थे। विहग गण ऊषा का स्वागत-गीत गा रहे थे। भ्रमर सुमनो पर गुञ्जार कर रहे थे। आत्मा ध्यान से एक अर्ध-विकसित मुकुल को देखने लगी। उसे ऐसा भास हुआ मानो प्रियतम इस कलिका के मिस मुस्करा रहे हैं। आत्मा ने अपनी दृष्टि दूसरी ओर फेर ली। पर उसने देखा, कली-कली में प्रियतम का रूप साकार हो रहा था। भगवन् कैसा अचरज! वह पागल हो उठी। उसने दौड़कर एक पुष्प तोड़ लिया और कहने लगी—हे प्रभो! मुझे कितने भयङ्कर स्थान में छोड़ दिया था। ओफ़ कितना भीषण स्थान है। कितने प्रलोभन जीव को आकर्षित करते हैं। अभागा जीव बन्धनो मे पड़कर तुमसे दूर-दूर बहुत दूर होता जाता है। पर नाथ! क्या तुमसे वियुक्त होकर उसे कभी शान्ति मिलती है। आत्मा आत्म-विस्मृत हो रही थी। वह प्रियतम के चरणो पर लोट गई। अश्रु की अविरल धारा बह रही थी।

प्रियतम ने उसे उठाकर हृदय से लगा लिया। इसी समय तीव्र आलोक हुआ और धरती काँप उठी। आत्मा, परमात्मा एकाकार हो रहे थे और यह था उनका आध्यात्मिक मिलन।
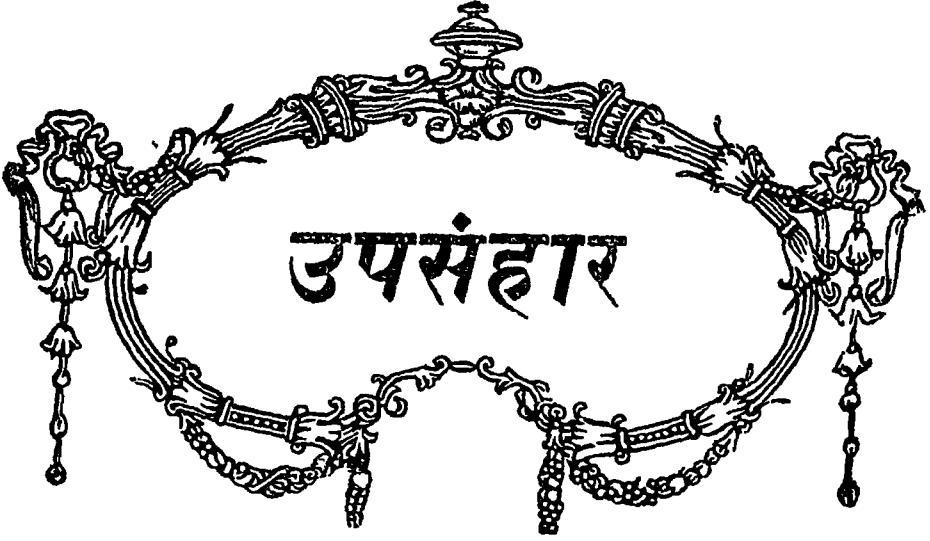
उपसंहार

लेखक—देवनारायण द्विवेदी

प्रिये,

तुमने 'लव-लेटर्स' नामकी पुस्तकका उपसंहार पढ़नेके लिए उत्सुकता प्रकट की है; अतः तुम्हारी इच्छा पूरी करनेके लिए कुछ पंक्तियाँ लिख रहा हूँ। Love या प्रेम शब्द बड़ा ही व्यापक है। प्रेम लघुसे लघु है और महानसे महान। प्रेम न हो तो संसारका व्यापार ही बन्द हो जाय। घूमने फिरने, सोने-जागने, रोने-हँसने, दुःखमें-सुखमें सबमे हमें प्रेमका आभास दिखायी पड़ता है। प्रेमहीकी महिमा है कि हम पुत्र-कलत्रके लिये सात्विकी,राजसी और तामसी कर्मोंद्वारा धन कमाते है और प्रेमहीकी महिमासे हम पुत्र-कलत्र आदि सारी झंझटोंको छोड़-छाड़कर भगवद्भक्ति-परायण हो जाते है। प्रेममें बन्धन भी है और मोक्ष भी। किन्तु इसमें वह बन्धकत्त्व नहीं जो प्राणीको दल-दलमें फँसाता है। प्रेम संसारकी प्रत्येक वस्तुमें, हर प्राणीमें बीज रूपसे वर्त्तमान है; यह सकाम मोहकतासे सर्वथा भिन्न है। हर वस्तुके शुद्ध सात्विक

अंशमे ढूँढनेसे प्रेमकी झलक दिखायी पड़ती है। जिस प्रकार सत्व-रज-तम मिश्रित ससार है तथा तीनों गुणोंमें न्यूनाधिक रूपसे तीनों गुण समाविष्ट रहते है, उसी प्रकार प्रत्येक वस्तु और प्रत्येक कार्यके शुद्ध सत्वाशमें प्रेमकी अखण्ड ज्योति जगमगाती रहती है। इसका ठीक-ठीक अर्थ लिख सकना असम्भव है। शास्त्रोंमे भी कहा गया है कि 'प्रेम' वाक्य द्वारा समझाया नहीं जा सकता। नारद सूत्रमें लिखा है- " मूकास्वादनवत् " । इस प्रेमका स्वरूप क्या है, यह भी कहना कठिन है। तभी तो तत्ववेत्ता मनीषियोने कहा है—

अनिर्वचनीय प्रेमस्वरूपम् । प्रकाशते क्वापि पात्रे । गुण-रहितं, काम-रहितं, प्रतिक्षण वर्द्धमानं अविच्छिन्न सूक्ष्मन्तरं अनुभव स्वरूपम्

—नारदीय भक्ति सूत्र ।

आजकल पश्चिमी शिक्षाके प्रभावसे बहुतोंकी यह धारणा है कि 'प्रेम' इन्द्रियगत, कामसे प्रेरित वासना या आकर्षणके अतिरिक्त अन्य वस्तु नहीं है। वे Platonic love वासना-विहीन प्रेमको कोरी कल्पना मानते हैं। उनके ध्यानमें निरी काम-वासना ही 'लव' है। किन्तु जब हम देखते है कि हृदयमें कभी-कभी कामवासना-विहीन प्रेम भी उत्पन्न होता है, तब ऊपर-की बात बिलकुल भोंड़ी-सी जँचती है और यह प्रतीत होता है कि प्रेम निष्काम है, उसमें वासना होती ही नहीं। जिस आकर्षणमें या प्रेममें वासनाकी बू रहती है, वह प्रेम नही है और चाहे जो हो। प्रेम तो स्वर्गीय और अमृत है! वह अपना सर्वस्व दे देना चाहता है, पर लेना कुछ नहीं चाहता। यदि वह याचना भी करता है तो बस यही कि 'तुम मुझे अपनेमें अनन्य प्रेम दो—ताकि मैं तुमसे कभी भी अलग न रह सकूँ।' बस, इसके सिवा प्रेम और कुछ नहीं चाहता। वह तो केवल प्रेमका ही भिखारी बना

रहता है। वह आदान-प्रदान नहीं चाहता उसमें विनिमयके लिये स्थान ही नहीं। सच्चा प्रेमी जिसपर प्रेम करता है, उससे यह नहीं चाहता कि वह भी उससे प्रेम करे। उसका प्रेम उसपर हो या न हो, पर वह उसपर प्रेम करता है। कभी-कभी तो ऐसा भी होता है कि प्रेम करनेवाला जिसपर प्रेम करता है, वह रूठा रहता है, पर प्रेम करनेवाले का प्रेम उसपर उत्तरोत्तर बढ़ता जाता है। उसके रूठनेसे या मुँह मोड़े रहनेसे वह अपनेमें ही त्रुटि समझता है। अन्तमें उसे विवश होकर बरबस उसकी ओर आकर्षित होना पड़ता है। प्रेममें न तो प्रतिस्पर्द्धाका भाव होता है और न वह आकांक्षा ही रखता है। प्रेम अक्षुण्ण है। वह कम होना नहीं जानता, उत्तरोत्तर बढ़ना जानता है। उसकी प्रगति ऊर्ध्वगामी होती है, अधोगामी नहीं। प्रेम सदा अपूर्ण ही रहता है।

शुद्ध प्रेम दो तरहसे उत्पन्न होता है। कभी तो वह अकारण, अनायास एक क्षणमें पैदा हो जाता है और कभी साधारण रूपमें पैदा होकर कार्य-कारणकी सहायतासे धीरे-धीरे बढ़ता और क्रमशः परिपुष्ट होता जाता है। अकारण और अनायास पैदा होनेवाले प्रेमका भी 'कुछ-न-कुछ कारण तो अवश्य ही रहता है, पर वह इतना सूक्ष्म रहता है कि प्रेमीजनोंको उसका ठीक-ठीक ज्ञान नहीं हो पाता। हाँ, यह अवश्य है कि उसमें सूक्ष्मातिसूक्ष्म दृष्टिसे देखनेपर भी किंचित् भी वासनाकी झलक दृष्टिगोचर नहीं होती। दोनों ही प्रकारसे उत्पन्न होनेवाला प्रेम उत्तरोत्तर बढ़ता जाता है और वासना-रहित होता है। अन्तर केवल यही होता है कि एकका आकर्षण झटिति प्रतीत हो जाता है और दूसरेका कुछ दिनोंके बाद धीरे-धीरे। जिस प्रेममें वासनाकी गन्ध मिले, समझ लेना चाहिये कि वह प्रेम नही है—काम है। प्रेम तो पर्वतकी तरह स्थिर, सागरकी तरह अगाध, गम्भीर और निर्मल, तथा निष्काम होता है। प्रेम असीम है। उसका कहीं भी ओर-छोर नहीं। प्रेमका रूप समझनेपर समझमें आता है, पर वह व्याख्या करनेका विषय नहीं।

यह तो ऐसा विषय है कि इसपर बहुत बड़े ग्रन्थका निर्माण किया जा सकता है, फिर भी प्रेमकी परिभाषा अधूरी ही रहेगी। यहाँपर न तो उतना स्थान है और न पर्याप्त समय। थोड़ेमें प्रेमका लक्ष्य कराया जा रहा है, उससे मेधावी और मननशील बुद्धि प्रेमका असली रूप समझनेमें समर्थ होगी। काम-वासनाको ही प्रेम माननेवालोंकी धारणा है कि प्रारम्भसे ही Sex प्रजननकी प्रधानता प्रेम तथा धर्म आदिका रूप धारण करती रही है और मनुष्य-धर्म भी पहले Sex worship प्रजनन-शक्तिकी पूजा या किसी-न किसी रूपमें लिंग-पूजासे ही आरम्भ होता है। उन लोगोंका अनुमान है कि मनुष्यका जहाँ कहीं भी निवास था, हर जगह Sex worship प्रजनन शक्ति-पूजा और Phallic Religions लिंग-पूजाकी प्रधानता थी और विकासका यही प्रयत्न रहा है कि Sex प्रजनन या काम अच्छेसे अच्छे, सुन्दरसे सुन्दर शब्दोंके आच्छादनसे ढँका रहे। किन्तु ऐसे विचारवालोंने लिंग-पूजाका रहस्य नहीं समझा है और न समझनेकी चेष्टा की है। वास्तवमें 'लिंग' शब्दका अर्थ है 'लिंग्यते अनेन लिंग घञ्, 'पुंसि घञप्' इति नियमेऽपि अभिधानात् क्लीव लिंगत्वं। लिंग वह है जिससे किसी वस्तुकी पहचान हो। या जिससे किसी वस्तुका अनुमान हो; जैसे अग्निके धूमलिंग है। अर्थात् धूमसे अग्निका अनुमान होता है। स्पष्ट शब्दोंमें यों कहना चाहिये कि लिंगका अर्थ है, चिन्ह, प्रतीक। सांख्य शास्त्रने लिंग माना है मूल प्रकृतिको। अब यह देखना है कि लिंग-पूजाका अभिप्राय क्या है।

आकाशं लिंगमित्याहुः पृथिवी तस्य पीठिका।
आलयः सर्व देवानां लयनाल्लिंगमुच्यते॥

—स्कन्द पुराण

अर्थात् आकाश लिंग और पृथिवी उसकी पीठिका है। यह सब देव-ताओंका आलय है, इसमें सभी लय होते हैं। उपनिषदोंमें भी इस बातका उल्लेख है कि सच्चिदानन्द आनन्दघन परब्रह्मका प्रतीक आकाश है। यहां यह प्रश्न उठ सकता है कि आकाश निराकार ब्रह्मका प्रतीक कैसे है? सुनो, ब्रह्म आकाररहित है। इसलिए यह बात कही जा सकती है कि जब ब्रह्म-का आकार ही नहीं है, तब उसकी प्रतीति कैसे हो सकती है? इस शंकाका निवारण आकाशसे हो जाता है। क्योंकि आकाश भी तो शून्य है—आकार-रहित है; फिर भी हमें प्रतीत होता है कि आकाश है इससे यह सिद्ध होता है कि आकार-रहित वस्तुकी भी प्रतीति हो सकती है, अतः ब्रह्मकी प्रतीतिके विषयमें शंका करनी व्यर्थ है। बस, इसीसे आकाशको ब्रह्मका प्रतीक या चिह्न कहा गया है। यह आकाश ही वायु संघातसे मेघोंद्वारा पृथिवी पीठिका-पर वर्षा करता है, जिससे धान्यादिकी उत्पत्ति होती है।

ब्रह्मका यह प्रतीक मनुष्य-शरीरमें भी है, जिसका अनुभव योगी पुरुष करते हैं। उसका नाम है 'ज्योतिर्मयलिंग'। जिस प्रणव में 'अ' कार रूपसे ब्रह्मा, 'उ' कारसे बिष्णु 'म' कार से 'शिव' का समावेश है, उसी 'ॐ' का प्रतीक ज्योतिर्मयलिंग है। इस ज्योतिर्मयलिंगका दर्शन योगीजन समाधि-कालमें करते हैं। योग शास्त्रका वचन है:—

"मूर्द्धा ज्योति दर्शनम्।"

यह ज्योतिर्मयलिंग षट् चक्रान्तर्गत मूलाधारसे समुत्थित होकर ब्रह्म-रन्ध्रतक परिव्याप्त है। मनुष्य-देहमें ज्योतिर्मयलिंग ही ब्रह्मका प्रतीक है। वह लम्बायमान लिंग प्रकाशमय है। उसीका प्रतीक पाषाणमूर्ति शिवलिंग है जिसकी पूजा की जाती है। लिंगपूजा केवल भारतमें ही आबद्ध नहीं थी। मिश्र देशमे भी ओसीरिस देवकी लिंग-पूजा बहुत प्रबल थी। चीन और जापानके प्राचीन साहित्यमें भी लिंग-पूजाकी गवाही मिलती है। अमेरिकाके

महाद्वीपोंके प्राचीन निवासी भी लिंग-पूजा करते थे। पर लिंग-पूजाका असली रहस्य यही है जिसे हम ऊपर प्रकट कर चुके हैं।

प्रत्येक जीवनमें प्रकृति और पुरुषके मिलनकी जो दुर्दमनीय इच्छा वर्तमान रहती है उसी इच्छासे सृष्टिका आरम्भ होता है। इसीका प्रतिरूप शिव-लिंग-पूजा है। इसे यों भी कह सकते है कि लिंगपूजा सृष्टि-रहस्यका एक चित्र है। क्योंकि ज्योतिर्मयलिंग 'ॐ' स्वरूप है और ॐ ही सृष्टिका स्रष्टा है। उसीका प्रतीक लिंग है। यह लिंग-पूजा जननेन्द्रियके आधारपर नहीं प्रचलित हुई है बल्कि सृष्टिरहस्यके चित्ररूपमें सृष्टिके स्रष्टा साक्षात् परब्रह्म-परमात्माकी अपरोक्ष विज्ञानपूर्ण मधुर स्मृति है। इससे मनुष्य जातिकी उच्च भावनाका पता चला है। अधिक स्पष्ट शब्दोंमे यों कहा जा सकता है कि लिंग-पूजा सृष्टिके स्रष्टाकी पूजा है।

इस विवेचनसे यह स्थिर हुआ कि लिंग-पूजाकी दुहाई देकर प्रेमका अनर्गल अर्थ करना कपोल कल्पना है और एक पवित्र वस्तुको कलंकित करना है। न तो प्रेम काम-लिप्सा है और न इस आधारपर लिंग-पूजाका प्रचलन ही हुआ है। प्रेममें भोग, आकांक्षा, वासना या काम कुछ भी नहीं हुआ करता है। प्रेम मोक्ष-दाता है। मोक्षदायिनी वस्तुमें भोग कहाँ? देखिये न, अनादि भगवान् शिवजीने कहा है:—

यत्रास्ति भोगो न च तत्र मोक्षो।
यत्रास्ति मोक्षो न च तत्र भोगः॥

अर्थात् 'जहाँ भोग है वहाँ मोक्ष नहीं और जहाँ मोक्ष है वहाँ भोग नहीं'। दोनों परस्पर भिन्न वस्तुएँ हैं। जहाँ दिन है वहाँ रात नहीं और जहा रात है वहा दिन नही एकके अवसानमें ही दूसरेका पदार्पण हो सकता है। ठीक यही बात मोक्ष और भोगके सम्बन्धमे है। पहला ज्ञानका परिणाम है और दूसरा अज्ञानका। ज्ञान प्रकाशमय है और अज्ञान अन्धकार-पूर्ण।

इसलिए न तो प्रकाशमें अन्धकार हो सकता है और न अन्धकारमें प्रकाश ही। इससे यह निष्कर्ष निकला कि प्रेम भोगसे परे वस्तु है।

प्रेमके सम्बन्धमें यह कथन बिलकुल सही है कि God is love and love is god' 'ईश्वर प्रेम है और प्रेम ही ईश्वर है' भारतीय कवियोंने भी कहा है :—

प्रेम हरीको रूप है, त्यों हरि प्रेम-सरूप।
एक होइ द्वै मे लसै, ज्यों सूरज अरु धूप॥

सर्वथा ध्वंस रहितं सत्यपि ध्वंसकारणे।
यद्भाव बन्धनं यूनाः स प्रेमा परिकीर्त्तितः॥

छिनहि चढ़ै छिन ऊतरै, सो तो प्रेम न होय।
अघट प्रेम पिंजर बसै, प्रेम कहावै सोय॥
प्रेम सदा बढ़िबौ करै, ज्यों ससिकला सुवेष।
पै पूनों यामैं नहीं, ताते कबहुँ न शेष॥

निजाङ्गमपि या गोप्यो ममते समुपासते।
ताभ्यः परं न मे पार्थ निगूढ़ प्रेम भाजनम्॥

एक नेम यह प्रेमको, नेम सबै छुटि जाहिं।
पै जो छांडै जानिकै, तहां प्रेम कछु नाहिं॥

प्रथम सीस अरपन करै, पाछे करै प्रवेस।
ऐसे प्रेमी सुजनको, है प्रवेस यहि देश॥

तत्त्व प्रेमकर मम अरु तोरा।
जानत प्रिया एक मन मोरा॥
सो मन रहत सदा तोहि पाहीं।
जानेहु प्रीति रीति यहि माहीं॥

ऊपरके अवतरणोंसे प्रेमका स्वरूप समझनेमें बहुत कुछ सहायता मिलेगी। प्रेम केवल स्त्री-पुरुषमें ही होता है, ऐसा कहना ठीक नहीं। हमारा निजी अनुभव है कि प्रेम पुरुष-पुरुषमें भी होता है, मनुष्य और पशुपक्षीमें भी होता है और वह अन्ततक निर्दोष, निस्वार्थ एवं सुखद बना रहता है। *

* एक महाशयका एक हारिल पक्षीसे प्रेम था। वह हारिल भी उनसे प्रेम करता था। तारीफ यह थी कि उसे उन्होंने पाला नहीं था। वह पक्षी जहां दूसरोंको देखकर उड़ जाता था, वहां उन्हें देखते ही उनकी गोदमें आकर बैठ जाता था। जिस दिन वह महाशय कहीं चले जाते थे, हारिल दिनभर चारा-पानी छोड़कर उदास भावसे वृक्षकी डालीपर बैठा दरवाजेकी ओर देखा करता था। हारिलके न देखनेपर उक्त महाशय भी बेचैन रहा करते थे। अन्तमें लगातार कई दिनोंतक पक्षीको न देखनेपर उनकी मृत्यु हो गयी। इससे यह सिद्ध होता है कि प्रेम प्राणि-विशेषमें सीमित नहीं। ऐसा प्रेम आत्मैक्यका द्योतक है।

यह धारणा भ्रान्त है कि प्रेम केवल स्त्री-पुरुषमें ही होता है। मातृ-प्रेम, भ्रातृ-प्रेम, पुत्र-प्रेम, धर्म-प्रेम, देश-प्रेम जाति-प्रेम, मित्र-प्रेम, विद्या-प्रेम आदिमें यदि प्रेमका शुद्ध रूप हो तो इन सबको प्रेमके सिवा दूसरा कुछ नहीं कहा जा सकता। यदि ये सब प्रेमकी सीमामें न भी आते, तब भी अब प्रेम ही कहे जाते। क्योंकि मानवस्वभावने जिस बातको मान लिया है, उसमें किसी प्रकारका तर्क करना व्यर्थ है। शब्दका अर्थ बदलनेके लिए फिरसे सृष्टिका निर्माण नहीं किया जा सकता। ऐसे बहुतसे शब्द हैं जिनका यथार्थ अर्थ कुछ और ही है, पर वे मूल अर्थसे सर्वथा भिन्न अर्थमें प्रयुक्त होते है और भाषाने उन्हें उस प्रयुक्त होनेवाले अर्थमें ही ग्राह्य भी कर लिया है। उदाहरणके लिए आनन्द, ज्ञान आदि शब्द हैं। इनका असली अर्थ वेदान्त-शास्त्रने कुछ और ही माना है, पर ये प्रयुक्त होते है कुछ और ही अर्थमें। तो क्या इन्हें असली अर्थमें लानेके लिये कोष बदले जा सकते हैं? इनका बदलना तो तभी सम्भव होगा जब भाषा स्वभावतः इन्हें भिन्न अर्थमें स्वीकार कर लेगी। इसलिए हम तो यही मानेंगे कि प्रेम हर किसी उपयुक्त पात्रमें हो सकता है और होता है। रही बात प्रेमके पूर्णताकी सो तो दुर्लभ है ही। क्योंकि यदि ऐसा न माना जाय तो 'सियाराम मय सब जग जानी' की सार्थकता कैसे होगी?

हां, यह अवश्य है कि पुरुषका पुरुषके साथ प्रेम होनेके उदाहरण बहुत कम मिलेंगे, किन्तु स्त्री-पुरुषमें प्रेम होनेके उससे अधिक। सच्चा प्रेम तो केवल भगवानमें ही होता है, उसके बाद स्त्री-पुरुषमें। या यों कहना चाहिए कि पति पत्नीमें। दाम्पत्यजीवनकी यही विशेषता है। प्राणका प्राणमें, मनका मनमें, आत्माका अत्मामें मिला देना ही दम्पति-जीवनका चरमोत्कर्ष है। केवल शरीरका शरीरके साथ मेल होना ही दम्पति-जीवनका सर्वस्व नहीं। 'एक जान दो कालिब' इस कहावतका चरितार्थ होना पति-पत्नी-प्रेममें अधिक सम्भव रहता है। पति-पत्नी प्रेम वास्तवमे प्रकृति और पुरुषका मेल है जो

कि सर्वथा स्वाभाविक और सरल है। प्रेमोत्कर्षमें अनन्यता आ जाती है। एकको छोड़कर दूसरेमें और दूसरेको छोड़कर तीसरेमें प्रेमका होना, प्रेम नहीं है—कामुकता है। प्रेमी तो अपनी प्रेमिकामें ही पूर्णता देखता है; इसी प्रकार प्रेमिका भी अपने प्रेमीमें। दोनोंको शेष समूचे जगतमें अपूर्णता दिखायी पड़ती है। जहा प्रेमी अपने प्रेममें पूर्णता देखता है वहा वह अपने प्रेममें सदैव अपूर्णताका अनुभव किया करता है। पूर्णतामें शान्ति होती है, चंचलता या उद्विग्नता नहीं। इसलिए उसकी प्रवृत्ति अन्य ओर नहीं होती। अपूर्णताका अनुभव होनेमें पूर्णता लानेका प्रयास होता है, अत. उसमें उत्तरोत्तर वृद्धि होती जाती है।

प्रेममें लय है। पवित्र दम्पति-जीवनमें दोनों ही अपनेको एक दूसरे में लय कर देते हैं। अभिन्नता रही नही जाती। प्रेममे अशुद्धता या धर्म-विरुद्धता नहीं है। वह स्वयं धर्ममूर्ति है, आनन्द-स्वरूप है। जिस प्रकार इसका शुद्ध रूप निराला है, उसी प्रकार इसका पंथ भी निराला है।

अतएव 'लव-लेटर्स' या प्रेम-पत्रमें पति-पत्नीके प्रेम-पत्रोंका समावेश होना स्वाभाविक है। पति-पत्नीके पत्र-व्यवहारमें ही प्रेमको झांकी दिखायी पड़ सकती है। यही कारण है कि इस पुस्तकमें केवल ये ही पत्र रखे गये हैं। भले हीं स्त्री परकीया हो या स्वकीया। इसे लेखक और लेखिकाएँ जानें।

अन्तमें हम रामचरित-मानसकी दो चौपाइया उद्धृत करके इस पत्र या उपसंहारको समाप्त करते हैं। गोस्वामी तुलसीदासकी इन चौपाइयोंसे तुम्हें इस बातका ज्ञान हो जायगा कि प्रेम कैसे होता है।

जाने बिनु न होइ परतीती ।
बिनु परतीति होइ नहि प्रीती ॥
बिना प्रीति नहि भगति दृढ़ाई ।
जिमि खगेस जलकी चिकनाई ॥

तुम्हारे ही शब्दोंमें-

'सरकार' ।

सर्वे भवन्तु सुखिनः
सर्वे सन्तु निरामयाः ।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु
माकश्चिद्दुःखमाप्नुयात् ॥ १ ॥

सत्यं शिवं सुन्दरम्

ॐ शान्तिः ३